हिंदी भक्त वार्ता-साहित्य

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में
इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोधप्रबंध

अगस्त, १९६२

प्राक्कथन

मध्यकालीन भारतीय धर्म-साधना में भक्ति तथा प्रेम के संदेश द्वारा नया प्राण फूकने वाले संतों तथा महात्माओं का परिचय जिन प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त होता है उन्हें सुविधा के लिए "भक्तवार्ता साहित्य" नाम दिया गया है। यह साहित्य हमें पांच रूपों में उपलब्ध होता है - भक्तमाल तथा भक्तनामावलियां, भक्तमालों की टीका-टिप्पणियां, परिचयियाँ, बीतक, पुष्टिमार्गी वार्ताएं तथा उनकी टीकाएं। इनमें से कुछ ही रचनाएं अभी प्रकाशित हुई हैं, शेष ह० लि० रूप में अनेक स्थलों पर सुरक्षित हैं। हमें एक निर्धारित समय (१४००-१८०० ई०) के अंतर्गत पड़ने वाली मुद्रित तथा ह० लि० समस्त सामग्री प्राप्त कर उनके तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उनकी उपयोगिता का मूल्यांकन करना था। आलोचनात्मक दृष्टि से इस समूचे साहित्य का अध्ययन एक ग्रंथ में अभी तक नहीं हुआ था, धार्मिक संप्रदायों तथा हिंदी साहित्य के इतिहासकरों ने प्रसंगानुसार पृथक् पृथक् रचनाओं या अधिक से अधिक किसी एक शाखा पर अवश्य अपने विचार प्रकट किए हैं।

इस साहित्य के अध्ययन का आरंभ स्व० एच०एच०विल्सन से मानना चाहिए जिन्होंने सं० १८८८ में "एशियाटिक रिसर्चेज़" में "ए स्केच आव दि रेलिजस सेक्ट्स आव दि हिन्दूज़" निबंध प्रकाशित कराया जिसके केवल दो पृष्ठों में उन्होंने नाभादास की जीवनी संबंधी तथ्यों का संकलन प्रियादास की टीका तथा जनश्रुतियों के आधार पर किया और उनकी समीक्षा की। इसके अतिरिक्त नाभादास के भक्तमाल की किसी अन्य विशेषता की चर्चा उन्होंने नहीं की।

हिन्दी साहित्य का सबसे पुराना इतिहास गार्सां द तासी का है जिसका पहला संस्करण दो भागों में क्रमशः १८३९-१८४७ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसका हिन्दी अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने "हिन्दुई साहित्य का इतिहास" के नाम से किया। इसके पृष्ठ १२७ पर भक्तमाल के सम्बन्ध में तासी का यह महत्वपूर्ण निर्णय मिलता है कि भक्तमाल के मूल रचयिता नाभादास थे और उसका संशोधन तथा परिवर्धन नारायणदास ने शाहजहां के राजत्वकाल में किया था। उन्होंने ऐसा मत किस आधार पर स्थिर किया, इसका उल्लेख

तो नहीं है, किन्तु आगे चलकर भक्तमाल के रचयिता के सम्बन्ध में विचार करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई । कुछ समय पश्चात् हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने वाले तीसरे पाश्चात्य विद्वान डा० ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथ "मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान (सं० १९४६) में नाभादास के प्रसंग में विल्सन तथा गार्सा द तासी की बातों को ही दुहराया है ।

हिन्दी में लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम इतिहास "शिव-सिंह सरोज" (सं० १९३४) में नाभादास के सम्बन्ध में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि वे अग्रदास के शिष्य थे तथा सं० १६६० के आसपास वर्तमान थे ।

श्री राधाकृष्ण दास ने सं० १९२८ में ध्रुवदासकृत भक्तनामावली का सम्पादन करते समय उपर्युक्त ग्रंथ के साक्ष्यों के आधार पर भक्तमाल का रचनाकाल निश्चित करने का प्रयत्न किया, किन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में उनका निर्णय मान्य नहीं हो सकता । कुछ समय पश्चात् मिश्रबन्धुओं ने विनोद (सं० १९७०) में नाभादास के विषय में राधाकृष्णदास की मान्यताओं को दुहराया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में यद्यपि मध्यकालीन साहित्य पर गम्भीरता से विचार किया है किन्तु नाभादास के सम्बन्ध में राधाकृष्णदास के मतों की ~~पुनरुक्ति~~ पुनरावृत्ति उन्होंने भी कर दी । बाद के सभी इतिहासकारों ने इसी मत का पिष्टपेषण किया ।

अन्तः साक्ष्य के आधार पर नाभादास के भक्तमाल का रचनाकाल स्थिर करने का सर्वाधिक सराहनीय प्रयत्न महावीर सिंह गहलौत का है जिन्होंने सं० २००५ की सम्मेलन पत्रिका में अपना तत्सम्बन्धी एक लेख दिया था । उन्होंने महाराज जसवन्त सिंह को भक्तमाल में वर्णित भक्तों में सबसे बाद का मानकर उसका रचना काल सं० १७१५ के लगभग निश्चित कर भक्तमाल के रचनाकाल की समस्या का उपयुक्त समाधान प्रस्तुत किया ।

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने "विचार और विमर्श" (सं० २००८) में भक्तमाल का संक्षिप्त परिचय दिया है, जिसमें नाभादास के काव्य-कौशल के अतिरिक्त उनके संबंध में किसी अन्य समस्या पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है । इसके एक वर्ष बाद डा० मोतीलाल मेनारिया ने "राजस्थान का पिंगल साहित्य"

में नाभादास की जाति के सम्बन्ध में खोजपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किए हैं।

गार्सां द तासी तथा ग्रियर्सन के विचारों से प्रभावित होकर डा० किशोरी लाल गुप्त ने "भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व" शीर्षक निबन्ध (ना० प्र० पत्रिका वर्ष ६३ अंक ३-४) द्वारा भक्तमाल को कम से कम तीन व्यक्तियों की रचना मानने का प्रस्ताव किया। उनसे सहमत न होने के कारण प्रस्तुत लेखक ने उनके तर्कों का समुचित समाधान उपस्थित करने का इस शोध प्रबन्ध में प्रयत्न किया है।

डा० भगवती प्रसाद सिंह ने "राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय" (सं० २०१४) में केवल नाभादास की गुरु परम्परा तथा उनकी उपासना पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। सम्वत् २०१७ में वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल की भूमिका में नाभादास के भक्तमाल तथा उनकी टीकाओं का यद्यपि एक भावुक भक्त के दृष्टिकोण से प्रशंसात्मक विवरण दिया गया है, किन्तु अन्त के लगभग सात पृष्ठों में "भक्तमाल साहित्य का विवरण" शीर्षक से अनेक भक्तमालों तथा भक्तनामावलियों का जो विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है उससे भक्तमाल सम्बन्धी शोध में बड़ी सहायता मिलती है।

सम्वत् २०१८ में श्री प्रकाश नारायण दीक्षित का "नाभादासकृत भक्तमाल: एक अध्ययन" शीर्षक पुस्तिका साहित्य भवन, प्रयाग से प्रकाशित हुई। यह लेखक द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा के प्रबन्धरूप में प्रस्तुत की गयी थी। इसमें दीक्षित जी ने भक्तमाल के रचनाकाल तथा रचयिता आदि से सम्बद्ध समस्याओं पर विभिन्न लेखकों के मतों का संचय तो कर दिया है किन्तु उनके आधार पर किसी उपयुक्त निर्णय पर पहुंचने का प्रयास नहीं किया।

पुष्टिमार्गी वार्ताओं के अनेक संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं और उनपर ऊहापोह भी अनेक विद्वानों ने की है। मिश्र बन्धु आदि पुराने इतिहासकारों ने चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता को गोकुलनाथकृत माना है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके गोकुलनाथकृत होने में शंका उठाई है। उन्होंने यह दिखलाया है कि कई जगह गोकुलनाथ जी के श्री मुख से कही हुई बातों का बड़े आदर और सम्मान के शब्दों में उल्लेख है और वल्लभाचार्य की

शिष्या न होने के कारण मीराबाई को बहुत भला बुरा कहा गया है । उन्होंने यह संकेत किया है कि रंग ढंग से यह वार्ता गोकुलनाथ के पीछे उनके किसी गुजराती शिष्य की जान पड़ती है ।

वार्ताओं पर मौलिक तथा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले सर्वप्रथम विद्वान डा० धीरेन्द्र वर्मा हैं । उनका तत्सम्बन्धी निबन्ध "क्या दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता गोकुलनाथ कृत है?" हिन्दुस्तानी १९३२ में छपा । उन्होंने ही सबसे पहले यह दिखलाया कि दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में गोकुलनाथ का नाम इस प्रकार से मिलता है, जैसा कि कोई लेखक अपनी रचना में अपना नाम नहीं लिख सकता । इसके अतिरिक्त वार्ताओं में औरंगज़ेब की समसामयिक घटनाओं का वर्णन भी मिलता है । भाषा के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि चौ० तथा दो सौ बावन वार्ताओं के लेखक भिन्न भिन्न हैं और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तो निश्चितरूप से १७वीं शताब्दी के बाद की है ।

डा० धीरेन्द्र वर्मा की स्थापना को आगे चलकर डा० माता प्रसाद गुप्त ने कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर पुष्ट किया । उनका "क्या चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताएं १९वीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व लिपिबद्ध नहीं हुई थी ?" शीर्षक निबंध "हिन्दी अनुशीलन" (सं० २०१०) में छपा । इस लेख में नागरीदास की "पद प्रसंगमाला" तथा "गोविन्द परिचयी" से वार्ताओं की तुलना कर उन्होंने यह सिद्ध किया कि वार्ताएं वस्तुतः "पदप्रसंगमाला" (सं० १८१९) के बाद लिपिबद्ध हुईं । इसके अतिरिक्त डा० गुप्त ने अपने शोध प्रबन्ध तुलसीदास में प्रियादास की टीका तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के प्रसंगों की तुलना कर वार्ताओं को टीका का परवर्ती सिद्ध किया है ।

विद्वानों का एक दूसरा वर्ग वार्ताओं को गोकुलनाथकृत तथा पर्याप्त प्राचीन मानता है । इनमें श्री द्वारकादास परीख, प्रो० कंठमणि शास्त्री, डा० दीनदयाल गुप्त, प्रभुदयाल मीतल, तथा डा० हरिहरनाथ टंडन के नाम उल्लेखनीय हैं । श्री द्वारकादास परीख ने पहले "प्राचीन वार्ता रहस्य" का सम्पादन किया जो तीन भागों में सं० १९९६, १९९८, तथा २००१ में प्रकाशित हुआ फिर इन्होंने दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं का भी सम्पादन किया जो शुद्धाद्वैत एकेडमी कांकरौली से तीन खंडों में क्रमशः २००८, २००९ तथा २०१० में प्रकाशित हुआ । डा० दीनदयालु गुप्त ने अपने शोध प्रबन्ध "अष्टछाप और

वल्लभ सम्प्रदाय" (सं० २००४) में वार्ताओं के सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्रवर्मा की मान्यताओं का खण्डन किया है और सिद्ध किया है कि वार्ताएँ मूलतः गोकुलनाथ के समय की ही हैं तथा परवर्ती प्रसंगों को किसी ने (कदाचित् उनके टीकाकार हरिराय ने) बाद में जोड़ा होगा। आगे चलकर डा० हरिहरनाथ टंडन ने वार्ता साहित्य को अपने शोध का विषय बनाया और सभी बातों में श्री परीख तथा डा० दीन दयालु जी का अनुसरण करते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि कई दृष्टियों से उसका अध्ययन प्रस्तुत किया। यह "वार्ता साहित्य" नाम से १९६० ई० में प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों ने भी वार्ताओं पर अपने अध्ययन प्रस्तुत किए किंतु उनमें कोई मौलिकता नहीं।

राधावल्लभी साहित्य पर भी ललिता चरण गोस्वामी ने "हितहरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य" (२०१४) लिखा और उसी वर्ष डा० विजयेंद्र स्नातक का शोध प्रबन्ध "राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य" प्रकाशित हुआ जिसमें उस सम्प्रदाय के साहित्य का विस्तृत परिचय प्राप्त होता है। सं० २०१७ में श्री ललिता प्रसाद पुरोहित ने भगवत मुदित कृत "रसिक अनन्यमाल" का सम्पादन किया, जिसकी भूमिका में उस परम्परा की कुछ अन्य रचनाओं का भी नामोल्लेख किया।

संतों की परिचयियों का अध्ययन डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने अपने "परिचयी साहित्य" (सं० २०१४) में किया जिसमें यद्यपि परिचयियों का परिचय मिलता है, किन्तु उनका विवेचन प्रायः भ्रमात्मक है।

प्रणामी सम्प्रदाय के साहित्य का उल्लेख पहले एफ० एस० ग्राउज़ ने सं० १९३६ में "एशियाटिक जनरल आव एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल" में प्रकाशित किया। बाद में मिश्र बन्धुओं ने उनके उपास्य ग्रंथ "कुलजम स्वरूप" की फ़ारसी लिपि में लिखी एक प्रति का उल्लेख किया। डा० बड़थ्वाल तथा परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रंथों में प्रणामी या धामी सम्प्रदाय के प्रसंग में इसी ग्रंथ की विशेष चर्चा की है किन्तु प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री माताबदल जायसवाल ने अपने तीन निबन्धों द्वारा लालदासकृत बीतक का परिचय प्रस्तुत किया जिसमें प्राणनाथ की जीवनी का प्रामाणिक विवरण

मिलता है। ये लेख क्रमशः "सम्मेलन पत्रिका" (सन् १९५४) तथा "हिन्दी अनुशीलन" १५७-५८ में प्रकाशित हुए।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने "राजस्थान का पिंगल साहित्य" में संत साहित्य तथा भक्तमाल सम्बन्धी अनेक बहुमूल्य सूचनाओं का संग्रह किया है जिनसे शोध कार्य में पर्याप्त सहायता मिलती है। मैं उपर्युक्त सभी ग्रंथों के लेखकों का आभारी हूं क्योंकि सहमत या असहमत होते हुए मैंने उनसे प्रेरणा तथा सहायता प्राप्त की है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में नाभादास जी के पूर्ववर्ती भक्तमालों, भक्तनामावलियों तथा परिचयियों पर विचार किया गया है, जिसके अन्तर्गत दो दादू पंथी भक्तमाल, एक राधावल्लभी भक्तमाल तथा कबीर, नामदेव, रैदास, पीपा, धना, रांका-बांका, त्रिलोचन की परिचयियों का अध्ययन किया गया है। उनके रचयिता क्रमशः जगाजी, चैनजी, भगवत मुदितजी तथा अनन्तदास जी हैं। इनके अतिरिक्त परशुराम देवाचार्य, व्यास, माधोदास तथा गिरिधर आदि की रचनाओं में भक्तों के सम्बन्ध में उपलब्ध स्फुट प्रसंगों पर भी विचार किया गया है क्योंकि उनसे इस परम्परा के प्राचीन रूप का परिचय मिलता है।

दूसरे अध्याय में नाभादास एवं उनके भक्तमाल के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया गया है। इसमें नाभादास के जन्म, जन्म स्थान, जाति, गुरु-परम्परा तथा उनकी रचना भक्तमाल से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं- जैसे उसका रचनाकाल, छन्द संख्या, तथा वर्णन शैली आदि पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। इसके पश्चात् अनन्तदास की परिचयियों तथा भगवत-मुदितकृत "रसिक अनन्यमाल" से तुलनाकर यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि भक्तमाल पर इन रचनाओं का प्रभाव किस सीमातक है।

तीसरे अध्याय में नाभादास के परवर्ती भक्तवार्ता साहित्य के लगभग दो दर्जन ग्रंथों का पृथक् पृथक् परिचय देते हुए पूर्ववर्ती ग्रंथों से उनकी तुलना कर उनके प्रेरक स्त्रोत ढूढ़ने का प्रयास किया गया है। इनमें से लगभग सोलह ग्रंथ अप्रकाशित है। राघोदासकृत भक्तमाल, उत्तमदासकृत रसिकमाल, चन्द्रदासकृत

"भक्त विहार", ध्रुवदासकृत भक्तनामावली (प्रकाशित) तथा नागरीदासकृत "पद प्रसंग माला" (प्रकाशित) का इन रचनाओं में अधिक महत्व है ।

चौथे अध्याय के पहले खंड में भक्तमाल की टीका टिप्पणियों का मूल्यांकन है, इनमें प्रियादास की टीका "भक्ति रसबोधिनी" , भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका पर वैष्णवदासकृत टिप्पणी, भक्तमाल पर जमालकृत टिप्पणी, प्रियादास की टीका के उर्दू अनुवाद "भक्ति उरवशी" तथा बालक राम की "भक्तमाल टीका" पर विचार किया गया है । दूसरे खण्ड में राघौदास के भक्तमाल पर चतुरदास की टीका का विस्तृत विवेचन है ।

पाँचवें अध्याय में प्रणामी सम्प्रदाय के बीतक तथा अन्य सम्प्रदायों की परवर्ती परिचयियों की परम्पराओं तथा विशिष्टताओं का मूल्यांकन किया गया है । प्रणामी सम्प्रदाय के बीतकों में से लालदास का बीतक सबसे अधिक प्रसिद्ध है, इसलिए उसी पर विस्तार से विचार किया गया है । परवर्ती परिचयियों के अन्तर्गत आठ रचनाओं की प्रत्येक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है और उन पर पूर्ववर्ती भक्तवार्ता साहित्य के प्रभाव का आकलन किया गया है । इनमें से केवल तीन परिचयियां प्रकाशित हैं, शेष की हस्तलिखित प्रतियां भिन्न भिन्न स्थानों पर मिलती हैं ।

छठें अध्याय में पुष्टिमार्ग की भक्त वार्ताओं तथा उनकी टीकाओं के द्वारा प्रस्तुत प्रसंगों की जांच की गई है । भक्तवार्ता साहित्य का यह अंग बहुचर्चित है इसलिए स्वभावतः उनसे सम्बद्ध अनेक विवाद खड़े हो गए हैं । उनके तीनों रूपान्तरों- चौरासी वैष्णवन की वार्ता- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- तथा भावसिन्धु की वार्ता और उनकी "भाव प्रकाश" नामक टीका में से प्रत्येक के रचयिता, रचनाकाल तथा प्रक्षेपों आदि की समस्या अबतक विवादास्पद बनी हुई है । निजवार्ता, घरूवार्ता, बैठक चरित्र तथा श्रीनाथ की वार्ता पर इसलिए विचार नहीं किया गया है कि उनमें केवल दिनचर्या का वर्णन मिलने के कारण वे प्रस्तुत विषय की सीमा के बाहर पड़ती हैं । उनमें भक्तों के "चरित्र" नहीं मिलते । "अष्टसखान की वार्ता" में चार वार्ताएं ८४ वैष्णवन की हैं और शेष दो सौ बावन वैष्णवन की । अतः उनका पृथक् से उल्लेख नहीं किया गया है । जैसा पहले संकेत किया गया है, अनेक विद्वानों ने गोकुलनाथ

जी को ८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्ताओं का मूल रचयिता माना है । हमने अनेक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि उनके वर्तमान रूपान्तर कदाचित् एक ही मूल ग्रंथ के तीन रूपान्तर हैं, साथ ही यह भी दिखलाया है कि न तो गोकुलनाथ वार्ताओं के रचयिता हो सकते हैं न हरिराय जी "भाव प्रकाश" नामक टीका के कर्ता हो सकते हैं । इसी प्रकार कुछ विद्वानों के इस विचार से भी हम सहमत नहीं हैं कि वार्ताएं नाभादास के भक्तमाल के पूर्व की हैं । इसके विपरीत दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में मिलने वाले "चूहड़े की वार्ता" के साक्ष्य पर यह सिद्ध किया है कि वार्ताकार को नाभादास का तथा उनके भक्तमाल का पता था - जबकि नाभादास, प्रियादास (सं० १७६९) नागरीदास (सं० १८१९) आदि किसी ने भी वार्ताओं या उनके रचयिता के रूप में गोकुलनाथ का उल्लेख नहीं किया । इससे इस अनुमान को पुष्टि मिलती है कि पुष्टिमार्गीय वार्ताएं काफ़ी बाद की हैं । यह निर्णय कुछ ऐसे हैं कि एक विशिष्ट वर्ग के विद्वान इनसे सहमत न होंगे किन्तु हमारा ध्येय उक्त विद्वानों की भावना को आघात पहुंचाना नहीं- प्रत्युत भक्तवार्ता साहित्य के इस महत्वपूर्ण अंग की वस्तु-स्थिति का ठीक-ठीक पता लगाना था ।

अन्त में उपसंहार के रूप में भक्त-वार्ता साहित्य की उपर्युक्त सभी परम्पराओं का धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक मूल्यांकन करते हुए उनकी उपयोगिता पर विचार प्रकट किया गया है और साथ ही इस साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थों के पाठ निर्णय की आवश्यकताओं की ओर इंगित किया गया है ।

इस प्रकार आलोच्य काल के सम्पूर्ण भक्त वार्ता साहित्य को विभिन्न परम्पराओं में विभाजित करते हुए सबका तुलनात्मक अध्ययन के कारण उनका पूर्वापर क्रम निर्धारित करना हमें बहुत सरल और निरापद लगा, जो कि किसी एक परम्परा में प्राप्त रचनाओं के एकांगी अध्ययन से कदाचित् संभव नहीं था । पूर्ववर्ती अध्ययन की तुलना में प्रस्तुत शोध प्रबंध की यही सबसे बड़ी विशेषता मानी जा सकती है । ऐसी योजना के कारण यद्यपि विषय का विस्तार काफ़ी बढ़ गया है किन्तु विषयवस्तु को अत्यधिक संक्षिप्त करते हुए उसके अधिक से अधिक पहलुओं पर विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है ।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी सामग्री प्रकाश में लाई गयी है जो इतः पूर्व या तो पूर्णतया अज्ञात थी या बहुत ही कम विद्वानों को ज्ञात थी, उदाहरणतया नाभादास के पूर्ववर्ती जगाजी तथा चैनजी के भक्तमालों का उल्लेख अभी तक किसी ग्रंथ में नहीं हुआ था । राघोदास के भक्तमाल तथा उसपर चतुरदास की टीका और चंददासकृत "भक्तमाल" के विषय में यद्यपि संत साहित्य की खोज करने वाले कुछ विद्वानों को यत्किंचित जानकारी थी और यत्र-तत्र प्रसंगवश उनके उद्धरण देखने को मिल जाते हैं किन्तु उनकी परम्पराओं तथा स्रोतों के संबंध में प्रस्तुत प्रबंध में पहली बार विचार किया गया है । नाभादास के पूर्ववर्ती भक्तनामावलियों में माधौदास के "संतगुणसागर", परशुराम देवाचार्य के उल्लेखों तथा गिरिधर के "भक्त माहात्म्य" की अभी तक बहुत कम लोगों ने चर्चा की थी । प्रियादास की टीका तथा अनन्तदास की परिचयियों का यद्यपि अलग से अध्ययन किया गया है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से उनका सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता है । भगवतमुदितकृत "रसिक अनन्यमाल", रामदासकृत "भक्तमाल" ध्यालबालकृत "करुणासागर" आदि यद्यपि साम्प्रदायिक साहित्य में प्रकाशित हो चुके थे, किन्तु सम्पूर्ण भक्तवार्ता साहित्य के परिवेश में उनका अध्ययन अभी तक नहीं हुआ था । अनेक रचनाओं की रचना तिथि के संबंध में नई मान्यताएं रखी गई हैं, जैसे ध्रुवदास की भक्तनामावली, सुथरादासकृत "मलूक परिचयी" ध्यालबालकृत "करुणासागर" आदि ।

डा० माताप्रसाद जी ने यद्यपि वार्ता के कुछ प्रसंगों की तुलना प्रियादास की टीका और "पदप्रसंगमाला" से की है, किन्तु हमने अनंतदास की परिचयियों, भगवतमुदित के "रसिकअनन्यमाल", नाभादास, राघोदास के भक्तमालों, प्रियादास की टीका "पदप्रसंगमाला", "गोविन्द परिचयी" आदि अनेक ग्रंथों से सभी समान प्रसंगों की तुलना कर यह दिखलाने का प्रयास किया है कि इस परम्परा में वार्ताओं का स्थान कहां और किस रूप में होना चाहिए । यद्यपि "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" को गोकुलनाथकृत न मानने की मान्यता मूलतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा की थी किन्तु "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" के रचयिता तथा रचनाकाल के संबंध में इस दृष्टि से विद्वानों ने अभी तक विचार नहीं किया था । हमने दोनों वार्ताओं का तुलनात्मक अध्ययन कर पहली बार यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि दोनों वस्तुतः एक ही मूल ग्रंथ के दो भिन्न रूपान्तर हैं और "दो सौ बावन वैष्णवन

की वार्ता" की भाँति "चौरासी वैष्णवन की वार्ता "तथा" भावसिन्धु की वार्ता" के रचयिता गोकुलनाथ नहीं हो सकते ।

तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया प्रायः यह रही है कि किन्हीं दो या अधिक रचनाओं में जो रचना सबसे बाद की सिद्ध हुई है, उसी के प्रसंग में अन्य पूर्ववर्ती रचनाओं से समानार्थी टुकड़ों को पृथक् कर उनकी तुलना की गयी है जिससे पारस्परिक आदान-प्रदान की स्पष्ट रूप रेखा ज्ञात हो सके ।

हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त करने में दादू महा विद्यालय जयपुर के स स्वामी मंगलदास जी से, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग संग्रहालय के अधिकारियों तथा मलूकदासी गद्दी, कड़ा के महन्त से सहायता मिली । स्वामी मंगलदास ने हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त संत साहित्य संबंधी अनेक जानकारियां प्राप्त कराने में बड़ी तत्परता से मेरी सहायता की । काशी नरेश महाराज विभूति नारायण सिंह जी ने अपने निजी संग्रह की हस्तलिखित प्रतियों को देखने की पूरी सुविधा प्रदान की तथा नित्य-प्रति व्यक्तिगत रूप से कठिनाइयों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ कर साहित्य तथा शोध के प्रति अपने अनुराग का परिचय दिया । प्रयाग विश्व विद्यालय के पुस्तकालय के अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने मुझे सदैव अधिक से अधिक सुविधा देने का प्रयत्न किया । कड़ा की सामग्री प्राप्त करने में हिन्दी विभाग के शोध छात्र श्री हरिमोहन मालवीय से विशेष सहायता मिली । मैं उक्त सभी सज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं ।

प्रस्तुत विषय का सुझाव डा० माता प्रसाद गुप्त ने दिया था और उन्हीं के निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हुआ । शोध के क्षेत्र में डा० गुप्त की कितनी गहरी पैठ है इसका ठीक-ठीक अनुभव वही कर पाये होंगे जिन्होंने उनके निर्देशन में कार्य किया है । उन्होंने अत्यंत स्नेह तथा आत्मीयता के साथ पग-पग पर मेरी कठिनाइयों को सुलझाने में सहायता की जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूं । विभाग के अन्य गुरुजनों में डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय तथा पं० उमाशंकर शुक्ल ने समय-समय पर सत्परामर्श एवं सहायता द्वारा प्रोत्साहन दिया । उसके लिए मैं उक्त गुरुजनों का कृतज्ञ हूं । प्रयाग विश्व

विद्यालय ने ५०) प्रतिमास की छात्र-वृत्ति देकर आर्थिक सहायता एवं प्रोत्साहन प्रदान किया जिसके लिए मैं अधिकारियों का कृतज्ञ हूं ।

अनेक मुद्रित तथा हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हो जाने पर भी मेरा कार्य इतनी सफलता और शीघ्रता से न समाप्त होता, यदि मेरे सुहृद् श्री बालकृष्ण दुबे एम० ए० एल० टी०, श्रीमती दुबे , श्री संकठा प्रसाद दुबे एम० ए० द्वितीय वर्ष तथा श्री नित्यानन्द जी तिवारी, रिसर्च स्कालर नाना प्रकार से मुझे सहायता न पहुंचाते । हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० पारस नाथ तिवारी के प्रति भी आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं जिन्होंने इस शोधप्रबंध की पांडुलिपि को आद्योपांत पढ़कर आवश्यक सुधार तथा संशोधन किए ।

प्रयाग लालता प्रसाद दुबे

६ अगस्त, १९६२

विषय- सूची

अध्याय १ : नाभादास के पूर्व का भक्त-वार्ता साहित्य (पृ० १-३८)

अध्याय २ : नाभादास एवं उनका भक्तमाल (पृ० ३९-१००)

अध्याय ३ : नाभादास के/ पश्चात् का भक्त-वार्ता-साहित्य (पृ० १०१-२१५)

रचनाकाल- रचनाएं- रसिक अनन्य परिचावली (२१०-१४) गो० चंद्रलालकृत "वृंदावन प्रकाशमाला" (२१४)- गोविंद अलिकृत "रसिक अनन्यगाथा" (२१५) ।

अध्याय ४: नाभादास तथा उनके परवर्ती भक्तमालों की टीकाएं तथा टिप्पणियां

(पृ० २१६-२८३)

(क) नाभादास के भक्तमाल की टीकाएं तथा टिप्पणियां- (१) प्रियादास की टीका "भक्ति रस बोधिनी" - प्रियादास तथा टीका की प्रेरणा- टीका का नाम रचनाकाल- अन्य रचनाएं- योजना- टीका का मुख्य आधार- सामूहिक वर्णन वाले छप्पय- भक्तमाल के अतिरिक्त नवीन भक्तों से संबद्ध नवीन घटनाएं- निष्कर्ष- विवेचना- टीकाकार की भूलें- टीका का महत्व (२१६-३७) -(२) अनंतदास की परिचयियों तथा प्रियादास की टीका का तुलनात्मक अध्ययन (२३७-५५)- (३) प्रियादास की टीका तथा "रसिक अनन्यमाल" का तुलनात्मक अध्ययन (२५५ -६४)- (४) भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका पर वैष्णवदास की टिप्पणी- टिप्पण का रचनाकाल- (२६४-७२)- (५) जमाल की टिप्पणी (२७२-७३) -(६) भक्तमाल पर प्रियादास की टीका का लालचंद्रदासकृत उर्दू अनुवाद "भक्त उर्वशी" (२७३-७४)- (७) अन्य टीकाकार तथा टीकाएं- भक्तमाल पर बालकराम की टीका- रचनाकाल- (२७४-७५) ।

(ख) नाभादास के परवर्ती भक्तमालों की टीकाएं तथा टिप्पणियां- (१) राघोदास के भक्तमाल पर चतुरदास की टीका- टीका का रचनाकाल- छंद तथा परिमाण- टीका का मूलाधार- प्रियादास तथा चतुरदास की टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन (२७५-२८३) ।

अध्याय ५ : बीतक तथा परवर्ती परिचयियां (पृ० २८४-३२१)

(क) बीतक- बीतक साहित्य- लालदास रचित बीतक- प्राणनाथ जी का जीवनवृत्त- ऐतिहासिक समीक्षा- बीतकों का महत्व (२८४-९१)

(ख) परवर्ती परिचयियां - (१) श्री दादूजन्मलीला परची : जनगोपालकृत- जनगोपाल के माता-पिता तथा जन्मकाल- ग्रंथ का रचनाकाल- ~~जन्मकाल~~- परची का सारांश- दादू का- जन्मकाल- माता-पिता- जाति, गुरु- परम्परा

अध्याय १

नाभादास के पूर्व का भक्त-वार्ता साहित्य

अध्याय १

नाभादास के पूर्व का भक्त-वार्ता साहित्य

नाभादास जी के पूर्व भक्तमाल अथवा भक्त-नामावलियों की परम्परा वर्तमान थी, इसकी सूचना उनके निम्नांकित दोहे से मिलती है-

भक्तमाल जिन जिन कथी, तिनकी जूठनि पाय ।
मो मतिसार अक्षर द्वै, कीनौ सिलौ बनाय[1]।।

यद्यपि नाभादास से पूर्व का कोई भक्तमाल ऐसा नहीं मिलता जो उनके द्वारा रचित भक्तमाल की शैली में हो, किन्तु दो दादूपंथी और एक राधावल्लभी (भक्तमाल) ऐसे प्राप्त हुए है जिन्हें उनका पूर्ववर्ती अथवा समसामयिक माना जा सकता है[2]। दादूपंथी भक्तमालों में से एक के रचयिता दादू के शिष्य जगा जी तथा दूसरे के उनके प्रशिष्य चैन जी है। तीसरे अर्थात् "रसिक अनन्यमाल" के रचयिता भगवत मुदित है। यद्यपि दादूपंथी ग्रंथकारों ने ग्रंथ के अंत में इनको भक्तमाल की संज्ञा से अभिहित किया है किन्तु इन्हें अधिक से अधिक "भक्त नाममाला" कहा जा सकता है। "रसिक अनन्यमाल" में भक्तों के परिचय अवश्य विस्तार से दिए हुए हैं। इन भक्तमालों के अतिरिक्त अनंतदास ने अनेक परिचयियों की रचना भी नाभादास से पहले ही कर दी थी और उसी समय के आस पास कुछ लोगों ने केवल भक्तों के नाम थोड़े विशेषणों के साथ गिना दिए है जिन्हें हमने सुविधा के लिए "भक्त नामावली" की संज्ञा दी है। इनमें व्यास जी की वाणी, माधवदास का "सन्त गुण सागर", परशुराम जी का "परशुराम सागर" तथा गिरिधर का "भक्त माहात्म्य" विशेष उल्लेखनीय है। उपर्युक्त सभी भक्तमालों तथा भक्त नामावलियों पर आगे संक्षेप में विचार किया गया है।

(क) भक्तमाल

(१) जगाकृत भक्तमाल

जगा जी का संक्षिप्त परिचय-

राघवदास के भक्तमाल तथा उसकी टीका से इतना ज्ञात होता है कि दादू शिष्य जगा जी भक्ति भाव से पूर्ण थे। साधु तथा गुरू की सेवा करने वाले थे। सलेमाबाद में परशुराम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर

१- भक्तमाल रूपकला सटीक, छ० सं० २१३।
२- दोनों भक्तमाल दादू महाविद्यालय, मोती डूंगरी जयपुर के संग्रह से मंगलदास स्वामी द्वारा प्राप्त हुए हैं।

इनकी भक्ति की धाक सर्वत्र जम गयी है,[3] क्योंकि रसोई तैयार होने पर वे ईश्वर की भक्ति में इतने तल्लीन थे कि श्वान और शेरनी ने रसोईभक्षण कर लिया । चतुरदास की टीका में इन्हें दादू पंथ की जगमगाती ज्योति मानकर परशुराम सम्प्रदायी और खेचरी मुद्रा का साधन करने वाला भी बताया गया है ।[4]

रचनाएं:-

उनका भक्तमाल बहुत संक्षिप्त है । इसमें केवल ६८ चौपाई छंद हैं, जिनमें लगभग दो सौ भक्तों का नाम गिनाया गया है । लगभग प्रत्येक चौपाई में तीन -चार भक्तों का नाम लेकर "इन्हूं कह्यो राम भज सूधो" अथवा "इनहूं कह्यो राम है सगा" यह चरण जोड़ा हुआ है ।

रचनाकाल

दादू जी का जन्म सं० १६०१ में हुआ था ।[5] अपने जीवन के अंतिम दिनों में दादू जी नैराणा में निवास करते थे । वहीं सं० १६६० में इनकी मृत्यु हो गयी ।[6] इन तिथियों के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है । जगा जी दादू जी की मृत्यु के बहुत पश्चात् तक जीवित रहे थे, यह उनकी रचना से मालूम होता है । अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ का रचना-काल अनुमानतः १७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा सकता है । इस तिथि से स्वामी मंगल दास जी सहमत हैं ।

३- भक्तमाल राघवदास छं०सं० ४१ ।

४- वही, छं०सं० ४२ ।

५- संवत् सौलासै ईकोतर, संत एक उपज्यो पुहुमी पर ।
पच्छिम दिसा अहमदाबादू, तीणे साध परगटै दादू ।।
-श्री दादू जन्म लीला परिची ।छंद ६, पृ० २०।

६- श्री दादू जन्म लीला परिची । पृष्ठ १७६ ।

जगा कृत भक्तमाल में आए हुये[6] भक्तों की सूची-

जगा जी का ग्रंथ तीन भागों में विभाजित है ।

(१) पूर्वार्द्ध

(२) उत्तराधा संत

(३) "स्वामी दादू जी की कीरतियां"

इन तीनों भागों में आए हुए भक्तों की सूची क्रमशः नीचे दी गई है:-

पहला मंगलाचरण दादू जी की स्तुति से प्रारम्भ होता है । छं० १५ तक दूसरे युगों, अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर के भक्तों का वर्णन चलता है । पुनः कलियुग के भक्तों का वर्णन होता है, + जो छंद ५५ तक समाप्त हो जाता है । इसमें भी छं० ३२ के पश्चात् दादू जी के सेवकों का नाम लिखा गया है । इस खण्ड के अंतर्गत् निम्नलिखित सेवकों तथा भक्तों के नाम मिलते हैं ।[७] ये नाभादास के भक्तमाल के भी निम्न पृष्ठों पर वर्णित हैं ।

हरिदास (८४२) सोझा जी (६३०) सेन (५२५) सूर (५५७) सुषा(५२७) सधना (६३१) रैदास (८२७) रामानंद (२८१) रांका बांका (६३८) भुवन (४३०) वीझल (८८१) पीपा (४९२) परस (६५१) पदमनाभि (३०८) नामदेव (३२२) नरसी (६७३) धना (५२१) धौगू (६३५) तिलोचन (३८०) डूगर (६३०) जैदेव (८२३) चत्रभुज (७३९) घाटम जी (६४६) तुलसी (७५६) कील्हदेव (३०९) कीता (६३५) कान्हा (९०८) कवीर (४७९-८४७) अंगदसिंह (७००)

उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ प्रमुख भक्त निम्नलिखित हैं +. जिनके नाम नाभादास कृत भक्तमाल में नहीं मिलते हैं-

जिवराइल, रसूल, वहावदी, फरीद, हाफिज, सीहाभाई, पूरमा गरीबदास, मसफीन, नान्हीमाता, आंजड़ो, चांदो, दयालदास, जगजीवन,

---

७- केवल कलियुग के प्रमुख भक्तों का नाम है ।

चैन-राघ्रण, बनमाली ।

(२) उत्तरार्ध- इस खण्ड के भक्तों का वर्णन छं० ५६ से प्रारम्भ होकर ६३ तक समाप्त हो जाता है । इस खण्ड के प्रमुख भक्तों के नाम हैं-

दयालदास, दामोदर, माधो, परमानंद, भगवान, मनोहर, जीता, गोपाल, ~~मनोहर~~, हरी दास, दामोदर, परमानंद, हरीदास, दयालदास, संतोषी, राघो, कान्हड़, हरीदास, तुलसीदास, गोविन्द, दामोदर, राणी रमा, गंगा-यमुना आदि ।

नाभा जी के भक्तमाल में इनमें से किसी का उल्लेख नहीं मिलता ।

(३) "दादू की कीरतियां"

इस भाग में बहुत कम भक्तों का नाम आया है । कुछ के नीचे नाम दिये जाते हैं -

"रामदास, नाथू, राघो, खेम, गोपाल, हरीदास, बिसनदास और कल्याण" आदि ।

महत्व-

अभी तक विद्वानों की यही धारणा रही है कि नाभादास जी के पहले कोई भक्तमाल नहीं लिखा गया है किन्तु जगा जी का भक्तमाल इसका अपवाद है । और अब तक के उपलब्ध भक्तमालों में यह सबसे प्राचीन है, यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है ।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि एक स्थल पर इतने भक्तों की सूची इसके पहले कहीं अन्यत्र नहीं प्राप्त होती । नाभादास के भक्तमाल से इसकी तुलना करने पर ज्ञात होता है कि नाभादास की अपेक्षा जगा जी का संचय अधिक व्यापक था क्योंकि इतर सम्प्रदाय वाले ऐसे सन्तों तथा भक्तों के नामों की सूची दी है जो नाभा जी के भक्तमाल में नहीं मिलते ।

जगा जी ने पहले अन्य युगों के भक्तों का वर्णन कर कलियुग के भक्तों का वर्णन किया है । यही परम्परा आगे आने वाले सभी भक्तमालों में अपनाई गई । प्राचीनतम होने के नाते जगा जी को इस परम्परा का प्रवर्तक माना जा

सकता है । इतना होते हुये भी यह कहना पड़ता है कि सच्चे अर्थों में यह भक्तमाल न होकर भक्त नाममाला है, क्योंकि नामों के अतिरिक्त इस भक्तमाल से कोई परिचयात्मक जानकारी उल्लिखित भक्तों के विषय में नहीं प्राप्त होती है ।

(२) चैन जी का भक्तमाल-

चैन जी का संक्षिप्त परिचय - ये दादू जी के पौत्र शिष्य, कदाचित् जन गोपाल जी के शिष्य थे[८] राघोदास जी ने इन्हें कथा कीर्तन का प्रेमी और अनेक ग्रंथों का रचयिता बताया है जिनमें कदाचित् "विहंगम नामा" भी था । टीकाकार चतुरदास ने लिखा है कि चैन जी सारे संसार को स्वप्नवत समझकर शब्द और सुरति की साधना करते थे ; और अंतर्ध्वनि में ध्यान लगाते थे ।[९]

रचनाएं-

यद्यपि राघोदास ने इन्हें अनेक ग्रंथों का रचयिता बताया है किन्तु भक्तमाल तथा अन्य स्फुट वाणियों के अतिरिक्त इनकी रचनाओं का पता नहीं चलता । उक्त भक्तमाल की एक हस्तलिखित प्रति दादू महाविद्यालय से मंगलदास स्वामी द्वारा प्राप्त हुई थी । प्रस्तुत भक्तमाल में भी भक्तों का केवल नामोल्लेख है । कहीं-कहीं गुरु शिष्य संबंध का भी थोड़ा बहुत संकेत मिलता है । यह भक्तमाल जगा जी के भक्तमाल से बड़ा है और चौपाई छंदों

८- राघोदास कृत भक्तमाल छं० सं० ५८ ।

९- दादू केरा पंथ मैं चैन चतुर चित चरण हरि ।
कथा कीरतन प्रीति हेत सौं हरि जस गाया ।।
साधि रहै सम्माज प्रेम पर ब्रह्म लगाया ।।
ग्रंथ रचे बहुभांति विहंगम नामौं रूपक ।
सिध साधिका गुनकथन जास हैं अधिक के रूपक ।
ज्ञान जोग वैराग मग वरणौं मन बच कायकरि ।
दादू केरा पंथ मैं चैन चतुर चित चरण हरि ।। - छं० ६८।

में लिखा गया है । इसमें ९० छंद हैं जिनमें लगभग ३०० भक्तों का उल्लेख है ।

रचनाकाल-

वैन जी दादू जी के प्रशिष्य थे तथा उनके जीवनकाल ही में वयस्क हो गये थे । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनके भक्तमाल की रचना विक्रम सं० १७०० के आस-पास तथा जगा जी के भक्तमाल के बाद हुई ।

वर्णन क्रम-

ग्रंथ में मंगलाचरण के बाद अन्य युगों के भक्तों का नामोल्लेख होता है । उसके बाद कलियुग के भक्तों का वर्णन प्रारम्भ होता है । इस भक्तमाल में आए हुये सभी भक्तों का नामोल्लेख करना यहां कठिन है । अतः कुछ प्रमुख भक्तों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं-

वैन जी के भक्तमाल में लगभग २५० से अधिक भक्तों के नाम मिलते हैं । इनमें से निम्नांकित भक्त नाभादास जी के भक्तमाल के निम्न पृष्ठों पर मिलते हैं ।

सुरसुरानंद (५२९) सनातन (५९१) विष्णुस्वामी (२६९) रैदास(८७२) रूप (६१०) रामानंद भगवान् (२८१) रामदास (९१५) रांका बांका (६३८) मीरा (७१२) भावानंद (२८२) विलमंगल (३६७) पीपै (४९२) परसू (६५१) परमानंद दास (८३६) पदमावती (३६४) नामदेव (३२२) नरसी (६७३) धना (५२१) तिलोचन जी (३८०) जैदेव (८२३) कवीर (४७९-८४७) अनंतानंद (२९८)

इनके अतिरिक्त कुछ प्रमुख भक्तों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं ।

बालनाथ, कणेरी, चौरंगी, सतीनाथ, भरथरी, सिध गरीब, बाल गुसाँई, अजैपाल, गोपीचन्द, मैणावती माता, धूघली मल, अंगद, सीम्हासोचू(?) श्रीरंग, वाजिन्द, सहवाजू, फरीद तथा हातम हैं ।

मूल्यांकन-

यह भक्तमाल या भक्त नाम माला जगा जी के अनुकरण पर लिखी

ज्ञात होती है, अतः इसका भी ऐतिहासिक तथा साहित्यिक महत्व वही है जो उक्त भक्तमाल का है। फिर भी इसकी अपनी अलग विशेषता है, और वह यह है कि इस ग्रंथ में विभिन्न सम्प्रदायों के भक्तों के वर्णनों के साथ-साथ सिद्ध और नाथ-पंथी योगियों का भी उल्लेख है। राघोदास के भक्तमाल की पृष्ठभूमि इसी ग्रंथ द्वारा तैयार हुई ज्ञात होती है, और हो सकता है कि इसका उपयोग राघोदास जी ने अपने भक्तमाल के निर्माण किया हो।

(३) भगवत् मुदित कृत रसिक अनन्य माल-

भगवत मुदित का संक्षिप्त परिचय-

रसिक अनन्यमाल के रचयिता "भगवत् मुदित" हैं। इस ग्रंथ में राधा -वल्लभीय सन्तों के चरित्रों का सबसे प्रामाणिक संकलन है। इनका न तो जन्म संवत् ही ज्ञात हो सका है और न अनन्यमाल का रचनाकाल ही। मुदित जी गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की भी शिष्य परम्परा में पड़ते हैं। इन्होंने रसिक अनन्य माल के आरम्भ में लिखा है-[१०]

प्रणाउं श्री चैतन्य वर नित्यानंद स्वरूप।
श्री हरिवंश प्रताप बल बरनौ कथा अनूप।।

अनन्यमाल की दो हस्तलिखित प्रतियां ना०प्र० सभा में सुरक्षित हैं।[११] इन प्रतियों में रचनाकाल तो नहीं किन्तु लिपिकाल दिया हुआ है। एक के प्रतिलिपिकार डूंगरसी हैं तथा दूसरी के प्रियादास। पुष्पिका इस प्रकार है।

(१)"सं० १८१७ वर्षे मासानां अश्विन मासे कृष्णपक्षे पुन्यस्तिथौ द्वितीयां भृगुवासरे लिष्यति इदे स्वामी बालकदास जी समीपे श्री गुरु प्रासादात डूंगरसी लिषावत।"

१०- हस्तलिखित प्रति - आर्यभाषा पुस्तकालय काशी ना० स०।
११- अब यह ग्रंथ वेणु प्रकाशन, वृन्दावन से प्रकाशित हो गया है।

(२) इति श्री रसिक माल भगवत मुदित समाप्त ।। संपूर्ण।।
अनन्य पुस्तक लिखित श्री वृंदावन मध्ये ।। श्री यमुना तटे ।।
संवत् १८३७ मिति चैत सुदी २ ।।मंगलवार।। हस्ताक्षण
प्रियादास ।। पठनार्थ नवनीत लाल ।।

उपर्युक्त प्रतियों में केवल लिपिकाल सम्वत् १८१७ और १८३७ दिये हुये हैं । इसके द्वारा हित हरिवंश के पुत्रों तथा शिष्यों -प्रशिष्यों के विषय में पर्याप्त जानकारी हो जाती है । बहुत से भक्त तो इनके समकालीन ही ठहरते हैं । इनके विषय में अधिक जानकारी के लिये बहिर्साक्ष्य का अवलम्ब लेना पड़ेगा । नाभादास कृत भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में एक पूरा छप्पय[१२] मिलता है, जिससे निम्नांकित बातें मालूम होती हैं:-

(क) भगवत मुदित सरस, उदार यश-वर्णन करते थे ।

(ख) कुंजबिहारी की केलि उनके हृदय में सदा विराजमान रहती थी ।

(ग) राधाकृष्ण की दम्पति-भावसे उपासना की और उनकी प्रवृत्ति थी ।

(घ) कंठी, तिलक धारण करते थे तथा "माधवदास" के पुत्र थे ।

इस छप्पय की टीका प्रियादास ने तीन कवित्तों में की है +[१३] जिससे यह ज्ञात होता है कि -

(१) वे शुजा के दीवान थे ।

१२- भगवन्त मुदित उदार जस, रस रसना आस्वाद किय ।।
कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यन्तर आसै ।
दम्पति सहज सनेह प्रीति परमिति परकासै ।।
अननि भजन रस रीति पुष्ट मारग करि देखी ।
विधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय विसेखी ।।
माधव सुत संमत रसिक, तिलक राम धरि सेव लिय ।।१९८।।

१३- देखिये टीका छं० ३२७-२८-२९।

(२) गुरु का नाम "हरिदास" था[१४] तथा वे "गोविन्ददेव" मठ के अधिकारी थे ।

(३) अपने गुरु का आगमन सुनकर केवल एक धोती छोड़कर सब कुछ देने को उद्यत हुए ।

(४) गुरु के न आने पर "सूबेदार" की आज्ञा लेकर स्वयं गये ।

(५) कुछ दिन रहकर अनेक पदों की रचना की ।

(६) वृजवासी चोर को कारागार से छुड़ाया तथा उसके द्वारा सब कुछ अपहृत होने पर भी अप्रसन्न नहीं हुए ।

"रसिक अनन्य परिचावली" में चाचा हित वृन्दावनदास जी ने भी इनके पिता का नाम माधौ मुदित तथा इनको रसिक अनन्यमाल का कर्ता बतलाया है । वह छन्द नीचे दिया जाता है:-

परम दया कौ भवन कृपा करुना उर दरसै ।।
साधु सभा सुख देत बचन मनु अमृत बरसै ।।
कौतुक मीथेन किशोर स्वाद जुत लीला गाई ।
माधौ मुदित रसज्ञ सुवन की कीरति छाई ।।
नाम ठाम परचै सहित दाम रची जिन मति उदित ।
रसिक चरित बरननि कियो मन दै श्री भगवत मुदित ।।

(हस्तलिखित प्रति से उद्धृत)

भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका और रसिक अनन्य परिचावली के अतिरिक्त अन्य परवर्ती ग्रंथों से भगवत् मुदित के संबन्ध में केवल उन्हीं बातों का उल्लेख यहां किया जा रहा है जिनके विषय में उपर्युक्त ग्रंथों में कोई चर्चा नहीं है ।

१४- ये वह हरिदास नहीं थे जिनसे मिलने अकबर तानसेन सहित आया था ।

राम रसिकावली:-[१५]

मरणासन्न समझकर लोग भगवत मुदित को आगरे से ब्रज ला रहे थे किन्तु चेतनाशक्ति आ जाने पर दुर्गन्ध से "लाला" (कृष्ण) को बचाने के लिये वापस चले गये ।

भक्त कल्पद्रुम-[१६]

भक्त चरित्रों की रचना करके भगवान को भेंट किया ।

हरि-भक्ति प्रकाशिका-[१७]

हरिभक्ति प्रकाशिका के अनुसार ये आगरे के सुबेदार शुजाउल् मुल्क के यहां दीवान थे और प्रसिद्ध भक्त थे ।

३-(ख) <u>भक्त विनोद</u>-

(क) किसी नरेश के मंत्री थे ।

(ख) गुरु का आगमन सुन "वस्तु वसन वित गेहा" देने को तैयार थे । अपने यहां कुछ दिन उन्हें सम्मान दे कर तब बिदा किया ।

(ग) पर्याप्त सुख भोगने के पश्चात् रोगी हो गए ।

(घ) बान्धवजन वृन्दावन ले जाना चाहते थे, किन्तु संतों को उनके शरीर की दुर्गन्ध लगती, इस भय से रास्ते में अपने प्राण छोड़ दिए ।

(ङ०)लोगों ने वृन्दावन में कुछ समय तक भ्रमण करते हुए देखा ।

उपर्युक्त सभी ग्रंथों के अध्ययन के पश्चात् निम्नांकित उपलब्धियां इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में होती हैं:-

(क) ये माधवदास के पुत्र थे ।

१५- राम रसिकावली - राजा रघुराज सिंह पृ० [illegible] ।

१६- भक्त-कल्पद्रुम - प्रताप सिंह पृ० २११ ।

१७- हरिभक्त प्रकाशिका - ज्वाला प्रसाद मिश्र पृष्ठ ३४५-४६ ।

(ख) शुजाउल् मुल्क के यहां नौकरी करते थे ।

(ग) गुरु का नाम हरिदास था जो गोविन्ददेव के मंदिर के अधिकारी थे ।

(घ) संतों के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते थे ।

(ङ०) वृंदावन में रहकर रचना करते थे ।

(च) इनकी मृत्यु आगरे में हुई थी ।

इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से ये शुजाउल् मुल्क के समकालीन हैं । इधर के सभी लेखकों ने इन्हीं बातों को दुहराया है ।

रचनाएं-

इनकी निम्नांकित रचनाएं उपलब्ध होती हैं-

(१) रसिक अनन्य माल

(२) वृन्दावन शतक

इन पुस्तकों में रचनाकाल नहीं दिया गया है ।

भगवतमुदित जी ने प्रबोधानन्द सरस्वती के "श्री वृन्दावन महिमामृत" नामक एक शतक ग्रंथ का संस्कृत से ब्रज-भाषा में पद्यानुवाद किया जो प्रकाशित हो चुका है ।[१८] इन्होंने इस अनुवाद को सं० १७०७ के चैत मास में पूर्ण किया था।[१९]

संबत दस सै सात सै औ सतवर्ष है जानि
चैत मास मै चतुरवर भाषा कियो बखानि ।

१८- बाबा बंशीदास कामावाला द्वारा प्रकाशित- यह सूचना "भक्त-कवि व्यास जी" में श्रीबासुदेव गोस्वामी ने दी है ।

१९- खोज रिपोर्ट १९१२-१४ नोटिस सं० २१ श्री हितहरिवंश-गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य पृष्ठ २१ ।

रसिक अनन्यमाल की समाप्ति के पहले "रसिकदास कामथ कथा" शीर्षक वर्णन में एक दोहा आया है:-

बिजै मूर्ति हरिवंश की, प्रति उत्तर[२०] रसकंद ।
रसिक सभा के मुकुट मनि श्री दामोदर चंद ।
तिनके शिष्य प्रशिष्य बहु रसिक अनन्य प्रसिद्ध ।
कछुक कह्यो संक्षेप सौं जनके गुन तौ वृद्ध ।।

उपर्युक्त छन्द में दामोदर जी के साथ उनके शिष्यों का वर्णन है । दामोदर जी का समय सं० १६३४ से सं० १७१४ तक माना गया है ।[२१] उनके शिष्य प्रशिष्यों की ख्याति उनकी मृत्यु के पश्चात् अथवा उनके अन्तिम समय में हुई होगी । ललिताचरण गोस्वामी[२२] तथा ललिता प्रसाद[२३] पुरोहित ने इसका रचनाकाल इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर सं० १७१४ से १७२० तक माना है । किन्तु असंभव नहीं कि १७१४ के कुछ पूर्व दामोदर जी के जीवन काल में ही इसकी रचना हुई हो । नाभा जी के "भक्तमाल" में इनका उल्लेख हुआ है, इससे भी इसकी पुष्टि होती है ।

रसिक अनन्यमालः संक्षिप्त परिचयः-

भगवत मुदित ने इस ग्रंथ में चौंतीस भक्तों का वर्णन किया है जिसमें

२०- अन्य प्रतियों में "प्रतिउत्तर" के स्थान पर "प्रपौत्र" पाठ मिलता है । दे० ललिता प्रसाद पुरोहित द्वारा सम्पादित -रसिक अनन्यमाल- पृ० ९५ ।

२१- ललिता चरण गोस्वामी- श्री हित हरिवंश - गोस्वामी सम्प्रदाय, पृ० १८ ।

२२- ललिता चरण गोस्वामी रचित "श्री हित हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य", पृ० २० ।

२३- ललिता प्रसाद पुरोहित ने भी "रसिक अनन्यमाल" में इसका रचनाकाल सं० १७१४ अथवा उसके कुछ बाद का माना है । प्रकाशित प्रति पृ० १० ।

प्रायः सभी राधा-वल्लभी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं[२४] इस सम्प्रदाय में प्रेमरस की उपासना को शुद्ध रखने के लिये "अनन्यता" का पालन कड़ाई के साथ किया जाता है इसीलिए इस संप्रदाय के भक्तों को "रसिक अनन्य" नाम से पुकारा जाता है और भगवत मुदित जी ने इसीलिए प्रस्तुत ग्रंथ का नाम भक्तमाल न रख कर "रसिक अनन्यमाल" रखा।[२५] इन चरित्रों के वर्णन में ग्रंथकार ने नाभादास की ही भांति अलौकिक तथा असम्भावी घटनाओं का आश्रय लिया है तथा कम महत्वपूर्ण चरित्रों के वर्णन में भी विस्तार मिलने से ज्ञात होता है कि इन्होंने सभी घटनाओं को संक्षेप में उसी प्रकार समेटने का प्रयत्न नहीं किया है जिस प्रकार नाभादास जी ने किया है । इनमें से बहुत से प्रसंग नाभादास के भक्तमाल के समान हैं । आगे नाभादास के भक्तमाल के प्रसंग में दोनों ग्रंथों का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन कर यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि उनमें कितना साम्य अथवा वैषम्य है ।

भगवत मुदित ने जिन चौंतीस भक्तों के चरित्रों का वर्णन अपने ग्रंथ में किया है उनमें से अधिकांश भक्त इनके सम सामयिक हैं । अतएव इस ग्रंथ की प्रामाणिकता का प्रश्न ही नहीं उठता है । इन्होंने भी साम्प्रदायिक भावना से चरित्रों का वर्णन नहीं किया है क्योंकि ये चैतन्य सम्प्रदायी थे । अतएव इतर सम्प्रदायों के सम्बन्ध में इनसे पक्षपात की कोई आशंका नहीं की जा सकती ।

इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि बहुत से चरित्रों का सम्बन्ध तत्कालीन इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों के साथ था । उदाहरणस्वरूप परमानन्द जी हुमायूँ के मनसबदार थे ।[२६] सुन्दरदास जी रहीम ख़ानख़ाना के

२४- दे० ललिताप्रसाद पुरोहित , रस रसिक अनन्यमाल , पृ० २४

२५- वही, भूमिका पृ० ५ ।

२६- शाह हुमायूं के हैं चाकर । खिजमत पाइ रिझाये जाकर।
मनसब दियौ कियौ बहु प्यार । पंच सदी रु इते असवार ।
जहां पठयो तंह कारज कियौ । बारम्बार इजाफ़ा लियौ ।
राजा ह्वै ठठ्ठे में आयौ । तीन हजारी मनसब लायौ ।।
श्री रसिक अनन्यमाल प्रकाशित परमानंद का

दीवान थे ।

खानखाना के हुते दिवान । अकबर शाह करै सनमान ।।

इन्होंने ही राधावल्लभ जी का मंदिर श्री बनचंद गोस्वामी जी की आज्ञा से बनवाया था । गोस्वामी जी की मृत्यु सं० १६६५ के आसपास हुई थी । अतएव यह मंदिर इनसे पूर्व बना होगा । प्रो० विल्सन ने इसका निर्माणकाल सं० १६४१ बतलाया है ।[२७]

किन्तु "मथुरा मेमायर्स" के लेखक ग्राउज़ ने मंदिर की दीवार पर खुदे हुए एक लेख के आधार पर मंदिर का निर्माणकाल सम्वत् १६८४ माना है ।[२८] उसी लेख के अनुसार कुछ अन्य विद्वान् संवत् १६४१ ठीक मानते हैं ।[२९]

इस ग्रंथ में ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भ्रम भी हैं । जैसे नवलदास जी के चरित्र में एक राजनीतिक घटना का उल्लेख है जो सही नहीं जान पड़ती है । इन्होंने लिखा है:-

बहुरि हुमायूं को भयो राज । हेमू मारयो बैठ्यो गाज ।।

किन्तु ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर हेमू को बैरमखां ने मारा था जो अकबर का संरक्षक था, हुमायूं ने नहीं मारा था ।

इन्होंने भक्तचरित्रों के वर्णनों के साथ उनके गुरुओं का भी नाम दे दिया है । उनके गुरुओं का प्रायः सन् सम्वत् मालूम है -इसीलिए उनके सहारे अधिकांश भक्तों का समय ज्ञात हो जाता है ।

डा० किशोरी लाल गुप्त ने "भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व"[३०] शीर्षक निबन्ध में नाभादास के भक्तमाल में "भगवत मुदित" के विषय में लिखे गए

२७- हिन्दू रेलिजस, (सेक्ट्स, एच.) एच. विल्सन, पृ० ११६ ।

२८- ग्राउज़- मथुरा डिस्ट्रिक्स मेमायर्स, भाग १, पृ० १२०-२१ ।

२९- दे० रसिक अनन्यमाल (प्रकाशित) पृ० १८ ।

३०- ना० प्र० प० वर्ष ६३, सं० २०१५ अंक ३-४ ।

छं० १९८ के विषय में निम्नांकित आपत्ति उठाई है:-

"विद्वानों के अनुसार भक्तमाल की रचना गोसांई विट्ठलनाथ की मृत्यु (सं० १६४२) के पश्चात् और गोस्वामी तुलसी दास की मृत्यु (सं०१६८०) के पूर्व किसी समय हुई, क्योंकि भक्तमाल में विट्ठलनाथ का स्मरण भूतकाल में और तुलसी दास का वर्तमान काल में हुआ है। भक्तमाल के टीकाकार रूपकला जी इसका रचनाकाल संवत् १६४९ मानते हैं, उपलब्ध भक्तमाल में एकाध ऐसे भक्त हैं, जिनका जन्म भी संवत् १६४९ में न हुआ रहा होगा जैसे भगवत मुदित जी।"

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट विदित होता है कि यह सब गड़बड़ी भक्तमाल का रचना काल सं० १६४९ में मान लेने के कारण हुई है। वस्तुतः गुसांई विट्ठलनाथ की मृत्यु सम्वत् १६५५ वि० में हुई।[३१] उसके पश्चात् गिरिधर जी उनके उत्तराधिकारी हुए। सम्वत् १६६० में इनकी मृत्यु हुई।[३२] गिरिधर जी का स्मरण भक्तमाल में वर्तमान काल में हुआ है।[३३] अतएव भक्तमाल की रचना सं० १६५५-६० के बीच प्रारम्भ हुई ज्ञात होती है[३४] और वह १७१५ के लगभग समाप्त होती है। डा० गुप्त ने कदाचित् भक्तमाल की रचना सं० १६८० अथवा उसके कुछ पूर्व मान ली, इसलिए उनकी आपत्ति स्वाभाविक है।

इस भक्तमाल में गिरिधर (छं० १३२) के अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास, जैसू पुत्र जगतसिंह, और जसवन्त सिंह का नाम नाभादास के भक्तमाल में

३१- महाबीर सिंह गहलौत (श्री कृष्ण मासिक पत्र) जंगमवाडी काशी भाग ५, अंक २, पृ० ३७।

३२- सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ० ९७।

३३- म० मा० छं० १३२।

३४- महाबीर सिंह गहलौत -सम्मेलन पत्रिका, वैशाख-आषाढ़, सम्वत् २००५, संख्या ७-९, भाग ३५।

क्रमशः छं० १२९, १९३, १५५ में आया है । नाभादास जी ने इन भक्तों का एक एक छप्पय में अलग अलग वर्णन किया है । इनमें से गिरिधरदास जी संवत् १६६० तुलसीदास सं० १६८०, जगतसिंह सं० १७०२ तथा जसवंत सिंह सं० १७३५ तक वर्तमान रहे । उपर्युक्त सभी छप्पयों का स्मरण वर्तमान काल में हुआ है । अन्य परवर्ती तिथियों का विस्मरणकर सं० १६८० को ही भक्तमाल के रचनाकाल की अन्तिम सीमा क्यों मान ली जाय ? इस दृष्टि से भक्तमाल के रचनाकाल पर विचार करने के लिए संवत् १७३५ की तिथि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि भक्तमाल में उल्लिखित प्रसंगों में जसवन्तसिंह का प्रसंग सबसे बाद का है ।

भगवत मुदित के सम्बन्ध का छप्पय देखकर डा० किशोरी लाल ने अनुमान लगाया है कि "जिन भगवत मुदित का रचनाकाल सं० १७१७ है, वे सं० १६४९ के पूर्व प्रसिद्ध भक्त और महात्मा के रूप में कदापि नहीं उपस्थित रहे होंगे । सम्भवतः उस समय उत्पन्न भी नहीं रहे होंगे । स्पष्ट है, यह छप्पय बाद में जोड़ा गया है ।"

किंतु उपर्युक्त छप्पय बाद में जोड़े हुए नहीं हो सकते । जैसाकि मेरा अनुमान है, भक्तमाल में नाभादास के पूर्व तथा समकालीन भक्तों का वर्णन है । जसवन्त की भी जब भक्तों की श्रेणी में अधिक ख्याति रही होगी, उसी समय भक्तमाल में उनके नाम का छप्पय लिखा गया होगा । इस प्रसंग में स्मरणीय यह है कि यह भक्तमाल एक ही बार में नहीं लिखा गया है । यह कई वर्षों तक निरंतर बनते रहने वाला एक संग्रह ग्रंथ है । धीरे-धीरे जिन भक्तों की प्रसिद्धि होती गयी उनके नाम के छप्पय जोड़ दिये जाते रहे होंगे ।

हम यह मान सकते हैं कि भगवत मुदित भी उस समय तक अपनी भगवत भक्ति तथा भक्ति पूर्ण रचना द्वारा प्रतिष्ठित हो गए होंगे । उसी समय भक्तमाल में उनके नाम का छप्पय जोड़ दिया गया होगा । इस आधार पर भगवत मुदित विषयक छप्पय प्रक्षिप्त नहीं माना जा सकता ।

इसी प्रकार का संदेह ललिता चरण गोस्वामी को भी अनन्य रसिक माल के रचनाकाल के संबंध में हुआ है । तथा उन्होंने भी भक्तमाल के इस

छप्पय को बाद का जोड़ा हुआ बतलाया है । उन्होंने इस छप्पय के विषय में दो आपत्तियां उठाई हैं, जो इस प्रकार हैं:-

(१) भक्तमाल की रचना सम्वत् १६५० हो जाने से सम्वत् १७०७ के बाद इनकी उम्र सौ से अधिक हो जाती है । अतः उक्त छप्पय की संगति नहीं बैठती ।

(२) "ध्रुवदास की भक्त नामावली" में नारायण दास, नाभादास का नाम आया है, किन्तु "भगवत मुदित" का नामोल्लेख नहीं है, उनके पिता माधौदास जी का है । भक्तमाल में, जिसकी रचना पहले हुई है, भगवत मुदित के विषय में पूरा छप्पय मिलता है, माधौदास का नामोल्लेख भी नहीं है ।"

उपर्युक्त प्रथम शंका का निराकरण ऊपर किया जा चुका है । दूसरी आपत्ति के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें विचारणीय हैं ।

"भक्त नामावली" केवल एक सौ तेईस भक्तों का छोटा सा संग्रह है । अतः उसमें सभी भक्तों के नाम आ जायं- यह आशा करना व्यर्थ है । भक्त नामावली में "गोस्वामी तुलसीदास" का नाम नहीं आया है, इससे क्या यह अर्थ लगाया जाये कि गोस्वामी तुलसीदास उस समय तक प्रसिद्ध नहीं हुए थे ? भक्त-माल में जहां इतने सारे भक्तों का संग्रह है, "संत मलूकदास" का नाम नहीं मिलता और न तो मलूकदास कृत 'ज्ञानबोध' में भक्त नाभादास का ही नाम मिलता है, जबकि दोनों एक प्रकार से गुरु भाई थे ।[३५] "ज्ञानबोध" के आधार पर मलूकदास संवत् १७३९ तक जीवित रहे ।[३६]

३५- भक्तनामावली, रायकृष्णदास के अनुसार -

(क) रामानंद के आशानंद- उनके शिष्य कृष्णदास, उनके कील्हदास और उनके मलूकदास ।

(ख) रामानंद के आशानंद उनके, कृष्णदास पयहारी, उनके अग्रदास और अग्रदास के शिष्य नाभादास थे ।

३६- हस्तलिखित प्रति - म्युज़ियम, इलाहाबाद ।

संवत् सत्रह सै बरष, उनतालीस प्रमान ।
माधो कृष्णा चतुर्दशि, कियो मलूक पयान ।।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस प्रकार के अनुमान द्वारा निरापद रूप से यह नहीं माना जा सकता कि "भक्तमाल" में भगवत मुदित के विषय का छप्पय १९८ बाद का जोड़ा हुआ है ।

(ख) अनन्तदास की परिचयियां

रचनाकालः-

अनन्त दास की परिचयियों की कई प्रतियां काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध हैं । इस स्थल पर जिन परिचयियों)के विषय में लिखा गया है, वे सभी एक मोटे गुटके में संगृहीत हैं[३७] । इस प्रति के प्रतिलिपिकार मुकनदास जी हैं । यह ग्रंथ सं० १८५५ से लेकर १८५६ तक में लिखा गया है । इस ग्रंथ में पीपा, त्रिलोचन, धना, नामदेव जी कबीर, रैदास, रांका-बांका की परिचयियां पृ० ६३७ से ६९२ तक दी गयी है । इन परिचयियों के रचयिता के समय के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । केवल नामदेव की परिचयी में अनन्तदास ने इस प्रकार लिखा है-

संवत् सोंल्ह सै पैंताला । वाणी बोले बचन रसाला ।।
अन्तरजामी आज्ञा दीन्हीं । दास अनन्त कथा करि लीन्हीं ।।

इससे इतना तो अच्छी तरह से जाना जा सकता है कि नामदेव की

३७- आर्य भाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा-वेष्ठन सं० ८७३ ।

परिचयी का रचनाकाल सम्वत् १६४५ है।मिश्रबन्धुओं ने "अनन्त दास साधु" शीर्षक देकर लिखा है[३९]-

"महाराज अनंतदास संवत् १६४५ के लगभग कविता की । इन्होंने नामदेव आदि की परिची संग्रह, पीपा जी की परिची, रायदास जी की परिची, रांका-बांका की परिची, और त्रिलोचन दास की परिची नामक आठ ग्रंथ बनाये जिनमें भक्तों के वर्णन किए।इनमें से प्रथम और द्वितीय ग्रंथ १६४५-१६५७ के बने थे । इनकी रचना साधारण कोटि की है ।"

पीपा की परिचयी में रचनाकाल नहीं दिया गया है, किन्तु खोज रिपोर्ट में संवत् १६५७ मिलता है ।[४०] सम्भवतः इसी सूचना के आधार पर मिश्र बन्धुओं ने अनन्त दास का कविता काल संवत् १६५७ तक माना है ।

अनन्त दास की गुरु परम्परा-

संवत् १८५६ की प्रति में जहां पीपा जी की परिचयी समाप्त होती है, वहां अनन्त दास जी की गुरु-परम्परा इस प्रकार मिलती है[४१]-

रामानंद को अनन्तानन्दू ।।
सदा प्रगट ज्यूं पूरण चन्दू ।।
अगर की शीष विनौदा पाई ।।
ताकौ दास अनन्तहि गाई ।।
ता परसाद परचई भाषी ।।
सुन हु संत जन सांची साषी ।।

३९- मिश्र बन्धु विनोद, प्रथम भाग, सूचना नं० १५० ।

४०- खोज रिपोर्ट १९०९-१०-११ नो. सं० १२८-ए ।

४१- हस्त लिखित प्रति आर्य भाषा पुस्तकालय, का० ना० प्र० स० वेष्ठन सं० २३४ बी ।

अर्थात् रामानंद के शिष्य अनंतानन्द और उनके शिष्य अगरदास, अगरदास के विनोदी दास और विनोदी दास के शिष्य अनन्त दास थे । अनंतदास की परिचयियों की एक और भी प्राचीन प्रति ना० प्र० सभा काशी में उपलब्ध है, जिसका लिपिकाल सं० १७४० है । ~~लिपिकाल की~~ पुष्पिका इस प्रकार है ।

"इति श्री पीपा जी की परिचयी संपूर्ण समाप्तः ।। संवत् १७४०।।
भादौ मास शुक्ल पछि पचम्याम भृगु वासरे लिखितम् बिहारी जथा
दृष्टा तथा लिखा ।।"

इसमें पीपा जी की परिचयी भी है, जिसमें अनन्तदास जी ने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार से दी है:[४२]

"श्री रामानंद के अनन्तानंदा । सदा प्रगट ज्यौं पूरण चंदा ।।
ताके कृष्णादास अधिकारी । सब कोई जाने दूधाधारी ।।
ताके अग्र आगरौ प्रेमू । लै बैठे सुमिरन को नेमू ।।
अग्र की सिषि विनोदी पाई । ताकी दास अनन्त पै आई ।।
ता परसाद परचई भाषी । सुनहु संत जन साची साषी ।।

दोनों प्रतियों के पाठों में प्राप्त गुरु परम्परा को हम निम्नांकित प्रकार से भी दिखा सकते हैं ।

४२- खोज रिपोर्ट १९२३-२४-२५ नोटिस संख्या १८ भी द्रष्टव्य ।

ऐसा प्रतीत होता है कि संवत् १८५६ के प्रतिलिपिकार ने दो अर्द्धालियों को, जिसमें कृष्णदास तथा अग्रदास का उल्लेख था, भूल से छोड़ दिया है। संवत् १७४० की प्रति में कृष्णदास अधिकारी नाम अशुद्ध है। यहाँ पर कृष्णदास पैहारी होना चाहिये जो "दूधाधारी" शब्द से स्पष्ट भी हो जाता है।

अनंतदास की परिचयियों का महत्व इस बात में है कि भक्तों के संबंध में अब तक के उपलब्ध वृत्तांतों में ये सर्वाधिक प्राचीन हैं और इनमें वृतांत भी काफ़ी विस्तार से मिलते हैं। उस समय तक प्रचलित सभी जनश्रुतियों का अनंतदास ने भरपूर उपयोग किया है। आगे चलकर नाभाकृत भक्तमाल तथा प्रियदास की टीका और चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं आदि से इसकी तुलना कर यह दिखाया गया है कि समस्त परवर्ती भक्तवार्ता साहित्य पर इसका प्रभाव है - प्रियादास की टीका पर तो सबसे अधिक प्रभाव परिचयियों का ही ज्ञात होता है।

(ग) अन्य रचनाएँ

(१) व्यास वाणी में उपलब्ध भक्तों की नामावली

व्यास जी-

इनका पूरा नाम हरिराम व्यास था। ये ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह के राजगुरु थे। इनका जन्म स्थान ओरछा, टीकमगढ़ राज्य माना जाता है। इनके पिता का नाम सुमोखन [४३] था। जाति के

४३- "सुकल सुमोखन सुवन, अच्युत गोत्री जु लड़ायैं ।।
नौ गुनो तोरि नूपुर गुह्यो, महत सभा मह रासिकै ।
उत्कर्ष तिलक अस दाम कौ, भक्त इस्ट अति व्यास के ।।
भक्तमाल, नाभादास छंद सं० ९१ ।

ब्राह्मण "सुकुल" थे । राजा मधुकर शाह के शासन काल ही में ओरछा से वृन्दावन आये थे । इनके परिवार में पत्नी, एक छोटा भाई, बहिन, पुत्री तथा तीन पुत्रों के होने की सूचना मिली है ।[४४]

जन्मकाल-

वासुदेव गोस्वामी ने इनका जन्म संवत् १५६७ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ लिखा है । किन्तु रसिक अनन्यमाल को यदि प्रामाणिक माना जाय और यह भी स्वीकार किया जाय कि संवत् (१५९१) में[४५] पहली बार व्यास जी वृन्दावन आये थे तो उसके अनुसार इनका जन्म संवत् १५४९ मानना पड़ेगा । क्योंकि रसिक अनन्यमाल में स्पष्ट उल्लेख है कि व्यासजी ४२वर्ष की आयु में ओरछा से वृन्दावन आये थे[४६]। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने इसी संवत् को मान्यता दी है ।[४७]

गुरु-

व्यासजी के दीक्षा गुरु श्री हितहरिवंश थे, इस बात की पुष्टि अन्तर्साक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य दोनों से हो जाती है ।

अन्तर्साक्ष्य-

उपदेस्यो रसिकन प्रथम, तब पाये हरिवंश ।
जब हरिवंश कृपा करी, मिटे व्यास के संस ।।१००।।

४४- भक्त कवि व्यास जी, पृ० ३९ ।

४५- वही, पृ० ७३ ।

४६- कबहूं वृन्दावन गुन गावै, रसिक भक्ति में मन ललचावै ।
ऐसेहि करत ठीक नहिं करी, वरष बयालिस आयुस टरी ।।
एक दिन नवल वैरागी आये, व्यास मिलै अति ही हरषाये ।
श्री राधा वल्लभ इस्ट बताये, नित्य विहार के भेद सुनाये ।।
चलि वृन्दावन दरसन कीजै, श्री हरिवंशहि को गुरु कीजै ।
कातिक लगत वृन्दावन आये, नवल रसिक संग लिये सुहाये ।
- रसिक अनन्यमाल, भगवत मुदित, प्रकाशित पृ०६ ।

४७- राधा-वल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ३६९ ।

श्री हरिवंश कृपा बिना, निमिष नहीं कहुं ठौर ।
व्यासदास की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर ।।१०३।।

व्यास आस हरिवंश की, तिनही के बड़ भाग ।
वृन्दावन की कुंज में, सदा सहत अनुराग ।।१०४।।

राधावल्लभ व्यास कौ, इष्ट मित्र गुरु देव ।
श्री हरिवंश प्रकट कियौ, कुंज महल रसभेव ।।१०५।।[४८]

(व्यास-वाणी)

बहिर्साक्ष्य- अन्य भक्तमाल तथा भक्त नामावलियों में इस बात का संकेत है कि व्यासजी ने हितहरिवंश जी से ही दीक्षा ली थी । भगवत मुदित ने अपनी रसिक अनन्यमाल में बिस्तार के साथ कई पंक्तियों में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है । इनमें से कुछ नीचे दी जा रही है-

चलि वृन्दावन दरसन कीजै । श्री हरिवंशहि को गुरु कीजै ।।
कातिक लगत वृन्दावन आये । नवल रसिक संग लिये सुहाये ।।
मंदिर मांझ गुसांई पाये । दरसन करि कै नैन सिराये ।।

\+ + +

यह उपदेश व्यास कौं भयौ । दोउ करजोरि पगन सिर नयौ ।।
शिक्षा दै कें दीक्षा कीजै । अवतो मोहि अपुनो कीजै ।।
श्रद्धालखि निजु मंत्र सुनीयौ । भयो व्यास के मन को भायो ।।[४९]

इसी प्रकार प्रायः व्यास जी के जीवन की सभी प्रमुख घटनायें, उत्तमदास के "रसिकमाल" में भी "श्री हित पदाश्रित व्यास जू कौ चरित्र" शीर्षक से वर्णित हैं । उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । इनके अतिरिक्त दादूपंथी राघोदास के भक्तमाल में भी "व्यास गुसांई जी को बरनन" शीर्षक देकर हित जी

४८- भक्त कवि व्यासजी-वासुदेव गोस्वामी, द्वितीय खण्ड, पृ० ४१५ ।
४९- रसिक अनन्यमाल, पृ० ८ ।

की ओर स्पष्ट संकेत है :—

"यौं नाव न बिसरै नैंकहु हरिवंश गुसांई हरि हृदै"[५०]

इधर व्यास वंशीय गोस्वामियों ने इनका सम्बन्ध यादव सम्प्रदाय से बतलाया है जो तर्क-संगत नहीं है, इसके खंडन में स्नातक जी ने जो तर्क प्रस्तुत किए हैं, वे मान्य प्रतीत होते हैं —

"स्मरण रहे यादव या निम्बार्क सम्प्रदाय में इष्ट देवता की संज्ञा "राधावल्लभ" नहीं है । व्यासजी के अनेक पदों में राधावल्लभ को इष्टदेव की भांति कहा गया है । हित हरिवंश की साम्प्रदायिक भावना में इस नाम का प्रयोग होता है, अन्यत्र नहीं ।"[५१]

इसी प्रकार के कुछ अन्य तर्कों द्वारा भी डा० स्नातक ने इस बात की पुष्टि की है कि व्यासजी राधावल्लभीय थे ।

कविताकाल-

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इनका समय संवत् १६२० के आसपास माना है ।[५२] किन्तु शुक्लजी ने संवत् १६२२ के समीप हितजी से इनके दीक्षा लेने की घटना का उल्लेख किया है,[५३] जो अशुद्ध है क्योंकि हितजी का निधन संवत् १६०९ माना गया है ।[५४] अतः इनका कविताकाल और पीछे समझा

५०- भक्तमाल राघोदास हस्तलिखित प्रति छं० ६६५ ।

५१- राधावल्लभ सम्प्रदाय:सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ३७३ ।

५२- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८९ ।

५३- वही, पृ० १८० ।

५४- राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य -डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ०३६९।

जाना चाहिये,[५५] यौंतो व्यासजी सं० १५९१ में वृन्दावन आये थे, उसी समय से काव्य रचना की ओर इनका झुकाव हुआ होगा और जीवन-पर्यन्त कविता करते रहे होंगे ।[५६]

निकुंज गमन-

व्यासजी की मृत्यु ध्रुवदास जी से बहुत पहले हो चुकी थी । ध्रुवदास जी की भक्त नामावली में व्यास के विषय में यह दोहा उद्धृत है:-

कहनी करनी करि गयौ एक व्यास इहिकाल ।
लोक वेद तजिकै भजे राधावल्लभ लाल ।।

भक्त नामावली का रचनाकाल सं० १७३७ है ।[५७] इसके कितने वर्ष पूर्व इनका निधन हुआ यह ठीक से नहीं कहा जा सकता है । इससे इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १७३७ के पूर्व इनकी मृत्यु हुई ।

श्री ललिताप्रसाद जी पुरोहित ने व्यासजी का निधनकाल इनके निम्नलिखित पद के आधार पर संवत् १६५५ के लगभग ठहराया है ।[५८]

अब सांचौ ही कलयुग आयौ ।
पूत न कह्यो पिता कौ मानत करत आपनौ भायौ ।।
बेटी बेचत शंक न मानत दिन दिन मोल बढ़ायौ ।।
याही ते वर्षा मंद होत है पुण्य ते पाप सवायौ ।।
मथुरा सुदति कटति वृन्दावन मुनि जन सोच उपायौ ।।
इतनो दुख सहिबै कै कीजै काहेंक व्यास जिवायौ ।।

५५- राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य-डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ३६९
५६- वही, पृ० ३८३ ।
५७- देखिये इसी ग्रंथ में अध्याय है ।
५८- श्री हित हरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ४०६

इस पद के आधार पर मंद वर्षा तथा "मथुरा खेदत, कटत वृन्दावन मुनिजन सोच उपायौ" का सम्बन्ध अकबर से बतलाया है, जब आबादी बढ़ने के कारण नये मंदिर बन रहे थे तथा वृन्दावन के वृक्षों को काट कर रहने के लिए स्थान बनाया जा रहा था ।

इस प्रकार से दोनों घटनाएं अकबर-कालीन तथा सं० १६५३-१९५४ की मानी गई हैं । इसके आधार पर व्यास जी का निकुंज गमन सं० १६५५ निश्चित हो जाता है । स्नातक जी ने भी "राधावल्लभ संप्रदाय" (पृ० ३८३) महनै इनका निधनकाल अनुमान से सं० १६५०-५५ के मध्य माना है । यही तिथि हमारे अनुमान से भी ठीक है, क्योंकि व्यास जी का जन्मकाल सं० १५४९ होता है । यदि वे १६५५ तक जीवित रहते हैं तो उनकी आयु १०६ बर्षों की होती है, जो असंभव नहीं है ।

व्यासजी का चरित्र और स्वभाव-

वैष्णव भक्त व्यासजी को विशाखा सखी का अवतार मानते हैं, जो ईर्ष्या, छल, कपट रहित होकर राधामाधव मिलन में सहयोग देती है । कहा गया है कि व्यास जी के विचार से भक्त और संतों का पूजन ईश्वर पूजन के समान था ।[५९] हित जी से उपदेश लेकर जब व्यासजी वृन्दावन में रहने लगे, तब वहां के कण-कण, पत्ते- पत्ते से इनका इतना स्नेह हो गया कि महाराजा मधुकरशाह के लाख कहने पर भी यह वापस न आये, बल्कि इन्होंने अधीर होकर यह पद गाया-

> वृन्दावन के रूख हमारे, मात पिता सुत बंध ।
> गुरु गोविन्द साधु गति मति, सुख फल फूलन की गंध ।।
> इनहिं पीठि दै अनत डीठि करै, सो अंधन में अंध ।
> व्यास इनहिं छोड़ैरु छुड़ावै ताकौ परै निकंध ।।- व्यासवाणी, पद ५४ ।

५९- व्यास गुसांई विमल चित बानां सौ अतिसै चिनैं ।
चोबीसौ अवतार अधिक करि साध बिसेखे ।
सप्त दीप मधि संतति ते सब गुरु करि लेखे ।
- भक्तमाल, राघौदास- छं० ६६६ ।

व्यासजी की भक्ति की प्रशंसा प्रियादास ने छः छन्दों (३६८-३७३) में की है। इसके अनुसार इनके जीवन की एक घटना इस प्रकार है।

एक बार जुगलकिशोर को जरकसी पगड़ी बांध रहे थे जो चिकनी होने के कारण फिसल जाती थी, अच्छी तरह से बैठती न थी। इसपर इन्होंने झुंझलाकर कहा "यदि ठीक से न बंधवाना हो तो स्वयं बांध लो" यह कहकर ये बाहर चले गए। पुनः याद आने पर दौड़े आए तो देखते क्या हैं पगड़ी स्वयं बंधी हुई है।[६०]

इनके अन्य अनेक अलौकिक चमत्कारों का वर्णन वासुदेव गोस्वामी के "भक्त ~~वत्सल~~ कवि व्यास जी" तथा स्नातक जी के "राधावल्लभ सम्प्रदाय:सिद्धान्त और साहित्य" के तृतीय अध्याय में किया गया है जिनकी पुनरावृत्ति करना आवश्यक नहीं है।

<u>ग्रन्थ-</u>

व्यास जी संस्कृत के भी विद्वान थे। इनके संस्कृत में लिखे ग्रंथ "नवरत्न" और "स्वधर्म पद्धति" नाम से प्रसिद्ध हैं। हस्तलिखित ग्रंथों की खोज करने पर व्यास रचित पद, दोहे और साखी मिलते हैं। हिन्दी में "रागमाला" नामक संगीत शास्त्र का अप्रकाशित ग्रंथ का पता चला है। संक्षेप में इनके ग्रंथों की सूची इस प्रकार है-

(१) व्यासवाणी-७५८ पद और १४८ दोहे प्रकाशित।
(२) रागमाला (अप्रकाशित) ९०४ दोहे संगीत शास्त्र।
(३) नवरत्न और स्वधर्म पद्धति (संस्कृत, अप्राप्य)

६०- चीरा जरकसी सीस चीकनो खिसिल जाय,
पेलिहु जू बंधाय नहिं आप बांध लीजिए।
गये उठ कुंज, सुधि आई सुख पुंज,
आये देख्यौ बंध्यौ मंजु, कही "कैसें मोपै रीझियै।"
-भक्तमाल सटीक रूपकला पृ० सं० २६८।

व्यास वाणी में उल्लिखित भक्तों की नामावली-

व्यास जी ने अपने कई पदों में कुछ भक्तों के नामों का उल्लेख किया है। इनमें से कई भक्तों के विषय में एक एक पद रच कर उनकी कुछ विशेषताओं के साथ अलौकिक घटनाओं द्वारा उनकी भक्ति की महत्ता को बतलाने का प्रयत्न किया है। किन्तु ऐसे वर्णनों की संख्या बहुत ही कम है। इनका मन्तव्य भक्तमाल अथवा भक्त नामावली लिखने का नहीं था, बल्कि केवल भक्तों की प्रशंसा तथा स्तुति करना था। इसी कारण प्रायः कई भक्तों का नाम एक ही पद्य में दिया गया है। इनमें से कई भक्त अन्य युगों के भी हैं। कलियुग के कुछ भक्तों की सूची नीचे दी जा रही है, जो इस प्रकार है-

जयदेव, पद्मावती, श्री हरिवंश, स्वामी हरिदास, माधवदास, रूप सनातन, कबीरदास, नामदेव, प्रबोधानंद, बिहारिनदास, सेना, धना, पीपा, रैदास, मंगलभट्ट, सूरदास, परमानन्ददास, मेहा, मीरा, हरिदास रसिक, सुरसुरानंद, मधुकरशाह, राघवानंद, रामानंद, तिलोचन, खेम, कृष्णदास और जैमल आदि।

भक्तमाल से तुलना-

उपर्युक्त भक्तों में से अधिकांश का नाम नाभा जी के भक्तमाल में आया है और प्रायः पूरे एक छप्पय में वर्णन हुआ है। दोनों में वर्णित घटनाओं में भी कहीं-कहीं साम्य है। उदाहरण-स्वरूप नामदेव को लीजिये। नामदेव का वर्णन दोनों ग्रंथों में अलग अलग छन्दों में हुआ है, जो इस प्रकार है-

"नामदेव" प्रतिज्ञा निर्वही, ज्यौं त्रेता नरहरिदास की ।।
बालदसा "बीठल्ल" पानि जाके, पै पीयौ ।
मृतक गऊ जिवाय परचौ असुरन कौं दीयौ ।
सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होती ।
देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती ।।

"पंडुरनाथ"कृत अनुज ज्यौं छानि सुकरि छाई घास की ।
नामदेव प्रतिज्ञा निर्बही ज्यौं त्रेता नरहरिदास की ।।

सांची भक्ति नामदेव पाई ।
कृस्न कृपा करि दीनी जाकौं, लोक-निवेद बड़ाई ।
प्रीति जानि पय पियो कृपानिधि, छानि छबीलैं छाई ।।
चरन पकरि सठ के हठ बल ज्यौं हरि सौं बात कहाई ।
जाके हित हरि मंदिर फेर्यौ, चित दै गाय जिवाई ।।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम को अपने हाथ खवाई ।
जाकी जाति पांति कुल बीठल, संत जना सब भाई ।।

दोनों रचनाओं में आए हुए छन्दों में निम्नांकित समान वार्ताओं का विकास हुआ है ।

(क) नामदेव सच्चे भक्त थे । इनके लिए प्रभु ने अपने हाथ से "छान" छायी इन्हें हाथ से दूध पिलाया, इनकी वाणी सत्य करने के लिए मृतक गऊ को जिला दिया तथा मंदिर का दरवाज़ा जिधर ये बैठे थे उधर फेर दिया ।

उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित साम्य के स्थल दृष्टव्य हैं:-
भ०भा० - "बाल दसा बीठल्ल, पानि जाके पय पीयौ ।"
व्यास वाणी-"प्रीति जानि पय पियो कृपानिधि ।"
भ० भा० - "छानि स्वकर छई घास की ।"
व्यास वाणी- "छानि छपीलैं छाई ।"
भ० भा० - "देवल उलट्यौ देखि सकुचि रह्यो सबही सोती ।"
व्या०वा० - "जाके हित हरि मंदिर फेर्यो ।"
भ० भा० - "मृतक गऊ जिवाय, पर्यो असुरन को दीयौ ।"
व्या०वा०- "चित्त दै गाय जिवाई ।"

इतना साम्य होते हुए भी अन्तर यह है कि भक्तमाल में "सेज" को पानी से निकालकर उसी प्रकार दिखाने की लिखी है जबकि व्यास जी की रचना में उस

घटना का संकेत ही नहीं है । उसी प्रकार व्यास जी ने घी और रोटी खिलाने वाली बात का संकेत किया है तो नाभादास जी इस विषय में मौन हैं ।

यहां से यदि नाभादास जी के भक्तमाल में वर्णित भक्तों से व्यास की वाणी में आए हुए भक्तों के प्रसंगों या वार्ताओं का मिलान करें तो निम्नांकित बातें मालूम होंगी:-

(१) नामदेव विषयक प्रसंग थोड़े अन्तर के साथ समान हैं ।

(२) व्यास जी ने केवल छः सात भक्तों-श्री हित हरिवंश, जयदेव जी, पद्मावती, स्वामी हरिदास, माधवदास, रूप सनातन, प्रबोधानंद सरस्वती और बिहारिन दास का वर्णन अलग अलग छन्दों में किया है । इनमें से पद्मावती और प्रबोधानन्द सरस्वती तथा बिहारिनदास का नाभादास जी ने केवल नाम ही का उल्लेख किया है । इनके विषय में पूरा छप्पय नहीं कहा है । शेष अन्य भक्तों के वर्णनों में कोई विशेष साम्य नहीं है ।

(३) कई व्यास जी वर्णित सामूहिक नामों वाले छन्दों में वर्णित प्रायः सभी भक्तों का उल्लेख नाभादास जी के भक्तमाल में हुआ है तथा अधिकांश का वर्णन पूरे पूरे छप्पय में अलग अलग किया गया है ।

(४) व्यासजी ने रामानन्द का स्मरण करते समय कबीरदास को उनका शिष्य लिखा है । इसी का अनुकरण नाभादास ने भी किया है । इसपर परशुराम चतुर्वेदी ने निम्नांकित प्रकाश डाला है ।

"इसी प्रकार कबीर साहब के रामानंद का शिष्य होने की चर्चा सर्वप्रथम कदाचित् भक्त व्यास जी (संवत् १६१५में वर्तमान) से आरम्भ होती है और उसके अनन्तर भक्तमाल श्रेणी के ग्रंथों में इस बात का उल्लेख निरन्तर चला जाता है, तथा इन्हें तकी का उत्तराधिकारी व चेला मानने की बात गुलाम सरवर की "खजीन तुल असाफिया" में बहुत पीछे दीख पड़ती है ।

६१- उत्तर भारत की संत परम्परा पृ० १५८ ।

वह पद इस प्रकार है:-

साँचे साधु जु रामानंद,
जिन हरिजूं सौ हित करि जानौ, और जानि दुख दंद ।।
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद ।। व्यास० २३ ।।

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेत जग तरन कियो ।
अनन्तानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पदमावति, नरहिर ।।[६२]

निष्कर्ष:-

इस अध्ययन से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं-

(१) केवल "नामदेव" विषयक सभी वार्ताएं अथवा प्रसंग दोनों ग्रंथों में समान हैं ।

(२) कुछ भक्तों-जैसे परमानंददास तथा सूरदास जी के सांकेतिक वर्णनों में समानता है ।

(३) दोनों ग्रंथों के वर्णन में भी समानता है । उदाहरण स्वरूप व्यासजी ने अपनी वाणी में भक्तों का वर्णन पांच प्रकार से किया है ।

(१) अन्य युगों के भक्तों का वर्णन ।
(२) कलियुग के भक्तों का वर्णन ।
(३) कुछ भक्तों का वर्णन अलग अलग एक एक छन्दों में, तथा कई भक्तों का नाम एक ही छन्द में ।
(४) कुछ सामूहिक नाम वाले भक्तों के वर्णन में कहीं कहीं सांकेतिक प्रसंग ।

(५) उपर्युक्त भक्तों के जीवन की अलौकिक और असंभावी घटनाएं पांचों प्रकार से नाभादास जी ने भी अपने भक्तमाल में वर्णन किया है ।

६२- भक्तमाल रूपकला सटीक छ० सं० ३६ ।

अन्तर-

व्यासजी ने अपनी वाणी में भक्तों का नाम प्रायः स्तुतिरूप में अथवा उनके निधन परक "विरह" रूप में प्रसंगवश लिखा है, जबकि नाभादास जी ने लगभग २०० भक्तों का नामोल्लेख किया है। भक्तमालकार का अभिप्राय भक्तों के ही विषय का एक वृहद् ग्रंथ लिखना था।

नाभादास ने गुरु शिष्य परम्परा आदि का भी वर्णन किया है, जबकि व्यासजी ने केवल रामानन्द के दो एक शिष्यों का वर्णन किया है।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यास की रचना नाभादास से बहुत पहले की है अतएव भक्तमालकार उक्त रचना से परिचित अवश्य रहा होगा, इसके लिए "नामदेव" की वार्ताएं तथा प्रसंग इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अन्य नामों तथा घटनाओं को, जिनका प्रत्यक्ष साम्य नहीं है, या तो नाभादास जी ने अन्यत्र से लिया होगा अथवा स्वबुद्धि से उपार्जित किया होगा।

मूल्यांकन-

हरीराम व्यास ने लगभग तीस ही भक्तों का वर्णन अपनी वाणी में किया है किन्तु उनमें बहुत से भक्त उनके समसामयिक थे और अनेक भक्तों का निधन उनके समय के कुछ पूर्व अथवा उनके जीवनकाल में ही हुआ है। यदि व्यासजी का ठीक काल ज्ञात हो जाता है तो इतने विस्तृत हिन्दी साहित्य के भक्तकवियों का रचनाकाल तथा समय जानने में सुविधा हो जाती है। इस प्रकार का एक छन्द नीचे दिया जाता है जिनमें अनेक भक्तों के निधन के बाद विरहरूप में उस छन्द की रचना हुई।

> बिहारिहिं स्वामी बिनु को गावै।
> बिनु हरिवंशहि, राधावल्लभ को रसरीति सुनावै।।
> रूप सनातन बिनु, को वृन्दा बिपिन माधुरी पावै।
> कृष्नदास बिनु, गिरिधर जूकों, अब लाड़ लड़ावै।।
> मीराबाई बिनु, को भक्तनि पिता जान उर लावै।

स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को सब बंधु कहावै ।

परमानन्ददास बिनु,को अब लीला गाइ सुनावै ।

सूरदास बिनु पद रचना को, कौन कविहिं कहि आवै ।

और सकल साधन बिनु, को कलिकाल कटावै ।

"व्यासदास" इन बिन, को अब तन की ताप बुझावै ।।

(व्यासवाणी २६)

इसके अतिरिक्त आगे आने वाले भक्तमालों के लिए भी व्यास जी की वाणी ने पथ प्रदर्शक का काम किया । अनेक भक्तमाल तथा भक्त नामावलियां इसके अनुसरण पर लिखी गईं ।

(२) परशुराम देवाचार्य का "परशुराम सागर"

जयपुर राज्यान्तर्गत नारनौल के सन्निकट गौड़ ब्राह्मण कुल में इनका आविर्भाव हुआ था[६३]। नाभादासकृत भक्तमाल के निम्नलिखित छप्पय के आधार पर इन्हें "जंगल देश" अथवा बीकानेर का रहने वाला माना जाता है-

जंगली देश के लोग सब "परशुराम" किय पारषद ।।

ज्यौं चंदन को पवन निम्ब पुनि चन्दन करई ।

बहुत काल तम निबिड़ उदै दीपक ज्यौं हरई ।।

श्री भट पुनि हरि व्यास संत मारग अनुसरई ।

कथा कीरतन नेम रसन हरि गुण उच्चरई ।।

गोविन्द भक्ति मदरोगगति, तिलकदास सद बैद हद ।

जंगली देश के लोग सब "परशुराम" किय पारषद्[६४]।।

इनकी प्रशंसा करते हुए राघवदास ने जो छप्पय लिखा है वह इस प्रकार है:

अजमेरा के आदमी श्री परसराम पावन किया ।

मलिया ढिग बहु वृक्ष बास सौ चंदन कीनां ।

है हरि नाम मसाल अंधेरा अघ हरि लीनां ।।

६३- श्री भक्तमाल, श्री वियोगी विश्वेश्वर, अखिल भारतीय निम्बार्काचार्य पीठ, परशुरामपुरी, सलेमाबाद, पृ० ७७७ ।

६४- ना० भ०, छ० १२७ ।

भक्ति नारदी भजन कथा सुनतैं मन राजी ।
श्री भट पुनि हरि व्यास कृपा सत संगति साजी ।।
भगवत नाम वौषदि पिवाय रोग दोष गत करि दिया ।
अजमेरा के आदमी श्री परसराम पावन किया ।।[६५]

ग्रंथ-

परशुराम सागर इनकी रचनाओं का सबसे वृहत् संग्रह है जो अभी अप्रकाशित है । यह ग्रंथ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में है।[६६] लिपिकाल नहीं दिया है, किन्तु अनुमान से सं० १८०० के बाद की लिखी है ।

रचनाकाल-

इनके एक ग्रंथ "विप्रमतीसी" का पता चला है जिसका रचनाकाल सं० १६७७ है । इससे इनका रचनाकाल १६७७ के आस पास निश्चित होता है ।[६७]

इनके एक पद में कुछ संतों के नाम मिलते हैं जिनके साथ उनके प्रधान व्यवसाय का भी संकेत है । उक्त पद इस प्रकार है:-

तौ मन मान्यौ मोहन जी कौ ।
जाट धनूं जु किसांण राम कौ जांणत मरम जमीं कौ ।
नांह्रो सेवक सैन कहावत सो मरद निपानी कौ ।
बुणीं कबीर मिहीमद बूंदी घणमोली ए गजी कौ ।
नामौ छीपौ बागौ सीवै सुंदर वर के जी कौ ।
जैदेव तिथि पारखी बतावै, गाय सुणावै टीकौ ।
जाकै हिृदै बसै जस निरमल, परसरामं प्रभ पीकौ ।।

-राग ललित, पद सं० ३, पृ० ४२ ह० लिखित ।

६५- राघोदास भक्तमाल, छं० सं० ६४९ ।

६६- ना० प्र० सभा प्रति सं० ४९२, आकार १३ इंच -८½ इंच, प्रति पृष्ठ २५ पंक्तियां, पत्र संख्या २९० ।

६७- मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ७३ ।

(३) माधौदास का "सन्त गुण सागर"

ये दादू जी के बावन प्रधान शिष्यों में से थे । [६८] इनके माता-पिता तथा जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । केवल इतनी सूचना है कि ये मारवाड़ राज्य के गूलर नामक गांव में रहते थे । [६९]

रचनाएं-

इनकी "संतगुणसागर" के अतिरिक्त किसी अन्य रचना का पता नहीं लगता है । इस ग्रंथ में दादूजी की "जन्मलीलापरिची" की ही भांति दादूजी की जीवनी है तथा इसमें २४ तरंगें हैं । इसकी कोई अन्य प्रति नहीं है । प्रस्तुत पाठ एक सूरदास जी के मौखिक आधार पर तैयार किया गया था । कहा जाता है कि कुछ पन्ने ही शेष थे, तब तपस्वी गिरधारी जी ने दोनों की सामग्रियां लेकर रचना का रूप दिया । जनगोपाल जन्मलीला की दर्जनों प्रतियां प्राप्त हैं । इसकी कोई प्राचीन प्रति उपलब्ध नहीं है, इससे मंगलदास स्वामी को (प्रधानाचार्य-दादू महाविद्यालय जयपुर) इस रचना की प्रामाणिकता के संबंध में संदेह है ।

मंगलदास स्वामी के अनुसार इस ग्रंथ का रचनाकाल १७वीं शताब्दी विक्रमी का अन्त अथवा १८वीं शताब्दी का प्रारम्भकाल होना चाहिये । डा० मेनारिया ने किसी पाण्डुलिपि के अनुसार इसका रचनाकाल सं० १६६१ दिया है [७०] किन्तु इस ग्रंथ की प्रामाणिकता के विषय में संदेह करते हुए वे स्वयं निम्नांकित प्रकाश डालते हैं:-

"जनगोपाल की दादूजन्मलीला परची" की भांति इसमें भी कुछ अलौकिक घटनाएं और किंवदन्तियां प्रवेश कर गई हैं, इसलिए बहुत प्रामाणिक तो नहीं है-फिर

६८- दादूदीन दयाल के बावन शिष्य दिग्गज महंत ।
+ + +
माधव सुदास नागर निजाम जन राघो वर्णो कहत ।
दादूजी के पंथ में ये बावन दिग्गज महंत ।। भक्तमाल राघोदास छं०सं० ९८०

६९- पुरोहित हरिनारायण, सुन्दरग्रंथावली, पृ० ९३ (जीवन चरित्र)

भी अपनी चित्ताकर्षक वर्णन शैली के कारण पढ़ने योग्य अवश्य है ।"[७१]

(४) गिरिधर का भक्ति माहात्म्य-

इनके विषय में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती । खोज रिपोर्ट में इनके ग्रंथ का रचनाकाल १७०५ दिया है तथा उसकी प्रारम्भ तथा अन्त की पंक्तियां मात्र उद्धृत हैं[७२]। नागरी प्रचारिणी सभा काशी में गिरधारी अथवा जन गिरधारी लिखित "भक्ति माहात्म्य" की दो प्रतिलिपियां है।[७३] एक में रचनाकाल संवत् १६१५[७४] दिया हुआ है तथा दूसरी में संवत् १७०५ है ।[७५] पहली का लिपि-काल १९३६ तथा दूसरी का १९०६ दिया हुआ है । दोनों प्रतियां पूर्ण हैं । प्रायः भक्तों के जो नाम आए हैं दोनों प्रतियों में वे भी समान हैं । दोनों ग्रंथों की पुष्पिकाएं क्रमशः इस प्रकार हैं-

(१) "इति पोथी भक्त महातम जो प्रतिम देखा सो लीखा मम दोस न दीजिए । सम्वत् १९३६ जेठ बदी चतुर्दशी १४ वार भौमः दस्तखत साहेब दीन लाल मोकाम कंवल पुर ।"

७१- राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १९१ ।

७२- खोज रिपोर्ट १९१२-१४ नं० ९४ज ।

७३- सं० १६०५ वाली प्रति नागरी कैथी लिपि में है तथा दूसरी नागरी लिपि में दोनों की वेष्ठन संख्याएं क्रमशः २७९८।१६९५ तथा १५९६।९२७ हैं ।

७४- फागुन मास तिथि परिवा । सुकुवार सोमार ।
संवत् सोरह सै पांच ।१६०५। पछताही उजियार ।
तादिन कथा कीन बनवानी । धर्म बात सब कला समानी ।

७५- संवत् सत्रह सै जब पांचा । गिरधारी हरिपद मन रांचा ।
फाल्गुन रितु पछ रितु राजा । भृगुवासर परिवा तिथि भ्राजा ।
सुपथ गही तादिन गिरधारी । धर्म बात सब कहेउ बिचारी ।

(२) इति श्री भक्त महातम कथा समाप्तम् शुभमस्तु ।। सिधि २ अस्तु सम्वत् १९०६ समैनाममी -असाढ़ बदी ।।३।। वार सुक कथा लिषा बल महाबीर गोसाई सा० ।।"

<u>ग्रंथकार का परिचय</u>- ग्रंथकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

जनम भूमिकर करौं बखाना । सुर सर तटपावन अस्थाना ।।
जाति गोत हम बरनत नाहीं । गंगा नाम पिता का आही ।।
जो सिरजा मैं सुमिरौं ताहीं । पांच तत्व की देहीआही ।।
अंतरीछमंह बाई समाई । ताकर जाति देहु विलगाई ।।
जाति पासी कुल खेवनहारा । ऐ सब लोक पसारा ।।
दोहा-अनन्त कोटि वैश्नो ।सबकवि नैहमारी ।।
अछर टूटतपटजत(?)। कवि जनलेत सभारी ।।

<u>ग्रंथ परिचय</u>- दोनों प्रतियों के प्रारम्भ में कुछ भक्तों के नामों का उल्लेख है, उसके पश्चात् अजामिल आदि भक्तों के नामों का उल्लेख है एवं चरित्रों का वर्णन है । इस ग्रंथ में आए हुए कलियुग के भक्तों की सूची नीचे दी गई है ।

रामानन्द, सेना, धना, पीपा, परमानन्द, सूरदास, मीराबाई, नामदेव, कबीर, नानक[७६] आदि ।

<u>रचनाकाल</u>-

यद्यपि १६०५ की रचनातिथि वाली प्रति में इनका नाम जनगिरधारी लिखा गया है, दूसरी में गिरधारी है, किन्तु दोनों प्रतियों की वर्णन सामग्री एक सी है । अतएव गिरधारी के संबंध में दो मत नहीं हो सकते ।

जहां तक रचनातिथि का सम्बन्ध है, वह १७०५ ही ठीकजान पड़ती है ; क्योंकि उसमें कुछ ऐसे भक्तों के नाम आए हैं जो कदाचित् संवत् १६६५ तक उतने प्रसिद्ध नहीं हो पाये थे ।

७६- नानक का नाम सं० १६०५ की प्रति में नहीं है ।

"भक्त महात्म" ग्रंथ की विशेषता-

इस ग्रंथ में रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख है । अतएव उस समय के पूर्ण अथवा उस समय तक इसमें उल्लिखित सभी भक्त प्रसिद्ध हो गए थे । इस तथ्य की जानकारी हो जाती है यही इस ग्रंथ की विशेषता है ।

अन्य विवरण-

भक्त गिरधारी ने इन भक्तों का केवल नाम ही गिनाया है इनके सम्बन्ध में किसी भी प्रसंग का उल्लेख नहीं किया है । इसलिए इसमें वर्णित भक्तों के विषय में नामों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जाना जा सकता । उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं ।

पुनि संतन कौ नावौं सीसा । जाके बस..जगदीसा ।।
सुमिरौ चितधरि रामानन्दा । जेहिं सुमिरे मन होइ अनन्दा ।।
सुमिरौ सनी धनि विहासा । सुमिरत ज्ञान बुद्धि प्रकासा ।।
पीपा परमानन्द गोसाई । सूर दास, मीराबाई ।।

नाभादास के पूर्ववर्ती भक्तमालों और भक्तनाममालाओं के इस विवेचन से ज्ञात होगा कि नाभादास के पूर्व भी इनके लिखने की परम्परा थी, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि इस परम्परा का जैसा विकास हमें नाभादास की रचना में दिखाई पड़ता है, वैसा उनके पूर्व नहीं ।

- - -

अध्याय २

नाभादास एवं उनका भक्तमाल

अध्याय २

नाभादास एवं उनका भक्तमाल

नाभादास जी की गुरु परम्परा:-

नाभादास भी आचार्य रामानुज की परम्परा में आते हैं। रामानुजाचार्य (१०१९-१११७ ई०) यामुन मुनि के शिष्य थे। इन्होंने उत्तरीभारत के अनेक तीर्थों की यात्रा की। इनकी शिष्य परम्परा देश में फैलती गई तथा जनता इनके प्रभाव से भक्तिमार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। नाभादास जी ने दो छप्पयों में इनकी महिमा का कुछ वर्णन किया है। इन्होंने लिखा है कि "श्री सम्प्रदाय के शिरोमणि, संसार के मोहान्धकार को दूर करने वाले ये विष्णु या नारायण के रूप में पूज्य माने जाते थे।[७७]

रामानुजाचार्य की तेरहवीं पीढ़ी में स्वामी राघवनंद आविर्भूत हुए थे जो स्वतः हरयानन्द के शिष्य थे।[७८]

राघवानंदजी रामोपासक थे और नाभाजी के अनुसार वे भक्ति आंदोलन के भारी नेता हुए और सारी पृथ्वी को "पत्रालंवित" कर (हिलाकर) चारों

७७- यामुन मुनि रामानुज तिमिर हरन उदयमान।
सम्प्रदाय -शिरोमणि -सिंधु, रच्यो भक्ति वितान।।

७८- श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‌यो।
"देवाचारज" द्वितीय महामहिमा "हरियानंद"।
तस्य "राघवानंद" भये भक्तन को मानन्द।
पत्रावलम्ब पृथिवी करी वसिकाशी स्थाई।
चारि बरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई।
तिनके रामानंद प्रगट विश्वमंगल जिन बपु धर्‌यो।
श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‌यो।।३५।।

वर्णों और आश्रमों को भक्ति में उन्होंने दृढ़ किया । अनंतस्वामी कृत "हरि भक्ति सिंधु बेला"[७९] तथा "रसिक प्रकाश भक्तमाल"[८०] के अनुसार उनका दक्षिण से आकर उत्तर में राममन्त्र का प्रचार करना कहा गया है । अन्त में काशी में स्थायी रूप से रहने लगे और वहाँ पर इन्होंने रामानन्द को राममन्त्र की दीक्षा दी ।[८१] डा० बड़थ्वाल ने स्वामी राघवानंद के नाम से मिलने वाली एक हिन्दी रचना "सिद्धान्त पंचमात्रा" का उल्लेख किया है, यद्यपि इसकी प्रामाणिकता में स्वतः उन्हें भी सन्देह है ।[८२]

रामानंदजी के पिता का नाम सदन शर्मा तथा माता का नाम सुशीला बताया जाता है ।[८३] देशवाड़ी प्राकृत में लिखे हुए "प्रसंग पारिजात" नामक ग्रंथ में उनकी माता का नाम मुरली देवी दिया है[८४], किन्तु सम्प्रदाय में इसे कोई मान्यता नहीं ।[८५] रसिक प्रकाश भक्तमाल तथा नाभाकृत भक्तमाल के टीकाकार रूपकलाजी के अनुसार इनका प्रारम्भिक नाम रामदत्त था । अपने गुरु श्री राघवानंदजी की तरह इन्होंने भी देशभेद, वर्णभेद तथा जातिभेद आदि का विचार भक्तिमार्ग से दूर रखा । इनके इष्टदेव राम हुए । इन्होंने वैष्णवों के नारायणमंत्र के स्थान पर रामतारक मंत्र को साम्प्रदायिक दीक्षा का आधार माना, यद्यपि इनके पहले भी श्री रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय के श्री शठकोपाचार्य जी ने अपनी कृति में कहा है "दशरथस्य सुतं तं विना अन्यशरणवान्नास्मि"[८६]। रामानन्दजी ने यही किया कि विष्णु के अन्य रूपों में "रामरूप" को ही लोक के लिए अधिक कल्याणकारी समझकर ग्रहण किया और एक सबल सम्प्रदाय का संगठन किया [८७] ।

७९- हरिभक्ति सिंधु बेला, मंत्र प्रकरण चौथी तरंग योग प्रवाह पृ० २ पर डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत ।
८०- रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० ११ ।
८१- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ९२ ।
८२- योगप्रवाह, पृ० १-२२ ।
८३- रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १२ ।
८४- स्वामी चेतनदास, प्रसंग पारिजात, अष्टपदी ३।
८५- डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव, रामानंद संप्रदाय, पृ० ७८ ।
८६- सहस्त्रामिति ३।६।८ ।
८७- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ११८ ।

डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव[८८] ने विभिन्न सूत्रों से ज्ञात रामानंद की तथाकथित रचनाओं के नाम दिए हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों के अनुसार इनमें से केवल "वैष्णवमताब्ज भास्कर" तथा "श्री रामार्चन पद्धति" की ही प्रामाणिकता कम संदेहास्पद है। "आनन्द भाष्य" को यद्यपि सम्प्रदाय में मान्यता है, किन्तु उसके रामानंदरचित होने में कुछ विद्वानों को अब भी संदेह है। शेष ग्रंथों की प्रामाणिकता पूर्ण रूप से संदिग्ध है।

इन्होंने संस्कृत की अपेक्षा जन-भाषा को अधिक महत्व दिया जिसमें कि तत्कालीन परिस्थितियों से उत्पन्न नवीन आस्थाएं तथा विचार निहित हैं।

भक्तमाल के अनुसार अनंतानंद, कबीर, सुखानंद, पद्मावती, नरहर्यानंद, पीपा, भवानंद, रैदास, धना, सेन, सुरसुरानंद और सुरसरि इनके बारह प्रधान शिष्य थे।

अनन्तानंद-

स्वामी रामानंद के बारह प्रधान शिष्यों में अनन्तानंद प्रथम थे[८९]। इनके किसी भी ग्रंथ का पता नहीं चल सका है। इनको रसिक रीति का प्रेमी तथा चारुशीला सखी का अवतार माना गया है। अत्यन्त तीव्र अनुराग के कारण इनके नेत्रों का सजल रहना वर्णन किया गया है:-

रामानन्द जू के शिष्य श्री अनन्तानंद,
शीतल सुचन्दन से भक्तन अनन्द कर।
संतन के मानद परानन्द मगन मन,
मानसी स्वरूप छबि सरसी मराल वर।।
जनकलली की कृपापात्र चारुशीला अली,
रूप में अभिन्न भुंजै रंग भूमि लीला पर।
ऊपर समाधि उर अमित अगाध नैन,
अंसुवा श्रवत उमगत मानौ धराधर[९०]।।

८८- रामानंद सम्प्रदाय, पृ० १००।

८९-भक्तमाल सटीक रूपकला छ० ३६, दे० अनन्तदास की परिचयी और भक्तमाल का तुलनात्मक अध्ययन।

९०- रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १२।

परचयियों के प्रसंग में इनके सम्बन्ध में विस्तार से पृथक् विचार किया गया है ।

कृष्णादास पयहारी-

अनंतानंद के शिष्यों में प्रधान शिष्य कृष्णादास जी थे । ये जाति के दाहिमा ब्राह्मण थे । ये अन्न छोड़कर केवल दूध पर ही अपना निर्वाह करते थे । पयहारी जी एक योग्य शिष्य, महात्मा एवं तेजस्वी ब्रह्मचारी थे । इनका उक्त परिचय नाभादास जी के निम्नलिखित छप्पय से ज्ञात होता है:-

निर्वेद अवधि कवि कृष्णादास, अन परिहरि पय पान कियौ ।
जाके सिर कर धर्यौ, तासु कर तर नहि अड्ड्यो ।
अर्प्यौ पद निर्वान सोक, निर्भय करि छड्यो ।
तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता ।
सेवत चरण सरोज राय राना भुवि जेता ।
दाहिमा वंश दिनकर उदय, संत कमल हिय सुख दियौ ।
निर्वेद अवधि कवि कृष्णादास, अन परिहरि पय पान कियौ[९२]।

रामानुज सम्प्रदाय के लिए दक्षिण में जो महत्व तोताद्रि को था वही स्थान रामानन्दी सम्प्रदाय में उत्तर भारत में गलता को प्राप्त हुआ । यह "उत्तर तोताद्रि" कहलाया[९३]। जब पयहारी जी गलता पहुँचे तो वहां की गद्दी नाथपंथी योगियों के अधिकार मे थी । रातभर वहीं धूनी लगाकर वे ठहरना चाहते थे । लेकिन कनफटे योगियों ने उन्हें वहां से उठ जाने को बाध्य किया । ऐसा कहा जाता है कि पय/हारी जी ने धूनी की आग अपने कपड़े में बांध ली । कपड़े

९२- भ० मा० सटीक रूपकला, छ० ३८ ।
९३- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२१ ।

का न जलना देखकर योगियों का महंत "बाघ" बनकर उनकी तरफ़ झपटा। पयहारी जी के मुंह से निकला "तू कैसा गधा है!" और तुरन्त वह महन्त गधा हो गया। सभी कनफटों की मुद्राएं उनके कानों से निकल निकल कर पयहारी जी के सामने आ आकर इकट्ठा हो गईं। आमेर के राजा पृथ्वीराज की प्रार्थना पर महन्त को उन्होंने आदमी बनाया[९४]। यह भी कहा जाता है कि महाराज पृथ्वीराज के गुरु कापालिक सम्प्रदाय के योगी चतुरनाथ को शास्त्रार्थ में हराने के पश्चात् उन्हें गलता की गद्दी का अधिकार मिला था[९५], परिणामस्वरूप महाराज पृथ्वीराज की रानी बालाबाई ने इनसे दीक्षा ग्रहण की[९६]। महाराज पृथ्वीराज ने सम्वत् १५५९ से सम्वत् १५८४ तक राज्य किया[९७], अतएव यही समय कृष्णदास का भी होना चाहिए। इनके तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है:-

१- ब्रह्मगीता, २- प्रेमसत्व निरूपण, ३- जुगल मानचरित[९८]।

इनमें से प्रथम दो ग्रंथों को मेनारिया ने पयहारी का इसलिए माना है कि इनका विषय रामानन्दी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से मेल खाता है। तीसरा ग्रंथ संदिग्ध है[९९]। किन्तु डा० भगवती प्रसाद सिंह को उनकी कोई भी रचना उपलब्ध नहीं हुई[१००]। उनका कथन है कि "ऐसी स्थिति में पयहारी जी की भक्ति सम्बन्धी हमारी जानकारी का एकमात्र साधन, साम्प्रदायिक ग्रंथों एवं परम्पराओं में सुरक्षित अनुश्रुतियां ही रह जाती हैं[१०१]।

९४- म०मा० सटीक रू०क०, पृ० ३०५।

९५- हनुमान शर्मा- जयपुर का इतिहास, पृ० ३७।

९६- हितैषी-दिसम्बर जनवरी, सन् १९४१, ४२, में प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण जी का "जयपुर के कविकोविद" शीर्षक लेख पृ०५४१ तथा महावीर सिंह गहलौत, साहित्य सम्मेलन पत्रिका।

९७- "जयपुर का इतिहास"- हनूमान शर्मा, पृ० ३६ और ४१।

९८- हितैषी, दिसम्बर-जनवरी सन् १९४१-४२, पृ० १५६।

९९- राजस्थान का पिंगल साहित्य- मेनारिया, पृ० ३६।

१००- रामभक्ति में रसिक संप्रदाय- पृ० ८६।

१०१- वही, पृ० वही।

"रसिक प्रकाश भक्तमाल"के अनुसार इनकी रामोपासना सांख्य-योग-समन्वित थी[१०२]। इसी ग्रंथ से इनके रसिक रूप का भी आभास मिलता है[१०३]। नाभादास कृत भक्तमाल के अनुसार पयहारी जी के तेईस शिष्य थे, जिनमें कील्हदास और अग्रदास अधिक प्रसिद्ध थे[१०४]।

कील्हदास-

पयहारी जी के ए प्रथम शिष्य थे। इनके पिता का नाम श्री सुमेरदेव[१०५] था + जोकि गुजरात के सूबेदार थे[१०६]। पयहारी जी सांख्य और योग शास्त्र के ज्ञाता थे। गलता की गद्दी पयहारी जी के सिद्धेश्वर पर्वत पर चले जाने के उपरान्त इनको मिली[१०७]।

> कोई दिन बीते द्विजकुल अवतंस बाल,
> कील और अग्र स्वामी पास दोऊ आए हैं।
> देखि हिय भाव भागवत धर्म चाव लिए,
> शिष्य संस्कार साधु सेवा में लाए हैं।
> जानि सब लायक महंत किए कील जी को,
> अग्र जी को भावना रहस्य में छकायो हैं।
> पाखण्ड मिटाय दुलराज को बटाय,
> रामदूत संग पाय गंधमादन सिधायो है[१०८]।

१०२- रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १२।

१०३- कृपा अनन्तानन्द रसिक पूरन पयहारी।
कृष्णादास रस रीति उपासक सिय व्रत धारी।।
—रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३।

१०४- भक्तमाल सटीक रूपकला छप्पय, ३९, दे० पृ० १४।

१०५- वही, छ० ४०।

१०६- वही, प्रियादास, कवित्त १२१।

१०७- महाबीर सिंह गहलौत "सम्मेलन पत्रिका", भाग ३४, सं० २००४।

१०८- रसिक प्रकाश भ० मा०, पृ० १४।

यद्यपि श्री बलदेव उपाध्याय जी ने कृष्णदास पयहारी के पश्चात् अग्रदास जी को गलता की गद्दी का अधिकारी माना है किन्तु यह धारणा भ्रांति पूर्ण ज्ञात होती है[१०९]। कील्हदास जी का लिखा हुआ कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, केवल थोड़े से पदमात्र मिलते हैं। इनकी भाषा ढूंढाड़ी से अनुप्रमाणित ब्रजभाषा है[११०]।

प्रियादास जी ने अपने एक कवित्त में महाराजा मानसिंह के साथ इनकी वार्ताओं का उल्लेख किया है, अतएव इनका वही समय होगा, जो मानसिंह का है[१११]। उसमें इनकी एक अलौकिक घटना का भी वर्णन है जिसमें इन्होंने सर्प द्वारा अपने को डसवाया था तथा साधु समागम के बीच अपना प्राण विसर्जन किया था।

ऐसे प्रभु लीन, नहीं काल के अधीन,
बात सुनिये नवीन, चाहैं रामसेवा कीजिए।
धरी ही पिटारी फूल माला हाथ डार्यो,
तहां व्याल कर काट्यो, कह्यो फेरि काटि लीजिए।।
ऐसे ही कटायो बार तीनि, हुलसायो हियो,
कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिए।
करिकै समाज साधु मध्य यौं बिराज,
प्रान तज दशैं द्वार योगी सुनि कीजिए[११२]।।

अग्रदास-

अग्रदास पयहारी जी के ऐसे शिष्यों में से थे जिनके कारण उनकी ख्याति बढ़ी थी। अग्रदास जी राम के परम भक्त थे। हिन्दी भाषा-भाषी रामभक्तों में अग्रदास के ग्रंथों का बहुत सम्मान है।

१०९- भागवत सम्प्रदाय, पृ० २७१।

११०- मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ६७।

१११- राजस्थान का पिंगल साहित्य, मेनारिया, पृ० ६७।

११२- भक्तमाल रूपकला सटीक, प्रियादास क० १२१।

अग्रदास कब और कहां जन्मे थे, इसका निर्णय करना कठिन है । इतना अवश्य कहा जाता है कि पयोहारी की गद्दी गलता में थी । वहीं पर कदाचित् वे अपने गुरुभाई कील्हजी के साथ रहते होंगे और इनका पालन-पोषण गुरु के ही हाथों हुआ होगा ।

स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अग्रदास का संवत् १६३२ तक जीवित रहना बतलाया है [११४]। भक्तमाल के टीकाकार ने इनसे महाराजा मानसिंह से मिलने के प्रसंग का वर्णन किया है[११५]। अग्रदास जी महाराजा मानसिंह के गुरु थे[११६]। इनके प्रभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण "सम्राट् अकबर" द्वारा प्रचारित "राम सीय भांति" की मुद्राएं हैं[११७]। महाराजा मानसिंह का राज्य-काल संवत् १६४६ से १६७५ तक है । अतएव यदि राज्यारोहण के प्रथम वर्ष भी वे गुरु से मिलने गये होंगे तब भी सम्वत् १६४६ तक इनका उपस्थित रहना सिद्ध हो जाता है, जिससे शुक्ल जी की मान्यता में संदेह उत्पन्न होता है । किन्तु इनके दो ग्रंथों "विश्वब्रह्मज्ञान" तथा "रामावली" में रचनाकाल दिया हुआ है । इनमें से प्रथम का रचनाकाल संवत् १६४७ और द्वितीय का संवत् १६६० है[११८]। अतएव सम्वत् १६६० तक इनका वर्तमान रहना सिद्ध होता है । आगे भक्तमाल के रचना-काल के प्रसंग में इस समस्या पर विस्तार से विचार किया गया है ।

गलता की गद्दी पर कील्हजी के विराजमान होने के पश्चात् अग्रदास जी कील्ह की आज्ञा से "रैवासा" चले आए तथा वहीं गद्दी स्थापित कर ली[११९]।

११३- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास, क० १२२ ।

११४- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १२६ ।

११५- भक्तमाल रूपकला-प्रियादास की टीका, क० १३२ ।

११६- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय-डा० भगवतीसिंह, पृ० ११० ।

११७- वही, पृ० १११ ।

११८- मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३२२ ।

११९- रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १६ ।

यहीं इनके कई प्रसिद्ध शिष्य हुए[१२०] जिनमें सबसे प्रसिद्ध भक्तमालकार नाभादास (नारायणदास) थे ।

नाभादास ने अपने गुरु अग्रदास के लिए जो छप्पय लिखा है उससे उनके व्यक्तित्व की विशेषता भलीभांति स्पष्ट हो जाती है ।

(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन, काल वृथा नहिं बित्तयो ।।
सदाचार ज्यों संतप्राप्त जैसे करि आए ।
सेवा सुमिरन साधधान चरण राघव चित लाए ।।
प्रसिद्ध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर ।
रचना निर्मल नाम मनहुँ बरसत धाराधर ॥
श्री (कृष्णदास)कृपाकरि भक्ति दत्त, मन बच क्रम करि अटल दयो ।
श्री (अग्रदास) हरिभजन बिन काल वृथा नहिं बित्तयो[१२१]।

उक्त छप्पय से यह भी ज्ञात होता है कि यह बाग-बगीचों के बड़े प्रेमी थे । इसी आदर्श पर रसिक सम्प्रदाय के भक्त अब तक "राममन्दिरों" में छोटी बड़ी फुलवाड़ी, लगाया करते हैं और उनके नामों के साथ कुंज, निकुंज, वाटिका, बन और बाग आदि शब्द जोड़ते हैं जैसे श्रावणकुंज, हनुमान बाटिका आदि[१२२]।

अग्रदास जी की दो हिन्दी रचनाएं "ध्यान मंजरी" और "कुंडलियां" मिलती हैं । इनमें प्रथम की "रामध्यान मंजरी" और द्वितीय की "हितोपदेश “उपासना बावनी" नाम से भी पाण्डुलिपियां मिली हैं । "श्रृंगार रस सागर" और "अग्रसागर" नामक ग्रंथ भी इनके रचे हुए बतलाए जाते हैं[१२३]। इसके अतिरिक्त "विश्वब्रह्मज्ञान" तथा "रागावली" नामक अन्य दो पुस्तकों की सूचना "मिश्रबन्धु विनोद" के आधार पर मेनारिया ने अपने ग्रंथ में दी है ।

१२०- भक्तमाल रूपकला सटीक छं० १५० ।

१२१- वही छं० ४१ ।

१२२- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय- डा० भगवती प्रसाद सिंह पृ० ३८१ ।

१२३- वही पृ० ३८१ ।

इनकी रचनाओं में "अग्र", "अग्रदास", "अग्रस्वामी" और "अग्रअली" ये चार छापें मिलती हैं । अग्रअली की छाप इनकी रचना "अष्टयाम" में है । अग्रदास का चित्रण रसिक भक्तमाल के रचयिता इस प्रकार करते हैं:-

रसबोध बिपुल आनन्दघन अग्रस्वामिकै बानी विशद
अक्षर पद अनुप्रास मधुरता वालमीकि सम ।
आशय गूढ़ उपाय प्राप्त रसिकन की संगम ।
रैवासे जानकी बल्लभी रहसि उपासी ।
ललित रसाश्रय रंगमहल कुल कुंज खवासी ।
अचरज रस रासपथ रसिक-बर्ज रसिकन सुखद ।
रसबोध बिपुल आनन्दघन अग्रस्वामिकै बानी बिशद ।

अग्रदास की प्रसिद्धि का कारण उनके शिष्य नाभादास जी भी हैं । उन्होंने ही अग्रदास की कीर्ति भक्तमाल द्वारा चारों ओर विकीर्ण की । रामानुजाचार्य से अग्रदास तक की परंपरा की यह संक्षिप्त रूपरेखा है जिसमें नाभादास जैसे भक्तरत्न की श्रृंखला आगे जुड़ती है ।

जन्म संवत्-

इनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में कोई अन्तःसाक्ष्य नहीं मिलता, यहां तक कि भक्तमाल के प्रथम तथा प्रसिद्ध टीकाकार भी, जिनकी रचना संवत् १७६९ में समाप्त होती है, इस सम्बन्ध में मौन हैं । बहिर्साक्ष्य के आधार पर मलूकदास तथा नाभादास जी को समकालीन कहा गया है[१२४]। मलूकदास जी का जन्म बैशाख बदी ५ संवत् १६३१ में इलाहाबाद ज़िले में कड़ा नामक गांव में हुआ था[१२५]। सन्त मलूकदास को नाभादास का समकालीन मान लिया जाय तो सम्वत् १६३१ के आस पास नाभादास का जन्म संवत् माना जा सकता है ।

१२४- राधाकृष्ण द्वारा सम्पादित ध्रुवदास की भक्तनामावली पृ० ९१ ।
१२५- उत्तर भारत की संत परम्परा- परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ५०५ ।

जन्म स्थान-

नाभादास जी के जन्मस्थान के विषय में भारी मतभेद है । प्रतापसिंह ने अपने भक्तमाल में लिखा है कि दक्षिण में तैलंग देश, गोदावरी के समीप राम-भद्राचल नामक एक पर्वत पर नाभादास जी के पिता रहते थे[१२६]। इसी स्थान की मान्यता संतवाणी अंक "कल्याण" में भी है[१२७]। भक्तमाल के एक अन्य टीकाकार बालकराम जी ने उनका जन्मस्थान मरुस्थल बतलाया है । गलता से उनका सम्बन्ध होने के कारण इस मत में अधिक सत्यता प्रतीत होती है ।

माता पिता एवं जाति -

प्रियादास जी ने "हनुमान वंश ही में प्रशंस" लिखा है[१२८]। अर्थात् वे उन्हें हनुमान वंशी मानते हैं । महाराजा रघुराजसिंह ने "सो शिशु लांगूली द्विज केरौ" अर्थात् हनुमान वंश का लांगूली ब्राह्मण अर्थ किया है[१२९]। प्रतापसिंह ने लिखा है कि इनके पिता रामदास महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हनुमान जी के अंशावतार हुए । अतएव उनका परिवार भी हनुमान वंश से प्रसिद्ध हुआ । ये लोग गान विद्या में प्रवीण होते थे तथा राजा लोगों के यहां गाने की नौकरी करते थे[१३०]।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना कोई विचार स्पष्ट न देकर लिख दिया है कि कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण तथा कुछ लोग क्षत्रिय कहते हैं[१३१]। विल्सन ने अपनी पुस्तक "रिलिजस सेक्ट्स आफ़ हिन्दूज़" पृष्ठ ३१ में नाभादास को डोम

१२६- भक्तमाल -प्रतापसिंह पृ० १८-१९ ।

१२७- संतवाणी अंक -कल्याण पृ० ३७५ ।

१२८- भक्तमाल रूपकला-टीका छ० २२ ।

१२९- भक्त रसिकावली पृ० ६७६ ।

१३०- भक्तमाल -प्रतापसिंह पृ० १८-१९ ।

१३१- हिन्दी साहित्य का इतिहास -रामचन्द्र शुक्ल पृ० १४७

बतलाया है[१३२], जिनका मुख्य व्यवसाय टोकरियां बनाना तथा इसी प्रकार के अन्य छोटे छोटे काम करना होता था । उन्होंने लिखा है कि मारवाड़ी भाषा में बन्दर डोम के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

गार्सां द तासी तथा ग्रियर्सन ने भी टोकरियां बुनने वाले को डोम या डोमरा कहा है[१३३] । राधाकृष्णदास ने भी मारवाड़ी भाषा में हनुमान का अर्थ डोम किया है[१३४] । किन्तु राजस्थान में डोम का "हनुमान" अर्थ सुनने में नहीं आया । मारवाड़ी भाषा के किसी कोष में भी डोम का अर्थ हनुमान नहीं मिलता[१३५] । राजस्थान काठियावाड़ में क्षत्रियों के कुछ ऐसे घराने मिलते हैं जो अपने को बानरवंशी कहते हैं । अतएव बहुत सम्भव है कि नाभादासजी का जन्म किसी बानर वंशी क्षत्रिय परिवार में हुआ हो[१३६] । नाभादास ने अपने भक्तमाल के छप्पय १०७ में भक्तलाखा को बानरवंशीय लिखा है । अतएव उनका बानरवंशी क्षत्रिय परिवार हो तो असम्भव नहीं । कदाचित् प्रियादास जी ने बानरवंशी के पर्याय रूप में उन्हें हनुमान वंशी मान लिया हो ।

बाल्यावस्था -

भक्तमाल अथवा इनके किसी भी ग्रंथ से इनकी बाल्यावस्था के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता । भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी के एक छप्पय से इसका कुछ संकेत मिलता है ।

१३२— Nabhaji the author of Bhaktamala, was by birth a Dom, a cast whose employment is making baskets and various sorts of wickar works. Banar, a monkey signifies in the Marwar language a Dom.

१३३- हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० १२७, मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर, पृ० २७ ।

१३४- ध्रुवनामावली, पृ० ८९ ।

१३५- मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ६९ ।

१३६- वही, पृ० वही ।

हनूमान वंश ही में जनम प्रशंस जाको

भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये ।

उमरि बरष पांच, मानिकै अकाल आंच,

माता वन छोड़ि गई विपति विचारिये ।।

कील्ह औ अगर ता ही डगर दरश दियो,

लियो यों अनाथ जानि पूंछी जो उचारिये ।

बड़े सिद्ध जल लै कमंडलु सों सींचे नैन ।

चैन भयो खुले चख, जोरी को निहारिये ।।१२।।

इससे इतना मालूम होता है कि नाभादासजी जन्म से ही दृगहीन थे। अकाल से पीड़ित माता इन्हें पांच ही वर्ष की अवस्था में जंगल में छोड़कर चली गई । दैवयोग से उसी रास्ते से "कील्ह" और "अगर" यात्रा कर रहे थे । रोते हुए बच्चे को देखकर उन्होंने तुरन्त उठा लिया । कील्हदेव ने अपने कमण्डल से जल लेकर नाभा की आंखों पर छिड़क दिया । परिणाम स्वरूप उनके चक्षु खुल गए और उनको दोनों महात्माओं के दर्शन हुए । अंत में ये उनके साथ "गलता-आश्रम" आए । "कील्ह" की आज्ञा पाकर अग्रदासजी ने मंत्र दिया और उसी दिन से उन्हें भक्तों तथा संतों की सेवा का भार सौंपा गया ।

चन्ददासजी ने नाभादास की बाल्यावस्था का वर्णन दूसरे ही प्रकार से किया है[१३७] ।

१३७- हस्तलिखित प्रति- भक्त विहार पृ० ८० से-

~~कन्या मेक विप्रसुर धरास्वी । भई हीनपत दुःखद विलासी ।~~

~~ताके धाम साध जन आयेउ ।~~

कन्या मेक विप्रसुर धरास्वी । भई दीन पत दुखद विलासी ।
ताके धाम साध जन आयेउ । दै सुभ असन चरन सिर नायेउ ।।
तब तिन कही पुत्र सुम पावौ । साध कृपा संताप मिटावौ ।
तब निजु कथा जथा विधवरनी । अपजस मोहि लगायो धरनी ।।
कही साध चिन्ता जन आनौ । प्रगटै संत सत्य येहु मानौ ।
दे उपदेश धाम मग लीन्हौ । विध ताकौ सुन्दर सुत दीन्हौ ।
देख रूप सुभ करुना आनी । राखेउ सदन लाज नहिं मानी ।
भयेउ बरख सो पंच विलासी । तब परवार गिरा पस्तासी ।

उनके अनुसार एक विप्र की कन्या विधवा हो गयी थी, संतों के आर्शीवाद से उसी के गर्भ से नाभादासजी उत्पन्न हुए। पांच वर्ष की अवस्था के बाद अपने कुल की लज्जा तथा मर्यादा का ध्यान कर विपिन में बच्चे को छोड़कर चली आई। जंगल में एक "सुपच" द्वारा यह बालक पाया गया।

अग्रदास आनन्दजुत। आये सहित समाज।

देख विलोचन संत जन। किए दिव्य येहु काज।

बाद में अग्रदासजी के साथ वह बालक चला आया। वे स्वयं बालक को विप्रसुत जानते थे, दूसरे लोग श्वपच सुत समझते थे। अपने "नाम" पर लाकर अग्रदास जी ने इन्हें शिक्षा दी तथा साधु संतों की सेवा का भार सौंपा।

गुरु-

अग्रदासजी ही नाभादास के दीक्षा-गुरु थे, इसका स्पष्ट उल्लेख इनकी रचना अष्टयाम (अष्टकाल चरित) तथा भक्तमाल में है। अष्टकाल चरित (पृ० ४२) में लिखा है -

(क) तिनकी कृपा कटाक्षते, "अग्र" सुमति गुरु पाय।
नाभा उर आनन्द लहे, रसिक जनन गुण गाय ॥ १ ॥

(ख) अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन कौ जस गाव।
भवसागर के तरन को, नाहिन और उपाव ।।४।।

---

१३७ का शेष -

दोहा- हरी लाजकुल कन उर। भरी पाप गृह वोट। १३७
करी अनीत सुरीत जग। अबला संतत कोट।

सुनतगिरा लज्जा उर आनी। प्रात विपन लै चली भवानी।
विषम विपिन सुत को तज दीन्हो। करुना ऐस सेख नहि कीन्हो।
गई सदन तज बालक नारी। रक्षा करत मरावन चारी।
सुवचा मेक विपिन मह उयेउ। बालक देखि धाम निज लायेउ।

१३८- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय- डा० भगवती प्रसाद सिंह पृ० १०० पर उद्धृत।

बादका दोहा भक्तमाल के प्रारम्भ का है। इस आज्ञा को गुरु ही दे सकता है। अतएव अष्टयाम तथा भक्तमाल के आधार पर इनके दीक्षा-गुरु अग्रदास ही सिद्ध होते हैं।

नाभादास का निधनकाल-

अन्तर्साक्ष्य से नाभादास की मृत्यु के विषय में कुछ नहीं ज्ञात होता । पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वे तुलसीदास की मृत्यु के बहुत बाद तक जीवित रहे[१३९]। मिश्रबन्धुओं ने अनुमान से सं० १७२० के लगभग इनका शरीरान्त होना माना है[१४०]। डा० किशोरीलाल गुप्त ने सं० १७१९ को उनकी मृत्यु तिथि मानी है[१४१]। किन्तु उपर्युक्त सभी निर्णय केवल अनुमान पर आधारित हैं।

नाभादास का जन्म सं० १६२७ के आसपास सिद्ध होता है। सं० १७१५ तक भक्तमाल की रचना समाप्त होती है। इस प्रकार भक्तमाल पूर्ण होने तक इनकी उम्र ८६ वर्ष के लगभग ठहरती है। यदि भक्तमाल की रचना के बाद कमसे कम दस वर्ष तक इनके जीवित रहने का अनुमान किया जाय, तो सं० १७२३ के लगभग इनकी मृत्यु अनुमानतः सिद्ध होती है। उस समय तक इनकी अवस्था ९६ वर्ष ठहरती है, जो असंभव नहीं लगता।

भक्तमाल का वर्ण्य विषय-

जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, इस महत्वपूर्ण ग्रंथ में (वैष्णव) भक्तों का श्रद्धासंवलित संक्षिप्त वर्णन है। भक्त नाभादास अपने गुरु की आज्ञा पाकर इस महान ग्रंथ की रचना में संलग्न थे[१४२]। भक्तमाल की रचना प्राचीन परम्परा के अनुसार मंगलाचरण से प्रारम्भ होती है-

भक्त, भक्ति भगवंत गुरु, चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किए, नासहिं विघ्न अनेक ।।१

१३९- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १४७।

१४०- मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृ० २४७

१४१- हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास सं० ५१ टि० (सर्वेक्षण ४०९)

प्रारम्भिक चार दोहों में गणेश तथा हरिभक्तों की वंदना के पश्चात् छप्पय-छंद प्रारम्भ होता है । चौबीस अवतारों के वर्णन तथा गुरु के पुनःस्मरण के बाद कथा आगे बढ़ती है । छठवें छप्पय में रघुबीर के चरण चिन्हों का वर्णन होता है । फिर राम तथा कृष्ण आदि के भक्तों का दिग्दर्शन सताईसवें छप्पय तक होता है । इस प्रकार इस छप्पय तक सतयुग,द्वापर, तथा त्रेता के भक्तों का विवरण समाप्त होता है ।

कलियुग के भक्तों का वर्णन -

छप्पय २८ से कलियुग के भक्तों का प्रारम्भ चारों वैष्णव सम्प्रदायों के प्रवर्तकों रामानुज, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य तथा निम्बार्काचार्य के परिचय के साथ होता है । फिर क्रमशः प्रत्येक के द्वारा प्रवर्तित "श्री सम्प्रदाय", "शिवसम्प्रदाय", "सनकादिक सम्प्रदाय" और "ब्रह्म सम्प्रदाय" का संक्षेप में परिचय देते हुए कथा सूत्र आगे बढ़ता है । छप्पय ३० और ३१ में सम्प्रदाय शिरोमणि स्वामी रामानुज का परिचय किंचित् विस्तार से मिलता है ।

ग्रंथ-

नाभादासके निम्नांकित ग्रंथों का पता चला है:[१४४]

(१) भक्तमाल (२) दो अष्टयाम या अष्टकाल चरित जिनमें एक गद्य ब्रजभाषा में है जो ५६ बड़े पृष्ठों का है, दूसरा छन्दोबद्ध विशेषतया दोहा चौपाइयों मे लिखा गया है[१४५]। (३) रामचरित के पद[१४६] के विषय में कहा जाता है कि यह अष्टयाम के कुछ पदों का संग्रह है ।

इनमें सबसे प्रसिद्ध "भक्तमाल" है । किन्तु एक आश्चर्यजनक बात यह है

१४३- भक्तमाल-रूपकला दोहा १ ।

१४४- मिश्रबन्धु विनोद प्रथमभाग, पृ० २४७ ।

१४५- मिश्रबन्धुओं ने इन्हें छतरपुर में देखा था ।

१४६- डा० भगवती प्रसाद सिंह- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ६८४ ।

कि सम्पूर्ण रचना में कहीं भी नाभादास का नाम नहीं मिलता, अतएव भक्तमाल किसकी रचना है, यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है ।

नाम सम्बन्धी विवाद-

"भक्तमाल", जिसमें लगभग २०० भक्तों की माला गुथी हुई है तथा भाषा-साहित्य में जो रामचरित मानस के पश्चात् इतना लोकप्रिय रहा, भक्त-मण्डली में जिसका इतना आदर रहा, उस ग्रंथ के रचयिता का पता नहीं । इस "भक्तमाल" के दोहा २१४ में केवल नारायणदास का नाम आया है जो इस प्रकार है-

काहू के बलजोग जग, कुल करनी की आस ।[१४७]
भक्तनाम माला अगर, उर बसौ नरायन दास ।

तो क्या यह रचना "नारायनदास" की है? ये नारायणदास कौन थे? इनकी और कोई रचना प्राप्त है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं, और उनका उचित समाधान आवश्यक हो जाता है । भक्तमाल के रचयिता के संबन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत उद्धृत किए जा रहे हैं ।

गार्सादतासी ने लिखा है - "परिपक्व अवस्था प्राप्त करने पर उन्होंने अपने गुरू, जो ऐसा प्रतीत होता है, उसे संस्कृत में लिख चुके थे, की इच्छानुसार "भक्तमाल" की रचना की । इस रचना, जिसके शीर्षक का अर्थ है "भक्तों की माला" और जिसे संत चरित भी कहते हैं, में प्रधान तया हिन्दू, विशेषतः वैष्णव संतों की जीवनियां हैं । उसकी रचना छन्दों में अत्यन्त कठिन हिन्दुई में हुई है । शाहजहां के राजत्वकाल में नारायणदास ने उसका शोधन तथा परिवर्धन किया ।[१४८]"

किन्तु इन दोनों कथनों का कोई आधार नहीं प्रतीत होता । कितने

१४७- भक्तमाल रूपकला सटीक दोहा २१४ ।
१४८- हिन्दुई साहित्य का इतिहास -अनुवादक डा० वार्ष्णेय पृ० १२७ ।

छन्दों की रचना नाभादास ने की तथा कितनों की नारायणदास ने, इसका निर्णय करने के लिए आज हमारे पास कोई साधन उपलब्ध नहीं । यदि पहले नाभादास ने रचना की होती तो कदाचित् भक्तमाल में उनके नाम का उल्लेख होता । तीसरी बात यह है कि अभी तक अग्रदास द्वारा लिखित संस्कृत भाषा में कोई भी भक्तमाल-ग्रंथ उपलब्ध न हो सका । अतएव गार्सा-द-तासी की यह धारणा कि भक्तमाल की रचना मूलतः नाभादास ने की और कालान्तर में नारायणदास ने इसका संशोधन किया, निर्मूल सिद्ध होती है ।

इस विषय में संदेह करने वाले दूसरे व्यक्ति डा० जार्ज ग्रियर्सन है[१४९]। इनका अनुमान है कि भक्तमाल की रचना अग्रदास की आज्ञा से नाभादास ने १०८ छन्दों में की । बाद में इनके किसी शिष्य नारायणदास ने शाहजहां के शासनकाल(१६२८-१६५८) में इसको सम्पादित किया और जो भक्तमाल आज उपलब्ध है इसी परिवर्धित रूपान्तर का प्रतिनिधित्व करता है । किन्तु इस अनुमान का क्या आधार है, इसका उन्होंने कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है ।

डा० ग्रियर्सन ने नारायणदास के विषय में जो आधार अपनाया है वह ग़लत सिद्ध होता है *, क्योंकि उन्होंने स्वयं लिखा है कि "नारायणदास", जिसको श्री ग्राउज़ ने नाना दास का शिष्य कहा है देशी लेखकों के अनुसार नाभादास का असली नाम है ।"नाभादास" तो उनका उपनाम है । नाभादास सम्भवतः वही नारायणदास कवि हैं जिनको शिवसिंह ने १५५८ ई० में उत्पन्न कहा है जिन्हें हितोपदेश तथा राजनीति का भाषानुवाद करने वाला माना है । सम्भवतः यह वह नारायणदास हैं, जिन्हें शिवसिंह ने "छंदसार" नामक ५२ छन्दों के एक पिंगल ग्रंथ का कर्ता वैष्णव माना है[१५०]।"

वास्तव में "सरोज" में वर्णित हितोपदेश एवं राजनीति के अनुवादक नारायण दास (सर्वेक्षण ४०८) इस नाभादास और नारायणदास से निश्चय ही भिन्न हैं[१५१]।"

१४९- मार्डन वर्नाक्यूलर आफ हिन्दुस्तान-पृ० २७ ।

१५०- " " " " का टिप्पण अनुवाद-डा० किशोरीलाल गुप्त कवि सं० ५१

१५१- वही, टिप्पण- पृ० ५१ ।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक विचारणीय तर्क डा० किशोरीलाल गुप्त के हैं। इन्होंने बड़े प्रामाणिक तथ्यों का संचय कर इस कृति को तीन व्यक्तियों की रचना सिद्ध किया है।

"सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि भक्तमाल नाभादास की रचना है और नाभादास तथा नारायणदास एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। पर भक्तमाल के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर कम से कम तीन व्यक्तियों की रचना है। ये तीन व्यक्ति हैं- अग्रदास और उनके शिष्य नारायणदास तथा नाभादास[१५२]।"

देखना यह है कि अग्रदास जी को डा० गुप्त ने भक्तमाल की रचना करने वाला क्यों और कैसे माना? गुप्त जी ने प्रथम चौबीस छप्पय अग्रदास रचित माना है। इनका कथन है कि छन्द १ से २९ तक, जिसमें ५ दोहे तथा चौबीस छप्पय हैं, स्तुतिपरक है तथा "अग्रदास" जी के हैं। " फिर अंतिम छप्पय छन्द २००, २०१, २०२ भी साधु-महिमा वर्णन होने के कारण अग्रदास जी के हैं तथा प्रथम दो में उनकी छाप भी है।

यदि पांचवें तथा २७वें छन्दों में अग्रदास का नाम मिलने के कारण उनके बीच के सारे छन्द अग्रदास के माने जा सकते हैं, तो इस नियम के अनुसार छन्द २०१ में भी अग्रदास की छाप मिल जाने के कारण पांचवे से २०१ छन्द तक का अंश क्यों न अग्रदास-कृत माना जाय? इस प्रकार नाभादास का कृतित्व केवल कुछ एक छन्दों तक सीमित रहेगा।

वास्तव में नाभादासजी ने "भक्तमाल" मंगलाचरण से प्रारम्भ कर छप्पय पांच में "चौबीस रूपलीला रुचिर श्री अग्रदास उर पद धरौं" कहकर मंगल हेतु गुरु का पद-सरोज अपने हृदय पर रखने की प्रार्थना की है। इसी प्रकार सभी छप्पयों में, जहां अग्रदास का नाम आया है, वहां मंगल-हेतु गुरु का स्मरण किया गया है। जहां दूसरे युगों के भक्तों का वर्णन है उसके अन्तिम छं० २७ में "अग्रदास

१५२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६३ सम्वत् २०१५ अंक ३-४ "भक्तमाल का संयुक्त कृतित्व"

१५३- डा० गुप्त ने छप्पय संख्या १०८ माना है उनपर आगे विचार किया गया है।

का नाम आया है और पुनः कलियुग के भक्तों की सूची के अन्त में मिलता है। अतएव जिस प्रकार गुरु का स्मरण मंगल से प्रारम्भ हुआ है उसी प्रकार गुरु स्मरण समाप्ति का सूचक माना जा सकता है। परिणामतः इसी आधार पर भक्तमाल को अग्रदास-रचित कहना असंगत सा प्रतीत होता है।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने नाभादास और नारायणदास को गुरु-शिष्य कहा है। डा० गुप्त ने उन्हें गुरु भाई कहा है और उसके लिए निम्नांकित दलीलें पेश की हैं:-

अष्टयाम में नाभादास ने अग्रदास का स्मरण गुरु रूप में किया है[१५४]।

(१) नाभादास श्री गुरुदास, सहचर अग्र कृपाल को।
बिहरत सकल बिलास, जगत विदित सिय सहचरी ।।

(२) श्री अग्रदेव करुणा करी, सिय पद नेह बढ़ाय।

(३) श्री अग्रदेव गुरु कृपातें, बाढ़ी नवरस वेलि ।।

फिर अष्टयाम में नाभा ने नारायणदास को अपने से भिन्न एवं अग्रदास के सहचर (शिष्य) के रूप में स्मरण किया है[१५५]:-

सहचर श्री गुरुदेव के नाम नरायनदास।
जगत प्रचुर सिय सहचरी विहरत सकल विलास ।।४

भवसागर दुस्तर महा मोहि मगन लखपाइ।
सदम हृदय जिनको सरस तब यह भई रजाइ ।।५

इस खोज रिपोर्ट (१९२३-२५) की विज्ञप्ति संख्या ८९ में नाभादास के अष्टयाम का एक उद्धरण दिया गया है। इस गुरु परम्परा में नाभादास ने अपना नाम नहीं दिया है। अतएव अष्टयाम नाभादास का न होकर "जानकि बल्लभ टेकशाल" का मालूम होता है[१५६]।

१५४- खोज रिपोर्ट १९२३। २८९/१।

१५५- खोज रिपोर्ट १९२०।१११।

१५६- श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों, कियो सेतु विस्तार।
तेहि चढ़ि नरभव सिंधु तरि, पहुंचहि हरि दरबार।
तासु शिष्य अष्टांग विद नाम अनंतानन्द।
ज्ञान भक्ति वैरागय निधि गुरु कुल कैरव चन्द ।।

एक अन्य शंका "सहचर" शब्द के संबंध में उठ सकती है । जिस नाभादास ने अपना जीवन संतों की सेवा करने, यहां तक जूठन आदि उठाने, में बिता दिया वह अपने गुरु को क्या "सहचर" कह सकता है ?

तीसरी बात यह है कि यदि यह "अष्टयाम" नाभादास का ही है तो क्या यह असम्भव है कि दो नामों वाला व्यक्ति अपने दूसरे नाम का उल्लेख कभी न करे ।

अंतिम बात यह है कि भक्तमाल के छं० १५० में अग्रदास के कृपापात्र शिष्यों का वर्णन है[१५७]। उक्त छप्पय में नारायणदास का नाम

---

१५६ का शेष-

श्री कृष्णादास अवतार सुवाहन ।
तेहि के अग्र सुमति जग पावन ।।
तेहि के विमल विनोदी जानौं ।
तेहि के ध्यानदास सनमानौं ।।
चरनदास मंगल गुन खानी ।
सियपद बालकृष्ण रतिमानी ।।
श्री सुखराम दास तेहि केरे ।
रसिक राम सेवक प्रभु केरे ।।
केसन कुंज सियावर दासा ।
श्री जानकी शरण सिय आसा ।।
सहजराम सिय राम हजूरी ।
जुगलचरण रति मति अति पूरी ।।
अग्र सुमति को बंस उदारा ।
अली भाव रति जुगल विहारा ।।
जानकि वल्लभ टेक लाल की ।।
जै जै जै सिय विदित बालकी ।।

(खोज रिपोर्ट १९२३-२५ भाग ६ नोटिस २२९-१)

१५७- (१) श्री जंगी जी (२) प्रयागदास जी (३) विनोदीजी (४) पूरनदास जी (५) बनवारी (६) नरसिंहदासजी (७) भगवानदास जी (८) दिवाकरजी (९) किशोरी जी (१०) जगन्नाथजी (११) सलूधौजी (१२) खेमजी (१३) लघु ऊधौ जी ।

नाभादासजी अवश्य लिखते । यह छप्पय नारायणदास द्वारा लिखा गया नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गुप्तजी ने लेख के अंत में लिखा है कि "सामूहिक नामोल्लेख करने वाले छप्पय अधिकांश रूप में नाभादास के होने चाहिये ।" अतएव यदि नाभादास से बड़े नारायणदास थे, तथा गुरुभाई थे, तो उनका नाम नाभादासजी यहां कैसे भूल जाते ?

अतः भक्तमाल को दो या तीन व्यक्तियों की रचना मानना भ्रमात्मक है । भक्तमाल के रचयिता अकेले नाभादास ही थे । इनका नाम कदाचित् वैष्णव संस्कार के बाद नारायणदास रखा गया होगा । यदि नारायणदास भक्तमाल के रचयिता होते, तो पिछले खेवे के सभी टीकाकार प्रियादास आदि नाभादास का नाम क्यों रखते ?

भक्तमाल" के नाभाकृत होने का एक अकाट्य प्रमाण यह है कि उसकी रचना के दो ही वर्ष बाद (सं० १७१७)[१५८] रचे जाने वाले दादूपंथी भक्तमाल के रचयिता राघवदास ने स्पष्ट रूप से पूरे भक्तमाल का एकमात्र रचयिता नाभादास को माना है[१५९], उन्होंने सतयुग, द्वापर, त्रेता तथा कलियुग के भक्तों का पृथक् उल्लेख करते हुए उन सब का यशोगान नाभा द्वारा किए जाने का उल्लेख किया है । यही नहीं, राघवदास ने इसी आदर्श पर अपने भक्तमाल की भी रचना की और,जैसा आगे संकेत किया है,कई दृष्टियों से वे नाभादासकृत भक्तमाल के ऋणी भी रहे हैं, अतः भक्तमाल की परम्परा में भी पूर्ण जानकारी उन्हें ज्ञात होती है । इतने निकट की जानकारी रखने वाला व्यक्ति भी यदि भक्तमाल को स्पष्ट रूप से नाभाकृत बनाता है और नारायणदास का एकदम उल्लेख नहीं आता तो यह बात विचारणीय हो जाती है । राघवदासजी ने अग्रदास के शिष्यों में भी सर्वप्रथम नाभा का नाम

१५८- यहां सत्रह सौ सत्रह से सत्रहोतरा सुकल पक्ष सनिवार ।
तिथि त्रितिया आसाद की राघौ कियौ विचार ।।

१५९- नाभै नभ सेती कीन्हों थीर नीर, भिन्न भिन्न ग्रंथन को सार सरवंगी हरि गायो है ।
भगति भगत भगवंत गुरु धारि उर विवरि बखानि सबहीं कौं सिर नायो है ।
सतयुग, त्रेता अरु द्वापर कलू के भक्त नामकृत माला कीन्ही नीकौ भेद पायो है ।
राघो गुरु अग्रकौ अरपि गिरा गंग जल पूरे पतिव्रत जन सम यौं रिझायौ है ।।३४८।।

लिया है और नारायणदास का उल्लेख वहां भी नहीं आता [१६०]।

छप्पय संख्या -

शिव सिंह सरोज के अनुसार भक्तमाल में कुल १०८ छप्पय हैं[१६१]। ग्रियर्सन ने भी कदाचित् सरोज के ही आधार पर १०८ छप्पयों के होने का उल्लेख किया है[१६२]। इसी संख्या का अनुमोदन डा० किशोरी लाल गुप्त ने भी किया है[१६३]। उनका कथन है कि भक्तों की माला में एक भक्त एक मनके के समान होना चाहिए और इस प्रकार १०८ मनके की माला होनी चाहिए।

इसके लिए उन्होंने कल्पना की है कि नारायणदास ने सम्भवतः इसका ध्यान रखा होगा और इसीलिए सामूहिक नामवाले छप्पयों को उन्होंने नाभादास का बतलाया है।

इससे एक दूसरी समस्या खड़ी हो जाती है। किशोरीलाल ने जो छंद अग्रदास रचित बतलाये हैं * उनमें भी कुछ में सामूहिक रूप में भक्तों के नाम आये हैं। तो फिर सामूहिक भक्तों का वर्णन होने के कारण उन्हें भी नाभादास का ही क्यों न माना जाय? इससे गुप्त जी की उस मान्यता का स्वतः खण्डन हो जाता है। पुनः नाभादास तथा नारायणदास की रचनाओं में कोई ऐसी विभाजक रेखा नहीं है जिसके अनुसार उन्हें इदमित्थम् रूप में पृथक् किया जा सके। अतः इन तर्कों के आधार पर छप्पयों की संख्या

१६०- जन के कारज करत हैं अन बंछत हरि आय।
ये नाभा जंगी प्राग विनोदी पूरण पूरे।
बनवारी भगवान दिवाकर नांहि न दूरे।
नरसिंह षेम किसोर लघु उधो जगनाथहिं।
एतेरह सिष अग्रके, सीभै मुनि गुरु के साथहिं।
जन राघो रुचि प्रीति पन जे मन सहज्त सुभाइ।
जन के कारज करत हैं अन बंछत हरि आय।। ३४७।।

१६१- शिवसिंह सरोज कवि संख्या ४०२।
१६२- मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दूस्तान कवि सं० ५१।
१६३- ना० प्र० प० वर्ष ६३ संख्या ३-४।

* तथा १०८ छप्पयों की संख्या सामूहिक नामवाले छप्पयों के कम होने पर भी नहीं पूर्ण होती।

का निर्धारण भ्रमात्मक है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[१६४] तथा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी [१६५] ने ३१६ छप्पयों में लगभग दो सौ भक्तों के चरित्रों के वर्णन का उल्लेख किया है । इस समय भक्तमाल का जो संस्करण उपलब्ध है उसमें छन्दों की संख्या २१४ है । इनमें १७ दोहे (छन्द संख्या १,२,३,४, २९, २०३, २१४) और १९७ छप्पय हैं। सब मिलाकर लगभग दो सौ भक्तों का वर्णन अवश्य है किन्तु शुक्ल जी ने छप्पयों की संख्या किस प्रति के आधार पर दी है, यह स्पष्ट नहीं ज्ञात होता ।

गार्सादितासी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में टिप्पणी सहित एक सूची देकर और भी भ्रान्ति पैदा कर दी है [१६५]।

"कवित्त छन्द के पद्यों में भक्तमाल की एक टीका के जिसका शीर्षक है, भक्ति रस बोधिनी, भक्ति के रस का ज्ञान कराने वाली, मेरे पास उसकी एक प्रति है जो मुझे दिल्ली के स्वर्गीय बूट्रोस (BOUTRAS) ने दी थी । इस हस्तलिखित पोथी में मूल तो वही है जो कृष्णदास[१६६] ने ग्रहण किया है, अर्थात् नाभादास और नारायणदास का प्रियादास की टीका के साथ दृष्टांत और भक्तमाल प्रसंग भी है ।" जिन हिन्दू संतों की जीवनी इन्होंने इस ग्रंथ में दी है उनकी संख्या इस प्रकार है ।

१२-	बालमीकि	घनाभगत	सदन कसाई
	परीसित्	माधोदास	लड्डू भक्त
	सुखदेव	रघुनाथ	गंजामाल
	अग्रदास	हरिव्यास	लाडूभक्त लशा
	शंकर	विट्ठलनाथ	नरशीभक्त
	बामदेव	गिरिधर	मीराबाई
	जयदेव	विट्ठलदास	पृथ्वीराज
	श्रीधर स्वामी	रूप सनातन	नरदेव
			कबीर
			पीपा
			हरीदास
			गोपलभट्ट

---

१६४ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १५६ ।
१६५- हिन्दी साहित्य और उसका उद्भव तथा विकास पृ० २४० ।
१६६- हिन्दुई साहित्य का इतिहास- अनुवादक डा० वार्ष्णेय पृ० १५७ ।
१६७- वास्तव में वैष्णवदास ने टिप्पणी की है, कृष्णदास ने नहीं ।

इस प्रकार इसमें केवल उन्तीस भक्तों की सूची है । गार्सांदतासी ने कृष्णदास को प्रियादास का पूर्ववर्ती टीकाकार माना है किन्तु अबतक कृष्णदास की किसी भी टीका का पता नहीं चला है । केवल वैष्णवदास ने टिप्पणी तथा प्रसंग लिखे हैं, वह भी प्रियादास के बाद । उनके "हिन्दू सन्तों" का भी तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि उक्त सूची में कबीर, सदन भी वर्तमान हैं ।

इधर कुछ प्रतियों की सूचना मिली है जिनसे छप्पय संख्या की घटा बढ़ी का पता चलता है । किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने एक निजी संग्रह की एक प्रति की सूचना दी है, जिसमें केवल १९७ छप्पय हैं[१६८]। बृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल के पृष्ठ ११ पर संवत् १७७६ की एक प्रतिलिपि का उल्लेख है जिसमें "१२ छप्पय नहीं मिलते जो प्रतिलिपि प्रतियों में छप्पय संख्या १८६ से १९३ तक और १९६ से १९९ तक प्राप्त होते हैं[१६९]।" इसके अतिरिक्त इस भक्तमाल में अनेकानेक उपलब्ध प्रतियों का उल्लेख "भक्तमाल साहित्य का विवरण" शीर्षक देकर किया गया है[१६९]। किन्तु इनसे भी १०८ छप्पयों वाले भक्तमाल की कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती ।

इस प्रकार यद्यपि १०८ छप्पयों की भक्तमाल का होना असंभव नहीं माना जा सकता किन्तु जब तक समस्त उपलब्ध पाण्डुलिपियोंके आधार पर भक्तमाल का कोई समुचित सम्पादन न हो जाए तबतक छप्पयों की संख्या के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय देना असंभव ही है ।

रचनाकाल—

खोज रिपोर्ट के अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १६५२ है[१७०]। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भिन्न भिन्न तिथियां दी है[१७१]। किन्तु किसी ने अपने मत के समर्थन का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है ।

१६८—हिन्दुस्तान - संवत् १९५८ गोस्वामी किशोरी लाल ।

~~१६९~~— दे० पृ० ९५३- ९५८ ।

१७०— खोज-रिपोर्ट —काशी नागरी प्रचारिणी सभा १९१७-१९ सं० ११७ ।

१७१— रेलिजस सेक्ट्स आफ़ हिन्दूज़-एच०एच० विल्सन, सेकण्ड एडीशन १९५८, पेज ३१-३२ ।

इधर वासुदेव जी गोस्वामी का "भक्तमाल का रचनाकाल" शीर्षक एक लेख साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुआ था[१७२]। उन्होंने भक्तमाल के एक छप्पय के सहारे उसके रचनाकाल की एक निश्चित-तिथि ज्ञात करने का प्रयत्न किया है। यह छप्पय वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी चतुर्भुजदास के परिचय में लिखा गया है। चतुर्भुजदास जी के "द्वादश यश" में संगृहीत तीसरे यश का नाम "भक्ति प्रताप यश" है। भक्ति प्रताप यश के प्रत्येक छन्द के अंतिम चरण में "भक्ति-प्रताप गाइहौं" आता है जो भक्तमाल के उक्त छप्पय से मेल खाता है। इस भक्ति प्रताप की रचना का अनुमान इसकी दूसरी रचना "धर्म विचार यश" के आधार पर सं० १६८६ मानकर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि भक्तमाल का रचनाकाल सं० १६८६ के पश्चात् ठहरता है, अर्थात् उक्त लेख के अनुसार भक्तमाल की रचना-तिथि सं० १६८६ के पूर्व नहीं मानी जा सकती।

इसी प्रकार जयपुर के स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने पर्याप्त गवेषण के पश्चात् भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १६४०-९० स्थिर किया है[१७४] किन्तु इसकी रचना उसके बाद की है क्योंकि भक्तमाल में कुछ ऐसे प्रमाणित भक्तों के चरित्रों का वर्णन है जो इस संवत् के सात आठ वर्ष पूर्व ही पैदा हुये थे। यद्यपि उसका पता लगाना कि इस भक्तमाल का छन्द किस तिथि से आरम्भ किया गया, बहुत ही कठिन है फिर भी अन्तःसाक्ष्य के आधार पर किस तिथि तक के भक्तों का इसमें वर्णन किया गया है- पता लगाया जा सकता है[१७५]। इसके

१७२- हिन्दुस्तान - २२ जून, १९५८।

१७३- गायौ भक्ति प्रताप सबहिं दासत्व हट्टायो।
राधाबल्लभ भजन अनन्यता बर्ग बट्टायो।
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अन्घ्रि रेनु बहै धारौ सिर भूषन।
सत्संग महा आनंद में प्रेम रहित भीजौ हियौ।
हरिवंश चरन वल-चतुरभुज गौड़ देस तीरथ कियौ।।

१७४- हितैषी, दिसम्बर-जनवरी सन् १९४१-४२ पृ० १४१।

१७५- भक्तमाल का रचनाकाल ज्ञात करने में श्री महावीर सिंह गहलौत के निबंध से बड़ी सहायता मिली है। ~~यद्यपि श्री गहलौत द्वारा निर्धारित तिथि लेखक को मान्य नहीं है।~~

पूर्व की किसी एक निश्चित तिथि पर विचार करें, भक्तमाल के विषय में यह मान लेना आवश्यक है कि उसमें वर्णित विशेषकर सामूहिक भक्तों का उल्लेख काल क्रम के अनुसार नहीं है और यह कि इस में नाभादास के पूर्व तथा उनके समसामयिक चरित्रों का भी वर्णन किया गया है।

भक्तमाल में गुसाई विट्ठलदास के बड़े पुत्र गिरिधर जी के विषय में निम्नलिखित छप्पय मिला है:-

"अर्थ धर्म काम मोक्ष भक्ति अनपायनि दाता ।
हस्तामल स्तुति ज्ञान सब ही सास्त्र को ज्ञाता ।।
परिचर्या ब्रजराज कुंवर के मन को कर्षे ।
दरसन परम पुनीत सभा तन अमृत वर्षै ।
विट्ठलेश नंदन सुभाव जग को ऊ नही ता समान ।
(श्री) विट्ठल जू के वंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान ।।१३१।।

इसी छप्पय के आधार पर राधाकृष्णदास ने यह निष्कर्ष निकाला है-

"भक्तमाल - मेरे अनुमान से यह ग्रंथ संवत् १६४२ के पीछे और संवत् १६८० के पहले बना क्योंकि संवत् १६४२ में विट्ठलनाथ गोसांई का परलोकवास हुआ। और उनके पुत्र गिरिधर जी गद्दी पर बैठे। इन गिरिधर जी के विद्यमान रहते "भक्तमाल" बनी। क्योंकि भक्तमाल में गिरिधर जी को लिखा है "श्री बल्लभजू के वंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान" । अतः संवत् १६४२ के पीछे भक्तमाल का बनना निश्चित है[१७६]।"

किन्तु महाबीर सिंह गहलौत ने अपनी खोज के अनुसार संवत् १६५१ में गोसाई बिट्ठलनाथ को तत्कालीन मुगल सम्राट द्वारा दिए गए दो फरमानों के आधार पर उनके गोलोकवास का समय संवत् १६५५ के लगभग सिद्ध किया है[१७७]। इसके पश्चात् गिरिधर जी अपने परिवार में कर्ता के रूप में आए और

१७६- ध्रुवनामावली-राधाकृष्णदास -पृ० ९० ।
१७७- अष्टछाप की निधन तिथियां "हिन्दुस्तानी (प्रयाग) भाग १६ अंक २ पृ० ११६ और "श्रीकृष्ण" मासिक पत्र, जंगमवाड़ी (काशी) भाग ५ अंक दो पृ० ३७ पर महाबीर सिंह गहलौत का लेख-"गुसांई जी का लीला प्रवेश संवत्"

संवत् १६६० में अपने सेव्यस्वरूप मथुरेश जी के मुख में समागए[१७८]। गिरिधर सम्बन्धी छप्पय संवत् १६६० तक बन चुका था । इस आधार पर उन्होंने माना है कि भक्तमाल की रचना संवत् १६५५-६० के आसपास आरम्भ हो चुकी थी[१७९]। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की भी यही धारणा है कि उक्त संवत् के आसपास ही भक्तमाल की रचना प्रारम्भ हुई होगी और इस संवत् की पुष्टि निम्नलिखित बहिःसाक्ष्यों के आधार पर भी होती है । भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने महाराज मानसिंह के संबंध में निम्नलिखित कवित्त दिया है-

"दरसन काज महराज मानसिंह आयो,
छायो बाग मांझ बैठे द्वार द्वारपाल हैं ।
झारिकै पतौवा गए बाहिर लै डारिवै को,
देखी भीर भार, रहे बैठि ये रसाल हैं ।
आए देखि नाभाजू ने साष्टांग करी ठाढ़े,
भरी जल आखें चले अंसुवनि जाल हैं ।
राजा मग चाहि, हारि आनिकै निहारि नैन,
जानी आप, जानी भए दासनि दयाल हैं ।१२३

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराजा मानसिंह और स्वामी अग्रदास का मिलन अवश्य हुआ था । इसकी पुष्टि सम्राट् अकबर द्वारा प्रचारित रामसीय की मुद्राएं है[१८०]। दो सोने की अर्द्ध मुहरें (ब्रिटिश म्युज़ियम और कैबिने, फ्रांस) में हैं । तीसरी चांदी की अट्ठन्नी भारत कला भवन काशी में है । पहली प्रकार की मोहरों में +प्रचलन-काल "५० इलाही, फ़रवरदीन" उत्कीर्ण है । दूसरी में "५० इलाही अमरदादा" लिखा हुआ है । उक्त मुद्राएं

१७८- सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ० ९७ ।

१७९- सम्मेलन पत्रिका वैषाख-आषाढ़ संवत् २००५ संख्या ७-९ भाग ३५ ।

१८०- रामकाव्य में रसिक सम्प्रदाय -भगवती प्रसाद सिंह (पृ० सं० १११) में दो प्रकार की मुद्राओं के चित्र दिए हुए हैं) ।

अकबर की मृत्यु के एक वर्ष पहले उनके द्वारा प्रवर्तित "इलाही" सन् के पचासवें वर्ष दो भिन्न भिन्न महीनों में हुई है[१८१]। यह प्रभाव अनुमानतः महाराजा मानसिंह का ही है, जो अग्रदास के शिष्य रह चुके थे[१८२]।

महाराजा मानसिंह आमेर नरेश थे। अग्रदास के दो प्रसिद्ध ग्रंथों "विश्व ब्रह्मज्ञान" और "रामावली" की सूचना मिली है जिनका निर्माण काल क्रमशः संवत् १६४७ और संवत् १६६० है। अतः इस तिथि के कुछ पश्चात् तक इनकी उपस्थिति मानी जा सकती है। महाराजा मानसिंह का शासन काल संवत् १६४६ से संवत् १६७५ तक माना जाता है[१८३]।

उपर्युक्त छप्पय को ध्यान से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि संवत् १६४६ के पश्चात् ही महाराजा मानसिंह गलता में अग्रदास जी का दर्शन करने आए होंगे। वे वहां महाराजा की पदवी से विभूषित होने के पश्चात् ही आए होंगे। क्योंकि गलता में भारी भीड़ भाड़, द्वारपाल आदि के साथ आने का उल्लेख है। उस समय नाभाजी अग्रदास जी के साथ थे। उपर्युक्त छन्द से यह भी स्पष्ट होता है कि नाभादास जी की ख्याति उस समय नहीं के बराबर थी। नहीं तो कदाचित् महाराजा इनसे भी उसी प्रकार की बातें करते अथवा दर्शन के इच्छुक होते। इतना अवश्य प्रतीत होता है कि गुरु के साथ प्रेमावस्था के आंसू नाभादास जी की भी आंखों से बहने लगे थे।

हो सकता है कि इसके कुछ ही पूर्व ध्यानावस्थित अग्रदास को जहाज द्वारा

१८१- रामकाव्य में रसिक सम्प्रदाय- भगवती प्रसाद सिंह, पृ० ११२

१८२- वही, पृ० ११।

१८३- (क) भक्तमाल वार्तिक रूपकला पृ० ३१४।

(ख) इब्राहम जार्ज ग्रियर्सन का प्रथम इतिहास, डा० किशोरीलाल गुप्त का सटिप्पण अनुवाद, पृ० ११८-१९।

(ग) डा० मोतीलाल मेनारिया-राजस्थान का पिंगल साहित्य- पृ० ९६

यात्रा करने वाले शिष्य की घटना को नाभादास ने बतलाया हो,[१८४] तथा नाभादास को उनके गुरु ने भक्तमाल की रचना की आज्ञा उसी समय के आसपास दी हो ।

आचरजु दयो नयो यहां लौं प्रवेश भयो ।
मन सुख छयो जान्यो संतन प्रभाव को ।
आज्ञा तब दयी यह भई तोपै साधु कृपा,
उनही को रूप गुण कहो हियभाव को ।
बोल्यो कर जोरि याको पावत् न और छोर,
गाऊं रामकृष्ण नहीं, पाऊं भक्ति भाव को ।
कही समुझाई वाइ हृदय आइ कहैं सबै,
जिनलैं दिखाई दई सागर में नाव को ।।११।।

सम्राट् अकबर की मृत्यु संवत् १६६२ में हुई थी[१८५]। इस संवत् और संवत् १६४६ के बीच में यह मिलन संभव हो सकता है ।

फलतः यदि प्रियादास के इस कथन पर विश्वास किया जाय कि मानसिंह अग्रदास के दर्शनों को आए थे और उस समय नाभादास जी अग्रदासजी की सेवा में रहते थे तो अग्रदास का सम्मानकाल संवत् १६४६ के पश्चात् और अकबर की मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व ही जान पड़ता है ।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि संवत् १६६० के कुछ वर्षों

१८४- मानसी स्वरूप में लगे हैं अग्रदास जू वै,
करत बयार नाभा मधुर संभार सौं ।
चढ्यो हो जहाज पैं जु शिष्य एक,
आपदा में कर्यो ध्यान खिच्यौ मन छूट्यौ रूप सार सौं ।
लोचन उघारि के निहारि, कह्यो बोल्यो कौन,
वही जौन पाल्यौ सीथ दै दै सुकुवार कौ ।।१०।।

१८५- कैम्ब्रिज़ हिस्ट्री आव् इण्डिया- भाग ३-४ क्रोनो लाजी ।

पूर्व ही कदाचित् भक्तमाल की रचना प्रारम्भ हुई होगी । यदि रचना संवत् १६४२ तक हो गई होती तो महाराजा मानसिंह तक इनकी प्रसिद्धि अवश्य हो गई होती और महाराजा की दृष्टि में नाभादास भी भक्तों की श्रेणी में आए होते । अब देखना यह है कि भक्तमाल की रचना पूरी कब हुई । इस ग्रंथ में जगतसिंह का वर्णन भी वर्तमान रूप में हुआ है[१८६]।

महाराजा जगतसिंह "बासू" जी के पुत्र थे । उनकी मृत्यु संवत् १७०२ में हुई थी[१८७]। अतएव इनके विषय का छन्द भक्तमाल में उक्त संवत् के पहले ही जोड़ा गया होगा । इसके पूर्व ही छप्पय १५५ में महाराजा यशवंतसिंह का एक पूरे छप्पय में वर्णन हुआ है, जो इसप्रकार है:-

जसवंत भक्ति जयमाल की रूड़ा राखी राठवड़
भक्तनि सौं अति भाव निरंतर अंतर नाहीं ।
कर जोरे इक पाय मुदित मन आज्ञा माहीं ।।
श्री वृंदावन वास कुंज-क्रीड़ा रुचि भावै ।
राधावल्लभ लाल नित्त प्रति ताहि लड़ावै ।।
परम धरम नवधा प्रधान सदन सांचि निधि प्रेम जड़ ।
"जसवंत"भक्ति "जयमाल" की रूड़ा राखी राठवड़।।१५५।।

इस छप्पय का सारांश यह है कि राठौर जयमल एक प्रसिद्ध भक्त हो गया है । उसकी भक्ति इन महाराजा जसवंतसिंह राठौर ने उसकी मृत्यु के बाद भी सुरक्षित रखी । महाराजा का स्वर्गवास संवत् १७३५ में होता है और इसका छप्पय में वर्तमान रूप में वर्णन है इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तमाल की रचना सम्वत् १७३५ के पूर्व ही हुई । इस संवत् के बाद की किसी घटना का उल्लेख भक्तमाल में नहीं है ।

१८६- मारवाड़ का इतिहास, प्रथमभाग, पृ० १२ पं० विश्वेश्वर नाथ ।
१८७- उदयपुर का इतिहास- पहला भाग, पृ० ३५९

विचारणीय यह है कि यह जयमल या जयमाल कौन था, जिसका सम्बन्ध यशवंतसिंह से था । ये दोनों मारवाड़ "मारवाड़" या "मेड़तिया" के थे तथा राठौर वंशीय थे । यह वही वीर जयमल है जिसने सम्राट् अकबर द्वारा चित्तौड़ पर चढ़ाई करने पर - जिस समय महाराजा उदयसिंह पहाड़ियों पर चले गए -किले की रक्षा का भार ग्रहण किया और अपने जीते जी उसे सफल न होने दिया । यह मीराबाई का चचेरा भाई था । रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद जी ने लिखा है कि उदा, बीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे ।[#]

महाराजा यशवन्तसिंह (प्रथम) राजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे । इनका जन्म संवत् १६८३ माघ वदी ४ (तारमव २६ दिसंबर १६२६) को बुरहानपुर दक्षिण में हुआ था । ये बड़े वीर, मनस्वी, प्रतापी, दूरदर्शी, नीतिनिपुण, विद्वान, कवि, दानी और प्रतापी थे । शाहजहां के राज्यकाल में इन्हें अत्यधिक सम्मान मिला था और सं० १७१४ में इनका मनसब सात हज़ारी कर दिया गया था। शाहजहां की बीमारी के समय शाहजहां का विद्रोह दबाने के लिए इन्हें ही भेजा गया था किन्तु इनकी भीतरी सहानुभूति शिवाजी के पक्ष में समझकर इन्हें वापस बुला लिया गया था । हिन्दू, हितैषी और धर्मरक्षक के रूप में इनकी ख्याति भी दूर दूर तक फैली हुई थी । इनकी इसी प्रवृत्ति के कारण और आरम्भ में अपने विरोधियों की सहायता करने के कारण औरंगज़ेब इनसे बहुत चिढ़ता था । तवारीख़ मुहम्मदशाही में लिखा है कि इनकी मृत्यु का समाचार सुनकर औरंगज़ेब ने कहा था "दर्वाज़ए कुफ़्र शिकस्त" अर्थात् कुफ़्र या धर्मविरोध का दरवाज़ा टूट गया । बादशाह ने सं० १७१६ के एक अपने पत्र में लिखा था कि जसवंत सिंह काफ़िर है जो मस्जिदें तोड़कर उनके स्थान पर मंदिर बनवा देता है[१८८]। हिन्दू धर्म रक्षक होने की इनकी ख्याति इतनी प्रबल थी कि प्राणनाथ ने औरंगज़ेब के विरोध में आयोजित अपने धर्मयुद्ध में सहयोग देने के लिए जसवंतसिंह के पास सं० १७३१ में अपने शिष्य द्वारा पत्र भेजा था[१८९]।

#- उदयपुर का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३५६ ।
१८८- सर यदुनाथ सरकार, औरंगज़ेब भाग ३, पृ० ३२५।
१८९- माता बदल जायसवाल-हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४ अंक ११ पृ० ३० ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जसवंतसिंह का नाम महान् योद्धा के रूप में तो प्रसिद्ध था ही, किन्तु सं० १७१५ के आसपास तक धर्मरक्षक होने के नाते एक भक्त के रूप में उनकी प्रसिद्धि हो चली थी। भक्तमाल के उक्त छप्पय से यहां तक सूचित होता है कि वृन्दावन के मंदिरों में भक्तिभाव से एक पांव पर खड़े होकर आराधना किया करते थे। मथुरा में सिसोदिया सर्वदेव की कन्या से विवाह होने के पश्चात् मथुरा-बृन्दावन से इनका संपर्क बढ़ने की सम्भावना की पुष्टि मिलती है।

इसी संवत् के आसपास संवत्(१७१४-१५) में राठौर नरेश जसवन्तसिंह के सम्बन्ध में छप्पय लिखा गया होगा। इस सम्वत् के पश्चात् की किसी घटना का उल्लेख भक्तमाल में नहीं मिलता। फलतः हम कह सकते हैं कि भक्तमाल की रचना संवत् १६५५-६० के लगभग आरम्भ होकर संवत् १७१५ तक समाप्त हो चुकी थी।

महाबीर सिंह गहलौत ने इसी जसवंतसिंह के आधार पर भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १७१५ माना है। इनका कहना है कि संवत् १७१६ से महाराज औरंगज़ेब से द्वेष करने से, मुगलदरबार से दूर रहे क्योंकि संवत् १७१५ में सम्राट् की आज्ञा से औरंगज़ेब के विरुद्ध लड़े तथा संवत् १७१६ में स्वयं औरंगज़ेब ने उनके विरुद्ध जोधपुर पर आक्रमण के लिए सेना भेजी। फलतः इसी समय ये हिन्दू हितैषी धर्मरक्षक के रूप में विख्यात हुए होंगे और संवत् १७१५ में इनके नाम का छप्पय रचा गया होगा[१९०]। यहां पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि नाभादास के भक्तमाल के कुछ छप्पयों के प्रक्षिप्त होने का संदेह किया जाता है किन्तु जसवन्तसिंह सम्बन्धी छप्पय १५५ के सम्बन्ध में अभी तक इस प्रकार की कोई शंका नहीं उठाई गई है।

संवत् १७१५ तक भक्तमाल की रचना समाप्त होजाने की पुष्टि में कुछ अन्य प्रमाण विचारणीय हैं जो निम्नलिखित हैं:-

(क) गार्सादितासी[१९०] तथा ग्रियर्सन[१९१] ने यह माना है कि इस भक्तमाल

१९०- हिन्दुई साहित्य का इतिहास-अनुवादक डा० वार्ष्णेय पृ० १२७।

१९१- मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान सं० ५१।

का संशोधन तथा परिवर्तन शाहजहां के शासन काल में समाप्त हो चुका था और यह सर्वमान्य है कि शाहजहां का शासनकाल संवत् १७१५ में समाप्त हुआ था ।

(ख) यह भक्तमाल सं० १७१५ तक पूर्ण हुआ इसका सबसे प्रबल प्रमाण राघवदास का भक्तमाल है । इस भक्तमाल की रचना सं० १७१७ तक समाप्त हो जाती है और इससे पूर्व नाभादास का भक्तमाल बन चुका था, इसका उन्होंने स्पष्ट निर्देश किया है ।

इन्हीं राघवदास ने अपने भक्तमाल में यशवंतसिंह का भी वर्णन इस प्रकार से किया है:-

जैमल केरी भक्ति सर जसवंत दिढ़ बेला भयो ।
संतन सौं संभाय ह्रिदै दुबध्या नहिं कोई ।
जोरे पानि पयाद भवन आयस मैं होई ।।
स्याम प्रिय सौं प्रीति अहोनिस परसन करई ।।
चाहै कुंज बिहार चित्त वृन्दावन धरई ।
भजन भवन नव प्रमान राठोर नृपति यह पन लयो
जैमल केरी भक्ति सर जसवंत दिढ़ बेला भयो ।।१६८

अतएव यह भी भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि जसवंतसिंह जी सं० १७१७ तक पूर्णरूपेण भक्त और उनके संरक्षक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे ।

भक्तनामावली में एक दोहा नारायणदास (नाभादास) के विषय में आया है[१९२], जिसके आधार पर राधाकृष्णदास ने यह अनुमान लगाया है कि भक्तमाल की रचना ध्रुवदास जी के रचनाकाल (सं०१६८१ से सं० १६९८ तक) से पूर्व हो चुकी थी । नामावली का रचनाकाल सं० १७९५ के बाद का सिद्ध होता है । अतएव भक्तनामावली के आधार पर भक्तमाल के रचनाकाल पर इतना ही

१९२- "भक्तनरायन" भक्त सब धरे हिये दृढ़प्रीति ।
बरने आछी भांति सो जैसी जाकी रीति ।।१०८।।
-भक्तनामावली-राधाकृष्णदास द्वारा सम्पादित।

प्रकाश पड़ता है कि १७३५ के पूर्व उसकी रचना हो चुकी थी ।

वर्णन - क्रम

रामानुज के पश्चात् श्री सम्प्रदाय के कुछ भक्तों का वर्णन करके ३५वें छप्पय में श्री रामानन्द जी का वर्णन किया गया है । उसके पश्चात् उनके प्रमुख शिष्यों– अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द और सुरसुरानन्द आदि का वर्णन छप्पय ३६ में होता है । इस प्रकार छप्पय ३५ से छप्पय ४१ तक जहां पर स्वामी अग्रदास का वर्णन होता है, उनकी निजी गुरु परम्परा का वर्णन है । पुनः छप्पय ४२ में शंकराचार्य का वर्णन मिलता है । छप्पय १९९ तक भक्तों का स्फुट अथवा सामूहिक रूपमें वर्णन है । फिर छप्पय २०० से २१४ तक उपसंहार है ।

भक्तमाल में भक्तों का वर्णन दो शैलियों में मिलता है । अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली भक्तों का वर्णन प्रायः पूरे छप्पय में किया गया है ≠ जबकि गौण भक्तों का एक ही छप्पय में मिलता है । डा० किशोरीलाल गुप्त का विचार है कि सामूहिक भक्तों वाले छप्पय नाभादास के होने चाहिए, तथा एक एक भक्त वाले छप्पय नारायणदास के । वस्तुतः नाभादास ने भक्तों की अनेक श्रेणियां निर्धारित की हैं । उदाहरण के लिए सूरजदास, कुंभनदास, खेम आदि का वर्णन उन्होंने कामधेनु कोटि के अन्तर्गत किया है और उनकी कसौटी परोपकार निर्धारित की है । इसी प्रकार चतुरदास, सोम, भीम आदि को उन्होंने चिंतामणि कोटि में रखा है ≠ और उन्हें "अभिलाष अधिक पूरन करन" बताया है ।

छन्द रचना-क्रम

पीछे यह बताया जा चुका है कि भक्तमाल में २१४ छन्दों तक लगभग २०० भक्तों का वर्णन है । यह भी संकेत किया गया है कि भक्तमाल में जो कलियुग वर्णन है वह किसी विशेष क्रम को लेकर नहीं चलता है । इस व्यतिक्रम के लिए वे क्षमा मांगते हुए कहते हैं–

श्री मूर्ति सब वैष्णव, लघु दीरघ गुनन अगाध ।
आगे पीछे वरन तें, जिनि मानौ अपराध ।।२०५।।

जैसे जैसे प्रसंग आते गये विभिन्न छप्पयों में उनका वर्णन कर माला रूप में उन्हें गूंथते गये । इस क्रिया का स्पष्ट संकेत भक्तमाल में है ।

रुचिर शील घन नील लील, रुचि सुमति सरित पति ।
विविध भक्ति अनुरक्त व्यक्त, बहु चरित चतुर अति ।।
लघु दीरघ सुर शुद्ध, बचन अविरुद्ध उचारन ।
विस्ववास, विश्वास दास परिचय विस्तारन ।।
जानि जगत हित सब गुननि सुसम "नरायनदास दिव"।।
भक्त रत्न माला सुघन, गोविन्द कंठ विकास किय ।।

भक्तमाल पहले गोविन्द को योग्य पात्र समझकर कंठाग्र कराई गई, अर्थात् इन्हें नारायणदास(नाभादास) ने पढ़ाया । उसके पश्चात यह लोक प्रियता के कारण लिपिबद्ध हुई होगी ।

अतएव भक्तों के चरित्रों के विषय में हेर-फेर होना असंभव नहीं है । किसी-किसी भक्त के चरित्र का वर्णन दो-बार मिलता है । घटनाओं के पूर्वापर क्रम का कोई विचार नहीं रखा गया है । उदाहरणार्थ शंकराचार्य का वर्णन बयालिसवें छप्पय में रामानुजाचार्य के बाद मिलता है । शंकराचार्य जबकि पूर्ववर्ती हैं ।उसी प्रकार छप्पय १५५ में जसवन्तसिंह राठौर का नाम आया है । जिनका जन्म सं० १६८३ में हुआ था, जबकि आगे के छप्पयों में वर्णित बहुत से भक्त इस संवत् तक स्वर्गवासी हो चुके थे ।

नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में पूर्ववर्ती भक्तों के साथ अनेक भक्तों का वर्णन किया है, जो वर्तमान कालिक कुछ प्रयोगों से स्पष्ट है । जैसे बल्लभजी के वंश में "सुरतरु गिरिधर भ्राजमान"[१९३]। "उद्धव रघुनाथी, चतुरोनगन कुंज ओक जे बसत अब[१९४]।" "गोस्वामी तुलसीदास[१९५]" यशवन्तसिंह राठौर[१९६] । और जगत सिंह[१९७]आदि अनेक समकालीन भक्तों का इसमें वर्णन है, इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसकी रचना निरन्तर कई वर्षों तक शनैःशनैः होती रही और इसीलिए किसी क्रम विशेष का अनुसरण नहीं है ।

भक्तमाल के अलौकिक तथा अतिरंजनापूर्ण वर्णन

भक्तमाल के पूर्वार्द्ध में प्रायः पौराणिक भक्तों का चित्रण मिलता है जिसमें इतिहास का नहीं प्रत्युत कल्पना का आधार है। इनका वर्णन करते हुए कवि ने अपना दैन्य विशेष रूप से दिखलाया है। वैसे तो उसकी यह प्रवृत्ति कलियुग के भक्तों के सम्बन्ध में भी है।

कलियुग के भक्तों के चरित्रों में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के भक्तों का समान दृष्टिकोण से वर्णन किया गया है। ऐसे चरित्रों में केवल उनकी भक्ति महिमा और भक्ति के प्रसाद से उनकी अलौकिक शक्तियों और चमत्कारों पर प्रकाश डाला गया है।

उदाहरणतया भुवन की काष्ठ की तलवार का लोहे की हो जाना, देवा पण्डा के हित के लिए शरीर में ठाकुर जी द्वारा सफेद केशधारण किया जाना, कामध्वज की दाहक्रिया हनुमान द्वारा लकड़ी लाकर किया जाना, जैमल के शत्रुराजा से घोड़े पर सवारी कर जैमल की ओर से लड़ना, कामध्वज की झूठी बात सच करने के लिए चौगुनी भैंस भेजना तथा श्रीधर की रक्षा के लिए चारों भुजाओं में धनुषबाण लिए सन्नद्ध होना, आदि-

> दारुमयी तरवार सारमय रची "भुवन" की ।
> देवा हित सित केश प्रतिज्ञा राखी जनकी ।।
> कमधुज के कपि चारु चितापर काष्ठ जु ल्याये ।
> जैमल के जुधि मांहि अश्व चढ़ि आपुन धाये ।।
> घृत सहित भैंस चौगुनी "श्रीधर"संग सायक धरन ।
> चारी युग चतुर्भुज सदा, भक्त गिरा सांची करन ।।[१९८]

इस प्रकार बहुत कम चरित्र ऐसे होंगे जो इस बीमारी से अछूते हों। इस चमत्कार के कारणों पर प्रकाश डालते हुए डा० द्विवेदी ने भक्तमाल के विषय में लिखा है-

"इस पुस्तक में ही भक्तों के नाम के साथ सिद्धियों और चमत्कारों

१९८- भक्तमाल, रूपकला, छप्पय छन्द ५२ ।

का बीज बपन हुआ है। सिद्धियों की कथा प्रत्येक नाथ पंथी सिद्धि के साथ जुड़ी हुई थी[१९९]।" पीछे इसका संकेत किया जा चुका है कि रामानंद के प्रिय शिष्य कृष्णदास पयहारी को सिद्धि के प्रताप से ही नाथपंथियों पर विजय मिली तथा गलता की गद्दी पर इनका आधिपत्य हुआ। पयहारी जी के शिष्य अग्रदास तथा उनके शिष्य नाभादास जी थे। नाभादास जी को वैष्णवों की महिमा बतलाने के लिए इन सिद्धियों की कहानी का अवलम्बन लेना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो गया होगा। जिस प्रकार नाथपंथियों ने दिखाना चाहा था कि अपने तपोबल से वे हवा में उड़ सकते हैं, धूल के फूल बना सकते हैं, गधे से बाघ की सृष्टि कर सकते हैं तथा छाया पकड़ कर हिंडोला भूल सकते हैं उसी प्रकार नाभादास का भक्त भी काठ की तलवार को लोहा बना सकता है, देवा पण्डा के लिए प्रभु(मूर्ति) सफेद बाल धारण कर सकते हैं,आदि। नाभादास जी ने भक्तमाल की रचना कर इस उद्देश्य की पूर्ति भी की।

वर्णन शैली की विशेषता-

नाभादास के भक्तमाल में ऐसी कुछ असाधारण विशेषताएं हैं, जिनके कारण वह इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है। उनके पूर्व भी दो एक भक्तमाल जैसे (चयन जी तथा जगा जी के) मिलते हैं किन्तु वे नाम मात्र के ही भक्तमाल हैं।[Ø] वस्तुतः उनमें भक्तों की तालिका मात्र है। नाभादास जी ने जिन जिन भक्तों को चुन चुनकर अपनी माला बनाई है उनमें रूप रंग आदि की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं और फिर उन्होंने उनका ऐसी सूत्र शैली में विशद मूल्यांकन किया है कि उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। चारित्रिक विशेषताओं के वे कितने बड़े पारखी थे और उनकी पैनी दृष्टि भक्तों की सर्वाधिक विशेषताओं को ढूंढ़ निकालने में कहां तक सफल हुई है, यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा :-

---

१९९- हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास पृ० २४० ।
Ø - 'रसिक अनन्यमाल' में भी केवल राधावल्लभी भक्तों का वर्णन है।

नाभादास जी के गुरुभाई कील्हदास जी थे । रामानंद की शिष्य परम्परा में होने के प्रभाव से कील्हदास की प्रवृत्ति रामभक्ति के साथ योगसाधना की ओर बनी हुई थी । इसमें रामानंद की वैरागी परम्परा की एक शाखा में योगसाधन का भी समावेश हुआ, जो तपसी शाखा के नामसे प्रसिद्ध है[२००], इस पृष्ठभूमि में कील्हदास का छप्पय दृष्टव्य है-

"गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं काल वश,
राम चरण चिंतवनि, रहति निशिदिन लौ लागी ।।
सर्व भूत शिर निमित, सूर भजनानंद भागी ।।
सांख्य योग मत सुदृढ़ कियौ अनुभव हस्तामल ।
ब्रह्म रंध्र करि गौन भये हरि तन करनी बल ।।
सुमेरदेव सुत जग विदित, भू विस्तार्यो बिमल यश ।
गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं काल वश ।।४०।।"[२०१]

जिस प्रकार काल का कवच भेदकर गांगेय भीष्मपितामह अमर हो गये उसी प्रकार कील्ह ने काल को अपने वश में कर लिया । उन्होंने योगसाधना को अपने बलपर हस्तामलकवत सिद्ध किया । इन शब्दों द्वारा नाभादास जी ने समास शैली में वह सब कुछ कह दिया जो कील्ह के सम्बन्ध में कहा जा सकता था । उनके शिष्य द्वारकादास के विषय में भी भक्तमालकार ने लिखा है कि उन्होंने योग का अभ्यास किया था, ज्ञान से माया का अन्त किया पर योग और ज्ञान को स्वतंत्र नहीं होने दिया । उनपर भक्ति की छाया सर्वदा रहती थी । रामचरण का अनुराग ही उनका जीवन था ।

"अष्टांग जोग तन त्यागियौ द्वारिकादास जाने दुनी ।
सरिता कूकस गांव सलिल में ध्यान धर्यो मन ।
रामचरण अनुराग सुदृढ़ जाके सांचौ पन ।।

२००- हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२१ ।
२०१- भक्तमाल रूपकला, छ०सं० ४० ।

सुत कलत्र धनधाम ताहिं सों सदा उदासी ।

कठिन मोह की फंद तरकि तोरी कुल फांसी ।।

कीन्ह कृपा बलभजन के ज्ञान खड्ग माया हनी[२०२] ।।

कबीर का व्यक्तित्व साहित्यकारों के उहापोह के लिए अब भी अनबूझ पहेली बना हुआ है । नाभादास जी ने जो कुछ कबीर के सम्बन्ध में लिखा है उसे देखकर हठात् यह मानना पड़ता है कि उन्होंने उनके व्यक्तित्व का मंथनकर एक निष्पक्ष आलोचक की भांति उन सारी विशेषताओं को यथातथ्य रूप में गिनाया है जिनके कारण कबीर ल लोक की दृष्टि में उच्च हुए । कबीर ने लोकवेद या वर्णाश्रम और षडदर्शन आदि किसी की मर्यादा का बंधन नहीं माना, इसे नाभादास जी ने उनकी सर्वप्रथम विशेषता बताई । उन्होंने धर्म का सच्चा और आडम्बर हीन रूप परखा, यह नाभा की दृष्टि में उनकी दूसरी विशेषता है । उन्होंने रमैनी, शब्द और साखियों की रचनाकर हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए हित की बात कही । उन्होंने कभी मुंहदेखी बात नहीं कही । बाद में कबीर के विषय में इतना सब कुछ लिखे जाने पर भी नाभा के इस छप्पय (वही छप्पय ६०) का मूल्य अब भी शाश्वत रूप में बना हुआ है-

कबीर कानि राखी नहीं बरनाश्रम षट दरसनी ।

भक्ति विमुख जो धर्म सोइ अधरम करि गायो ।

जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।।

हिंदू तुरक प्रमान रमैन सबदी साखी ।

पच्छपात नहिं बचन सबहि के हित की भाखी ।।

आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुखदेखी नाहिन भनी ।

इसी प्रकार "बेलि कृसन रुकमिनी री" के रचयिता पृथ्वीराज के संबंध में उनका एक एक शब्द कितना महत्वपूर्ण है इसका सही मूल्यांकन वही कर सकता है जिसने उनकी रचनाओं का आस्वाद कर उनके सरस व्यक्तित्व का कुछ परिचय प्राप्त किया होगा । छप्पय में शब्दों का स्थापन-कौशल और उनका शिल्प-सौंदर्य दृष्टव्य है-

नरदेव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कबिराज हुव ।
सवैया, गीत, श्लोक, बेलि, दोहा, गुन, नवरस ।।
पिंगल, काव्य प्रवीन बिबिध बिधि गायो हरि जस ।
पर दुख बिदुख श्लाघ्य, बचन, रचना जु बिचारै ।
अर्थ वित्त निरमोल सबै, सारंग उर धारै ।

२०२- भक्तमाल रूपकला छन्द सं० १८२ ।

रुक्मनी लता बरनन अनूप, बागीश बदन कल्यान हुव ।
नरदेव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव[२०३]।।"

इस छप्पय पर लट्टू होकर आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने लिखा है कि "बिहारी के दोहों की तो बड़ी प्रशंसा की जाती है, पर नाभादास के परिचय पर किसी का ध्यान नहीं जाता है । यदि हमारी आंखें खुली होतीं और हम उनसे देखना भी जानते होते तो आज नाभादास की अवहेलना न होती और हमारा आलोच्य साहित्य भी कल का न समझा जाता । बिहारी के दोहों की भांति नाभादास के छप्पयों की धूम होती और बहुत कुछ समीक्षा का मार्ग सुधर गया होता[२०४]।"

भक्तमालकार चरित्र-चित्रण के विषय में पक्षपाती नहीं था । इस बात की पुष्टि के लिए केवल दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा । शंकराचार्य का वर्णन भक्तमाल में इसप्रकार है:-

कलियुग धर्म पालक प्रकट आचरज संकट सुभट् ।
उत सृंखल अग्यान जिते अब ईश्वर बादी ।
बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहिं आदी ।।
बिमुखन को दियो दंड ऐंचि सन्मारग आने ।
सद विचार की सींव विश्व कीरतहिं बखानै ।।
ईश्वरांश अवतार महि मरजादा माड़ी अघट ।
कलियुग धर्म पालक प्रकट आजरज शंकट सुभट ।।४२॥

शंकराचार्य जी इस कलियुग में धर्म के रक्षक बने । धार्मिक क्षेत्र में विधर्मियों से टक्कर लेने के कारण सच्चे धार्मिक योद्धा बने । वे सदाचार की सीमा थे और ईश्वर के अवतार के रूप में इस पृथ्वी पर पैदा हुए । बौद्ध,जैन आदि

२०३- भक्तमाल भक्ति सुधा, छन्द सं० १४० ।

२०४- चन्द्रबली पाण्डेय- विचार-विमर्श, पृ० १३३

जितने अनीश्वर वादी थे उन्हें शंकराचार्य रास्ते पर ले आये । इस प्रकार "कलि-जुग धर्मपालक" और अनीश्वर वादियों को "ऐंच" कर सन्मार्ग पर लगाने वाला कहकर उन्होंने शंकराचार्य की महानता का अत्यन्त उपयुक्त वर्णन किया है ।

एक और छप्पय राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरिबंश जी के विषय का देखने योग्य है:-

श्री हरिवंश गुसांईं भजन की, रीति सकृति कोऊ जानहिं ।।
राधा चरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी ।
कुंज केलि दम्पती, तहां की करत खवासी ।।
सर्बसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी ।
बिधि निषेध नहिं दास, अननि उतकट ब्रुतधारी ।।
व्यास सुवन पथ अनुसरे, सोई भले पहिचानिहैं ।
श्री हरिवंश गुसांईं भजन की, रीति सकृति कोऊ जानिहैं ।।९०।।

"सकृति कोऊ जानिहैं "शब्द बड़ा गूढ़ है । हित हरिवंश के भजन की रीति बिरला ही जान सकता है । इस छप्पय में "राधाचरण प्रधान" शब्द सम्प्रदाय की इष्ट देवी तथा आराध्या का द्योतक है । नित्य विहार (निकुंज-लीला) में सखी भाव से आस्था रखना भी इस सम्प्रदाय की विशेषता है । विधि निषेध से ऊपर रहकर हरिवंश जी ने अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया था । इस पद में हरिबंश जी के चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन जिस अर्थपूर्ण शैली में हुआ है उस पर विचार करते हुए स्नातक जी ने लिखा है "यह छप्पय इतना गूढ़ा त्रिपाय व्यजंक है कि उसके प्रत्येक पद को ग्रहण करके भाष्य और टीका लिखी जा सकती है ।" उन्होंने नाभादास के इस छप्पय पर श्री भोरी अली जी के शिष्य सुन्दरदास द्वारा रचित चौदह कवित्तों का उल्लेख किया है जो उक्त छप्पय के एक-एक पद की व्याख्या के रूप में हैं । उनके द्वारा उद्धृत दो कवित्तों में से एक यहां भी उद्धृत किया जा रहा है[१०५]

१०५- राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य. पृ० ५८ ।

राधाचरण प्रधान-

श्री राधा पदार-विंद हृदे में बिराजमान
याही तौ प्रसिद्ध और दूजो नांहिं आंकौ है ।
आदर मौन धर्म और हिये रुचै श्याम गौर
प्रेम भक्ति ताकै पर्यौ रंच कौन भांकौ है ।
और तेज आगे जबै पावै अहलाद श्याम
उज्ज्वल उपासना में कैसे लगै टांकौ है ।
वेद और पुरानि की सिखानि हेजु धर्म अहा
कहा सोई उर धार्यो जु अनन्य वृत बांकौ है ।

"भक्तमाल में रसिक साधना"

अग्रदास जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी भाषा में "ध्यान मंजरी" की रचनाकर रसिक साधना का एक व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया[२०६]। इस विवर्धमान नवरस बेलि को नाभादास ने इस प्रकार पहचाना-

श्री अग्रदेव गुरु कृपा तें, बाढ़ी नवरस बेलि ।
चढ़ी लड़ैती लाल छबि, फूली नवल सु केलि [२०७]।।

अपने अष्टयाम या (अष्टकाल) चरित्र में नाभादास ने स्वयं लिखा है-

हा रघुनंदन चंदन, शीतल अंग ।
बिकल बाल विरहनियां, बिन प्रिय संग ।।
सखि मन मोहन सोहन, जोहन जोग ।
छोहन जियत जिमरवा, भामिनि भोग ।।
कलित अंग सुख आभहिं, नाभहिं देहु ।
प्रीतम लाल पियरवा, यह जस लेहु [२०८]।।

२०६- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय-डा० भगवती प्रसाद सिंह पृ० ८८ ।
२०७- खोज रिपोर्ट १९०९-११, भाग २, पृ० १०६७ ।
२०८- वही पृ० वही ।

इसी प्रकार रामचरित सम्बन्धी पदों में प्रियादास जी ने नाभादास जी के इस रूप को पहचानने के बाद ही कदाचित् "नाभा अली" के नाम से पुकारा है:-

पंच रस सोई पंच रंग फूल थाके नीके,
पीके पहिराइबे को रचिकै बनाई है ।
बैजयंती दाम भाववती, अलि नाभा नाम ।
लाई अभिराम श्याम मति ललचाई है ।।
धारी उर प्यारी कहूं करत न न्यारी ।
अहो देखो गति न्यारी ढरि पायन को आई है ।।
छबि भक्ति भार ताते नमित श्रृंगार होत ।
होते बस लखै जोई याते जानि पाई है ।।[२०९]

भक्तमाल के अनुसार रामभक्त मुरारिदास रासलीला के ढंग पर रामलीला किया करते थे । ये किसी बिलौंदा ग्राम के वासी थे । पावों में घुंघरू बांध कर राम का गुणगान करते हुए उन्होंने शरीर छोड़ दिया-

कृष्ण बिरह कुंती शरीर, त्यों मुरारि तन त्यागियौ ।
बिदित बिलौंदा गांव देस मुरधर सब जानै ।
महा महोच्छौ मध्य संत परिषद् परवानै ।।
पगनि घुंघरू बांधि रास कौ चरित दिखायौ ।
देसी सारंगपानि, हंस ता संग पठायौ ।।
उपमा और न जगत मै पृथा बिना नाहिन बियौ ।
कृष्ण बिरह कुंती सरीर त्यौं मुरारि तन त्यागियौ ।।[२१०]

२०९- भक्तमाल प्रियादास टीका, कवित्त ५ ।

२१०- भक्तमाल सटीक, छप्पय १२८ ।

मानदास "उज्जवल -रस" की लीलाओं के गायक और गोप्य लीला के उद्घाटक बतलाए गए हैं:-

गोप्य केलि रघुनाथ की मानदास प्रकट करी ।
करुना बीर श्रृंगार आदि उज्ज्वल रस गायो ।।
पर उपकारक धीर, कबित, कबि जन मन भायो ।
कौशलेस पद कमल अननि दासत्व ब्रत लीनो ।।
जानकि जीवन सुजस रहत निशिदिन रस भीनो ।
रामायन नाटक की रहसि, उक्त जुक्ति भाषा धरी ।
गोप्य केलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी[२१२]।।

"अगरचे जुमला नौ रस अपने ग्रंथ में मुफस्सल ब्यान किये लेकिन भगवत का श्रृंगार और माधुर्य रस ऐसा बयान किया कि जिसके पढ़ने सुनने से ज़रूर भगवत स्वरूप में तबियत लग जाती हैं और जो कवायद श्रृंगार के श्रीकृष्ण चरित्र में उपदेशकों ने बयान किए हैं, उसी तरह राम चरित में मानदास ने बयान किए हैं[२१३]।"

इसी प्रकार रामभक्त खेमाल रतन राठौर और प्रयागदास आदि का पृथक्-पृथक् छप्पय में वर्णन है । ये राम भक्त ~~तथा रासमयी के गायक~~ थे तथा रासमयी क्रीड़ाओं से भक्तों का मनोरंजन करने वाले थे । राम रास का आयोजन करने वाले तथा उसमें स्वयं भाग लेने वाले थे । अतः इन भक्तों की गणना अवश्य ही रसिक सम्प्रदाय में की जायगी ।

ऐतिहासिकता-

जहां तक इतिहास का सम्बन्ध है, वह इस ग्रंथ में नगण्य है । भक्तमाल में लगभग दो सौ चरित्रों का वर्णन है । किन्तु उसमें पूर्ण वृत्त का अभाव है । किसी भी चरित्र के विषय में हम पूर्ण परिचित नहीं हो सकते । वह कब पैदा

२१२- भक्तमाल, छप्पय १३० ।

२१३- तुलसीराम भक्तमाल प्रदीपन, पृ० ३३५।

हुआ ? कब तक रहा ? उसके माता-पिता का क्या नाम था, आदि का कुछ भी ब्यौरा नहीं मिलता । उन चरित्रों के विषय में एक या दो घटनाओं का वर्णन कर कवि आगे बढ़ जाता है ।

भक्तमालकार का मुख्य ध्येय भक्तों की जीवनी देना नहीं बल्कि उनके भक्ति परक व्यक्तित्व की झांकी उपस्थित करना है । भक्तमाल के चरित्र साधारण नर चरित्र न होकर भक्तों के चरित्र हैं, जो संसार में रहते हुए भी संसार से दूर के होते हैं । फिर भी अधिक तर चरित्र ऐतिहासिक हैं । किन्तु उसपर अलौकिकता और अतिरंजना की ऐसी कलई लगी है कि उनका वास्तविक रूप बहुत कुछ सामने से ओझल हो गया है ।

हिन्दुओं द्वारा लिखे गए जीवन चरित्रों में तिथि आदि के ब्यौरे में कोई महत्व नहीं दिया गया है । उसका कारण कदाचित् यह है कि हिन्दुओं ने संसार को क्षण-भंगुर समझकर साधारण घटनाओं को तुच्छ समझा । "मुसलमानों के पूर्व हिन्दुओं ने किसी इतिहास की रचना नहीं की थी[२१४]। संस्कृत में जो राजनैतिक जीवन चरित्र सुरक्षित हैं *, वे सब अलंकार तथा लक्षणा-व्यजंना के कौतूहल तथा घुमाव-फिराव से दबे हुए हैं । उनमें भी तिथि नहीं मिलती । उस समय जबकि हिन्दुओं ने फ़ारसी सीखी और फ़ारसी आदर्शों का अनुकरण कर उस भाषा में अपने समय का इतिहास तथा संस्मरण लिखा *, उनके ग्रंथों में तिथियों का दुखद अभाव था[२१५]। अतः नाभादास ने भी भक्तों के जीवन चरित्र लिखते समय तिथियों का उल्लेख न किया तो उसके लिए उन्हें व्यक्तिगत रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता है ।

भक्तमाल का मूल्यांकन-

जैसाकि पीछे संकेत किया गया है कि हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी के

२१४- सर यदुनाथ सरकार -मुग़ल शासन पद्धति (हिन्दी संस्करण) पृ० २०७ ।
२१५- वही, पृ० २०७ ।

राम चरित के पश्चात् लोकप्रियता में इसी का नाम लिया जाता है । यह इतिहास और साहित्य दोनों दृष्टियों से परम उपयोगी है । भक्तिकालीन काव्य सम्बन्धी कोई भी आलोचनात्मक पुस्तक ऐसी न मिलेगी जिसमें भक्तमाल के उद्धरण न दिए गए हों । इसकी उपयोगिता और प्रसिद्धि इसकी टीकाओं[२१६] तथा भक्तमाल के उद्धरणों एवं उसकी लम्बी परम्परा से आंका जा सकता है । कई भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है । नाभादास के बाद भक्तमाल की लम्बी परम्परा से जहां एक ओर उनकी रचनाशैली का महत्व प्रतिपादित होता है वहीं दूसरी ओर अन्य भक्तमालों की तुलना में इसकी श्रेष्ठता भी सिद्ध होती है । ठीक उसी प्रकार उनके अनुकरण में लोग असफल हुए हैं जैसे रामकाव्य में तुलसी का अनुकरण करने वाले उनके परवर्ती कवि थे । भक्तमाल हिन्दी के भक्त-कवियों का प्रथम समीक्षात्मक ग्रंथ कहा जा सकता है । इसमें कोई संदेह नहीं कि वह समीक्षा केवल प्रशंसात्मक कोटि की है । उस दृष्टि से भी नाभादास के सफल पारखी होने का महत्व अक्षुण्ण है । आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने लिखा है "नाभादास का परिचय कोरा परिचय नहीं है । उसमें कवित्व भी भरपूर है । भक्तमाल को पढ़ते समय प्रतीत होता है कि कालिदास की सुनन्दा बोल रही है । जो सामने आता है वह प्रिय बन जाता है । उसमें ऐसे कुछ गुण दिखाई देते हैं कि मन कुछ काल के लिए उसी में रम जाता है । अन्त में पाठक अपनी रुचि तथा संस्कार के अनुरूप अपना प्रिय पात्र चुन लेता है और उसकी परिचय पा प्रसन्न होता रहता है[२१८]।"

परिचयियों और भक्तमाल का तुलनात्मक अध्ययन

दोनों रचनाओं में पीपा, त्रिलोचन, धना, नामदेव, कबीर, रैदास और रांका बांका आदि की वार्ताएं आई हैं । इन उपर्युक्त भक्तों का वर्णन क्रमशः

२१६- भक्ति रसबोधिनी-टीका -प्रियादास ।

२१७- भक्तमाल प्रसंग- - वैष्णवदास ।

२१८- विचार विमर्श- -आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० १३३

भक्तमाल छं० ६१, ३८०, ६२, ४३, ६०, ५९ और ४२० तथा परिचयी में क्रमशः पृ० ६३७-५२, ६७४-७५, ६७६-७७, ६६७-६७५, ६८५ और ६९०-९२ में हुआ है। दोनों ग्रंथों में आए हुए क्रमशः इन्हीं भक्तों के विषय में समान प्रसंगों को समानार्थी टुकड़ों में विभाजित करके नीचे विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैः-

अनन्तदास ने "पीपा परिचयी" में दर्जन से अधिक प्रसंग दिए हैं। इन प्रसंगों से भक्तमाल में निम्नांकित का संकेत मात्र मिलता हैः-

(१) "नाहर" के उपदेश देने का।

(२) भवानी से मुक्ति मांगने का तथा उनका रामानंद से दीक्षा पाने का, एवं असंख्य संतों के सेवक और उनकी प्रणाली संसार के मंगल का कारण बतलाना।

शेष प्रसंग भक्तमाल में नहीं आए हैं। भक्तमाल के उपर्युक्त प्रसंग परिचयी के क्रमशः पांचवें और पहले प्रसंग से मिलते हैं। परिचयी में सब बातें बहुत बिस्तार-पूर्वक कही गयी हैं जबकि भक्तमाल में अत्यन्त संक्षेप में।

तिलोचन-

दोनों ग्रंथों में "त्रिलोचन" विषयक कोई भी प्रसंग नहीं है। परिचयियों में इनकी टहल करने के लिए प्रभु का टहलुआ रूप धारण कर आने तथा पुनः चले जाने की बात कहीं गयी है जबकि भ० मा० छ० ४१ में केवल ज्ञानदेव के शिष्य नामदेव के साथ इनका नाम आया है, तथा इनकी निर्मल वाणी की प्रशंसा की गई है। अतः दोनों ग्रंथों में कोई उल्लेखनीय बात नहीं कही गई है।

धना-

दोनों ग्रंथों में केवल खेत में बिना बीज बोये ही उगने का प्रसंग कुछ भिन्नता के साथ मिलता है। परिचयी के धना खेत में बीज बोने के लिए ले जाते हैं। रास्ते में संत वेषधारी प्रभु की याचना पर सब गेहूं दे देते हैं। भक्तमाल के धना घर आए हुए संतों को बीज का गेहूं खिला देते हैं। साथ ही परिचयी में हलवाहे की भी थोड़ी सी बात लिखी गई है जबकि भक्तमाल में इसका संकेत भी नहीं है।

उपर्युक्त प्रसंग के अतिरिक्त भी "परिचयी" में निम्नांकित प्रसंगों का और विकास हुआ है जिनका वर्णन "भक्तमाल" में नहीं है।

(१) संतों के आ जाने पर तूंबे में गेहूं भरकर देने पर उन तूंबों से ही गेहूं की अतुल राशि का होना।

(२) "जन कबीर कै बाल दिखायौं", नामदेव की छानि छाने, पीपा को द्वारिका दिखाने की बातें कही गई हैं। अंत में धना जी को रामानंद जी का शिष्य भी बतलाया गया है।

नामदेव-

नामदेव के विषय में दोनों ग्रंथों में निम्नांकित समान बातें या प्रसंग पाये जाते हैं:-

बाल दशा में "बिठ्ठल" का इनके हाथ से दूध पान करना, मृतक गाय को जिलाकर असुरों को परिचय देना, जल से सेज निकाल कर उसी प्रकार दिखलाना, देवल का द्वार उलट देना तथा पंडुर नाथ का अपने हाथ से छान छाना।

ये उपर्युक्त प्रसंग परिचयी में भी समान रूप से पाये जाते हैं, किन्तु परिचयी में उन प्रसंगों का बहुत ही विस्तृत विवरण दिया हुआ है, जबकि भक्तमालकार ने इन प्रसंगों का केवल संकेत किया है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त परिचयी में नीचे लिखे हुए प्रसंग भी पाये जाते हैं:-

(क) पात्साह से झगड़ा करना तथा "हस्ती" द्वारा डरपाया जाना।
(ख) श्वान रूप से रोटी खाना।
(ग) पाहन की मूर्ति "बिगसाना"।
(घ) बैल का जीना तथा पुनः गाड़ी में चलना।
(ङ०) एक लगन में दो काज "संवारना"।
(च) ग्यारस के दिन ब्राह्मण द्वारा परीक्षा लेना।

दोनों ग्रंथों में निम्नलिखित शब्द साम्य और भावसाम्य वाक्य साम्य

के स्थल भी दर्शनीय हैं:-

परिचयी	-	डेहरी फेरयो
भ०मा०	-	देवल उलटयौ
परिचयी-	-	सूकी सेज जलाते आनी
भ०मा०	-	सेज सलिल ते काढि
परिचयी	-	अपने हाथ छानि हरि छाई
भ०मा०	-	छानि सुकर छाई घास की

कबीर-

दोनों ग्रंथों में कोई भी उल्लेखनीय समान प्रसंग कबीर के विषय में नहीं पाया जाता । "भक्तमाल" में कबीर की भक्ति की प्रशंसा की गई है तथा बतलाया गया है कि भक्ति के बिमुख जितने धर्म थे सबको अधर्म कहा है । हिन्दू मुसलमानों को समान बतलाया है । अपनी रचनाओं-रमैनी, शब्द, साखी में किसी ~~भक्त~~ की पक्षपात नहीं ~~स्त~~ किया है । इसके विपरीत परिचयी में "रामानंद से दीक्षा लेने", "कपड़ा बुनकर बेचने" प्रभु का कबीर के घर द्रव्य पहुंचाने तथा उन्हीं का रूप धारण कर ब्राह्मणों को भोजन खिलाने, किसी गणिका के साथ टहलने पर वहां के राजा का अप्रसन्न होने, पुनः उनसे क्षमा मांगने, सिकंदर बादशाह के काशी आने पर प्रज्वलित अग्नि में डालने, हस्ती के पैरों तले कुचलवाने, गंगा में जंजीर से बांधकर छोड़ने, सिकन्दर से क्षमा मांगने, हरि का परीक्षा लेने के लिए गणिका को भेजने तथा उसके असफल होने, और कबीर के १२० वर्ष जीने का प्रसंग विस्तार के साथ वर्णन किया गया है ।

रैदास-

इनके विषय में की सब बातें दोनों ग्रंथों में नहीं पाई जातीं, परिचयी में रैदास के विषय में बहुत सेप्रसंग लिखे गए हैं, जैसे, रामानंद जी के कहने पर माता का दूध पीना, प्रभु का कंचन देना, शालिग्राम का सिंहासन पर उनके बुलाने से आना, ब्राह्मणों का हार मानना, झाली का शिष्य होने के लिए काशी आना, वहां कबीर का दर्शन करना तथा रैदास से दीक्षा लेना, झाली

के निमंत्रण पाकर रैदास का कबीर के पास जाना वहाँ रैदास सेना और कबीर की वार्ता तथा झाली के गृह भी ब्राह्मणों की हार तथा उन लोगों द्वारा रैदास को गुरु मानना ।

उपर्युक्त प्रसंगों में राज सिंहासन पर बैठकर "ज्ञाति परतीति" दिखाने तथा वर्णाश्रम तज कर सबका पद रज बंदना करने की घटना का उल्लेख भक्तमाल में संकेत मात्र आता है । यह घटना किस प्रकार हुई इसका कोई वर्णन नहीं है जब कि परिचयी में एक विस्तृत वर्णन दिया हुआ है ।

~~इन घटनाओं में शब्दों और वाक्यों में निम्नांकित साम्य पाया जाता है~~ रांका- बांका

इनके विषय में दोनों ग्रंथों में कोई भी उल्लेखनीय समान प्रसंग नहीं पाया जाता । भक्तमाल छ० ९७ में ~~रांका बांका~~ कलियुग के भक्तों (स्याम, खोजी, दल्हा आदि) के साथ इनका भी नाम है तथा उल्लेख है कि इन संतों को भगवान ने वृक्ष रूप रचा । किन्तु परिचयी में इनके द्वारा लकड़ी बीनकर जीविका व्यतीत करने पर प्रभु का नामदेव के साथ दर्शन देकर वस्त्र देने की वार्ता का वर्णन है ।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् हम निम्नांकित परिणाम पर पहुंचते हैं:-

(क) अनंतदास की परिचयियों में संत पीपा, तिलोचन, धना, नामदेव कबीर, रैदास और रांका बांका की वार्ताओं का स्वतंत्ररूप से विस्तृत वर्णन किया गया है । उक्त भक्तों के विषय में नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में भी वर्णन किया है, किन्तु इनमें से पीपा, धना, नामदेव, और रैदास विषयक कुछ प्रसंगों का वर्णन दोनों रचनाओं में समानरूप से पाया जाता है ।

(ख) तिलोचन, कबीर और रांका बांका के प्रसंगों में समानता नहीं पाई जाती है ।

(ग) ऊपर जिन भक्तों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है उनकी वार्ताएं परिचयी में विस्तार के साथ वर्णन की गई है जबकि "भक्तमाल" में

बहुत संक्षेप में है । इसका कदाचित् यह कारण हो सकता है कि परिचयीकार को थोड़े से भक्तों के विषय में वर्णन करना था । इसके लिए उसने चौपाई और दोहे छन्द को अपनाया है तथा भक्तमालकार को अपने समय के तथा पूर्व के प्रसिद्ध भक्तों के विषय में वर्णन करना था, उसके साथ छप्पय छन्द को अपनाया था । अतएव इतना अधिक विस्तार करने में कवि असमर्थ था ।

ऊपर हम देख चुके हैं कि नाभादास का समय अनंतदास के बाद पड़ता है अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अनंतदास की परिचयियों की रचना पहले हो जाने से नाभादास ने उन प्रसंगों को परिचयियों से लिया होगा, जो परिचयियों और भक्तमाल में समान रूप से पाये जाते हैं । जिन प्रसंगों के सम्बन्ध में दोनों में अन्तर है, परिचयीकार अनंतदास तथा भक्तमाल के रचयिता नाभादास ने उन्हें ही अन्य स्रोतों से लिया होगा ।

इस प्रसंग में इतना और जान लेने योग्य है कि भक्तमाल में अनन्तदास का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, केवल विनोदीदास तक का उल्लेख हुआ है जो परिचयीकार के अनुसार अनन्तदास के ~~मसर~~ गुरु थे । परिचयियों में नाभादास का कोई उल्लेख नहीं होता है इसलिए भक्तमाल के उपर्युक्त संतों के सम्बन्ध के छन्द तथा परिचयी समकालीन रचनाएं भी हो सकती हैं और हो सकता है कि इनका कोई सामान्य आधार रहा हो ।

रसिक अनन्यमाल तथा भक्तमाल का तुलनात्मक अध्ययन:

रसिक अनन्यमाल में निम्नांकित ३४ भक्तों का उल्लेख हुआ है जो हितजी तथा उनके वंशजों से दीक्षित हुए थे -

१- नरवाहन	५- बीठलदास
२- व्यास	६- मोहनदास
३- छबिलदास	७- हरिदास तुलाधारी
४- नाहरमल	८- परमानन्द

९- पूरनदास	२२- दामोदर स्वामी[219]
१०- प्रबोधानन्द	२३- ध्रुवदास
११- कमैठीबाई	२४- नागरीदास
१२- श्री सेवकजी	२५- भगवती
१३- चत्रभुजदास	२६- हरिदास तूंवर
१४- सुन्दरदास	२७- गोविन्ददास
१५- षरगसेन या षड्गसैन	२८- कल्यान पुजारी
१६- गंगा-जमुना	२९- स्याह साह
१७- हरिवंश कायथ	३०- कन्नीर स्वामी
१८- जैमल	३१- रसिकदास
१९- भवन	३२- मोहन माधुरी
२०- जसवन्त राठौर	३३- द्वारिकादास
२१- लालस्वामी	३४- पुहकरदास[220]

उपर्युक्त भक्तों में से केवल व्यास, हरीदास, तुलाधारी, चत्रभुजदास, षरगसेन, जैमल, भुवन और जसवन्त ही ऐसे हैं जिनके प्रसंग दोनों ग्रंथों में समान हैं। नीचे उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है[221]। विस्तृत शेष भक्तों के प्रसंग दोनों ग्रंथों में उभयनिष्ठ रूप में नहीं मिलते अतएव इनकी तुलना का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

व्यासजी-

रसिक अनन्यमाल में व्यासजी के विषय में निम्नांकित प्रसंगों का विकास हुआ है:-

(१) वे "सुकल" सुमोखन के पुत्र थे।

२१९- दामोदर जी कदाचित इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं थे किन्तु उनका भी वर्णन इस ग्रंथ में हुआ है।

२२०- ललिताप्रसाद पुरोहित, रसिक अनन्यमाल, प्रस्तावना, पृ०५।

२२१- अनन्यमाल दे० छं० २,७,१३,१५,१८,१९,२० तथा भक्तमाल छं० ९२,१५६,१२३, १६१(११७ तथा ५२), ५२,१५५, १७९।

(२) सदैव रैदास, कबीर, पीपा, जैदेव, रामानन्द और नामदेव आदि का स्मरणकर मग्न होते रहते थे ।

(३) बयालीस वर्ष के बाद नवल वैरागी के साथ हितजी से दीक्षित हुए ।

(४) हित पद्धति के अनुसार "राधावल्लभ" आदि के स्मरण में लीन रहे थे ।

(५) नानाप्रकार के पदों की रचना करते रहे, कई पदों का उल्लेख "माल" में हुआ है ।

(६) रास के समय नूपुर टूटने पर अपना जनेऊ तोड़कर उन्हें गूंथ लिया था ।

(७) हरिवंशजी की मृत्यु से दुखी हुए, अपने लड़के किशोरदास को हरिदास जी से दीक्षा दिलवाकर कुंज महल सिधारे ।

उन उपर्युक्त प्रसंगों में से नाभादासजी के भक्तमाल में केवल पहले और छठें प्रसंग का संकेत मिलता है । दोनों ग्रंथों में साक्ष्य-साम्य के स्थान दृष्टव्य हैं:-

"अनन्यमाल" - सुकल सुमोखन बड़ो प्रवीन । राजा परजा सबै अधीन ।
तिनके पुत्र व्यास गुनवंत ।

भ० मा० - सुकुल सुमोखन सुत अच्युत जी जु लड़ाये ।

अनन्यमाल- - गुहे जनेऊ तोरिकर नूपुर परम उछाह ।

भ० मा० - नौगुन तोरि नूपुर गुह्यो महंत सभामधि रास के ।

<u>हरीदास तुलाधारी-</u>

दोनों ग्रंथों में इनके विषय में निम्नांकित समान प्रसंगों का विकास हुआ है:-

(क) हरिदास का तुलाधारी(वणिक) होना ।

(ख) राधाबल्लभ भजन में प्रवीण होना ।

(ग) अपनी मृत्यु के विषय में पहले से जान लेना । बिना वृन्दाबन

पहुंचे शरीर छोड़ना तथा अपनी भक्ति की महिमा से लोगों को चकित कर देना ।

इन प्रसंगों के अतिरिक्त माल में निम्नांकित प्रसंगों का विकास हुआ है जिनका उल्लेख भक्तमाल में नहीं मिलता-

(क) ९५ वर्ष की अवस्था में साधुओं के दर्शन के लिए जाना, किसी सिंह का साक्षात् दिखाई पड़ना, अपने को वृद्ध समझकर अपने कथनानुसार पुत्र को लाकर समय के पहले उपस्थित करना तथा सिंह का युगल स्वरूप में परिवर्तित होकर दर्शन देना ।

(ख) प्रसाद के विषय में लोगों द्वारा जगन्नाथजी की आज्ञा का स्पष्ट सुना जाना ।

चतुर्भुजदास -

दोनों ग्रंथों में इनके संबंध में निम्नांकित समान प्रसंगों का उल्लेख है:-

(क) राधावल्लभ की भजन गाने में प्रवीण तथा भक्ति के प्रताप की प्रतिष्ठा रखने वाले ।

(ख) "कवित्त" में "मुरलीधर" की छाप रखने वाले ।

(ग) श्री हरिवंश की चरण कृपा से चतुर्भुजदास का गौड़ देस को तीरथ समान बतलाना ।

(घ) साधु सन्तों का सत्संग करना ।

इन प्रसंगों के अतिरिक्त माल में और भी चार प्रसंगों का वर्णन हुआ है जिनके विषय में भक्तमालकार मौन हैं:-

(१) गौड़ देश के किसी बगीचे में ठहरकर वहां के प्रेतों का उद्धार करना ।

(२) ब्राह्मण पुत्र को जिला देना ।

(३) कथा में आये चोर के जीवन को बचाकर वहां के राजा आदि को अपना शिष्य बनाना ।

(४) देवी के मंदिर में बकरे की जगह नारियल चढ़ाने का प्रस्ताव राजा को देवी द्वारा रखना तथा वहां के राजा का भी शिष्य होना ।

दोनों ग्रंथों में शब्द साम्य, वाक्य साम्य तथा भाव साम्य के स्थल द्रष्टव्य हैं:-

भ० माल- गायौ भक्ति प्रताप सबहि दासत्व दृढ़ायौ ।

माल- श्री राधा प्रताप जस गायौ, हितहरिवंश चरन चित लायौ ।

भ० माल- मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषन ।

माल- मुरलीधर की छाप कविता मैं ।
श्रुति सुमृत कौ सार है जामैं ।।

भ० माल- श्री हरिवंश चरण बल चत्रभुज गौड़ देश तीरथ कियौ ।

माल गौडं देश पावन कियौ रसिक चत्रभुजदास ।

\+ + +

श्री राधा प्रताप जस भाषौं, हित हरिवंश चरन चित राषौं ।

खरगसैन :

माल में इनके विषय में निम्नांकित प्रकाश डाला गया है-

(१) खरगसेन जाति के "कायथ" बड़े गुणवान, साधुसेवी, साधु समागम में रुचि रख रखने वाले तथा अपना अधिक समय भक्ति में बिताने वाले थे ।

(२) "माधोसिंह" के प्रधान+ मानगढ़ के निवासी थे ।

(३) "राधावल्लभ" नाम उच्चारण करते हुये रूप माधुरी में छके रहते थे ।

(४) इनके संत समागम तथा रास में अधिक द्रव्य लुटाने के कारण संदेहात्मक रूप से "राजा" ने "लाख" रुपये का दण्ड सुनाया । "प्रभु" ने राजा को रात्रि में भय दिखलाया।अंत में राजा ने इनसे क्षमा याचना की तथा फिर अपने यहां नहीं बुलाया ।

इन उपर्युक्त प्रसंगों में भक्तमाल में केवल पहले प्रसंग का उल्लेखमात्र है शेष का कोई भी संकेत नहीं है। इस प्रसंग के अतिरिक्त भक्तमाल में भी निम्नांकित प्रसंगों का उल्लेख है जिनके विषय में "माल" कार मौन है:

(क) खरगसैन का गोपी-ग्वाल आदि के पिता माताओं के नाम का वर्णन करना।

(ख) "दानकेलि" तथा "दीपक चरित्र" की रचना करना।

(ग) "कायथकुल" के उद्धारक "गौतमी तंत्र" में प्रतिपादित रीति से अपने प्राण विसर्जन करना।

(घ) "गोविन्द चरित्र" वर्णन करने में परम प्रवीण होना।

इन अन्तरों के होते हुए भी साम्य के स्थल भी देखने योग्य हैं-

भ० माल - (क) <u>कायथ कुल उद्धार</u> भक्त दृढ़ अन तन चितयौ।

माल- <u>खरगसैन कायथ</u> गुनवन्त

यह कायथ दिन द्रव्य लुटावै।

इसके अतिरिक्त उनकी भक्ति तथा साधुता का वर्णन दोनों ग्रंथों में समान रूप से किया गया है।

<u>जैमल</u>[१२२]

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित समान वार्ताओं का विकास हुआ है-

(क) <u>"मेरता" के निवासी "जैमल"</u> बहुत बड़े भक्त हो गये हैं।

(ख) युद्ध से आक्रान्त इनकी सहायता के लिए प्रभु जी स्वयं घोड़े पर सवार होकर युद्ध किए।

इन उपर्युक्त समान प्रसंगों के अतिरिक्त माल में नीचे लिखे प्रसंगों का वर्णन विस्तार से हुआ है, किन्तु भक्तमाल में इनका कुछ भी वर्णन नहीं है।

१२२- इनका वर्णन भक्तमाल में छं० ५२ और ११७ में दो स्थानों पर हुआ है।

(क) उनकी स्त्री द्वारा "प्रभु" का साक्षात् दर्शन करना ।

(ख) अस्सी वर्ष की अवस्था तक अविरल भक्ति करना ।

(ग) "माल" में आक्रमण करने वाले राजा का नाम "राय मडौवर" बतलाया गया है जब कि "भक्तमाल" में राजा का नाम नहीं दिया गया है ।

(घ) "जयमल" द्वारा घोड़े पर चढ़ने के पहले प्रस्वेद देखा जाना तथा लड़ाई का विस्तृत वर्णन "माल" में उद्धृत है ।

दोनो ग्रंथों में निम्नांकित शब्द, वाक्य तथा भाव साम्य एक ही स्रोत का संकेत करते हैं:-

भ॰माल - लघु मथुरा मेरता भक्त अति जैमल पोषै

माल - जैमल भक्त राज ऋषि भए ।

भ० माल- जैमल के जुध महि अस्व चढ़ि आपुन आए ।

माल- सुज्यौ वज्यौ घोरौ घुरसाल, तापर चढ़ि निकसे तत्काल ।

विशेष अन्तर दोनों ग्रंथों में यह है कि भक्तमाल में दो स्थलों पर केवल एक पंक्ति में संकेत मात्र ~~प्रसंगों का वर्णन~~ है, किन्तु माल में वही प्रसंग चौपाई दोहों में वर्णित ~~किए गये~~ हैं।

भवन या भुवन

भुवन के विषय में निम्नांकित प्रसंगों का विकास "रसिक अनन्यमाल" में हुआ है -

(१) संसार में इनके समान बहुत कम भक्त हुए हैं ।

(२) पिता पहले किसी राजा के यहां सवा लाख के "पद" या (वहदा) पर था वही पद बाद में इनको मिला ।

(३) आखेट में गर्भिणी स्त्री को मारने के पश्चात् माताजी की आज्ञा के अनुसार आखेट खेलना बंद कर दिए ।

(४) वनचन्द जी से दीक्षा लिए ।

(५) इनकी भक्ति की महत्ता दिखलाने के लिए प्रभु ने काष्ठ की "तरवार" होने पर भी राजा के सम्मुख सबको "लौह" की दिखलाई दी ।

(६) राजा जी की चुगली करने वाला व्यक्ति अपराधी होते हुए भी इनके द्वारा बचा लिया गया ।

उपर्युक्त बातों में से केवल पहली और पांचवीं बात-दास की "तरवार" सारमय हो जाने-का एक पंक्ति में वर्णन है । शेष अन्य प्रसंगों के विषय में "भक्तमाल" कार मौन हैं ।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित साम्य के स्थल द्रष्टव्य हैं-

भ० माल- दास भई तरवार सारमय रची भवन की ।

माल- राजा जुसौ दुहुनि सुनाई । भवनदास तरवार बनाई ।
कह्यो चहत यह है दास की । प्रभु दुख निकसाई सार की ।

\+ + + । निधरक है तरवार दिखाई ।

इन साम्यों के अतिरिक्त सबसे बड़ा अन्तर यह है कि रसिक अनन्यमाल में भगवत मुदित जी ने ७२ चौपाइयों और तीन दोहों में बड़े विस्तार के साथ भुवन विषयक प्रसंगों का वर्णन किया है जबकि भक्तमाल में केवल एक पंक्ति में संकेत मात्र है।

अंतर यह है कि भक्तमाल में मच्छ कच्छ आदि अवतारों का उदाहरण देकर इनकी भक्ति की महत्ता संक्षेप में की गयी है, जबकि रसिक अनन्यमाल में विस्तार के साथ वर्णन है ।

जसवन्त राठौर -

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित समान वार्ताओं या प्रसंगों का जसवन्त राठौर के विषय में निवास हुआ है:-

(क) जसवन्त को "राठौर" बतलाना तथा हरिभक्तों से प्रीति रखना ।

(ख) वृन्दावन में रहकर "राधावल्लभ" का सदैव स्मरण करना ।

(ग) गुरु और हरिभक्तों में अपार श्रद्धा रखना ।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त "माल" में निम्नांकित वार्ताओं का और विकास हुआ है जिनके विषय में भक्तमालकार मौन हैं:-

किसी ठग का वेष बदलकर आना, जसवन्त के लड़के को मारकर उसका आभूषण लेना, जसवन्त का क्षमा प्रदान कर अन्त में अपनी लड़की का पाणि-ग्रहण उसके साथ कर देना तथा मृत बालक का प्रभु की इच्छा से जी जाना ।

इसी प्रकार भक्तमाल में भी दो प्रसंगों का विशेष संकेत है तथा अनन्य-माल में इनका वर्णन नहीं है:-

(क) वृन्दावन में हाथ जोड़कर एक पांव से खड़े रहना ।

(ख) "जयमल" की भक्ति को सुरक्षित बतलाना । "माल" में इस स्थल पर जयमल का नाम नहीं आया है ।

दोनों ग्रंथों में शब्द साम्य, वाक्य साम्य, तथा भाव साम्य के स्थल द्रष्टव्य हैं:-

भ०माल- भक्तनि सों अतिभाव निरंतर अन्तर नाहीं ।

माल- निष्ठा गुरु हरिभक्ति मैं जाकौ मना अगाध ।

अथवा

भक्तनि आगै सर्व सुधौ- अहंमता कबहुं न करै ।

भ०मा० - श्री वृन्दावन दास कुन्ज क्रीड़ा रुचि भावै ।

माल- वृन्दावन में मंदिर कियौ । संपति षरचि अतुल सुष लियौ ।।

भ०माल - राधावल्लभ लाल नित प्रति ताहि लड़ावै ।

माल - सत्य अनन्य धर्म पहिचान्यौ ।

राधाबल्लभ जी उर आन्यौ ।।

भ०माल - जसवन्त भक्त जयमाल की रूड़ा राखी राठवड़ ।

माल - जसवन्त भक्त हुवे ते राठौर ।

रसिक अनन्यमाल की घटना का - जसवंत के पुत्र का वेषधारी ठग द्वारा मारे जाने का - नाभा जी के छप्पय सं० ५१ में संक्षेप में संकेत मात्र किया गया है, जो रसिक अनन्यमाल के आधार पर ही सकता है । इससे प्रकट है कि दोनों लगभग एक समय की रचनाएं हैं । किन्तु नाभादास के भक्तमाल में भगवत मुदित का सादर उल्लेख होने के कारण(यदि वह छप्पय प्रक्षिप्त न हो) उनकी रचना भक्तमाल के कुछ पूर्व की हो सकती है ।

निष्कर्ष-

इस विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन से निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

(१) जैसा पहले बताया जा चुका है,रसिक अनन्यमाल में केवल चौंतीस भक्तों का वर्णन हुआ है।उनमें से केवल सात भक्तों के दोनों भक्तमालों में विस्तृत परिचय मिलते हैं । शेष भक्तों के विषय में कदाचित् कुछ के लिए, थोड़े संकेत कर दिए गए हैं, जैसे प्रबोधानंद का संकेत भक्तमाल छप्पय १८१ में हुआ है । इनकी गणना केवल संन्यासी भक्तों में की गई है । मालकार के अनुसार हितजी ने एक स्थल पर कहा है "ये संन्यासी हम हैं गेही । मन करि भाव धरौ जु सनेही ।" इससे प्रकट होता है कि कदाचित् यही प्रबोधानन्द जी पहले संन्यासी रहे हों, बाद में राधाबल्लभ सम्प्रदायी हो गये हों । "नरबाहन" का भक्तमाल छप्पय १०५ में केवल नाम आ गया है जबकि ये माल के प्रथम भक्त हैं, तथा इनके विषय में विस्तृत विवरण दिया गया है । इसी प्रकार "हरिदास" की, जो माल के छब्बीसवें भक्त हैं तथा इनका वर्णन भक्तमाल के छ० १७९ में हुआ है, केवल भक्ति के विषय में समानता है तथा दोनों ग्रंथकारों ने उन्हें "तूंबर कुल" में उत्पन्न माना है । माल में इनका विस्तृत वर्णन किया गया है ।

(२) उपर्युक्त सात भक्तों में से "खरगसेन" को छोड़कर प्रायः सभी भक्तों के प्रसंग कुछ विभिन्नता के साथ समानता भी रखते हैं , यहां तक कि केवल कथाओं में समानता नहीं है, बल्कि उनके शब्दसाम्य, वाक्य साम्य तथा भाव-साम्य के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिनके विषय में ऊपर भलीभांति विचार किया जा चुका है । इसी प्रसंग में इस विशेष बात का उल्लेख करना परमावश्यक

है कि "जैमल" के विषय में भक्तमालकार ने दो स्थलों पर दो अलग अलग प्रसंगों का संकेत किया है, इसका कारण कदाचित् यह हो कि इनके नाम से प्रथम छप्पय जुड़ जाने के बाद भक्ति विषयक दूसरे प्रसंग की ख्याति बाद में हुई हो ।

(३) "खड्गसेन" के विषय में श्री रामकृष्णदेव एम०ए० शास्त्री[२३२] ने यह शंका उठाई है कि दोनों ग्रंथों के खड्गसेन कदाचित् भिन्न हैं, उनका तर्क यह है:-

"रसिक अनन्यमाल में उन्हें "भानुगढ़" का निवासी और ग्वालियर के राजा माधवसिंह का प्रधान बतलाया है । साधु संतों की सेवा तथा रास के आयोजनों में आपको खुलकर खर्च करते हुए देखकर राजा को एकबार संदेह हो गया कि यह सब खजाने का रुपया उड़ाया जा रहा है । फलतः राजा ने इन्हें बन्दी गृह में डाल दिया, इस घटना के बाद ही राजा ऐसा बीमार पड़ गया कि बचने की आशा न रही । यह देखकर राजा को ज्ञान हुआ और उसने तुरन्त खड्गसेन को रिहा कर दिया । कुछ दिन बाद राजा भी स्वस्थ्य हो गया । किन्तु बालकरामजी आदि की टीका एवं ध्रुवदास जी आदि की भक्तमालों में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता । सम्भवतः रसिक माल में वर्णित खड्गसेन दूसरे रहे हों ।"

उपर्युक्त तर्क पर विचार करने के पूर्व ~~इस ग्रंथ के~~ लेखक का यह नम्र निवेदन है कि रसिक अनन्यमाल की दो प्रतियां सभा में देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ[२३३] उसमें "खड्गसेन" से सम्बन्धित घटना में राजा और रानी के बीमार होने का संकेत नहीं है बल्कि रात्रि के समय कदाचित् स्वप्न में "महाभयानक" अतिभय से भयभीत होने का उल्लेख है । रहा इस घटना का प्रसंग जिसे नाभादास ने बिल्कुल छोड़ दिया है - तो इसके विषय में यही कहा जा सकता है कि जितनी घटनाओं या प्रसंगों का वर्णन टीकाकारों अथवा अन्य भक्तमालकारों ने किया है उतनी

२३२- वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल, पृ० ८६७ ।

२३३- हस्तलिखित प्रति - काशी आर्य भाषा पुस्तकालय ।

का वर्णन नाभादास नहीं कर सकते थे, क्योंकि भक्तमाल में उन्होंने अधिक से अधिक भक्तों का कम से कम छन्दों में वर्णन करने का प्रयत्न किया है।

शास्त्रीजी ने बालबास और वासकराम की टीकाओं का हवाला दिया है किन्तु प्रियादास की टीका को प्राचीनतम होने के नाते प्रामाणिक मानना चाहिए ,और प्रियादास ने उक्त घटना का वर्णन किया है।

चौथी बात यह है कि "खरगसेन" का अन्य किसी स्थल पर वर्णन नहीं मिलता जिससे उक्त साक्ष्यों की जाँच की जा सके।

इनके अतिरिक्त एक विचारणीय तथ्य यह है कि इतनी विभिन्नताओं के साथ यह समानता निर्विवादरूपसे है कि दोनों ग्रंथकारों ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि वे "कायथ" कुल में पैदा हुए थे तथा बड़े भक्त थे। हां एक बात खटकने वाली है कि भक्तमालकार ने उनकी रचनाओं के विषय में भी प्रकाश डाला है जब-कि "मालकार" उस सम्बन्ध में मौन हैं। किन्तु कदाचित् भक्तमालकार को ग्रंथों के आधार पर भक्ति की महत्ता देना अधिक रुचिकर रहा हो तथा यह भी सम्भव है कि भक्तमाल में इनके विषय का छन्द इनकी रचनाएं प्रसिद्ध होने के बाद जोड़ा गया हो। अतएव दोनों ग्रंथों में वर्णित खरगसेन एक ही ज्ञात होते हैं।

(४) रसिक अनन्यमाल में कुछ तिथियों का भी उल्लेख है, जबकि इस विषय में भक्तमालकार मौन हैं। यह इस ग्रंथ की अपनी मौलिकता है।

(५) इन सब विभिन्नताओं के रहते हुए भी उपर्युक्त भक्तों के प्रसंगों में पर्याप्त साम्य है किन्तु बहुत से ऐसे प्रसंग हैं जो दोनों ग्रंथों में समान रूप में नहीं मिलते। एक विशेष बात खटकने वाली यह है कि भक्तमालकार ने जिन भगवत मुदित के वर्णन के लिए एक छप्पय पूरा लगाया इनकी रचना का उल्लेख उन्होंने क्यों नहीं किया, जबकि दोनों परस्पर इतने अधिक सन्निकट थे क्योंकि नाभादास भी वृन्दावन आए थे जो भगवत मुदित का निवास स्थान था। इसका समाधान यही हो सकता है कि जिस समय मुदित के विषय का यह छप्पय १९८ भक्तमाल में जोड़ा गया होगा उस समय तक उनकी रचना रसिक अनन्यमाल कदाचित् प्रकाश में न आई हो अथवा उसकी उतनी प्रसिद्धि न रही हो।

अध्याय ३

नाभादास के पश्चात् का भक्त-वार्ता साहित्य

अध्याय ३

नाभादास के पश्चात् का भक्तवार्ता साहित्य

भक्तमाल

(१) राघोदास कृत भक्तमाल

राघोदास का संक्षिप्त परिचय-

इनकी जन्म तिथि तथा जन्म स्थान के विषय में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अपने ग्रंथ भक्तमाल की समाप्ति में इन्होंने केवल अपने विषय में निम्नांकित संकेत किया है-

> पीपा वंसी चांगल गोत, हरि हिरदै कीन्हो उद्योत।
> भक्तमाल कृत कलिमल हरणी। आदि अंत मति अनुक्रम बरणी[1]।

कदाचित् इसी कथन के आधार पर पुरोहित हरिनारायण[2] तथा मेनारिया ने इन्हें पीपावंशी चांगल गोत्र का क्षत्रिय लिखा है[3]। ये पहले वैष्णव थे बाद में दादूपंथी हो गए थे[4]। भक्तमाल के आदि और अंत में इन्होंने दादू का बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया है-

> गुरु दादू गुरु प्रेम गुरु शिष्य यो ताप रंजत।
> आगै पीछै वरणतां मति को दूणो संत[5]।

तथा

> दादू जी को सेवक हूं, दादू जी सहाय मेरे,
> दादू जी को ध्यान धरौ दादू मेरे धन्न है।
> दादू जी, रिझाऊं निति, नाव लेऊं
> दादू जी कौ, दादू गुन गाऊं बड़ो दादुजी सौं मन्न है।

१- भक्तमाल राघोदास, चौपाई सं० ९०।
२- सुन्दर ग्रंथावली, प्रथम खंड, पृ० ८८।
३- मोतीलाल मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १९५।
४- सुन्दर ग्रंथावली, प्रथम खंड, पृ० ८८।
५- भक्तमाल राघोदास, प्रारम्भिक दोहा-१५

दादूजी सौं बातौ रसमाती रहूं दादू जी सौं,

दादूजी अधार मेरे दादू तन मंत्र हैं ।

कहै राघौदास मो भरोसो एक दादू जी कौ,

दादू जी सौं काम दादू अघ के हरन्न हैं [६] ।

गुरु:

राघौदास जी ने अपने गुरु का वर्णन निम्न छप्पय में किया है:

यम प्रम पुरुष प्रहलाद कै,। सिष हरीदास सिरोमणि भयो

कुछवाहौ कुल आदि नाम पहली होहा यौ ।।

पुन्हः परसि प्रहलाद तज्यो कुल वल क्रम आयौ ।

कोमल कुछ कुमार नहि चंचलता हासी ।

समदम सुमिरण करैं मोक्ष पद जुक्ति उपासी ।

यौं हदफ मारि हरि कौं मिल्यौ जन राघो रटि अनहद गयौ ।

यम परम पुरुष प्रहलाद कै सिख हरीदास सिरोमणि भयो ।।[७]

अर्थात्, प्रहलाद के शिष्य हरीदास और उनके शिष्य वे स्वयं थे । प्रहलाद दास ने दादू दयाल के शिष्य बड़े सुन्दर दास जी से दीक्षा ली थी ।

राघौदास का भक्तमाल अप्रकाशित है और अभीतक तीन-चार व्यक्तियों ने इस ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया है । उनमें श्री पुरोहित हरिनारायण[८], पं० परशुरामजी[९] चतुर्वेदी तथा डा० मेनारिया[१०] का नाम उल्लेखनीय है । हमें इसकी दो प्रतियां देखने को मिलीं । एक प्रति जयपुर की तथा दूसरी नागरी प्रचारिणी सभा काशी की । दोनो प्रतियों मे प्रतिलिपिकार का नाम, समय तथा ग्रंथ का रचना काल दिया हुआ है । प्रतियां पूर्ण हैं । इन दोनों प्रतियों की पुष्पिकाएं क्रमशः इस प्रकार है-

---

६- भक्तमाल राघौदास, उत्तरार्ध छ० २७१ ।

७- वही छ० ८७ ।

८- सुन्दर ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ८८ ।

९- उत्तर भारत की संत परम्परा, पृ० ४३२-३३ ।

१०- राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १९५ ।

(१) मिती फागण बदि १०।। संवत् १९।३४।। वार मंगलवार । लिखावट रामनिवास जी लिखते भक्तराम ।।

(२) "संमत १९।४३।। कातिक बदि ।।२।। सुभस्थान बागास मध्ये लिषत ।। दासेन दास रामसरन नै लषी रामरूपजी पठनार्थ ।।

उपर्युक्त दोनों प्रतियां क्रमशः २११ और १३१ पृष्ठों की हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन जयपुरवाली प्रति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है [११]।

राघोदास कृत भक्तमाल की टीका चतुरदास ने की है और उन्होने राघोदास के मूल छप्पयों में टीका के छप्पय मिला दिये गये हैं और सबमें कठिन राघोदास की छाप मिलने के कारण दोनों की रचनाओं का अलगाना कठिन हो गया है । ग्रंथ की छप्पय संख्या एक हजार के बाद पुनः एक से प्रारम्भ होती है । अतएव अपनी सुविधा के लिए प्रथम संख्या छप्पय १००० तक के लिए पूर्वार्द्ध तथा फिर एक से २५८ तक उत्तरार्ध संकेत रखा गया है ।

रचना काल- प्रस्तुत ग्रंथ का रचनाकाल सं० १७१७ है, जिसका आधार ग्रंथ में आया निम्नलिखित दोहा है-

संबत सत्रह सौ सत्रहोतरा, सुकल पक्ष सनिवार ।
तिथि त्रितिया आसाढ़ की, सत राघौ कियौ विचार ।[१२]

यही तिथि डा० मेनारिया[१३] तथा परशुराम चतुर्वेदी[१४] ने भी स्वीकार की है[१५]।

११- इस प्रति की प्रतिलिपि प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यापक डा० पारसनाथजी तिवारी से प्राप्त हुई । इनको यह प्रति दादू महाविद्यालय के प्रधानाचार्य मंगलदास स्वामी द्वारा प्राप्त हुई थी ।

१२ भक्तमाल उत्तरार्ध दोहा १९ ।

१३ राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १९५ ।

१४ उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ० ४३१ ।

१५ इसी तिथि की सूचना दादूपंथी साधु, स्वामी मंगल दास ने भी दी है ।

वर्ण्य विषय

नीचे की विषय सूची इस भक्तमाल के वर्ण्य विषय का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया जा सकता है -

	छं०	सं०[१६]
(१) मूल भक्तमाल मंगला चरण से प्रारम्भ होकर सतयुग, त्रेता और द्वापर के भक्तों का वर्णन-	१ -	२१७
(२) कलियुग के चार भक्ति सम्प्रदायों का वर्णन -	२१८ -	७००
(क) रामानुज सम्प्रदाय के भक्तों का वर्णन -	२१८-	४२०
(ख) विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के भक्तों का वर्णन-	४२१ -	५४१
(ग) मध्वाचार्य सम्प्रदाय के भक्तों का वर्णन-	५४२ -	६३४
(घ) निम्बादित्य सम्प्रदाय के भक्तों का वर्णन-	६३५ -	७००
(३) षट दर्शनों का वर्णन -	७०० -	७४८
(क) संन्यासी दर्शन -	७०१ -	७१३
(ख) जोगी दर्शन -	७१४ -	७३३
(ग) बौध दर्शन -	७३४ -	७३५
(घ) जंगम दर्शन -	७३६	
(च) जैन दर्शन -	७३७	
(छ) जिन या जिवन दर्शन -	७३८ -	७४८
(४) समुदाई (स्फुट) भक्त वर्णन -	७४९ -	९२६
(५) चतुर्पन्थ(चार संत सम्प्रदायों का वर्णन)-	९२६ -	११३[१७]
(क) नानक पंथ -	९२७ -	९३५
(ख) कबीर पंथ -	९३६ -	९४४
(ग) दादू पंथ -	९४५ -	९५
(घ) निरंजनी पंथ-	९६ -	११३

१६- पृष्ठ संख्या न लिखकर -छप्पय संख्या लिखी गयी है ।

१७- छं० संख्या जब १००० तक ~~तक~~ पहुंचती है तो पुनः एक से प्रारम्भ होती है ।

छं० सं०

(६) समुदाई (स्फुट) भक्त वर्णन - ११४ - २७२

इसी के अन्तर्गत (क) अन्य विवरण (ख) ग्रंथ माहात्म्य
(ग) रचना काल आदि भी है ।

छन्द तथा उनकी संख्या -

भक्तमाल में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।टीकाकार चतुरदास ने राघोदास के भक्तमाल ता तथा अपनी टीका की छन्द संख्या इस प्रकार दी है:-

"छप्पय छं० ३४३ ।। मनहर छन्द १५० ।। हंसाल छंद ४ साखी ६२ ।। चोपई २।। इंदव छंद ९८ ।। एते राघोदास कृत सम्पूर्ण ।।५७५।। चतुरदास कृत टीका इंदव अरु मनहर ।।६५९।। समस्त मूल टीका के कवित्त की जोड़ ।।९२५५।। ग्रंथ की प्रमाण श्लोक संख्या हजार ।।४५००।।

किन्तु राघोदास की भक्तमाल के छन्दों का जोड़ अशुद्ध है कुल भक्तमाल की छंद संख्या ३४३ + १५० + ४ + ६२ + २ + ९८ = ६५९ होती है । यही संख्या नागरी प्रचारिणी की हस्तलिखित प्रति में भी है ।

आधार -

नाभादास के भक्तमाल का प्रभाव प्रायः सर्वत्र देखा जा सकता है किन्तु चार संप्रदायों (रामानुज से लेकर निम्बार्क तक) का वर्णन तो अधिकांश नाभादास के भक्तमाल पर ही आधारित है । इसके टीकाकार चतुरदास जी ने भी अपने वक्तव्य में इस तथ्य की ओर संकेत किया है -

प्रथम ~~ही~~ कीन्हीं भक्तमाल सु निरांनदास
परचा सरूप संत नाम ग्राम गाईया ।
सोई देखि सुनि राघोदास आप कृत मधि
मेल्हिया विवेक करि साधन सुनाईया [१८]।।

१८- भक्तमाल राघोदास टीका चतुरदास छं० सं० १७४ (उत्तरार्द्ध) ।

राघौदास ने स्वयं नाभादास का जिसरूप में वर्णन किया है उससे भी इस कथन की पुष्टि हो जाती है[१९]।

दोनों भक्तमालकारों ने "भक्ति भक्त भगवन्त और गुरु" को समान मानते हुए ग्रंथ का प्रणयन किया है, इस संबंध में दोनों की मान्यताएं तुलनीय हैं:-

नाभादास - भक्त भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किए, नाशै विघ्न अनेक ।।१।।

राघौदास- भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु ये मम मस्तक मौर ।
राघव इनसे विमुख हैं तिनको कतहु न ठौर ।।९।।

राघौदास, के भक्तमाल की जो विशेषता है उसका उल्लेख भी उसके टीकाकार चतुरदास ने इस प्रकार किया है -

नृगुण भगत और आनिया बसेष यह,
उनहूं का नाम गांम गुन समझाइया[२०]।

इससे ज्ञात होता है कि नाभादास जी के भक्तमाल में निर्गुनिये भक्तों के परिचय का अभाव पूरा करने के लिए ही इसकी रचना हुई है और इसमें कोई संदेह नहीं कि दादूपंथ, कबीरपंथ, निरंजनी पंथ आदि का विवरण राघौदास के भक्तमाल में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से मिलता है ।

नाभादास तथा राघौदास के भक्तमालों का तुलनात्मक अध्ययन

दोनों भक्तमालों में सभी दृष्टियों से इतनी समानता है कि कहीं कहीं तो पता ही नहीं चलता कि ये रचनाएं परस्पर भिन्न हैं । अतएव सभी भक्तों

१९- भक्तमाल राघौदास, छ०सं० ३४८ (उत्तरार्ध) ।
२०- वही, २७४ (उत्तरार्ध) ।

को अलग अलग लेकर विचार करना असम्भव तथा व्यर्थ समझ कर कुछ भक्तों के विषय में(जिनमें अधिक प्रतिभाशाली तथा कम प्रतिभा वाले सभी भक्त हैं) इस धारणा से विचार करने का यत्न किया गया है कि दोनों भक्तमालकारों के वर्णनों, विचारों तथा अनुभूतियों से भलीभांति परिचित हो सकें ।[२१] फलतः नीचे दोनों ग्रंथों का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन तीन प्रकार से प्रस्तुत किया गया है:-

(क) एक अथवा एक से अधिक छंदों में वर्णित अधिक प्रतिभाशाली कवियों की दृष्टि से ।

(ख) गुरु-शिष्य परंपरा अथवा पूर्वापर क्रम के वर्णन की दृष्टि से ।

(ग) सामूहिक रूप से भक्तों का चित्रण प्रस्तुत करने वाले छंदों की दृष्टि से ।

उक्त तीनों वर्गों में आए हुए भक्तों के नाम अथवा उनके परिचय प्रस्तुत करने वाले छंदों की क्रम-संख्याएं नीचे दी गयी हैं:-

प्रथम वर्ग (क) में पीपा, अग्रदास, कील्हदास, द्वारकादास, तुलसीदास, रैदास, हित हरिवंश, व्यासजी, सूरदास, तथा जसवन्तसिंह पर विचार किया गया है जिनके वर्णन नाभादास कृत भक्तमाल में क्रमशः छं० सं० ६१, ४१, ४०, १८२, १२९, ५९, ९०, ९२, ७३, १५५ तथा राघोदास के भक्तमाल में छं० सं० (३६९-७०) (३४४-४५) (३४०-४१) ३५३- (३५८-५९) ९५८, २६१(३६५-६६) ३८६ तथा १६८ में मिलते हैं ।

द्वितीय वर्ग (ख) में रामानंदी सम्प्रदाय की परम्परा, रामानंद के शिष्य पयहारी कृष्णदास के शिष्य तथा अग्रदास के शिष्यों के वर्णन पर विचार किया गया है जिनका उल्लेख सं० सं० ३५, ३६, ३९ और १५० में तथा राघोदास के भक्तमाल में छ० सं० २३५, २६४, २३९, और ३४७ पूर्वार्धं में हुआ है ।

२१- दोनों भक्तमालों में केवल चारों सम्प्रदायों के भक्तों के चरित्रों में समानता है राघोदास के भक्तमाल मे नानक, दादूपंथी आदि का वर्णन है, अतएव इनपर इस स्थल पर विचार नहीं किया गया है ।

तृतीय वर्ग (ग) में वृन्दावन की माधुरी का रसास्वादन करने वाले भक्त-संन्यासी वर्ग तथा कुछ अन्य असाधारण शक्ति रखने वाले भक्तों का वर्णन क्रमशः नाभा छं० ९४, १८१ और ५२ तथा राघोदास के भक्तमाल छं० सं० ५९२, ७९१ तथा ७८९ में आया है।

उपर्युक्त क्रमों को ध्यान में रखते हुए आगे सभी वर्गों में आए हुए भक्तों में से कुछ के विषय में दोनों भक्तमालों के साक्ष्यों की तुलना की गई है।

जिस प्रकार नाभादास जी को अग्रगुरु ने भक्तमाल लिखने की आज्ञा दी थी उसी प्रकार राघोदास जी को भी गुरु की आज्ञा से ही रचना करने की प्रेरणा मिली। टीकाकार चतुरदास ने इस बात को इस प्रकार लिखा हैः-

अग्रगुरु नाभा जू कौआज्ञा दीन्हीं कृपाकरि प्रथमहि साखि छपै कीन्ही भक्तमाल है।
तैसें प्रहलाद जी विचारि कही राघौ जु सौं करो संत आवली बातयौं रसाल है।
लई मानि करी जानि धरे आनि भक्त सब नृगुन अगुन षट द्रसन विसाल है।
साखि छपै मनहर हूंइंदवै अरैल चोपै सवैया छन्द जानियै हंसाल है[२२]।

वास्तव में प्रहलाद जी राघोदास के दादा गुरु थे। अतएव राघोदास को यह आज्ञा उनके दादा गुरु द्वारा मिली थी।

वर्ग क - पीपा जी,

नाभा०: पीपा प्रताप जग वासना नाहर कौ उपदेश दियो ।।
प्रथम भवानी भक्त मुक्ति मांगन कौ धायौ ।।
सत्य कह्यो तिहि शक्ति, सुदृढ़ हरिशरण बतायो ।।
श्री रामानंद पद पाइ, भयौ अति भक्ति की सींवा ।।
गुण असंख्य निर्मोल संत धरि राखत ग्रींवा ।।
परसि प्रणाली सरस भई सकल विश्व मंगल कियो ।।
पीपा प्रताप जग वासना नाहर कौ उपदेश दियो[२३]।।

२२- भक्तमाल राघोदास टीका छं० सं० २६३ पूर्वार्द्ध।

२३- भक्तमाल रूपकला सटीक ना० छं० ६१।

राघौ०- पीपै सिंघ प्रमोधियो जगत बात विख्यात है ।
देवी द्वादश बरष सेय करि मांगत मुक्ती ।।
सक्ति साच कहि दई लाभ मनकरि हरि भक्ती ।।
श्री रामानंद गुरु धारि करी अति भजन अनूपा ।।
परचा पद परसिद्ध धरे उर संत सरूपा ।।
परस पिछौ पै सरस पुनि जन राघव आक्षात है ।।[२४]
पीपै सिंघ प्रबोधियो जगत वात विख्यात है ।।

दोनों ग्रंथो में एक ही प्रकार के निम्नांकित प्रसंगों का विकास हुआ है-

(क) पीपा जी का किसी नाहर या सिंघ को उपदेश देना ।

(ख) किसी देवी या "भवानी" की आराधना करना ।।

(ग) उसी देवी द्वारा मुक्ति का मार्ग केवल रामानंद स्वामी के शिष्यत्व से ही सुलभ बतलाना ।

(घ) पीपा द्वारा गुरु की प्रणाली स्वीकार करना ।

उपर्युक्त दोनों छप्पयों में शब्द साम्य, वाक्य साम्य तथा भाव साम्य के निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य है-

ना० भ० नाहर को उपदेश दियौ ।
रा०भ० पीपै सिंह प्रमोधियो ।
ना० भ० प्रथम भवानी भक्त मुक्ति मांगन को धायो ।
रा० भ० देवी द्वादस वृख सेय करि मांगत मुक्ती ।
ना० भ० सत्य कह्यो तिहि शक्ति, सुदृढ़ हरिशरण बतायो ।
रा० भ० सक्ति सांच कहि दई, लाय मन करि हरि भक्ती ।
ना० भ० श्री रामानन्द पद पाइ ।
रा० भ० श्री रामानन्द गुरु धारि ।

२४- भक्तमाल राघोदास मू०छ० सं० २६९ ।

ना० भ०   परसि प्रणाली सरस ।

रा० भ०   परस पिछौ पै सरस ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यत्किंचित् अंतरों के साथ शब्द और भाव प्रायः वही हैं ।

राघोदास जी के भक्तमाल में पीपाजी के विषय में एक मनहर छन्द अलग से उद्धृत है[२५] जिसमें एक ऐसी कथा आई है जिसका उल्लेख नाभादास जी के भक्तमाल में नहीं है, वह यह कि पीपाजी की पत्नी "सीता" कामदेव पर विजय पाकर अपने स्वामी के साथ "कामरी" पहन कर राज्य भोग को तिलाञ्जलि देकर चली आई[२६]।

<u>अग्रदास-</u>

नाभा०   अग्रदास हरि भजन बिन काल वृथा नहि बित्तयो ।
    सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आये ।
    सेवा सुमिरण सावधान चरण राघव चित्त लाये ।
    प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर ।
    रसना निर्मल नाम मनहुं बर्षत धारा धर ।
    (श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्ति दत्त, मन बच क्रम करि अटल दयो ।
    अग्रदास हरि भजन बिन, काल वृथा नहिं बित्तयो[२७]।।

२५- ऐसो सूरबीरन सरीर संक मानै नैक पीपो जी प्रचंड नवखण्ड मध्य गायये हैं ।
सीताजी सदन तजि मदन को मार्यो मान, नगन ह्वै नाची तिहूं लोक मैं सराय ये ।
छांड़ि दीन्हा भोग मछि स्वामी संग चली मछि कामरी कमाहि सिर मांगि भिक्षया पाय ये ।
राघवा रतीक प्रसि पीपो जी पारस अंग उद्धरे हैं ताके संग अनंत बताय ये।
-भक्तमाल राघोदास, छ० २७७।

२६- दे० यह प्रसंग प्रियादास जी की टीका सं० ९८६ भक्तमाल नाभादास सटीक ।

२७- भक्तमाल रूपकला सटीक नाभादास छ० सं० ० ४१ ।

राघौ॰ अग्रदास आगर भयो, हरि सुमिरण पण प्रेम की ।
बहुत बाग सौं प्रीति रीति हरि की जिन जानी ।।
नीदै गोरै आप आप पर बाहै पांणी ।
जो उपजे फल फूल सोई परभू को अरपै ।।
साध लखिन सर पुरख भगत भगवंत सो हरपै ।
राति दिवस राघो कहै उदम करत नित नेम कौ ।।
अग्रदास आगर भयो हरि सुमिरण प्रन प्रेम को[२८]।

दोनों ग्रंथों में अग्रदास जी के विषय में निम्नांकित प्रसंगों का विकास हुआ हैः-

(क) अग्रदास जी भगवंत स्मरण में ही अपना समय व्यतीत करते थे ।

(ख) बाग बगीचे से उन्हें अधिक प्रेम था । अपने हाथ से बाग बगीचों की सफाई किया करते थे ।

दोनों छन्दों में शब्द साम्य तथा भाव साम्य द्रष्टव्य हैः-

ना॰ भ॰ सेवा सुमिरण सावधान ।
रा॰ भ॰ हरि सुमिरण पण प्रेम की ।
ना॰ भ॰ प्रसिध बाग सौं प्रीति ।
रा॰ भ॰ बहुत बाग सौं प्रीति ।
ना॰ भ॰ राघव चित लाये ।
रा॰भ॰ रात दिवस राघो कहैं ।

निम्नांकित अंतर का स्थल भी दर्शनीय हैः-

नाभादास के भक्तमाल में "कृष्णादास" की सेवा से ही अग्रदास ऐसे हुए, किन्तु राघोदास के भक्तमाल में उनका नाम नहीं है । इसके अतिरिक्त राघोदास के भक्तमाल में एक छंद और उद्धृत है जिसमें "भूपतिमानंद" अर्थात् मानसिंह के आगमन तथा नाभादास की उपस्थिति का भी वर्णन है जो

२८- भक्तमाल राघोदास छं॰ सं॰ ३४४ ।

भक्तमाल में नहीं है । वह छन्द इस प्रकार है:-

भूपति मानद रस्मन आवत वाग छयो दर है सु सिपाही ।
पात बुहारि गए जन डारन भीरहि देखिस बैठि रहांही ।।
नाभहि आय प्रनाम करी जल नैन भरे परवाह वहांही ।
देखि रह्यो नृप हारि गयो दिग खीजत चाकर आप कहांही ।।[२९]

विशेष:- इसी भाव को प्रियादास ने अपनी टीका के कवित्त सं० १३२ में लिखा है

कील्हदेव

गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं काल वश ।।
रामचरण चिंतवनि रहति निशदिन लौ लागी ।
सर्व भूत शिर निमित, सूर, भजनानंद भागी ।।
सांख्य योग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल ।
ब्रह्म रंध्र करि गौन भये हरि तन करनी बल ।।
सुमेरदेव सुत जग विदित, भू विस्तार्यो विमलयश ।
गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं काल वश ।।[३०]

स्वै इच्छा भीखम गवन त्यूं कील्ह करण त्यागौ सरीर ।।
राति दिवस हरि भजै, पलक नहिं अंतर पारै ।
जेते प्राणी भूतनाथ सिर पाप निपारै ।।
नाग डसे त्रियवार जहर नहिं चढ़्यो लगारा ।
सांख्य जोग मजबूत चले हैं दसवें द्वारा ।।
राघो बल परब्रह्म कै सुत सुमेर ये सरस धीर ।
स्वै इच्छा भीखम गवन त्यों कील्ह करण त्याग्यो सरीर ।।[३१]

२९- भक्तमाल राघोदास दादू पंथी छं० ३४५ ।

३०- भक्तमाल नाभादास सटीक (रूपकला) छं० ४० ।

३१- भक्तमाल राघोदास छं० सं० ३४० ।

दोनों ग्रंथों में कील्ह देव की विषय की समान घटनायें इस प्रकार हैं-

(क) गंगापुत्र भीष्म को जैसे मृत्यु स्वे इच्छा से विनाश न कर सकी उसी प्रकार कील्ह देव को भी काल अपने वश में नहीं कर सका ।
(ख) राति दिवस प्रभु के चरण कमलों का स्मरण किया करते थे ।
(ग) सांख्य शास्त्र तथा योग शास्त्र इन दोनों मतों के सिद्धान्तों का अनुभव था ।
(घ) इच्छा से ही मृत्यु को अपनी प्राप्त हुए तथा दोनों ग्रंथकारों ने इन्हें सुमेर देव का सुत स्वीकार किया है ।

इन उपर्युक्त प्रसंगो में निम्नांकित शब्द साम्य तथा भाव साम्य के स्थल दर्शनीय हैं-

ना० भ० "सांख्य योग मत सुदृढ़ कियो" ।
रा० भ० " सांख्य जोग मजबूत चले ।"
ना० भ० " सुमेर देव सुत जग विदित"
रा० भ० " सुत सुमेर के सरसधीर"
ना० भ० " सर्वभूत शिर निर्मित"
रा० भ० " जेहो प्राणी भूत नाथ"

इसी प्रकार राघोदास जी ने "गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं" का "स्वै इच्छा भीखम गवन" तथा "ब्रह्म रंध्र करि गौन" का "चले है दसवें द्वार" केवल शब्द परिवर्तन मात्र किया है, भाव वही हैं ।

राघोदास जी के भक्तमाल में निम्नांकित नवीन प्रसंगों का विकास हुआ है, जबकि नाभादास जी इस विषय में मौन हैं:

(१) किसी सांप के डसने पर भी उसका प्रभाव कील्हदेव पर नहीं हुआ ।
(२) "राघोदास" के भक्तमाल में एक विशेष छन्द का उल्लेख हुआ है जिसके प्रसंग नाभादास के भक्तमाल में नहीं पाये जाते, वह छन्द इस प्रकार है :-

कील्ह करस्म सरस्म(:)समर्थक यों परमेसुर पैज सुधारी ।
कामन क्रोध न मोह न मच्छर नृप भल है निज आतम तारी।।

नाम नृदोख उचार कियो अस दोख मिटै दस देह क भारी ।
राघो कहै परचौ भयु प्रिमर्ख(?) गूदरि नैक टरै नहि टारी ।।

भक्तमाल राघौदास, इन्दव छन्द ३४१

तुलसीदास

नाभा० कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीक "तुलसी" भयौ ।
त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन ।।
इक अक्षर उद्धरै ब्रह्म हत्यादि परायन ।
अब भक्तनि सुख दैन बहुरि लीला विसतारी ।।
रामचरन रस मत्त रटत अहि निसि व्रतधारी ।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नवका लयौ ।।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, वाल्मीक तुलसी भयौ[३२]।।

राघौ० तुलसी राम उपास की रामचरित वरनन कर्यौ ।
बालमीक कियो संस्कृत श्रीफल सम जानौ ।।
भाषा दाष समान पात परिश्रम मति मानौ ।
नर नारी सुख भयौ प्रेम सौं गावै निसदिन ।।
पातिक सब कटि जात सुनत नृमल तन मन जन ।
भक्त जगत निसतारनै नाम रूप बोहिथ धर्यो ।।
तुलसीराम उपास की रामचरित बरनन कियो[३३]।।

कासी मधि काम जित तपोधन जोग चित अति उग्रतेज तप भयो तुलसीदास को ।
मगन महंत गति वाणी को विचित्र अति रांम रांम रांम सतिवृत स्वासै सांस को।
जत सत सावधान अमृत कथा को पान हरि की कृपासूं वै हजूरी भयौ पास कौ ।
राघौ कहै रांम कांम अर्प्यो तन धन धांम गह्यौ मन मैन एक अटल अकास कौ[३४]।।

दोनों ग्रंथों में तुलसीदास जी के विषय में नीचे लिखे हुए समान

३२- भक्तमाल रूपकला सटीक छ० सं० १२९ ।
३३- राघौदास भक्तमाल छ० सं० ३५८ ।
३४- वही, " " ३५९ ।

प्रसंगों का विकास हुआ है:-

(क) तुलसीदास जी ने वाल्मीकि के समान ही रामचरित्र का वर्णन किया तथा उसी तरह भगवान की लीला का गान किया ।

(ख) अहिर्निश रामनाम का स्मरण करने में लीन रहने वाले थे ।

(ग) संसार को पापों से मुक्त करने के लिए नाम रूप की सुगम नौका प्रस्तुत की ।

इसके अतिरिक्त राघोदास जी के भक्तमाल में कुछ विशेष बात का विकास हुआ है जो इस प्रकार है:-

(क) काशी में रहने वाले "कामजित" तपस्वी उग्रतेज वाले थे तथा रामनाम की रटना में तन, मन, धन सब अर्पण किया ।

उपर्युक्त छन्दों में निम्नांकित शब्द तथा भाव साम्य के स्थल दर्शनीय हैं:-

ना० भ० " अब भक्तनि सुखदैन "

रा० भ० " नर नारी सुख भयो "

ना० भ० " संसार अपार के पारको सुगम रूप नौका लयौ ।"

रा० भ० " भक्त जगत निस्तारनै नाम रूप बोहिथ धर्यौ ।"

इसी प्रकार नीचे की पंक्ति का केवल शब्द परिवर्तन देखने योग्य है । भाव एक ही है ।

ना०भ० कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बालमीक तुलसी भयो ।
त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन ।।

रा०भ० तुलसी राम उपास की रामचरित बरनन कर्यो ।
वालमीक कियो संस्कृत श्रीफल सम जानौ ।।

ना०भ० "इक अक्षर उद्धरै बृह्म हत्यादि परायन"
"पातिक सब करिजात सुनत नृर्मल तन मन जन"

<u>व्यासजी</u>

नाभा० उत्कर्ष तिलक अरु दाम की, भक्त इष्ट अति "व्यास" के ।
काहू के आराध्य मच्छ, कच्छ, नरहरि सूकर ।

बामन, फरसा धरन, सेतु बंधन जु सैल कर ।।
एकन के यह रीति नेम नवधा सौं लाये ।।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ाये ।।
नौगुण तोरि नुपुर गुह्यौ महत सभामधि रास के ।।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ भक्त इष्ट अति व्यास के[35]।

राघौ० यौं नाव न बिसरे नैंकहूं हरिवंश गुसाई हरि ह्रिदै ।
ता सुत व्यास विचित्र बड़ो परमारथ कीन्हौ ।।
धरम कर्म सौं हैं रहित भक्ति को स्वारथ लीन्हौं ।
पद गावत पापी हसे कर मिष्टी हिरके कांन ।।
नाम कबीर रैदास कौ व्यास दियौ तहां मान ।
जन राघो कारण रांम के जन धन तजै न अपनौ सिर दै ।
यौं नाम न विसरै नैकहू हरिवंस गुसाई हरि ह्रिदै[36]।।

व्यास गुसांई विमल चित बाना सौ अति सै बिनै ।
चौबीसौ औतार अधिक करि साध विसेखे ।।
सर्व दीप मधि संतति ते सर्व गुरु करि लेखे ।
बन्यौ जु महंत समाज तहां नृखि नौ गुन तौरयो ।।
नूपुर गुहै निसंक कान्ह के चरण चहोरयो ।
यह राघो रीति बड़ेन की धन कै तांई देखिते ।।
व्यास गुसांई विमल चित बांना सौ अति सै बने[37]।।

दोनौं ग्रंथों में व्यास जी के सम्बन्ध में निम्नांकित समान प्रसंगों का विकास हुआ है ।

(क) व्यास जी को वैष्णव वेष तिलक तथा कंठी माला से विशेष प्रेम था ।

३५- भक्तमाल सटीक छ० संख्या ९२ ।
३६- भक्तमाल राघोदास छं० सं० ६६५ ।
३७- वही, " " ६६६ ।

(ख) हरि भक्तों को अपना इष्ट देव मानते थे ।

(ग) रास करते हुए किसी समय (राधा के) नूपुर टूट जाने पर उसे अपने जनेऊसे गुहा ।

उपर्युक्त समान प्रसंगों के साथ साथ इनके शब्द तथा भाव साम्य के स्थल दृष्टव्य हैः-

नाभा० "नौ गुण तोरि नुपुर गुह्यो महत सभामधि रास के "।

रा०भ० "भन्यो जु महत समाज तहां नृखि नौ गुन तोर्‌यो" ।।

"नूपुर गुहे निसंक कान्ह के चरण चहोर्‌यो" ।

इन साम्यों के अतिरिक्त दोनों ग्रंथों में जो अन्तर है वह नीचे दिया जा रहा है -

(क) राघोदास जी ने व्यास जी कों दो छप्पयों में वर्णन किया है जबकि नाभादास जी ने संक्षेप में ।

(ख) राघोदास जी ने लिखा है कि अपने पदों में (व्यास जी ने) कबीर और रैदास का बड़ा सम्मान किया है । इसका निराकरण तो यह हो सकता है कि कदाचित् इन्होंने व्यास का निम्नांकित पद देखा था -

इतनो है सब कुटुम हमारो ।
सैन, धना अरु नामा पीपा और कबीर रैदास चमारो ।
रूप सनातन को सेवक, गंगल भट्ट सुढारो[३८]।

नाभादास जी ने व्यास जी को "सुकल सुमोखन" का पुत्र लिखा है जबकि राघोदास जी ने उन्हें हरिवंश का पुत्र बताया है । वास्तव में ये "सुमोखन" के ही पुत्र थे इसपर आगे विचार किया गया है ।

सूरदास-

नाभा० "सूर" कवित सुनि कौन कवि, जो नहि सिर चालन करै ।।
उक्ति, चोज, अनुप्रास वरन अस्थिति, अति भारी ।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अदभुत तुक धारी ।।

३८- भक्त कवि व्यास -वासुदेव गोस्वामी पृ० १९६ से उद्धृत ।

प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी ।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ।।
विमल बुधि गुन और की, जो गुन श्रवननि धरै ।
"सूर" कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै[39]।।

राघौ०- सुणात सूर की कवित्त कवि सिर धुनै धनि धनि करै ।
रामायण भागौत भक्ति दसधा सुणि सारी ।।
परसताव को पुंज चोज चुणि काटी न्यारी ।
सकल पराकृत संसकृत सिंधु सम भयो सुवायो ।।
करुणा प्रेम वियोग आदि अनुक्रम सौ गायो ।
वालमीक कृत व्यास जन राघव पटतर धरै ।
सुनत सूर की कवित्त कवि सिर धुनै धनि धनि करै[40]।।

दोनों ग्रंथों में सूरदास जी के विषय में निम्नांकित समान बातों का विकास हुआ है:-

(क) ऐसा कौन कवि है जो सूर की कविता को सुनकर अपना सर न हिलाता हो ।

(ख) उनकी कविता में नवीन, नवीन उक्तियां चौज, आदि का यथार्थ वर्णन हुआ है ।

उक्त वर्णनों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा भाव साम्य के स्थल दर्शनीय है-

ना०भ० "सूर" कवित्त सुनि कौन कवि, जो नहि सिर चालन करै ।।
रा०भ० "सुणात सूर की कवित्त कवि सिर धुनै धनि धनि करै"।।
ना०भ० "उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन, अस्थिति अति भारी"।
रा०भ० "परस्ताव" को पुंज चोज चुणि काटी न्यारी"।।

३९- भक्तमाल रूपकला सटीक छं० सं० ७३ ।
४०- राघोदास भक्तमाल छं० सं० ६८६ ।

उपर्युक्त साम्य के अतिरिक्त दोनों ग्रंथों के वर्णनों में थोड़ा अन्तर है जो इस प्रकार है:-

नाभादास जी ने उनकी प्रशंसा में लिखा है कि प्रभु ने उनके हृदय में दिव्य दृष्टि दी, जिससे प्रभु लीला के वर्णन में सफलीभूत हुए तथा राघोदास जी ने लिखा है कि करुणा तथा वियोग का गान अच्छी तरह किया, इनकी काव्य प्रतिभा वाल्मीकि तथा व्यास के समान थी। इसके साथ ही साथ नाभादास जी ने "सूर" शब्द से उनकी प्रशंसा की है तथा राघोदास जी ने "सागर सूर" शीर्षक से।

द्वितीय वर्ग

रामानन्दी सम्प्रदाय की परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन-

नाभा० श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो।
देवाचारज द्वितीय महामहिमा हरियानंद ।।
तस्य राघवानंद भए भक्तन को मानन्द।
पत्रावलम्ब पृथ्वी करी काशी स्थायी ।।
चारि वरन आश्रम सबहीं को भक्ति दृढ़ाई।
तिनके रामानंद प्रगट विश्वमंगल जिन्ह वपु धर्यो ।।
श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो[४१]।।

राघो० यम रामानुज कै पाटि पटंतर देवाचारज।
देवाचारज कै दिप्यो हंस हरियानंद आरज ।।
हरियानंद करि हेत राघवानंद निवाजै।
ताके रामानंद महंत महिपुर मणि वाजै ।।
अब राघव रामानंद के हैं अनंतानन्द शिष्य बड़े।
एकादश शिष्य और है आदि पधति अनुक्रम पढ़ौ[४२]।।

४१- भक्तमाल रूपकला सटीक छं० सं० ३५।

४२- भक्तमाल राघोदास छं० सं० २३५ पूर्वार्ध।

इन दोनों ग्रंथों की परम्पराएं एक ही हैं ।

रामानन्द जी के शिष्य-

नाभा० श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो ।
अनन्तानंद, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पदमावति, नरहरि ।।
पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन सुरसुर की
धरहरि ।।
औरौ शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर ।।
विश्व मंगल आधार सर्वानंद दसधा के आगर ।।
बहुत काल बपुधारि कै प्रणत जनन कौं पार दियौ ।।
श्री रामानंद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जगतरन कियो[४३]।।

राघौ० यम रामानंद प्रताप तै यतने दिग्ग द्वादस महंत ।
अनन्तानंद कबीर सुखानंद सुख मैं बूलै ।।
सुमुरि सुर सुरानंद राम रैदासन भूलै ।।
धना सेन पदमावती पीपा मुनि नरहरि दासा ।।
भावा नंद सुरसुरी कियो हरि धरि में वासा ।।
प्रमारथ कूं अवतरे जन राघो मिलि राम रहंत ।।
यम रामानंद प्रताप ते यतने दिग द्वादस महंत[४४]।।

दोनों ग्रंथों की शिष्य परम्पराओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है केवल क्रम का अन्तर है ।

दोनों में पैहारी के शिष्यों के नाम प्रायः समान है[४५]। केवल उनके क्रम में हेरफेर है । नाभा जी के पहले कील्ह तब अग्र का नाम लिखा है, किंतु राघौदास जी ने अग्र के पश्चात् कील्ह का उल्लेख किया है । परन्तु वास्तव में कील्ह

४३- भक्तमाल रूपकला सटीक छं० ३६ ।

४४- भक्तमाल राघौदास छं० सं० १३६ ।

४५- दे० भक्तमाल नाभादास, छं०सं० ३९ तथा राघौदास छं० सं० ३३९ ।

अग्र से बड़े थे, क्योंकि पैहारी के पश्चात् गलता की गद्दी के अधिकारी बड़े शिष्य होने के नाते कील्ह ही हुए थे।

इसी प्रकार अग्रदास के शिष्यों के सम्बन्ध में भी दोनों के साक्ष्य लगभग एक से हैं। अन्तर इतना है कि नाभादास जी ने अग्रदास के सोलह शिष्यों का उल्लेख किया है जबकि राघौदास ने केवल तेरह का किया है। राघौदास ने अग्र के शिष्यों में नाभा का नाम भी गिनाया है जबकि स्वयं उन्होंने अपनी सूची में अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है।

तृतीय वर्ग

<u>वृन्दावन के भक्त-</u>

नाभा॰ वृन्दावन की माधुरी, इन मिलि आस्वादन कियौ।
सर्वस राधारमन "भट्ट गोपाल" उजागर॥
"हृषी केश" "भगवान" "विपुल बीठल" रससागर॥
"थानेश्वरी जगन्नाथ" "लोकनाथ" महामुनि मधु श्रीरंग॥
"कृष्णदास" पंडित उभै अधिकारी हरि अंग॥
घमंडी "युगल किशोर" भृत्य भूगर्भ जीव दृढ़ व्रत लियौ॥
वृन्दावन की माधुरी, इन मिलि आस्वादन कियौ॥९४॥

राघौ॰ श्री वृन्दावन को मधुररस यन सब हिन मिलि चाखियौं॥
भट्ट गोपाल भू भृति प्रभु मैं सर्वस देखै॥
थाने सुरी जगंनाथ विपुल बीठल रस रेखै॥
रिषीकेस भगवांन महामुनि मधु श्री रंगा॥
घमंडी युगल किसोर जीव भूगरभ उतंगा॥
कृष्न दास पंडित उभै हरि सेवा व्रत राखियो॥
श्री वृन्दावन को मधुररसयन सवहिन मिलि चाखियो॥२९१॥

शब्दों के कृम को छोड़कर और किसी बात में दोनों में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार सन्यासीजी के वर्णन भी राघोदास ने नाभादास के भक्तमाल से यत्किंचित् शब्दांतरों के साथ ले लिया है।

अन्तर-

इतनी समानता होते हुए भी दोनों ग्रंथों में कुछ विशेष अन्तर के स्थल भी उल्लेखनीय हैः-

(क) पहला प्रमुख अन्तर छन्दों के क्रम के सम्बन्ध में है । कलियुग के भक्तों में राघौदास जी ने सर्वप्रथम कबीर का वर्णन किया है जबकि नाभादास में उनका वर्णन ६०वें छप्पय में मिलता है । इसका कारण कदाचित् यह है कि राघवदास ने निर्गुणी संतों को प्रधानता दी है।

(ख) नाभादासजी ने अपने भक्तमाल में चारों प्रमुख सम्प्रदायों के आचार्यों का वर्णन किया है । उनमें से रामानुज सम्प्रदाय में पश्चात् अन्य तीन सम्प्रदायों का नाम मात्र गिना दिया है । सर्वत्र यह उलझन बनी रहती है कि अमुक भक्त किस सम्प्रदाय में दीक्षित है, किन्तु राघौदासजी के भक्तमाल में इसप्रकार की कोई उलझन नहीं है । उन्होंने चारों प्रमुख सम्प्रदायों का अलग अलग विभाजन कर प्रत्येक की विशेषता बतलाई है, उसके पश्चात् तत्सम्बन्धी प्रमुख भक्तों का परिचय दिया है । इस ग्रंथ की उलझन उस समय अवश्य बढ़ जाती है जबकि वे "समुदाई भक्त वर्णन" शीर्षक से भक्तों का उल्लेख दो स्थलों पर करते हैं ।

(ग) तीसरा प्रमुख अन्तर यह है कि नाभादास जी ने समास शैली अपनाई है जबकि राघौदास की शैली व्यास शैली है ।

निष्कर्ष-

दोनों ग्रंथों मे आए हुए उपर्युक्त वर्णनों के अध्ययन के पश्चात् हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुंचते हैंः-

पीपा, अग्रदास, कील्हदास, तुलसीदास, तथा व्यासजी के लिए नाभादास ने प्रायः पूरे पूरे छप्पय की रचना की है किन्तु राघौदास ने उनके लिए दो-दो छप्पयों की रचना की है । किन्तु पीछे तुलना करके यह देखा गया है कि दोनों की घटनाओं में सभी प्रकार से साम्य है । केवल कहीं-कहीं किसी नवीन घटना का समावेश हुआ है जैसे अग्रदास जी के विषय में मानसिंह का मिलन, पीपाजी के विषय में उनकी पत्नी सीता की वार्ता । शेष वर्णनों में कोई अन्तर नहीं है ।

इसी प्रकार राघोदास जी ने कबीर के विषय में चार छन्दों[४६] का प्रयोग किया है, किन्तु विशेषतः दोनों ग्रंथों की घटनाओं में पर्याप्त समानता है। अंतिम दो छन्दों में केवल उनकी प्रशंसा है। इसी प्रकार अन्य भक्तों के सम्बन्ध में भी जहां राघोदास जी ने दो छप्पय लिखे हैं उनमें अधिकांशतः प्रायः प्रशंसात्मक हैं किन्तु सबके इतिवृत्तों में पर्याप्त समानता है।

जहां जहां दोनों ग्रंथों में एक एक भक्त के लिए पूरे पूरे छप्पय उद्धृत है, वहां वहां इतनी अधिक समानता है कि किसी किसी में पंक्ति की पंक्ति दुहराई हुई मिलती है। पीछे सूरदास के प्रसंग में इस प्रकार का साम्य देखा जा सकता है।

राघवदास कृत भक्तमाल के कुछ विचारणीय उल्लेख-

तुलनात्मक अध्ययन करते समय कुछ ऐसी बातें भी मिली हैं जिनका समाधान हो जाना अति आवश्यक है। राघोदास जी ने अपनी भक्तमाल में नन्ददासजी को रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत रक्खा है तथा परमानन्ददास और सूरदास का वर्णन निम्बार्क सम्प्रदाय शीर्षक के अन्तर्गत किया है, पुनः व्यासजी को हितहरिवंश जी का पुत्र लिखा है[४७]। पुष्टिमार्गीय साहित्य के अनुसार नन्ददास, परमानन्ददास तथा सूरदास अष्टछाप के कवि और बल्लभ सम्प्रदायी माने गए हैं। फलतः सूरदास और परमानन्ददास जी के संप्रदाय के सम्बन्ध में पुनर्विचार की आवश्यकता है। जहां तक व्यासजी का प्रश्न है उनके पिता नाभादास जी के अनुसार "सुकुल" थे।

रसिक अनन्यमाल में व्यासजी के चरित्र का वर्णन हुआ है[४८]। इसका रचनाकाल सं० १७१६ के लगभग माना गया है[४९]। इसमें आई हुई व्यासजी के सम्बन्ध में निम्नांकित पंक्तियों में भी उन्हें सुकुल सुमोखन का पुत्र माना गया है:-

---

४६- भक्तमाल राघोदास, छ०सं० २३९-४० और २५५-५६।

४७- वही, " " ६६५-६६।

४८- रसिक अनन्यमाल -भगवत मुदित पृ० ६ -सम्पादक ललिता प्रसाद पुरोहित।

४९- देखो इसी ग्रंथ में अन्यत्र।

सुकुल सुमोखन बड़े कुलीन । राजा परजा सबै अधीन ।।
तिनके पुत्र व्यास कुलवन्त । अति गंभीर कोउ लहै न अंत ।।

षेमदासकृत "जन्मोत्सव बधाई" में भी व्यास जी के पिता का नाम "सुमोखन शुक्ल" ही मिलता है ।

श्री सुमोखन सुकल पूछत, विप्र वरन मनाइ ।
कहिये जू जाकौ भाव-फल, सब जन्म पत्र बनाइ ।।[५०]

उत्तमदासजी ने अपनी रसिकमाल में भी इन्हें सुकुल सुमोखन का पुत्र लिखा है[५१] । व्यास जी ने स्वयं लिखा है "जो हौ सत्य सुकुल को जायो"[५२]। अतएव इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि "सुकुल सुमोखन" ही व्यास जी के पिता थे ।

दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी परम्पराएं प्रायः एक सी हैं । रामानन्द, कील्ह, अग्रदास की शिष्य परम्पराओं का विवरण दोनों भक्तमालों में समान है । केवल अग्रदास के शिष्यों में नाभादास का नाम राघोदास ने जोड़ा है, जो सत्य भी है । इसी प्रकार अनन्तानंद और कृष्णपयहारी की शिष्य परम्परायें प्रायः दोनों ग्रंथों में समान हैं किन्तु विस्तार भय से उनका यहां विस्तृत विवरण नहीं दिया गया है ।

अन्तिम वर्ग के तुलनात्मक अध्ययन से भी यह भली भांति ज्ञात हो जाता है कि सामूहिक नाम वाले सभी छप्पयों में कुछ हेर फेर शब्दों या क्रमों का है अन्यथा दोनों भक्तमालों के वर्णन तथा यत्रतत्र शब्दावली भी समान है ।

<u>राघोदास के भक्तमाल की मौलिकता-</u>

इस भक्तमाल की मौलिकताएं निम्नलिखित हैं:-

५०-प्रेमदास कृत पृ० ४ वासुदेव गोस्वामी भक्तकवि व्यास पृ० ४२ से उद्धृत ।
५१- रसिकमाल- हस्त लिखित ।
५२- भक्तकवि व्यास- वासुदेव गोस्वामी (वाणी संग्रह) पृ० २६१ ।

(१) नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में केवल चतुः सम्प्रदायी भक्तों के विषय में प्रकाश डाला है। नानक, दादू आदि संतों का नाम तक नहीं लिया है। इसके विपरीत राघोदास जी ने अपनी भक्तमाल में चार पंथों का उल्लेख करके उनके प्रवर्तकों के विषय में इस प्रकार लिखा है:-

नानक, कबीर, दादू, जगन राघो परमातम जपे।
नानक सूरज रूप, भूप सारे परकासैं।
मधवादास कबीर, असर सूसर वरखासे।
दादू बुंद सरूप अमी करि सबकौ पोषै।।
वरण निरंजनी मूनें तृखा हरि जीव संतोषौ।
च्यारि महंत चंहु चक्क में च्यारि पंथ निरगुन थपे।।
नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे।।[५३]

श्री नानक गुरू पद्धति चली ताको करौ बखान।
निराकार निरलेप निरंजन नानक मिलिया।।
उनके अंगद भए रामभजि रामहि रलिया।
अंगद को पुनि अमरदास अमरा पद पायें।।
रामदास तापारि राम कै अर्जुन भाये।
हरिगोविन्द हरिराम जनहरि कूपन तजी हद आनजू।।
श्री नानक गुरू पद्धति चली ताकों करूं बखान जू।।[५४]

इसी प्रकार कबीर और उनके अनुयायियों की जानकारी कराने के पश्चात् कवि कबीर पंथ को आगे बढ़ाने वाले शिष्यों की सूची भी प्रस्तुत करता है-

---

५३- भक्तमाल राघोदास ९२८ पूर्वार्ध।
५४- भक्तमाल राघोदास छं० सं० ९३५ पूर्वार्ध।

ज्यूं नारायण नव निरमए त्यूं कवीर किये सिखनव ।
प्रथमहि दास कमाल दुती है दास कमाली ।।
पदमनाभ पुनि त्रितिय चतुरथय रांम कृपाली ।
पंचम षष्टम नीर|खीर सप्तम पुनि ज्ञानी ।।
अष्टम हैं धर्मदास नवम हरदास प्रमानी ।
नव का नव|न रति रन कौ जन राघो कह्यो पयोधि मत ।।
ज्यूं नारायन नव निरमए त्यौं कवीर किय सिखनव[५५]।।

यह सामग्री कहां तक प्रामाणिक है, यह कहना तो कठिन है, किन्तु इतना अवश्य है कि उसे राघोदास जी ने ही मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है । और किसी सूत्र से निर्गुणपंथ सम्बन्धी यह बहुमूलय सूचनाएं नहीं मिलतीं । राघौदास जी दादूपंथी थे अतएव इस पूरे भक्तमाल में दादूपंथियों का जितना बड़ा इतिहास है उतना बड़ा एक जगह मिलना दुर्लभ है । उनके वर्णन में कवि की शैली भी विशेषरूप से जागरूक हो जाती है -"दादू दीन दयाल को धनि जननी एको जन्यो ।" दादू के सम्बन्ध में यह उनके उद्गार हैं । आगे चलकर उन्होंने उनके ५२ प्रमुख सन्तों का नामोल्लेख किया है[५६]।

अंतिम पंथ निरंजनी का भी संक्षिप्त परिचय कवि इस प्रकार देता हैः-

अब राखहिं भाव कबीर को यम एते महंत निरंजनी ।
लपट्यो जू जगन्नाथ स्याम कान्हड़ अनुरागी ।।
ध्यानदास अरु|षेम नाथ जगजीवन त्यागी ।
तुरसी पायो तत्व आन सौं भयो उदासा ।।
पूरण मोहनदास जानि हरिदास निरासा ।

५५- भक्तमाल राघोदास छं० ३४० पूर्वार्ध ।

५६- दादू दीन दयाल के बावन सिख दिग्गज महंत
प्रथम गरीब व मसकीन वाई है सुन्दर दासा ।।
रज्जब दयाल दास मोहन प्यारौ परकासा ।। इत्यादि

राघो संग्रथ रामभजि माया अंजन मंजबी ।।
अब राखै भाव कवीर को यम येते महंत निरंजनी[५७]।।

आगे चलकर प्रत्येक निरंजनी संत का परिचय और उसका निवासस्थान बताया गया है । निरंजनी संप्रदाय के सम्बन्ध में भी यह सामग्री अन्यत्र नहीं मिलती और अप्रकाशित रहने के कारण कभी कभी बड़े बड़े विद्वानों को भी इस संप्रदाय के सम्बन्ध में अनेक भ्रमात्मक कल्पनाओं का आश्रय लेना पड़ता है । इस मौलिकता से कवि का व्यापक दृष्टि-कोण भी परिलक्षित होता है । नाभादास जी के वर्णन का क्षेत्र केवल चतुः सम्प्रदायी भक्तों का था अन्य पंथ वालों की जानकारी उस भक्तमाल द्वारा असम्भव थी वहां इतने संतों का वर्णन कर राघोदास जी ने संत परम्परा के महत्व को प्रकाशित किया ।

इसके अतिरिक्त भी षट दर्शन, संन्यासी दर्शन, तथा जोगी दर्शन (गोरखनाथ आदि नाथ योगी) आदि शीर्षक देकर उन्होंने अन्य अनेक भक्तों के विषय में प्रकाश डाला है जिनका नाभादास या उनके पहले अन्य किसी भी भक्तमाल में उल्लेख भी नहीं है ।

नाभादास जी के समकालीन भक्त मलूक दास[५८] कावर्णन भी राघोदास जी ने किया है, यद्यपि उनके पंथ के अन्य भक्तों के विषय में कुछ नहीं लिखा है। किन्तु नाभा के भक्तमाल में इनका नाम भी नहीं है ।

नाभा के भक्तमाल में प्रारम्भ से अंत तक रचयिता का पता नहीं चलता है किन्तु राघोदास जी ने प्रायः प्रत्येक छन्द में "जन राघो" अथवा कहीं कहीं "राघो" छाप का प्रयोग किया है ।

इसके अतिरिक्त राघोदास जी ने कई प्रसिद्ध तिथियों का उल्लेख किया है जैसे दादू की मृत्यु[५९] तथा ग्रंथ के रचनाकाल का जबकि नाभादास जी तिथियों के सम्बन्ध में बिल्कुल मौन हैं ।

५७- भक्तमाल राघोदास छं० सं० ९६ उत्तरार्ध ।

५८- भक्तमाल राघोदास छं० सं० १२० उत्तरार्ध ।

५९- सोलै सै के साठ में जेठा है शनिवार । कृष्न पक्ष दिन पहर बहुत स्वामी मिले करतार ।
-भक्तमाल राघोदास छं० ९७९ ।

यही वे विशेषताएं हैं जिनके कारण प्रस्तुत ग्रंथ की उपादेयता अधिक बढ़ गयी है ।

चरित्र वर्णन की विशेषताएं

पहले यह दिखलाया गया है कि राघोदास का भक्तमाल प्रारम्भ से लेकर चतुः सम्प्रदाय वर्णन तक एक प्रकार से नाभा के भक्तमाल की नकल है|क्या शिष्य परम्परा, क्या सम्प्रदाय वर्णन, क्या चरित्र वर्णन आदि सभी दृष्टियों से उसका अनुकरण मात्र है, यद्यपि वर्णन की कुछ अपनी मौलिक विशेषताएं इसकी अपनी हैं । भक्तमाल के इन वर्णनों से भक्तों के पूरे जीवन के विषय में नहीं जाना जा सकता अधिकतर उनकी प्रशंसा में एकाध अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है । केवल दादू जी के विषय में कुछ विस्तार से प्रकाश डाला गया है वह भी कई अलौकिक घटनाओं के घटाटोपों से अच्छादित है । नीचे कतिपय स्थल उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देने के लिए उद्धृत हैं किए जा रहे हैं ।

राघोदास जी दादूपंथी भक्त थे । अपने भक्तमाल में उन्होंने लगभग चार सौ भक्तों का वर्णन किया है और अधिकाश चरित्रों का वर्णन एक एक छन्द में किया गया है । थोड़े से ही वर्णन ऐसे होंगे जो दो या उससे अधिक छन्दों क में किये गए हैं|केवल दादू का वर्णन विस्तार से हुआ है । इन वर्णनों में, जैसा ऊपर संकेत किया गया है, केवल अलौकिक घटनाएं है अथवा कई भक्तों का एक एक छन्दों में नामोल्लेख है । जो जिस प्रकार का भक्त है उसका वर्णन उसी प्रकार का किया गया है । क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने वाले मानिकपुर निवासी मलूकदास जी निरगुनियां हैं तथा हिन्दू और मुसलमानों को एक समान समझने वाले हैं/उनका संक्षिप्त वर्णन उनके चरित्र को समझने के लिए पर्याप्त है -

राघो सिरजन हार सौं, कियो मलूक सलूक सति ।
क्षत्रीकुल उतपत्ति बसे माणकपुर मांही ।।
सगुनी नृगुनी भक्त काहु सौं अंतर नाही ।
हिन्दू तुर्क समान एकही आतम देखै ।।
तन मन धन सर्बस्व भक्त भगवन्त के लेखै ।

सहित साई रामरिन ही विखमता नांव प्रति ।।
राघो सिरजनहार सौं कियो मलूक सलूक सति[६०] ।।

अतः दादू-पंथ के प्रवर्तक दादू जी की उपासना-पद्धति का विवरण उद्धृत किया जा रहा है -

दादू दिल दरियाव हंस हरिजन तहां झूलै ।
गगन मगन गलतान राम रसना नहिं भूलै ।।
उपजै महंत मराल मुक्ति मुक्ताहल भोगी ।
रटत भजन बल सील विषै लगि ही दिन रोगी ।।
मनि माना गुरु तिलक नत रहणि राम प्रति पालकी ।
जन राघो छाप छिपै नहीं दादू दीन दयाल की[६१] ।।

दादू जी ने अपनी वाणी द्वारा ज्ञान, भक्ति वैराग्य की महत्ता प्रतिपादित की । "कोटि ग्रंथों" के मंथन के पश्चात् अपना पंथ निर्धारित किया -

दादू जन दिनकर दुती विमल कृष्ट वाणी करी ।
ज्ञान, भक्ति, वैराग्य भाग भल शब्द बतायो ।।
कोटि ग्रंथ को मत्त पंथ संक्षेप लखायो ।
विसुधि बुद्धि अबि/सुद्ध सरवस उजागर ।।
परमानंद प्रकास नास निगडां घमदाधर (?)
बरन बूंद साखी सलिल पद सलिता सागर दरी ।।
दादू जन दिनकर दुती विमल व्रिष्ट वाणी करी[६२] ।।

दादू पंथी होने के कारण राघोदास जी अपने पंथ के प्रवर्तक तथा उनके अन्य शिष्यों के विषय में जो वर्णन किया है वह संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित है । सुन्दर भाषा का चयन, तथा उत्तम भावों का संयोजन

६०- भक्तमाल राघोदास छं० सं० १२० उत्तरार्ध ।

६१- भक्तमाल राघोदास छं० ९९६

६२- वही, ९४७ ।

विशेष प्रतिभा-सम्पन्न भक्तों के विषय में ही देखने को मिलता है। साधारण भक्तों का वर्णन कवि साधारण भाषा तथा शैली में व्यक्त करता है। एक छन्द इस शैली का नीचे उद्धृत किया जा रहा है-

दादू दीन दयाल की संगति ए बाई तिरी।
नेमा की गुरु नेम तहां गुरु दादू पूजै ।
रंभा जमुना जानि गंगा छोड़े भ्रम दूजे ।।
लाड़ा भाणा संतोषी राणी हरि जाणी ।
रुक्मिणि रतनी भले गुरु की रीति पिछाणी ।।
जगत जसोधा जस लियो सीता सांति हृदै धरी ।
दादू दीन दयाल की संगति ए बाई तिरी[६३]।

कभी कभी केवल नामों की गणना करके कवि आगे बढ़ जाता है। कहीं-कहीं तो एक एक पंक्ति में ही भक्तों का गुण स्पष्ट हो जाता है। ऐसे स्थलों पर कवि की सूझबूझ का परिचय मिलता है, उदाहरणतया-

नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे ।
नानक सूरज रूप भूप सारे परकासे ।
मधवादास कबीर असर ऊसर बरखा से ।।
दादू चन्द सरूप अमी करि सबको पोषै ।
वरणि निरंजनी मनूं तृषा हरि जीव संतोषै ।।
ए चारि महंत चहुं चक्क मैं च्यारि पंथ निरगुन थपे ।
नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे ।।१२८।।

इसमें नानक सूरज के समान, मधवादास, कबीर "असर ऊसर बरखा से" दादू अमृत बरसाने वाले चन्द्र के समान तथा निरंजनी सम्प्रदाय की स्थापना करने वाले जगन "हरि जीव की तृषा" मिटा देने वाले हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी प्रतिभा नाभादास से होड़ लेती हुई जान पड़ती है।

६३- भक्तमाल राघोदास छं० सं० ५७ उत्तरार्द्ध।

(२) उत्तमदास का रसिक माल-

उत्तमदास हित वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी कुंजलाल के शिष्य थे । गोस्वामी जी का जन्म सं० १६९६ में माना जाता है । अतएव इस ग्रंथ की रचना सं० १७४०-४५ के मध्य संभव हो सकती है[६४]।

उत्तमदास जी ने अपने ग्रंथ में हित चरित्र तथा उसके साथ साथ रसिक अनन्यमाल (भगवत मुदित) के आधार पर हित जी और उनके प्रमुख शिष्यों का वर्णन किया है। भ्रमवश बहुत से लोगोंने उत्तमदास लिखित हित चरित्र को भगवत मुदित का मान लिया था । कारण यह था कि उत्तमदास कृत "हित-चरित्र" अनेक प्रतियों में भगवत मुदित की रचनाओं के साथ नत्थी कर दिया गया है । यद्यपि भगवत मुदित इसके वास्तविक रचयिता नहीं थे । इस ग्रंथ की दो प्रतियां काशी नागरी प्रचारिणी सभा में हैं । प्रथम का लिपिकाल सं० १८१७[६५] तथा दूसरी का १८३७ है । इन दोनों प्रतियों का पूर्ण परिचय रसिक अनन्यमाल का अध्ययन करते समय दिया गया है । सं० १८३७ वाली सभा के पुस्तकालय की प्रति में पृ० १ से ३२ तक रसिकमाल अथवा हित चरित्र का वर्णन है । दूसरी प्रति भी पूर्ण है। दोनों प्रतियों में उसके उत्तमदास रचित होने का स्पष्ट उल्लेख है । पहली प्रति में लिखा गया है :-

इते रसिक की परिचयी, भगवत मुदित बषान ।
दिग दरसन वत एकठा उत्तम कीने आनि ।। दोहा ३६ पृ० ३२

दूसरी प्रति के अनुसार भी इसके उत्तमदास लिखित होने का प्रमाण है :-

श्री हरिवंश चरित्र बहु, सुने कहि नहिं जाति ।
उत्तमदास लिखे जु, प्रभु प्रेरे है हिय माँहि ।।५५।।

इसके पश्चात् हित जी के प्रमुख शरणागत शिष्यों का वर्णन है ।

६४- हित हरिवंश गोस्वामी-ललिता चरण पुरोहित पृ० २४ ।
६५- सं० १८१७ वाली प्रति में किसी ने सं० १५३० बनाने का प्रयत्न किया है । किन्तु उसी ग्रंथ में पृ० २९ पर उक्त संवत् दिया गया है ।

रसिक माल में वर्णित चरित्र-

जैसा पीछे संकेत किया गया है कि हित जी का चरित्र वर्णन इस ग्रंथ की मौलिकता है । इसके पूर्व हितजी का इतना विस्तृत वर्णन, जिसमें तिथि आदि हों, अब तक नहीं किया गया था । इस ग्रंथ का उपयोग हितजी के विषय में लिखने वाले बहुत से विद्वानों ने किया है ।

रसिक माल में वर्णित हितजी की जीवनी-

हित जी के पिता का नाम व्यास मिश्र तथा माता का नाम तारा था । ये देवबन के रहने वाले थे । व्यास जी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे । इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर तत्कालीन पृथ्वीपति ने "चार हजारी की निधि " दी, जिससे इन्हें जीवन में सुख सुविधा का अभाव नहीं था ।

व्यासजी संतान हीन थे । इनके बड़े भाई नृसिंहाश्रम बड़े भक्त थे । उन्हीं के आशीर्वाद से हितजी उत्पन्न हुए । इसके लिए लिखा गया है कि व्यास ने यह स्वप्न देखा था :-

"मेरे प्रभु अवतरिहैं आई । कहै सुपन मोसे निजभाई ।।"

जिनकी तिथि दोनों प्रतियों में इसप्रकार दी गई है:-

"पंद्रह सै उनसटि संवत्सर । वैसाषी सुदि ग्यास सोमवार ।।
तहां प्रकटि हरिवंश हित रसिक मुकुट मनि लाल ।।

हित जी को "राधा" ने स्वप्न में आज्ञा दी कि द्वार पर स्थित पीपल के वृक्ष की सबसे ऊंची डालपर जो नवपत्र है उसी में "जुगलमंत्र" लिखा गया है, उसका स्मरण करो तथा बगीचे के कुएं में जो "भुजस्वरूप" है, उसकी स्थापना करके पूजा करो । परिणामस्वरूप देवबन में मंदिर की स्थापना हुई । इसी बीच हित जी के पिता का देहान्त हो गया । पृथ्वीपति के बहुत चाहने पर भी हितजी उनके यहां नहीं गये । वहीं उनके तीन पुत्र और एक कन्या हुई । सबका विवाह कर दिया तथा उन्हें अपना शिष्य बना लिया ।

रसिकमाल में बताया गया है कि बत्तीस वर्ष की अवस्था में राधा की आज्ञा से वृन्दावन को चले गये । रास्ते में चड़थावल पहुंचने पर एक ब्राह्मण की दो कन्याओं से विवाह कर उसकी समस्त सम्पत्ति तथा विग्रह सहित वृन्दावन आये । वहां ब्रजवासियों ने उनके हाथ में तीर कमान देकर कहा कि जहां तक तीर फेंक सकें सभी ज़मीन आपकी है । वहीं ऊंचे स्थान पर राधाजी का मंदिर स्थापित करके संवत् १५९१ की कार्तिक शुक्ल एकादशी को महोत्सव किया ।

संवत् १८३७ वाली प्रति में पृष्ठ ३० पर इनके निधनकाल का इस प्रकार उल्लेख है +

ऐसे ही श्री हरिवंश गुसांईं । महल पधारे सो सब गाईं ।।
दोहा- संवत् सोरह सौ नव कातिक पून्यो स्वछ ।
तादिन श्री हरिवंश व सुदीसत नहिं जग अछ ।।७।।

अन्य संतों का वर्णन-

हित चरित्र के अतिरिक्त इन्होंने निम्नांकित भक्तों के चरित्रों का वर्णन किया है -

(१) नरवाहन (२) मोहनचन्द (३) छबिलदास (४) व्यासजी (५) स्वामी हरिदास (६) प्रबोधानन्द सरस्वती (७) नाहरमल (८) बीठलदास (९) मोहनदास (१०) सेवकजी ।

इनमें से प्रायः सभी चरित्रों का वर्णन रसिक अनन्यमाल में हुआ है तथा सभी प्रमुख घटनाएं भी वही हैं । अतएव इन चरित्रों के समान प्रसंगों का आधार अन्यत्र ढूंढ़ना व्यर्थ है ।

आधार-

नाभादास का भक्तमाल इसके पूर्व रचा गया था तथा उसमें हरिवंशजी के चरित्र का वर्णन भी है ,किन्तु उसमें और उत्तमदास जी के लिखे चरित्र में कुछ भी साम्य नहीं पाया जाता । इसका प्रमुख आधार "रसिक अनन्यमाल" है और

"रसिक अनन्यमाल" में वर्णित हितजी के समान प्रसंग श्री जयकृष्ण जी द्वारा रचित "हितकुल शाखा" तथा प्रियादास की टीका में पाये जाते हैं। दोनों ग्रंथों के प्रसंगों में कहाँ तक साम्य है, इसपर आगे विचार किया जा रहा है।

(३) जयकृष्ण जी कृत "हित कुल शाखा"[६६]

इस ग्रंथ का रचनाकाल सं० १६६० है।

संवत सत्रह से चालीस, वरस अधिकहैं सब सुख बीस।

कातिक सुदि तेरस कुल साखा। मथुरा मधि पूरन मह भाखा।

इस ग्रंथ में हित जी का चरित्र, उत्तमदास जी के चरित्र से बहुत संक्षिप्त है। दोनों ग्रंथों के समान प्रसंग नीचे दिए जा रहे हैं।

(क) दोनों ग्रंथों में जन्म संवत्, सेवास्थापना संवत्, तथा निकुंजगामन संवत्, क्रमशः १५५९, १५९१ तथा सोरह सौ नौ (१६०९) दिए गए हैं।

(ख) देव बन में तीन पुत्र तथा एक कन्या का होना दोनों रचयिताओं ने स्वीकार किया है।

(ग) चिड़थावल ग्राम में दो ब्राह्मण कन्याओं का विवाह तथा विग्रह प्राप्ति की कथा का संकेत दोनों ने किया है। अन्तर केवल यह है कि "हित कुल शाखा" का विवाह वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त है।

अन्तर-

(१) उत्तमदास ने देवबन की कथा में हरिवंश के पिता का विस्तार से वर्णन किया है, जबकि हित कुल शाखा में यह वर्णन छोड़ दिया गया है।

(२) उत्तमदास ने देवबन में राधा से पुत्र प्राप्ति, एवं कूप से द्विभुज-स्वरूप की प्राप्ति का वर्णन किया है, किन्तु जयकृष्ण ने यह वर्णन छोड़

६६- इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि बहुत प्रयत्न करने पर भी न मिल सकी। अतएव इस ग्रंथ के लिए कई ग्रंथों की सहायता लेनी पड़ी, विशेषतः-
(क) हित हरिवंश गोस्वामी - ललिताचरण गोस्वामी
(ख) राधा बल्लभ सिद्धान्त और साहित्य, विजयेन्द्र स्नातक
(ग) रसिक अनन्यमाल - ललिताप्रसाद पुरोहित

दिया है ।

(३) हितजी के कुटुम्बियों का वर्णन जयकृष्णदास ने अधिक विस्तार से दिया है ।

दोनों रचनाओं में इतना अधिक साम्य मिलने से सिद्ध होता है कि या तो दोनों का कोई एक तीसरा स्रोत होगा या फिर परवर्ती होने के कारण उत्तमदास की सामग्री जयकृष्ण ने ज्यों का त्यों ले लिया होगा ।

महत्व -

उत्तमदास ने हितजी के वंशजों के विषय में प्रकाश नहीं डाला था । इसकी कमी हित कुल शाखा ने पूरी की । कुछ विशिष्ट घटना का वर्णन जिनका संकेत ऊपर किया गया है मौलिकता तथा विशेषता है । इस प्रकार से इसका ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है ।

प्रियादास की टीका तथा उत्तमदास के हित-चरित्र की तुलना

इन दोनों ग्रंथों में केवल एक ही प्रसंग का साम्य है । वह यह है कि हितजी के वृन्दावन जाते समय परोक्ष रूप से हरिया राधा द्वारा कदाचित् स्वप्न में एक ब्राह्मण को अपने दोनों कन्याओं का विवाह हित जी के साथ करने की आज्ञा मिली । नीचे दोनों रचनाओं से साम्यसूचक स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं ।

प्रियादास-

आये घर त्याग, राग बढ़्यो प्रिया प्रीतम सों,
विप्र बड़ भाग हरि आज्ञा भई जानियै ।
तेरी उभै सुता, व्याह देवौ, लेवौ नाम मेरौ,
इनको जो वंस सो प्रसंग जग मानिये ।

(भक्तमाल, सटीक पृ०सं० ३६५)

उत्तमदास-

व्यास सुवन हरिवंश जी, वृन्दावन कौ जात ।
दोउ सुता दै धन सहित, सुपन कही यह बात ।।

हस्तलिखित प्रति पृ० ५

"हित चरित्र"का रचना काल अनुमानतः १७४०-४५ है तथा प्रियादास की टीका सं० १७६९ में लिखी गई है। अतः बहुत संभव है कि टीकाकार ने उक्त प्रसंग की सूचना हित चरित्र पर दी हो अथवा दोनों का कोई अन्य स्रोत रहा होगा।

रसिक माल की विशेषताएं -

इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता हित जी विषयक तिथियों का उल्लेख है, इसके अनुसार उनका जन्म १५५९[67], निकुंज गमन १५९१[68] तथा मृत्यु संवत १६०९ में हुई[69]। आधुनिक विद्वानों ने उक्त तिथियाँ प्रामाणिक मानी हैं। बहुत से लोगों ने यह लिखा है कि उत्तमदास ने हित जी के निंकुज गमन का वर्णन नहीं किया है। किन्तु पीछे इस विषय का उनका छंद उद्धृत किया गया है *, अतएव मतभेद की आवश्यकता नहीं रह जाती। हित जी के अन्य प्रसंगों का उल्लेख भी इनके पहले किसी ने नहीं किया *, अतएव उपयुक्त दोनों दृष्टियों से उसका अपना अलग महत्व है।

(४) चन्ददास कृत "भगतबिहार"

संत चन्ददास जी ने कई अच्छे ग्रंथों की रचना की है। इनके विषय में पत्रिकाओं में कुछ लेख भले लिखे गये मिलते हैं[70] किन्तु पर्याप्त

६७- राधावल्लभ सिद्धान्त और साहित्य- डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० ९८ में इसी तिथि की मान्यता दी गई है।

६८- (क) वही पृ० १०८

(ख) श्री हित हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य पृ० ५१ ललिताप्रसाद पुरोहित ने निकुंज गमन की तिथि यही ठीक ठहराया है।

६९- (क) भागवत् सम्प्रदाय पृ० ४२३

(ख) राधा वल्लभ सिद्धान्त और साहित्य-स्नातक जी पृ० १३४

(ग) श्री हित हरिवंश गोस्वामी - ललिता चरण गोस्वामी पृ० ५२ उक्त तीनों ग्रंथों में यही तिथि निश्चित की गई है।

७०- दे० डा० शिवगोपाल मिश्र "चन्द्रसखी के संबंध में" ब्रजभारती वर्ष १६ अंक २, संत कवि चन्ददास की एक नवीन रचना "श्रृंगार सागर", सम्मेलन पत्रिका आषाढ़-भाद्रपद १८८२ शक, "संत कवि चन्द्रदास", बजभारती, भाद्रपद सं० २०१४, संत चंददास कृत "भक्त विहार" में मीरा बाई का उल्लेख ~~पूर्व शीर्षक से~~, ब्रजभारती अंक ४ वर्ष १५।

रूप से कोई अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया गया है। इनका जन्म हंसुवा (फतेहपुर) ग्राम में हुआ था। ये सहगल खत्री परिवार के थे। इनके पिता का नाम साहबराय तथा पितामह का नाम बसंतराय था। इसका उल्लेख इन्होंने अपने ग्रंथ "राम विनोद" में इसप्रकार किया है -

गंगा यमुना मध्य में हंसध्वज को ग्राम।
हंस पुरी शुभ नाम तेहि, तहां कियेउ निजधाम।।
बसंत राय मम पितामह, पिता सो साहबराय।
सहगल खत्री बंश यों कृत शरीर सुख पाय[७१]।।

इनके विषय में कहा जाता है कि खत्री परिवार में पैदा होने के कारण शराफी (रूपये के लेन देन) का कार्य करते थे। कुछ पैसे के लेन देन में गड़बड़ी हो जाने के कारण इनको "अपार" मार पड़ी। फलतः घर से बाहर चले आये, साधु वेष में एक झोपड़ी डालकर रहने लगे[७२]। इन्होंने अपने आश्रम का वर्णन इस प्रकार किया है -

हंसपुरी स्थान ध्यान तंह हरि को कीन्हो।
त्याग विषय बस भोग जोग की माला लीन्हों।
संयम नेम सुधार पान पत्र पान सो दीन्हों।
सुरसरि यमुना मध्यबास आदि उत्तम चीन्हों।
पत्री वरन विवेक देह धर भक्ति बढ़ाई।
रघुबर सुयश विनोद चंद्र कल कीरति गाई।

- ब्रजभारती पृ० २७ से उद्धृत

डा० मिश्र के कथनानुसार हंसुवा ग्राम से थोड़ी दूर पर स्थित एक समाधि है - कहा जाता है कि इस भक्त ने बैशाख बदी २ सं० १८९८ सोमवार के दिन

७१- "संत कवि चन्द्रदास" ब्रजभारती पृ० २७ से उद्धृत।
७२- खोज रिपोर्ट १९२०-२२ पृ० ५१।

जीवित समाधि ली थी[७३]। आज भी इस समाधि के संरक्षण के लिए ८-१० बीघे ज़मीन माफ़ी मिली है। इस समय भी हंसुवा में क्षत्रियों का एक पूरा मुहल्ला है।

रचनाएं-

चन्ददास ने निम्नलिखित कि ११ गृंथों की रचनाएं प्रस्तुत की हैं:-

(१) रामविनोद सं० १८०४ (२) कृष्णाविनोद १८०५ (३) यदुवीर सुयश (भागवत दशम स्कंध) (४) भागवत गीता ज्ञान सं० १८०६ (५) भक्तबिहार १८०७ (६) शिवसारंगाध्यावली सं० १८११ (७) विष्णुसहस्त्रनाम (८) भाषा प्रबन्ध पंचांग (९) काम कौमुदी (१०) साखी तथा (११) रागमाला।

भगतबिहार-

शिवगोपाल मिश्र ने इसकी एक प्रति की सूचना दी है, जिसकी प्रतिलिपि सं० १८९० में वेनी कवि द्वारा की गई है। इस गृंथ में १०० पृष्ठ हैं।

प्रस्तुत अध्ययन साहित्य सम्मेलन की हस्तलिखित प्रति पर आधारित है[७४]। यह प्रति सम्पूर्ण है और ३०१ पृष्ठों में लिखी गई है। गृंथ के प्रारम्भ के कुछ पन्नों में दीमक लगने से कई जगह के शब्द स्पष्ट नहीं हैं। इस प्रति में अन्य युगों के भक्तों के अतिरिक्त कलियुग के लगभग १२५ भक्तों के नामों का उल्लेख है। यह गृंथ ८२ सर्गों या विभागों में विभाजित है। प्रत्येक विभाग के अन्त में इस प्रकार का उल्लेख है :-

इति श्री भक्त विहार गुनाद विसर्द हरन पाप सेखं दायक पुम सर्वललित ललितां ब्रह्म विद्या जोग सुखद संपदा सिध मुक्तं प्रदानां श्री चन्ददास कृत भाखा प्रबंध श्री युगुल साधु अनुराग वरनं नाम -------अध्याय। इस प्रकार लिखकर जिस कवि के विषय में वर्णन प्रारम्भ होता है उसके नाम में अनुराग का वर्णन प्रारम्भ होता है।

७३- ब्रजभारती, पृ० ५

७४- कृम सं० २५ वेष्ठन सं० १३१३।१९९२।

कथाक्रम-

इस ग्रंथ में भक्तमाल ही के अनुकरण पर भक्तों का वर्णन है - पहले अन्य युगों के भक्तों का संक्षेप में कुछ परिचय के साथ नामोल्लेख है।यह क्रम लगभग १४० पृष्ठ तक चलता है । पृ० १४१ रामानन्द जी से कलियुग के भक्तों का अनुराग लिखा गया है । प्रारम्भ में ग्रंथ में आए हुए भक्तों की पृ० सं० तथा उनके नामों का भी उल्लेख है ।

ग्रंथ में आए हुए भक्त-

ऊपर कहा गया है कि इस ग्रंथ में लगभग १२५ कलियुग के भक्तों का वर्णन है जिसमें निम्नांकित नामों को छोड़ कर प्रायः सभी नामों का ह उल्लेख नाभा जी के भक्त माल में हुआ है:-

(१) गुरु नानक (२) कुंतलदास (३) अचरजदास (४) हरिवल्लभ (५) वृद्मराज (६) राजनारायणदास (७) रामरतन (८) उतंक जू (९) भगवान-अली (१०) भृगुजु (११) सदन कसाई (१२) राजाराम (१३) कोला आला (१४) दधी जू (१५) राजनाथ (१६) तीछीदास (१७) समन जू (१८) मलूकदास (१९) राम दास पृ० २९४ (२०) वजीदाखान (२१) मिरज़ाखान (२२) हरिदास (२३) चन्दसखी(२४) जानकीदास (२५) चन्ददास

रचनाकाल-

प्रस्तुत ग्रंथ में रचनाकाल के रूप में सं० १८०७ का उल्लेख इस प्रकार है:-

समो अठारह से कृत ध्यानन । अपर सपत बरनी बर आनन ।
सावन सुकुल पछ रवि वासर । बरनी कथा सुधार मरावर ।।

-- -- --

चन्ददास का भगतबिहार और नाभादास का भक्तमाल

भक्त बिहार के उपर्युक्त नामों को छोड़कर प्रायः सभी नाम तथा कुछ प्रसंग

७५- प्रस्तुत ग्रंथ में रचनाकाल सं० १८०७ का उल्लेख इसप्रकार है -

भी नाभादास के भक्तमाल से मेल खाते हैं । कथा कृम भी भक्त नाभादास के भक्त माल की तरह ही प्रयोग किया गया है - पहले अन्य युगों के भक्तों का वर्णन फिर कलियुग के भक्तों का वर्णन । नाभादास ने अपने भक्तमाल में केवल कुछ भक्तों के प्रसंगों का संकेत मात्र ~~वर्णन~~ किया है किन्तु भक्तबिहार में सभी प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है । ये प्रसंग प्रायः प्रियादास की टीका की तरह लिखे हुए मालूम होते हैं । यह रचना प्रिया दास की टीका के बाद की है, अतएव उससे ही प्रभावित अवश्य है । ~~अतएव~~ नीचे ~~उसने~~ टीका ~~से~~ तथा भक्तबिहार की तुलना की गई है ।

भक्तबिहार तथा प्रियादास की टीका

दोनों ग्रंथों में वर्णित भक्तों के प्रसंगों में बहुत निकट की समानता है । इस स्थल पर केवल तीन भक्त सेन, माधवदास तथा मीराबाई के सम्बन्ध में दोनों ग्रंथों मे समान प्रसंगों से तुलना की गई है - जो इस प्रकार है:-

सेन-

दोनों ग्रंथों में सेन के विषय में निम्नलिखित प्रसंगों का विकास हुआ है । किसी विशेष साधु मण्डली के आ जाने पर राजा की सेवा में अनुपस्थित होना तथा प्रभु का सेन का रूपधारण कर उसकी सेवा करना, महाराज द्वारा सारी बात मालूम होने पर क्षमा-याचना ~~करना~~ ।

अन्तर-

केवल इतना अन्तर है कि भ०वि० राजा का प्रसन्न होकर आभूषण देना, तथा उनको प्रभु का साक्षात् दर्शन मिलने की कथा का विशेष वर्णन है । इसप्रकार टीकाकार ने इनको बांधवगढ़ का नृप लिखा है, जबकि भ०वि० में इसका उल्लेख नहीं है । दोनों ग्रंथों में वाक्य तथा भाव के समान स्थल दृष्टव्य है ।

टीका- "बांधौ गढ़वास, हरि साधु सेवा आस लागी ।"

भ०वि० "सेवा साधू दीनता, भगत प्रेम दिठ अंग ।"

भ०वि० "टहल बनाय करी, नृप को न संक धरी ।"

टीका "करम टहल हरि को जसगावै ।"

टीका "फेरि कैसे आये ? सुनि अति हीं लगाये ।"

"कहो सदन पधारे, सन्तभई यौं अवार दै ।"

भ०वि० आये साध अनेकगृह तहां रहे मलुक दास ।

सेवा दीन निधानलख, दीजै मोहिन आस ।।

<u>माधोदास-</u>

माधवदास जी के विषय में दोनों ग्रंथों में निम्नलिखित समान प्रसंगों का विकास हुआ है ।

(१) अपने घर को त्यागकर जगन्नाथ पुरी आना ।

(२) बिना भोजन के रहने पर प्रसाद की थाली मंदिर से आना ।

(३) पण्डों द्वारा बेंत से मारा जाना तथा बेंतों का जगन्नाथ जी की पीठ पर उपटना ।

(४) शीत लगने पर जगन्नाथ जी का "सकलात" देखकर रक्षा करना ।

(५) रोगी होने पर प्रभु की स्वयं सेवा करना ।

(६) किसी पंडित के साथ ज्ञान चर्चा करना ।

नाभादास के भक्तमाल की टीका चन्ददास के "भक्तबिहार" के उपर्युक्त प्रसंगों में शब्द साम्य, वाक्य साम्य, तथा भाव साम्य के स्थल दृष्टव्य हैं ।

भ० भा० टी०- "माधौदास दिज तिया तन त्याग किया

तातै तज दियो गेन + +

भ० वि०- (क) माधवदास विलास तज, भये भक्त दृढ़ ज्ञान,

विप्र वंश तारन अवनि, बरनत वेद पुरान,

(ख) तजगृह वार सो बंधन आसा ।

टीका - "दियो सैन योग, आप लक्ष्मी जू लै पधारी

हाटक की थारी भन भन पांव धारियै ।

खेलत क्वार पार देखिये न सोच परयो ।"

भ०वि० (१) अरध निसा ठाकुर चलि आये ।

निजकर थार असन सुभ लाये ।

(२)"करतखोज महि, थार, न पावै, साधधाम व्रत धावन धावै ।"

टीका- "कर्यो लै जतन ढूंढ़ि, वाही ठौर पायौ है ।"

भ०वि० "ढूंढ़त सदन आरतिन पाये, बांध हाथ बहु त्रास दिखाये ।"

टीका- "ल्याये बांधि मारी बेंत, धारी जगन्नाथ देव, भेव ~~चिन्ह~~

जब जान्यो पीठ चिन्ह दरसायो है ।

भ०वि० बेंत प्रहार अंग अपि कीन्हो,

\+ + +

लागे दासन बेंत तन वोलत गिरा कलेस ।

टीका - सुनो बात प्रभु कोपि उठे,

दई सकलात आनि प्रीति हिय भाई है ।

भ०वि० - अरध निशातन सीत जनायेउ, कंप गात लोचन जल छायौ ।

जगन्नाथ सकलात दे हरे सीत भय त्रास ।

दोनों ग्रंथों के वर्णनों में इतनी समानता होते हुए भी निम्नलिखित अंतर के स्थल दृष्टव्य हैं:-

(क) टीका में भिक्षा मांगने पर, बुढ़िया द्वारा दिए हुए कपड़े की बात, भक्त "बाई" को प्रभु का शिशु रूप में दर्शन देना, वैश्य भक्त के घर जाना, वृन्दावन में चने का भोग लगाना, तथा खेम का चुराकर खाने वाली खीर में कीड़े दिखलाना आदि प्रसंग भ०वि० में नहीं लिखे गए हैं । उसी प्रकार भक्त बिहार में राजा के घर पुत्र होने का बरदान देने के प्रसंग का भक्तमाल में उल्लेख नहीं है ।

<u>मीरांबाई-</u>

दोनों ग्रंथों में मीरांबाई के विषय में निम्नलिखित प्रसंगों का विकास हुआ है -

ससुराल जाते समय गिरधारी लाल को मांगना, माता-पिता का सहर्ष भेंट करना, ससुराल पहुंचने पर वहां वालों का देवी के सामने शीश झुकाने के लिए

प्रयत्न करना । मीरां का इन्कार करना, सासु के कहनेपर राणा का उनका निवास स्थान अलग बनवाना, साधुओं के आगमन से परिवार वालों को कष्ट, ननद द्वारा समझाने का प्रयत्न करना, विष का प्रभाव न होना, बातचीत सुनकर राना का तलवार लेकर दौड़ना, किसी को निश्चित स्थान पर न पाकर राना का क्रोध शान्त होना, विषयी साधु की क्षमायाचना करना, तानसेन का अकबर के साथ आना आदि ।

इन प्रसंगों में निम्नलिखित शब्द साम्य, वाक्य साम्य तथा भाव साम्य के स्थल दृष्टव्य हैं :-

टीका "पगे गिरिधारी लाल पिता ही के धाम में"

भ०वि० (१) प्रेम सों गिरिधर लाल सो, अर्प्यो सर्व शरीर ।

(२) "पंच बरस सो भक्ति बढ़ाई
गिरिधरलाल प्रीति अधिकाई

टीका "राना कै सगाई भई, करी व्याह सामा नई"

भ०वि० "रानापुत्र तासु पति कीन्हो"

टीका "देवो गिरिधरलाल जौ निहाल कियौ चाहौ"

भ०वि० "गिरिधर लाल देव तुम रानी"

टीका पहुंची भवन सासु देवी पै गवन कियौ तिया अरु बर
गंठ जोर्‌यो करे भाय कै ।

भ०वि० सासु पास ततखन चलि आई । मंगल रीति तिन्है समुझाई ।
प्रथम चलो सारद मठ बाला । पूजा मन बच रचकर माला ।
देवी भवन संघ लै आई । राना बधू गिरा समुझाई ।

टीका - "करौ जिनि हठ सीस पायन पै राखियै ।"

भ०वि० "नावौ सारद सीस तुम, लेव असीस निधान ।

टीका- "गई पति पास "यह बधू नहीं काम करे "
अबही जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै?" भरै स्वास चाम की"

भ०वि० "पुत्र बधू मम कान न कीन्हीं ।
प्रति उत्तर अबहीं रस भीनी ।।

टीका- "राना सुनि कोप कर्यो"

भ०वि० "राना सुनत महा रिसि आनी"

टीका- "आय कै ननद कहै," गहै किन चेत भाभी?
साधुनि सों हेतु मैं कलंक लागै भारियै"

भ०वि० "राना सुनत लजाय उर, आवत साधू गेह
आइ नन्द सो तासु ढिग, बरनन गिरा सनेह"

टीका "सुनि कै कटोरा भरि गरल पठायदियौ। लियौ करि पान रंग
चढ्यौ यो निहारियै"

भ०वि० "गरल घोर कृत गिरा बखानी ।
महाप्रसाद दयो तेहि रानी।।"

टीका- विषयी कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ
कियौ यौंप्रसंग"मोसौं अंग संग कीजिये"

भ०वि० "एक बार साधू तहं आयो । विषयी विषयवान मन लायो ।

टीका "संतन समाज मैं बिछाय सेज बोलि लियौ"
"संक अब कौन निसंक रस भीजियै"

भ०वि० दै अमोल रस, गिरा बखानी ।
मीरां सेज रचत रस सानी ।।

\+ + +

तज संका उर आय समानौ ।
गिरिधर लाल दूर जनि जानौ ।।

टीका- "रूप की निकाई भूप "अकबर" भाई हिये लिए संग तानसेन
देखिबे को आये हैं ।"

भ०वि०- "सुबस संत जन सर्व समानी ।
अकबर साह कथा यहु जानी ।।
तानसेन लै तहां पधारे ।
तिलक माल छापा रच सारे ।।

निम्नलिखित अन्तर के स्थल दृष्टव्य है-

(१) चन्ददास जी के अनुसार मीरां मानसिंह की बहन थीं ।

"मानसिंह औनीपति की भगिनी मीरां मीर"

किन्तु टीकाकार ने "मेरतौ" जन्म भूमि का ही उल्लेख किया है ।

(२) मीरां को पांच वर्ष की ही अवस्था मे ही गिरिधर के प्रति अनुरक्ति हो गई थी तथा सात वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ था । अकबर और तानसेन ने भ्रम के कारण मीरां के घर को वृन्दावन समझा । राणा क अपनी बहिन मीरां को अपने घर लाए । इन बातों का उल्लेख टीकाकार ने नहीं किया है । इसी प्रकार टीकाकार ने मीरां और जीवगुसाईं के प्रसंग का उल्लेख किया है जबकि चन्ददास जी इस विषय में मौन हैं । प्रियादास ने मीरां की मृत्यु द्वारिका में हुई, ऐसा उल्लेख किया है जबकि भक्त बिहार में मृत्यु का प्रसंग नहीं आया है ।

निष्कर्ष-

भक्त बिहार और टीका के समान प्रसंगों से तुलना करने पर दोनों ग्रंथों में बहुत निकट का साम्य परिलक्षित होता है । ऊपर केवल मीरांबाई, माधोदास तथा सेन के संबंध में दोनों ग्रंथों के समान प्रसंगों की तुलना की गई किन्तु इसी प्रकार का साम्य अन्य अनेक भक्तों के प्रसंगों में है । उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:-

रामानन्द, नामदेव, कबीरदास, रैदास, पीपा, धना, सुखानंद, जैदेव, श्रीधर, त्रिलोचन, ज्ञानदेव, करमाबाई, मामा भानजे, हंस भक्त, सदाव्रती, कालीरानी, नित्यानंद, त्रिपुरदास, सनातन, हरीराम, हरीदास, सूरदास भुवन चौहान, ग्वाल भक्त, निष्कंचन, रघुनाथ, जसवन्त, भूप भाणि, गुंजामराली, गनेशदेई, नरबाहन, रसिकमुरारी, सदन कसाई, खोजी, रांका-बांका, पृथ्वीराज, जैमल, तुलसीदास, गोकुलदास, गदाधर भट्ट, पृथ्वीराज भूप, मधुकरशाह, नृतक नरायन, मदन मोहन सूर, अग्रदास तथा कृष्णदास आदि ।

उपर्युक्त तीन भक्तों के सम्बन्ध में जो इतना साम्य है उनमें से मीरा के विषय में चन्ददास जी ने जो उल्लेख किया है कि मीरा मानसिंह की बहन थी, विचारणीय है, क्योंकि इनके पहले किसी इतिहास में तथा किसी अन्य भक्त चरित्र में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है। इतिहासकारों के अनुसार मीरां मेड़ते के राठौर राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थी[७६]। मीराबाई की शब्दावली में इस प्रकार उल्लेख है:-

(क) "राठौरा की धीयड़ी जी सीसोधा के साथ।
ले जाती बैकुंठ को म्हारो नेक न मानी बात[७७]।

(ख) ये बेटी राठौड़ की थां ने राज दिया भगवान[७८]।

(ग) मेड़तिया घर जनम लियो है मीरां नाम कहीयो[७९]।

इस प्रकार से हम स्पष्ट कह सकते हैं कि मीरांबाई का कहीं भी मानसिंह की बहिन के रूप में उल्लेख नहीं है।

मीरां सम्बन्धी और प्रसंगों में इतना साम्य देखते हुए यह भी स्पष्ट है कि एक ही प्रकार की भूलें दोनों ग्रंथों में पाई जाती हैं। अकबर का मीरांबाई से मिलना, ऐतिहासिक दृष्टि से एक असम्भव घटना है, इस पर प्रियादास की टीका के प्रसंग में विस्तार से विचार किया गया है। माधोदास तथा सेन के प्रसंग प्रायः समान हैं।

अतएव दोनों ग्रंथों में इतनी निकटता देखकर प्रसंगों के आदान प्रदान के विषय में प्रश्न उठता है। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि या तो दोनों ग्रंथकारों ने एक ही स्थान से सामग्री का चयन किया हो, अथवा

७६- कविराज श्यामलदास -वीर विनोद प्रथम प्रकरण पृ० १०२।
मुंशी देवी प्रसाद- मीरावाई का जीवन चरित्र पृ० ६।
ओझा- उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ९६।

७७- मीराबाई की शब्दावली (वेड वेडियर प्रेस, इलाहाबाद) पृ० ६५।

७८- वही, पृ० ३७।

७९- वही, पृ० ६७।

एक दूसरे के ग्रंथों से उन्हीं प्रसंगों को लेकर जोड़ दिया हो । इस स्थल पर भी अन्य ग्रंथों की तरह रचनाकाल के सम्बन्ध में देखा जाय तो टीका सं० १७६९ की है तथा भक्त बिहार सं० १८०७ में पूर्ण हुआ । अतएव यह हो सकता है कि चन्ददास जी ने उक्त प्रसंगों को प्रियादास की टीका में अवश्य देखा हो ।

भक्त बिहार तथा अनन्तदास की परिचयियां-

दोनों ग्रंथों में पीपा, रैदास, धना, नामदेव, कबीर, रांका-बांका और त्रिलोचन के समान प्रसंग पाए जाते हैं । विस्तार भय से सब भक्तों के विषय में न लिखकर केवल पीपा के समान प्रसंग की तुलना दोनों ग्रंथों में की गई है जो इस प्रकार है -

(१) पीपा जी "गागरौन गढ़" के राजा थे । देवी के बतलाने पर रामानन्द से दीक्षा लिया ।

(२) एक वर्ष बाद कबीर आदि के साथ रामानंद जी मिलने आए ।

(३) पीपा जी अपना राज्य छोड़कर अपनी पत्नी सीता के साथ अन्यत्र चले गए ।

(४) द्वारिका में जाकर भगवान् के दर्शन किए ।

(५) किसी दुष्ट द्वारा अश्व पर सीता के ले जाते समय उसका घोड़ा बीमार होगया अतएव उसने क्षमा मांग ली ।

(६) रास्ते में मिले हुए द्रव्य को त्याग दिया ।

(७) अनेक साधुओं के आने पर विषयी बनिक के घर सीता गई किन्तु उसने अपने अपराध के लिए क्षमा याचना की ।

(८) दही बेचने वाली ग्वालिन की कथा - रूपये के लिए कागज लिखना और स्वयं प्रभु द्वारा रूपया दिया जाना ।

दोनों ग्रंथों में शब्द साम्य, वाक्य साम्य तथा भाव साम्य के स्थल द्रष्टव्य हैं-

भ०वि० (१) मेक बार सपनो लखि लोचन ।
महा अरिष्ट सुख दसन मोचन ।।

\+ \+ \+

देख भास पीपी निश भागे ।

विषम कंदखाथल अनुरागे ।।

परिचयी- अरध राति सोवत के जागा ।

उठि बैठे तब रोवन लागा ।

+ + +

हूं सपने महि आसुर मारा ।।

भ०वि० "जब नृप कहीं मुक्त वर पाऊं । जासो अब जमग्रामें न जाऊं ।

परिचयी- "बार बार विनवउं तमेहीं । सेवग जानि मुक्ति दै मोही ।।

भ०वि० " जो तुम चाहौ मुक्त पद । तौ अब सुनौ विचार ।

जाय बेग कासी कलित । रचौ भक्त सुख सार ।।६७८।

रामानंद राम अधिकारी । ते करिहै प्रभु मुक्ति तुम्हारी ।।

करौ तिन्हें गुरु लै उपदेसा । भजो राम गुन छूट कलेसा ।।

परिचयी- नगर बनारसी रामानंदू । ताके तन मन बहुत अनन्दू ।

सो गुरु करहु बतावइ भगती । निहचै होई तुम्हारी मुक्ती ।।

भ०वि० "महा क्रोध वस बचन बखाने । परै कूप मंह सुमत सयाने ।

सो संवाद श्रवन सुन धायेउ । पीपा तुरत कूप तट आयेउ ।।

परिचयी- "अंध कूप महि गिरिधरि जाई ।

जीवन रहै तो दक्षा दीजै ।

नातर तेरो नाव न लीजै ।।

+ + +

पीपौ चलै कुंवा महि अना ।

एक बार मरि बहुरि न मरना ।

भ०वि०- जो तज वसन ग्रीम फिर आवैं ।

नगिन अंग उर लाज मिटावै ।।

सो सुमुखी निजु सेवक जानौ ।
चलै संघ बानी तेहिं मानौ ।।
सुन सुन बचन बसन +

+ + +

चली विमुख होय मंदिर मांही ।
कीरत त्याग महा खल जैसे ।।
लघुनारी प्यारी सकल ।। सीता ताको नाम ।।
तज सकोच तन + ।। तिन कीन्हो विहस प्रनाम ।।

परिचयी – तब रामानंद कांवरि मांगी ।
सुंदरि देवि पिछौडी भागी ।।
+ + +

आभूषन सब धरै उतारी ।
जो सग चलौ सु पहिरौ नारी ।।
सुंदरि कहै ऐसी न होई । और कहै हम करि हैं सोई ।
सबते लहुरी सीता रानी । सो चलि आई और न मान्ही ।
सीता कौ मन देष्यौ साचौ । स्वामी कहै नगन कौ नाचौ ।

भ०वि० "विषय बनिक विलोक मुख ।
बोलेउ गिरा प्रवीन ।।
निसा आय मम सदन वर ।
होव भोग अधीन ।।

परिचयी – "एक बानियो बिठ्ठाई भारी ।
तिहि हकराई सीता नारी ।।
ऐक निसा समीप है मोहीं ।
जो मांगौ सो देहौं तोहीं ।

भ०वि० "दिव्य बसन भूषन पहिनाये ।
बरखा देख साथ लै आये ।।
+ + +

बहुर रूप लख बोलत बानी ।
केहि प्रकार अहई निश रानी ।।
बरखत नीर छटा घन गर्जत ।
दादुर बदन निसान सो बाजत ।।
तब तिन कहीं संघ पत आये ।

परिचयी- बासर गत रजनी पैसारू ।
सीता सती कियौ सिंगारू ।।
निशि अँधियारी बरसै मेहा ।
सीता चली साह के गेहा ।।
+ + +
बनिया बूझै कहरी माई ।
सूके पग तू कांकरि आई ।
सीता सहचरि उत्तर दीनौ ।
हरषि नाम पीपा कौ लीनौ ।

और भी अनेकों स्थलों पर इस प्रकार से पक्ति की पंक्ति एक ही प्रकार के भाव तथा शब्द तथा भाव साम्य से लिखी गई है ।

अन्तर-

परिचयी में उपर्युक्त समान प्रसंगों के अतिरिक्त भी बहुत से प्रसंग लिखे हैं जिनका उल्लेख चरणादास जी ने नहीं किया है । उदाहरण स्वरूप - सूरज सेन सम्बन्धी अनेक प्रसंग तथा तेली के जिलाने का, गूजरी को धन देने का, श्रीरंग के यहां जाने का, पांच गांवों में एक ही समय निमंत्रण में उपस्थित होने आदि का प्रसंग ।

निष्कर्ष-

इसी प्रकार की समानता कबीर, रैदास, त्रिलोचंद, रांका-बांका, नामदेव आदि के प्रसंगों में पाई जाती है । इन प्रसंगों में भी यही हो सकता है कि परिचयी से, जिसकी रचना सं० १६४५-५७ के बीच हुई, प्रसंगों को लेकर भक्त बिहार में संत चन्ददास जी ने जोड़ दिया है ।

(५) रामदास जी का भक्तमाल

रामदास का संक्षिप्त परिचय-

इनका जन्म बीकू कोयर अर्थात् जोधपुर के बीको कोर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम शारदूल जी था[८०]। जो पहले से ही भक्त थे। रामदास जी का जन्म सं० १७८३ में फाल्गुन बदी १३ को हुआ था[८१]।

दीक्षा गुरु- इन्होंने पहले बारह गुरुओं से दीक्षा ली, किन्तु इनको संतोष न हुआ-

"द्वादस गुरु फिर फिर किया, लिया मत मिल्या सजोई।"

अंत में किसी ने हरिरामदास के विषय में बताया जो रामसनेही पंथ की "खेड़ापा" शाखा के प्रवर्तक थे। रामदास जी ने सं० १८०९ में सिंह थल में उक्त महात्मा से दीक्षा ग्रहण की, जिसका उल्लेख श्री रामदास परिची में इस प्रकार हुआ है-

समत अठारो भक्त - भक्त आयो।
नौके वर्ष पदारथ पायो ।।
मास वैसाख शुक्ल पख मही।

"राम सनेही पंथ" के अनुयायी राजस्थान में बहुत हैं। ये लोग अपना सम्बन्ध श्री रामानन्द जी से इस प्रकार जोड़ते हैं:-

सम्पदा प्रथम रामानन्द प्रसिद्ध करी।
साढ़े बारा शिष्य मुख्य अनंतानन्द जान जू ।।

८०- सादू नाम लकार सिंघता। धन धन पिता पुत्र जन्मंता ।।
अणभी उदर लियो अवतारा। बीकू कोयर नगर मंझारा ।।

८१- जन्म भयो सत्रह समत, वर्ष तपास्यों जान।
फागन वदि तेरस सुदिन, धिन धिन समय प्रमान ।।
-परिची विश्राम ३९ ।

कर्म चन्द शिष्य भए, ताके देवाकर ।

द्वितीय मालवी पूर्ण तासु दामोदर मान जू।

नारायण मोहन जासु नमो माधव दास ।

तासु सुन्दर चरण जैमल प्रणाम जू ।

पाट हरिराम ताके रामदास उजागर ।

निर्गुण भक्ति करी चाल गुरु ज्ञान जू ।।

— श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश पृ० ३१० ।

ये लोग राम के नाम को निर्गुण ब्रह्म मानकर आराधना करते हैं । इनकी शाखाएं शाहपुरा खेडापा और रैड़ा में अवस्थित हैं । शाहपुरा की शाखा रामचरण जी से चली । इनका जन्म सम्वत् १७७६ में हुआ था । खेड़ापा की शाखा हरिरामदास जी से चली है । इन्होंने १८०० मे जैमलदास से दीक्षा ली थी । रामदास जी इन्हीं हरिराम के शिष्य थे +, तथा इन्होंने ही १८२२ में खेड़ापे की गद्दी की स्थापना की थी[८२]। इनके अनेक शिष्य हुए ।

मृत्यु-

इनकी मृत्यु सं० १८५५ में हुई थी ।"श्री राम परिची"में इनकी मृत्यु का उक्त संवत् इस प्रकार है -

संमत अगरै तास मध । वर्ष पंच युग जीय ।

तिथि सातम आषाढ़ वदि । भौमवार दिन सोय ।।

रचनाएं-

इन्होंने गुरु महिमा, भक्तमाल, चेतावनी, जमकारगती आदि ग्रंथों तथा अंग-बद्ध अनुभव वाणी की रचना की । इसके दास,उदास, शांभवी और बुदश्व चार भेद हैं ।

८२- धर्म प्रकाश ग्रंथ, पृ० १४ ।

रचनाकाल-

इन्होंने रामसनेही सम्प्रदाय में १८०९ मे दीक्षा ग्रहण की थी ।
तथा संवत् १८२२ में खेड़ापे में गद्दी की स्थापना की थी । कदाचित् इसी
के आसपास से उनकी रचना भी चलती रही । अतएव इनका रचनाकाल संवत्
१८२२ से सं० १८४५ तक माना जा सकता है ।

भक्तमाल-

यह भक्तमाल रामदास के अन्य ग्रंथों तथा वाणियों के साथ प्रकाशित
"श्री रामसनेही धर्म प्रकाश" के पृ० २०१ से पृ० २१० तक है । इस ग्रंथ में अन्य
युगों के अतिरिक्त कलियुग के लगभग सवा दो सौ भक्तों के नाम आए हैं । यद्यपि
ग्रंथकार ने इसी ग्रंथ के आदि[८३] और अन्त में[८४] इसे भक्तमाल की संज्ञा दी है ।
किन्तु वास्तव में यह भक्तमाल नामावली ही की तरह है । इसमें भक्तों का
वर्णन जगा जी तथा चैन जी के भक्तमाल से कुछ अधिक तथा प्रायः ध्रुवदास की
भक्तनामावली की तरह ही दिया हुआ है ।

ग्रंथ का प्रारम्भ दो साखियों से किया गया है । फिर ११ चौपाइयों
में रामनाम की महत्ता का वर्णन है *, और आगे भी दो साखियों तथा सात
"निसानी" छन्दों में यही क्रम चलता रहता है । इसके पश्चात् भक्तमाल १२४
छन्दों में समाप्त होता है । इसी मे अन्य युगों के भक्तों तथा कलियुग के भक्तों
का वर्णन आ जाता है । इसमें अन्य युगों तथा कलियुग के वर्णनों में कोई
विशेष क्रम नहीं रखा गया है । राघोदास के भक्तमाल की तरह इसमें भी सभी
सम्प्रदायों तथा भक्तों के नामों का उल्लेख कर दिया गया है । कहीं-कहीं
गुरुओं के साथ शिष्यों का नाम तथा परिचय प्राप्त हो जाता है । किन्तु
यह परिचय एकाध स्थलपर, वह भी अत्यन्त संक्षिप्त रूप में मिलता है । ग्रंथ

८३- रामदास की बीनती, तुम हो अगम अपार ।
भक्तमाल का भेव दो, सत गुरू करौ जुहार ।।

-श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश पृ० २०१ ।

८४- रामदास सन्ता -- सरणाई । भक्तमाल ले शीश चढ़ाई ।
भक्तमाल भगवद् मन भाई । कोटि अनन्त कोटि मिलिया इनमाई ।१२१।।

-श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० २१० ।

के अन्त में लगभग बारह चौपाइयों में अपने पंथ रामस्नेह के विषय में प्रकाश डाला है । जो संक्षिप्त होते हुए भी उपादेय तथा मौलिक है ।

जैसा ऊपर कहा गया है किइस ग्रंथ में सवा दो सौ भक्तों के नामों की माला गूंथी गई है जो इस प्रकार है । इनमें से कुछ प्रमुख भक्त भक्तमाल के निम्न पृष्ठों पर मिलते हैः-

सेन (५२५) सूरजी दास मदन (५५७) सुरसुरानन्द स्वामी(५२९) सुखानंद (२०६) शंकराचार्य जी (३१६) विष्णुस्वामी(२६९) रैदास जी (८७२) रामानुज (२६१) रामानंद भगवान् (२८१) राघवानंद (२९६) रांका बांकी (६३८) योगानंद (३०६-७८३) मुरारिदास(७५१) मीराबाई (७१२) माधवदास(९०७) भुवन चौहान (४३०) भावानंद (२८२) पीपा(४९२) परशुराम (६५१) पयहारी कृष्णादास(७२४) पदमावती (३६४) निम्बार्क स्वामी(२५९) नामदेव (३२२) नरहरिआनंद स्वामी (५३१) नरसी (६७३) धना (५२१) देवा जी पण्डा (४३४) तिलोचन (३८०) झाली जी (६५७) जगतसिंह (८३५) तुलसीदास (७५६) खोजी जी (६३६) कील्हजी अल्हू जी (७९४) कील्हदेव (३०९) कान्हरदास जी (८७३) करमाबाई (४००) अनंतानंद (१९८) अल्हजी (४५८-७९३)

निरंजनी सम्प्रदाय-

हरीदास, जग जीवन, तुरसी आदि । भुवन जगतसिंह, सन्तदास, बालक दास, गिरिधर-दास, किसन दास, सुखराम, घमण्डीराम, चरणादास, खेतदास, हेमदास, टीकमदास । अंत में निरंजनी सम्प्रदाय के - जैमलदास, हरीदास चांदा, सखियाबाई, राम पियारी, दास नरायन, रामदास ।

उपर्युक्त भक्तों मे से बहुत से भक्तों के प्रसंग जिनका नाम नाभादास के भक्तमाल में आया है, उनसे तथा प्रियादास की टीका से मिलते जुलते हैं । ~~नीचे~~ जिन भक्तों के प्रसंगों मे समानता है उन्हें नीचे क्रमशः दोनों ग्रंथों की तुलना करके दिया जाता है ।

रामदास तथा नाभादास के भक्तमालों का तुलनात्मक अध्ययन-

ऊपर बतलाया जा चुका है कि इस ग्रंथ को भक्तमाल की अपेक्षा भक्तनामा वली कहना अधिक उपयुक्त है । जहां कहीं प्रसंगों का संकेत है केवल उन्हीं से तुलना की जा सकती है । इस प्रकार के समान प्रसंग वाले भक्त, नामदेव, धना तथा भुवन चौहान हैं । इनका वर्णन रामदास जी के भक्तमाल की चौपाई ४५, ५१ तथा ९६ और नाभादास के भक्तमाल में कृमशः छं० सं० ४३, ६२ और ५२ में हुआ है । उपर्युक्त भक्तों के सम्बन्ध में दोनों भक्तमालों के समान प्रसंग निम्नलिखित हैं ।

नामदेव-

इनके विषय में केवल मंदिर का द्वार फेरने और विट्ठल को दूध पिलाने में साम्य है । इन दोनों वार्ताओं या प्रसंगों का रामदास जी के भक्तमाल में केवल संकेत मात्र मिलता है । यद्यपि भाव दोनों के एक ही हैं ।

रा०भ० देवल फेर रु दूध पिलाया ।
ना०भ० ग्वालदसा वीठल पानि जाके पियो ।
देवल उलट्यो दीखेस कुचि रह्यो सबही सोती ।

नामदेव के सम्बन्ध में दोनों के साक्ष्यों में यह अंतर मिलते हैं ।

रामदास के भक्तमाल में नामदेव को छीपा लिखा गया है । भगवान् के श्वान रूप धरकर भोजन करने की भी वार्ता का वर्णन इसमें है, जबकि नाभाकृत भक्तमाल में इन प्रसंगों का कोई उल्लेख नहीं है । उसी प्रकार से मृतक गऊ को जिलाने, सलिल से सेज निकालने, तथा पाण्डुरनाथ द्वारा इनके छप्पर छाने की, नाभा के भक्तमाल की वार्ताएं रामदास जी के भक्तमाल में नहीं मिलतीं । इन कथाओं का उल्लेख अनंतदास कृत "नामदेव परिचई" में भी है ।

धना, जाट-

इनके सम्बन्ध में केवल एक घटना का दोनों में समान रूप से वर्णन है कि

खेत में बोने के लिए लाया गया बीज संतों को खिला देने पर भी इनके खेत में उनके अंकुर जम आए । अनंतदास की परिचई में भी धना के प्रसंग में ठीक इसी घटना का वर्णन है ।

रा०भ० संतन के मुख बीज बुहाया ।
 खेती मांहि नाज निपजाया ।।

ना०भ० धन्य धना के भजनकी विनहि बीज अंकुर भयो ।
 घर आये हरिदास तिनहि गोधूम खवाये ।।
 तात मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये ।
 अचरज मानत जगत में कहुं निपज्यो कहुवै वयो ।।

भुवन-

इनके विषय में "दास" की तलवार के "सार अथवा लोहे " की होने का प्रसंग दोनों में समान है । दोनों ग्रंथों में वर्णित प्रसंग निम्नलिखित हैः-

ना०भ० "दारुमयी" तरवार सारमय रची भुवन की"
रा०भ० "भुवन मेव भक्ति का पाया ।
 खांडे खेरतणे लोह वाया ।।९६।।"

इन ग्रंथों के समान प्रसंगों के अतिरिक्त भी दोनों में वर्णन क्रमों तथा गुरु शिष्य परम्पराओं में भी कुछ अन्तर के साथ अनेक समानताएं परिलक्षित होती हैं ; जो इसप्रकार हैं :-

नाभादास जी ने अन्य युगों के भक्तों के वर्णनों के पश्चात् कलियुग के भक्तों का वर्णन किया है । यही क्रम उक्त भक्तमाल का भी है । यद्यपि सत-युग, त्रेता, द्वापर के भक्तों के साथ कलियुग के भक्तों के नाम आएं हैं ; किन्तु वे प्रारम्भ के कुछ पृष्ठों तक सीमित हैं । चतुः सम्प्रदाय तथा विशेषतया रामानंद और उनके शिष्यों के वर्णन में दोनों में अत्यधिक साम्य मिलता है ।

अन्तर-

दोनों ग्रंथों के अध्ययन में निम्नलिखित अन्तर के स्थल भी दृष्टव्य हैं।—

(क) जिन भक्तों का उल्लेख रामदास जी ने अपने भक्तमाल में किया है, उनमें से प्रायः प्रत्येक का वर्णन नाभादास जी ने एक एक छप्पय में किया है। इस प्रकार से जब एक ने कदाचित् अपने को संक्षिप्त परिचय तक सीमित रखा है, तो दूसरे ने उसका अधिक विस्तार देने का प्रयत्न किया है।

(ख) रामदास जी ने अपने भक्तमाल में चतुः सम्प्रदाय के भक्तों के अतिरिक्त अन्य पंथ वालों का भी उल्लेख किया है, जबकि नाभादास ने चतुः सम्प्रदाय के वर्णन तक अपने को सीमित रखा है।

नाभादास के ग्रंथ की रचना नाभादास के भक्तमाल से लगभग सवा सौ वर्ष बाद हुई थी, और अपने ग्रंथ में नाभादास तथा उनके भक्तमाल का इस प्रकार वर्णन किया है।

"बन्दर नामै हरिगुण गाया। भक्तमालकर सन्त सराया ।।७५
जिससे यह ज्ञात होता है कि वे नाभादास तथा उनके भक्तमाल से पूर्ण तथा परिचित हैं।

रामदास का भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका

इस भक्तमाल में बहुत से प्रसंग प्रियादास की टीका से समानता रखते हैं। उदाहरण के लिए तुलसीदास, कबीरदास, पीपा, और भुवन चौहान के प्रसंग लिए जा सकते हैं। इन भक्तों के प्रसंगों का वर्णन भक्तमाल में क्रमशः चौपाई सं० १९, ५३, ५६ तथा ९६ और टीका कं० सं० १२९, २७१, २८९ तथा १९६ में हुआ है। उपर्युक्त भक्तों के विषय में जो समान प्रसंग आए हैं उनका तुलनात्मक अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

तुलसीदास-

तुलसीदास जी के विषय में केवल एक प्रसंग दोनों में समान है। वह यह कि किसी प्रेत ने हनुमान जी से उनका परिचय कराया, जिसके माध्यम से

से प्रभु के चरणों में उनकी प्रीति जगी ।

रा०भ० "भूत मिल्या हरि भेद बताया । हनूमान हरि चरणां लाया ।"

प्रि०टी०-

सौच जल सेस पाय भूतहू विशेष कोउ बोल्यो,

सुख मानी हनुमान जू बताए हैं ।

अंतर केवल यह है कि टीका में बड़े विस्तार से उसका दो कवित्तों में वर्णन है जबकि रामदास ने उसका संकेत भर दिया है ।

कबीर-

इनके विषय में प्रभु का सामान बैलपर लादकर कबीर के घर पहुंचने के प्रसंग में समानता है । दोनों ग्रंथों में इसका वर्णन निम्नलिखित रूप में किया गया है ।

रा० भ० "हुई विणजारा बालद लाया,

सदावर्त दे संत सराहा ।

प्रि०टी० बालद लै धाये, दिन तीनक्यों बिताये ।

जब आए घर डारि दई दई हां आराम को ।।

इस प्रकार पीपा के समुद्र में कूदने के पश्चात् "छापा" लेने तथा भुवन चौहान के काष्ठ की तलवार लोहे की होने के प्रसंग भी दोनों ग्रंथों में समान हैं । अन्तर केवल यह है कि टीका में उसका अपेक्षाकृत अधिक विस्तार हो गया है जो स्वाभाविक है ।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं ।

(क) दोनों ग्रंथों में वर्णित उपर्युक्त भावों के प्रसंगों में इतनी समानता है कि शब्द तथा वाक्य एक से मालूम पड़ते हैं । शेष भक्तों के प्रसंगों में इसलिए भी समानता नहीं मालूम होती है, क्योंकि रामदास जी ने भक्तमाल में केवल नामों की गणना की गई है । इन प्रसंगों की समानता से दोनों ग्रंथों

के सूचनासूत्र एकसे मालूम पड़ते हैं । जहां तक प्रसंगों के आदान प्रदान का प्रश्न है वह विचारणीय है । टीका की रचना सं० १७६९ में हुई,‡ और रामदास के भक्तमाल का रचनाकाल इनके जीवन की अंतिम रचना होने के कारण सं० ~~१६८०~~ १८४० से ४५ के बीच मानना चाहिए । अतएव बहुत संभव है,रामदास ने अपने भक्तमाल में इन प्रसंगों की अवतारणा प्रियादास की टीका के आधार पर की हो ।

रामदास के भक्तमाल की विशेषताएं:-

(१) रामदास जी ने भी किसी भक्त के विषय में किसी भी तिथि का संकेत नहीं किया है ‡ और न तो किसी घटना अथवा प्रसंग का विस्तार से उल्लेख ही किया है । भक्तों की लम्बी सूची से कम से कम उनके समय तक उनके वर्तमान रहने की सूचना प्राप्त हो जाती है ।

(२) इसमें रामस्नेही पंथ के भक्तों की सूची तथा उनकी शिष्य परम्परा विशेषकर (खेड़ापा शाखा की परम्परा) का वर्णन इस ग्रंथ की विशेष देन है ।

ध्रुवदास की भक्तनामावली-

ध्रुवदास जी कायस्थ कुल में पैदा हुए थे । इनका निवास स्थान देवबन्द (सहारनपुर) था । इनके पूर्वज वैष्णव सम्प्रदायी थे[८५]। इनके पिता का नाम श्यामदास तथा बाबा का नाम श्री बीठलदास था[८६] । ऐसा सुना जाता है‡इनके पितामह बीठलदास जूनागढ़ स्टेट के दीवान थे । तथा हरिवंश जी इनके दीक्षा गुरु थे । प्रियादास शुक्ल ने इन्हें अपने भक्तमाल में विजनौर के राजा सोमदेव का नौकर लिखा है[८७]। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ नहीं

८५- कायस्थ कुल देवन के वासी । परम्पराइ अनन्य उपासी ।
श्री गोपीनाथ के शिष्य सुश्रेष्ठ । सेवत राधा बल्लभ इष्ट ।

८६- कल्याण भक्त चरितांक पृ० ३८१ रसिक अनन्यमाल, भगवत मुदित कृत (प्रकाशित प्रति पृष्ठ ७८)

८७- राधाबल्लभ भक्तमाल पृ० ३२८ ।

ज्ञात है ।

दीक्षा गुरु-

आचार्य शुक्ल जी ने तथा बाद के अनेक इतिहासकारों ने ध्रुवदास जी हित हरिवंश जी शिष्य स्वप्न में हुए थे,ऐसा उल्लेख किया है[८८]। किन्तु ये हित हरिवंश जी के द्वितीय पुत्र गोपीनाथ जी के शिष्य थे । इसकी पुष्टि भक्तनामावली के पांच दोहों के पढ़ने से हो जाती है । पहले कवि ने श्री हित हरिवंश जी की वन्दना में दो तथा उनके तीनों पुत्रों के विषय में एक एक दोहा लिखा है । पुनः अपने गुरु गोपीनाथ जी के विषय में निम्नांकित दोहा लिखा है:-

श्री गोपीनाथ पद उर धरै, महागोप्य रससार ।[८९]
बिनु बिलम्ब आवै दियै, अदभुद विहार ।जुगल ।

"रसिक अनन्यमाल"तथा"रसिक अनन्य सार' द्वारा गोपीनाथ ही इनके गुरु थे इसकी पुष्टि हो जाती है[९०] इस प्रकार से अंतर्साक्ष्य तथा वहिर्साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके गुरु गोपीनाथ ही थे ।

जन्म संवत्-

श्री वियोगीहरि ने ध्रुवदास जी का जन्म संवत् १६५० के लगभग अनुमान किया है[९१] । किन्तु ध्रुवदास रचित "रसानन्द" नामक ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १६५० स्पष्ट रूप से दिया हुआ है ।

८८- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १९३ ।

८९- भक्तनामावली राधाकृष्ण दास द्वारा सम्पादित पृ० १ ।

९०- श्री गोपीनाथ के शिष्यनि पृष्ट । सेवत राधा वल्लभ इष्ट ।।
रसिक अनन्यमाल भगवत मुदित कृत प्रकाशित पृ० ७८ ।

९१- इसी प्रकार का उल्लेख गुसांई जबन लाल ने "रसिक अनन्यसार" में किया है ।
~~रसिक ब्रजमाधुरी सार अनन्यसार प्रहस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त नागरी प्रचारिणी सभा~~

रसानन्द को नाम कहावै, कहत सुनत आनंद रसपावै ।

संवत् सौषनोडस पंचासा, बरनत ध्रुव जस जुगल प्रकासा[९२]।।

अतः इस आधार पर इनका जन्म सं० १६५० नहीं हो सकता । राधानंद के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में "प्रेमावली", "सभामण्डल", "वृंदावन सत्" और "रहस्य मंजरी" का रचनाकाल क्रमशः सं० १६७१-१६८६ तथा १६९८ दिया हुआ है । इस प्रकार "रसानन्द" उनकी प्रथम रचना हो सकती है । यदि यह मान लिया जाये कि इस रचना के समय इनकी अवस्था लगभग बीस वर्ष की रही होगी तो इनका जन्म संवत् १६३० होता है ।

वृन्दावन बास-

गोविन्द अलि ने अपनी "अनन्य रसिक गाथा" (पृ० ४७) में लिखा है कि इनको दस वर्ष की अवस्था में ही भक्ति का अंकुर उत्पन्न हुआ तथा कदाचित् इसी समय अपना घर छोड़कर वृन्दावन चले आए । वह पद इस प्रकार है :-

परम पुरातन धर्म मर्म आरज हित गाये ।

ताही मग रस ढरे धाम वृन्दावन आये ।।

हित मण्डल अभिराम श्याम श्यामा जहँ राजै ।

तिन मुख आयसु पाइ मने बहु ग्रंथ समाजै ।।

उमर बरष दसै हृदय मे बाढ्यो प्रेम प्रकाश को ।

कलि सुगम सेतु भवतरन को गाथ बिमल ध्रुवदास की[९३]।।

वे वृन्दावन में ही रहने लगे । वहीं इनकी कविता करने की इच्छा हुई । कहा जाता है कि राधा ने इन्हे कविता करने की आज्ञा प्रदान की । इस अलौकिक घटना का वर्णन भगवत मुदित के शब्दों में इस प्रकार है -

---

९२- बयालीस लीला में संकलित - "रसानंद लीला", पृ० २९६ से उद्धृत ।

९३- रसिक अनन्यमाल प्रकाशित पुस्तक , पृ० ७८ से उद्धृत ।

तब श्री वृन्दावन में आये । जमुना कुंज निरखि सरसाये ।
निस दिन जुगल केलि उरमाहैं । बानी कहि कछु वरन्यो चाहैं ।
सब विधि सैसे प्रवेशन मनकौ । कैसे कह्यो जात गुन तिनकौ ।
देख्यो चाहै इकटक रहै । उर आवै सो मुख नहि कढ़ै ।
खान पान तजि मण्डल पर्यो । देख्यो गुन वरन्यो हठ कर्यो ।
दिन द्वै गयौ तीसरो अर्यौ । तब राधे कौ हिय अकुलायौ ।
आधी राति लात सिर दई । चौंकि पर्यो नूपुर धुनि भई ।
बानी भई जु चाहत कियौ । उठि सो बर तोकौ सब दियौ ।
ऐसे कहि अंतरहित भई । ध्रुव को रति मति बानी भई ।

इन्होंने लगभग ४२ ग्रंथों की रचना की, जिसकी सूची डा० विजयेन्द्र स्नातक ने "राधावल्लभसम्प्रदाय"[९४] में दी है ।

ध्रुव नामावली तथा उसका रचनाकाल-

इस ग्रंथ में लगभग एक सौ छब्बीस भक्तों का नाम दिया हुआ है । इन भक्तों की सूची आगे दी गई है । भक्त नामावली में भक्तों का अधिकतर नामोल्लेख है तथा कहीं कहीं उनका संक्षिप्त परिचय भी दिया हुआ है । यह परिचय ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है किन्तु ग्रंथ का रचनाकाल नही दिया है अतः अन्तर्साक्ष्य के आधार पर जानने का प्रयत्न किया जायगा । एक भक्त जसवन्त सिंह का उल्लेख उसमें इस प्रकार है:-

पूरनमल जसवंत जी भोपति गोविन्द दास ।
हरीदास इन सवन मिलि, सेये नित हरिदास[९५]।।

ध्रुवदास की भक्तनामावली की एक अन्य अपूर्ण हस्तलिखित प्रति हमें नागरी

९४- पृ० ४४१ ।

९५- भक्तनामावली राधाकृष्णदास द्वारा सम्पादित संख्या९४ ।

प्रचारिणी सभा में देखने को मिली । ग्रंथ की पुष्पिका इस प्रकार है:-

"मिती माघ पंचमी सोमवार संवत् १८२० तारीख हरदुम रज्जब १७७७ हिजरी बमुकाम बरेली लाल चन्द कायस्थ कस्बा बरेली खुश वास बरेली[९६]।"

प्रस्तुत प्रति तथा राधाकृष्ण दास द्वारा सम्पादित प्रति में कोई विशेष अन्तर नहीं है । उक्त दोहे की पहली पंक्ति ध्यान देने योग्य है । उर्दू वाली प्रति में दोहों की पंक्ति का पाठ है-

पूरनमल जसवंत जी भूपति गोविन्द दास ।।

इस प्रति में जसवन्तसिंह के साथ भूपति जुड़ा है, जबकि प्रकाशित प्रति में जसवन्त और भोपति दो भक्त मान लिए गए हैं[९७]। किन्तु सम्पादक ने इसी ग्रंथ के पृ० ७२ पर जसवन्त को "राठौर" क्षत्रिय और वृन्दावन वासी" बताया है । अतएव इसमें शंका का स्थान नहीं रह जाता कि ये जसवन्तसिंह दूसरे थे । इन्हीं जसवन्तसिंह के साथ कदाचित् उर्दू प्रतिलिपि में "भूपति" शब्द महाराजा के अर्थ में जोड़ा गया हो । महाराजा जसवन्तसिंह राठौर का उल्लेख नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में किया है[९८]। महाराजा के विषय में पीछे भक्तमाल के रचनाकाल का समय निर्धारित करते समय विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। इनका जन्म सं० १६८३ तथा मृत्यु सं० १७३५ में मानी गई है । ये मारवाड़ के प्रसिद्ध महाराजा थे । अपने पिता गजसिंह की मृत्यु के पश्चात् सं० १६९५ में गद्दी पर बैठे थे ।ये शाहजहाँ के समय में कई लड़ाइयों में जा चुके थे । औरंगज़ेब को इनका सर्वदा भय बना रहता था । बहुत से लेखकों ने इनकी अंतिम रचना "रहस्य मंजरी" संवत् १६९८ की होने के कारण इनका रचनाकाल संवत् १६५० से १६९८ तक तथा इनका निधनकाल सं० १७०० के लगभग माना है । किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि महाराजा जसवन्तसिंह १६८३ में पैदा हुए थे तो १५ वर्ष की अवस्था तक अर्थात् सं० १६९८ तक वे भक्त अथवा भक्त के संरक्षक के रूप में

९६- इस प्रति में इस छन्द की संख्या ५४ है ।

९७- दे० प्रकाशित प्रति, पृ० ७२ ।

९८- दे० भक्तमाल सटीक, छं० सं० १५५ ।

नहीं प्रसिद्ध हो सकते थे । यह भक्त अथवा भक्त केसंरक्षक के रूप में सं० १७१५ तक प्रसिद्ध हुए होंगे जबकि भक्तमाल की रचना हुई थी । और उसमें इनका प्रसंग जोड़ा गया होगा, इस पर हमने पीछे भक्तमाल के रचनाकाल के प्रसंग में विस्तार से विचार किया है । भक्तनामावली की रचना भक्तमाल के बाद या उसी के आसपास हुई होगी, क्योंकि भक्त नामावली के अंतिम दोहें में नारायणदास (नाभादास) का स्मरण इस प्रकार किया गया है -

भक्त नरायन भक्त सब धरे हिये दृढ़ प्रीति ।
बरने आछी भांति सो जैसीजाको रीति[९९] ।।

किन्तु जिस रूप में ~~अमन~~ भक्तमाल आज प्राप्त है वह ध्रुवदास के बहुत पहले का नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें भगवत मुदित का उल्लेख है और भगवत मुदित ने रसिक अनन्यमाल में ध्रुवदास का उल्लेख किया है,इसलिए इन तीनों भक्तों के समय में बहुत अधिक अन्तर नहीं जान पड़ता । ध्रुवदास के उपर्युक्त दोहे में भक्तमाल के रचयिता नारायणदास(नाभादास) का स्मरण किया गया है,इसलिए वे नाभादास के कुछ समय बाद के या अधिक से अधिक समकालीन हो सकते हैं ।

भक्तमाल और भक्तनामावली की तुलना-

भक्तमाल तथा भक्तनामावली में काफ़ी साम्य है । उदाहरण स्वरूप जयदेव, कृष्ण चैतन्य, श्रीधर, रूपसनातन, कृष्णदास, जंगली, घमण्डी, भट्ट नारायण, नंददास, परमानन्ददास, माधो मुदित और खरगसेन आदि के वर्णन दोनों मे मिलते हैं । किन्तु भक्तमाल में इन भक्तों का विस्तार के साथ प्रायः एक एक छप्पयों में वर्णन किया गया है । जबकि भक्तनामावली में केवल नामों की संख्या दी गई है । पुनः भक्तमाल में जहां कहीं भक्तों की उपासना पद्धति आदि के विषय में कुछ संकेत हुआ है, उसका भक्तनामावली से प्रायः साम्य है ।-

नीचे कुछ उदाहरणों के द्वारा यह बात स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है ।

९९- भक्त नामावली प्रकाशित प्रति,दोहा, १०८।

भक्त जयदेव, श्रीधर और कृष्ण चैतन्य जिनका वर्णन नाभादास भक्तमाल में क्रमशः छ० ४४, ५५, तथा ७२ और नामावली में दोहा ८, ११ और १३ में आया है। इन भक्तों के विषय में आई हुई समान वार्ताओं को क्रमशः समानार्थी टुकड़ों में विभाजित कर इस प्रकार रखा गया है -

जयदेव-

भक्तमाल "कोक, काव्य नवरस सरस सिंगार को सागर"।

नामावली "कह्यो महा सिंगार रस सहित प्रेम मकरंद"।

भ०मा० "अष्टपदी अभ्यास करै तेहिं बुद्धि बढ़ावै"।

भ०ना० "अष्टपदी जो कही सुनत फिरै ताके कोहन "।

श्रीधर- केवल भाव साम्य देखिए ।

भ० मा० "परम हंस संहिता विदित टीका विसतार्यो ।"

भ० ना० "तिलक भाव को कियो, सब तिलकन परवान ।"

कृष्ण चैतन्य-

भ० मा० "नित्यानंद कृष्ण चैतन्य की भक्ति दसों दिसि विसतरी"

"गौड़ देस पाखण्ड मेटि कियो भजन परायन"

भ०नामावली(क) "गौंड देस उद्धर्यो पगढ़ कृष्ण चैतन्य"

(ख) "तैसे हैं नित्यानंद जू तिन्ह रस भये अनन्त"

भक्तों के वर्णन तथा नामों में भी साम्य है । पिछले भक्तमालों से लेकर नाभादास के भक्तमाल में अन्य युगों के भक्तों के साथ कलियुग के भक्तों का वर्णन है । उसी तरह भक्तनामावली में भी है । अन्तर यह है कि नाभादास का भक्तमाल वृहद् है और विशेषकर छप्पय छन्दों में लिखा गया है जबकि सम्पूर्ण भक्तनामावली दोहे में ही लिखी गई है । ध्रुवदास जी अपनी नामावली के अंतिम छन्द में भक्त नारायणदास (नाभादास) तथा उनके ग्रंथ की स्वयं प्रशंसा करते हुए कहते हैं "बरने आछी भांति सो जैसी जाकी रीति"|इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास के प्रस्तुत भक्तमाल के किसी पूर्व रूप का इन्होंने काफ़ी अध्ययन किया था,

भक्तनामावली तथा उसका महत्व-

भक्त नामावली में यद्यपि भक्तों के नाम की माला दी गई है फिर भी

उसमें कहीं कहीं उनके विशेष गुण तथा उपासना पद्धति का भी संक्षिप्त परिचय मिलता है । उदाहरण स्वरूप कुछ भक्तों का परिचय नीचे दिया जाता है[100]।

रसिक अनन्य हरिदास जू गायो नित्य बिहार ।
सेवा हू मैं दूर किय विधि निषेध जंजार ।। १२ ।।

सघन निकुंजनि रहत दिन बाढ्यो अधिक सनेह ।
एक बिहारी हेत लगि छाड़ि दिये सुख देह ।।१३।।

रंक छत्रपति काहु की धरी न मन परवाह ।
रहे भीजि रस प्रेम मैं लीने कर कर नाह ।।१४।।

बल्लभ सुत विट्ठल भये अति प्रसिद्ध संसार ।
सेवा विधि जिहिं सबै को कीनी तिन व्यौहार ।।१५।।

राग भोग अद्भुत विविध जो चहिए जिहिं काल ।
दिनहि लड़ाये हेत सो गिरिधर श्रीगोपाल ।।१६।।

यों तो इस नामावली में अधितर कृष्णोपासक भक्तों का नाम ही उल्लेख है, किन्तु ग्रंथ के अन्त में कुछ निर्गुण शाखा के भक्तों का नाम भी दिया हुआ है जिनकी संख्या नगण्य है । भक्तों की संख्या अपार है । इसलिए ग्रंथकार का यह कथन दृष्टव्य है -

रसिक भक्त भूतल घने, लघुमति क्यों कहि जाहिं ।
बुध प्रमानगाये कछू, जो अन्ये उर मांहि ।।

जैसाकि पीछे दिखलाया जा चुका है, इस नामावली का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है ।

राधा कृष्ण द्वारा सम्पादित
१००- भक्त नामावली ध्रुवदास कृत, दोहा १३, १६,

इस ग्रंथ की रचना का कारण ग्रंथकार के शब्दों में-

हरि को निज जससों अधिक भक्तनि जसपर प्यार[101]।
याते यह माला रची करि ध्रुव कंठ सिंगार ।।११०।।

भक्तनि की नामावली जो सुनिहै चितलाइ ।
ताकै भक्ति बढ़ै घनी, अस हरि होई सहाय ।।१११।।

इस नामावली में १२४ भक्तों का उल्लेख हुआ है: जिनके नाम निम्नांकित हैं:-

(१) हरिवंश (२) कृष्णदास (३) वनचंद (४) गो० हित हरिवंश (५) श्री शुकदेव जी (६) देवर्षि नारद जी (७) श्री उद्धव जी (८) श्री जनकजी (९) प्रह्लादजी (१०) सनकादिक (११) महाकवि जयदेव (१२) श्रीधर स्वामी (१३) हरिदास (१४) श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु (१५) गो० श्री विट्ठलनाथ जी (१६) श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु (१५) श्री नित्यानंद महाप्रभु (१८) श्री रूप गोस्वामी (१९) श्री सनातन गोस्वामी (२०) रघुनंदन (२१) सारंग जी (२२) रघुनाथ जी (२३) श्री विलास (२४) ब्रजनाथ (२५) श्रीचंद मुकुंद (२६) महापुरुषनंदा (२७) कृष्णदास जंगली (२८) प्रबोध वा प्रबोधानंद सरस्वती (२९) श्री गोपाल भट्ट (३०) घमंडी (३१) श्री नारायणभट्ट (३२) वर्द्धमान (३३) श्री भट्ट (३४) गंगल (३५) गदाधर भट्ट (३६) नाथ भट्ट (३७) गोविंद स्वामी (३८) गंग अर्थात गंगग्वाल (३९) विष्णु विचित्र (४०) रघुनाथ (४१) गिरिधर स्वामी (४२) विट्ठल विपुल (४३) ~~बि~~विहारिनिदास (४४) व्यास जी (४५) नरवाहन (४६) नाइक (४७) रसिकमुकुन्द (४८) चतुर्भुजदास (४९) वैष्णवदास (५०) परमानंददास (५१) किशोर जी (५२) मनोहर (५३) खेम या खेमगोसाईं (५४) लालदास स्वामी (५५) बालकृष्ण (५६) ज्ञानू (५७) नाहरमल्ल (५८) मोहनदास (५९) बिट्ठलदास (६०) मुरलीधर (६१) गोपालदास (६२) सुंदर (६३) गोसाँईदास (६४) नागरीदास (६५) विहारीदास (६६) दंपति (६७) जुगुल (६८) माधो (६९) परमानंद (७०) मुकुंद (७१) चतुरदास (७२) चिंतामणि (७३) नागर (७४) हरिदास

१०१- भक्त नामावली राधाकृष्ण द्वारा संपादित दो० ११०-१११

(७५) नवल (७६) कल्यानी (७७) वृंदाअली (७८) कल्यान (७९) मंडनिदास (८०) राधारमन (८१) हरिहास (हरिदास) (८२) गिरिधर सुहृद (८३) नंददास (८४) सरसदास (८५) नागरीदास (८६) परमानंद (८७) माधो (८८) सूरज (८९) द्विजकल्यान (९०) खड्गसेन (९१) राघोदास (९२) अहिवरन (९३) वृंदावनदासी (९४) मीराबाई (९५) गंगा (९६) यमुना (९७) कुंभनदास (९८) कृष्णदास (९९) पूरममल (१००) जसवंतजी (१०१) गोविंददास (१०२) हरीदास (१०३) परमानंददास (१०४) सूरदास (१०५) माधोदास वरसाने वाले (१०६) रामदास वरसाने वाले (१०७) सेन (१०८) नामदेव (१०९) पीपा (११०) धना (१११) रैदास (११२) कबीर (११३) माधोदास जगन्नाथपुरी वाले (११४) विल्वमंगल (११५) रामानंद (११६) अंगद (११७) सोभू (११८) हरिव्यास (११९) छीतस्वामी (१२०) रांका (१२१)बांका (१२२) नरसी मेहता (१२३) नारायणदास (नाभाजी) (१२४) ध्रुवदास

(२) खेमदासकृत भक्त पचीसी

खेमदास का परिचय-

इन्होने रज्जबजी से दीक्षा ली थी[१०२] अपने भक्तमाल में राघवदास जी ने एक पूरे कवित्त में इनका इस प्रकार से वर्णन किया है :-

मंहत रज्जब के अज्जब शिष्य खेमदास
जाकेनेम नितप्रति व्रत निराकार कौ।
पंथ में प्रसिद्ध अति देखिए दैदीप्यमान
वाणी कौ विनाणी अति मांभिन मैंमार को ।।
रामत मेवाड़ में मेवासी सुख सोहे बात,
बोलत खरो सुहात बेतव्य विचार कौ ।
राघौसारो रहणी कौ कहणी सुकृति अति
चेतन चतुर मति भेदीसुख सार कौ ।।[१०३]

१०२- स्वामी मंगलदास पंचामृत भूमिका ।

१०३- खोज रिपोर्ट १९२३-२५ ~~कन्ह~~- पहलाभाग सं० २०९

रचनाएं

डा० मोतीलाल मेनारिया ने "राजस्थान का पिंगल साहित्य" (पृ० १९५) में खेमदास के निम्नलिखित सत्रह ग्रंथों का उल्लेख किया है- (१) शुकसंवाद, (२) गोपीचंद बैराग बोध, (३) भक्त पचीसी, (४) भयानक चितावणी, (५) धर्म संवाद, (६) ज्ञान चितावणी, (७) राविया विसरे का पद्धतिनामा, (८) नसीहतनामा, (९) ज्ञानयोग, (१०) जुगति जोग भेद, (११) संदेह दवण, (१२) विप्रबोध, (१३) कसणी, (१४) गुणज्ञानगंगा, (१५) जोग संग्राम, (१६) बावनी, (१७) सिध संकेत आत्म साधन ।

भक्ति पचीसी-

यह १५३ पृष्ठों का ग्रंथ है जो ५७३८ अनुष्टुप छन्दों में लिखा गया है । इस ग्रंथ का रचनाकाल सं० १७१९ है । इसमें कलियुग के चन्द भक्तों- पीपा, नामदेव, कबीर, रैदास- का वर्णन आया है । इन भक्तों केन प्रसंग अनन्तदास की परिचाइयों तथा नाभादास, राघौदास के भक्तमालों में आया है । प्रायः उन्हीं प्रसंगों को दुहराया गया है ।

इनकी रचना साधारण कोटि की है और ब्रजभाषा में है । इस ग्रंथ से कुछ पंक्तियां नीचे दी जा रही हैं-

हिंदू अरु तुरक खुदाइ का जहान सब,
बेगाना न कोई भाई खेस करि जानियै ।
दोइ फरजंद एक बाप करि जानै कोई,
दोनों का दरद दुई दिल में न आनियै
राखि इखलास सब सच्चे की सगाई साधि,
मिहरि मुहब्बत सों बंदगी बखानियै ।
बेपीर बेराह बदनजर बदफैल,
खेमदास सोई जाति बेईमान रानियै ।।

(३) मलूकदासकृत "ज्ञानबोध" तथा "भक्तबछल"

ज्ञानबोध की दो हस्तलिखित प्रतियां देखने को मिली हैं । एक

प्रति म्युनिसिपल म्युज़ियम प्रयाग के संग्रहालय में तथा दूसरी कड़ा के महन्त द्वारा देखने को मिली।[104] पहली प्रतिलिपि जीर्ण अवस्था में है किन्तु दूसरी प्रति की अवस्था अच्छी है। दोनों ग्रंथों की पुष्पिकाएं क्रमशः निम्नांकित हैं-

(१) "इति श्री ज्ञानबोध षटशास्त्र अविरोध वर्णन अष्टमों अध्याय सम्पूतः ।[105] श्री ---

(२) इति श्री ज्ञानबोध वैराग्य वर्णन पंचम विश्राम सम्पूर्णम संवत् १७८४ अशु निशु द्वितिका आरम्भ किया वार मंगल वारि वदी मास आसुन दिनौ बार मंगल का लिखि सिद्ध भई जैमलूक ।"[106]

इनमें कलियुग के निम्नांकित भक्तों के नाम आए हैं-

(१) नामदेव (२) रांका-बांका (३) सदन कसाई (४) सेन (५) माधौदास (६) जगन्नाथ (७) मीराबाई (८) धनाजाट (९) कान्हा (१०) कूवा (११) नानकदास (१२) रैदास (१३) पीपा (१४) कबीरदास (१५) सूरदास (१६) परमानंददास (१७) रामानंद (१८) त्रिलोचन (१९) जैदेव (२०) दादू (२१) चतुर्भुज (२२) कालू (२३) परमादास (२४) रामदास बनिया (२५) नैनादास (२६) मुरारि (२७) कामादास (२८) दरियानंद (२९) देवल (३०) केवल (३१) परस (३२) सोमू (३३) नरसी (३४) नावा (३५) बवन (३६) मिरजा (३७) तुलसीदास (३८) विल्व मंगल (३९) गोरख (४०) रामानुज आदि।

उपर्युक्त नामों में से नानकदास, कालू, नैनादास, कामादास, दरियानंद, देवल, नावा, मिरजा, दादू , बवन, मकरंद को छोड़कर शेष सभी नाम भक्तमाल में मिलते हैं।

१०४- मलूकदास का पूर्ण परिचय उनके ग्रंथ "मलूक परिचयी" पर विचार करते समय आगे दिया गया है।

१०५- वेष्टन सं० २१७।१०८

१०६- कड़ा के महन्त के पास की प्रति हरिमोहन मालवीय द्वारा प्राप्त हुई।

उक्त भक्तों में सेन,धना, रैदास, कबीर, पीपा, के निम्नांकित प्रसंग तीनों ग्रंथों में समान हैं, जो इस प्रकार हैः-

नामदेव-'छानिँछवाना- मंदिर का दरवाज़ा फेरना, मरीगाय|जिलाना ।
धना- बिना बीज खेत उगाना ।
सेन- राजा का मर्दन करना ।
रैदास- शालिग्राम की मूर्ति बुला लेना ।
कबीर- जंज़ीर तोड़कर किनारे पर चले आना ।

उक्त प्रसंगों का परिचँयी में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है किन्तु मलूकदास के ज्ञानबोध तथा नामा के भक्तमाल में संक्षेप में उल्लेख मात्र है ।[१०७]

इन समान प्रसंगों को देखकर यही निष्कर्ष निकलता है कि या तो तीनों ग्रंथकारों ने एक ही स्थल से ये सामग्रियां लेकर उन्हें अपने अपने ग्रंथ में मिला लिया होगा अथवा एक दूसरे से इन प्रसंगों को ले लिया होगा, अथवा किसी तीसरे नें जोड़ दिया हो ।

भक्त वछल

इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति महाराजा काशीनरेश की लाइब्रेरी में देखने को मिली थी [१०८] । प्रति पूर्ण है तथा आठ पृष्ठों की है । इसमें ग्रंथ का रचनाकाल नहीं दिया गया है । लिपिकाल इस प्रकार हैं-

"इति श्री पोथी भगत वछल संपूर्णन ।। संवत् १८७९ मिती कुआर बदी १५ वार सुमार ।।"

इस ग्रंथ के भक्तों के नाम तथा प्रसंग मलूकदास जी के ज्ञानबोध में आ गए हैं । ऐसा लगता है कि ज्ञानबोध के कुछ नामों को लेकर इस ग्रंथ की रचना अलग से कर दी गयी है । पहले अन्य युगों के भक्तों का नाम आया है फिर

१०७- ज्ञानबोध एवं भक्तमाल में "मीराबाई" के विष पीने का प्रसंग भी समान है ।

१०८-

कलियुग के निम्नांकित भक्तों का उल्लेख है:-

(१) कबीर (२) नामदेव (३) मीराबाई (४) धंना (५) माधौदास (६) पीपा (७) सेन (८) केवल कूबा (९) रांका बांका (१०) सदन कसाई (११) सूरदास

ज्ञानबोध और भक्त बछल के वर्णन प्रायः समान हैं:-

भ० ब० कबीर- दास कबीर न बूड़न पाये ।
तोरि जंजीर तीर लै आये ।

ज्ञानबोध - वही ।

भ० ब०- अंचै गई विष मीराबाई । अमृत हुआ प्रेम ते गाई ।

ज्ञानबोध - वही

भ० ब० धना- बोवन गया सो मुडियन खाये । धंना जाटको खेत जमाये ।

ज्ञानबोध- वही

भ० ब० - पीपा जी की रहनि अपार । भक्त करी खांडे की धार ।।

ज्ञानबोध- वही

इस प्रकार मीराबाई, सेन, रांका बांका, माधौदास आदि के प्रसंग दोनों में समान हैं । केवल सूरदास का प्रसंग ज्ञानबोध में नहीं आया है ।

नागरीदास की "पद प्रसंग माला"

नागरीदास का परिचय-

नागरीदास का असली नाम "सावन्त सिंह" था । ये किशनगढ़ राज्य के राजा थे । इनके पिता का नाम महाराजा राजसिंह था । अपने पांच भाइयों में इनका स्थान तृतीय था । शिवसिंह[१०९] तथा डा० ग्रियर्सन ने[११०] इनका जन्म काल संवत् १६४८ लिखा है । महाराजा का जन्म पौष कृष्ण १२ संवत् १७५६ में[१११] तथा विवाह सम्वत् १७७७ में भाव नगर के महाराजा

१०९- शिव सिंह सरोज पृ० १७२ ।

११०- दी मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ़् हिन्दुस्थान पृ० ३३ ।

१११- डा० मेनारिया राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १३६ वियोगी हरि ब्रज माधुरी सार पृ० ३२३ ।

यशवन्त सिंह की पुत्री से हुआ था । उनसे दो पुत्र तथा दो कन्याएं हुई थीं ।

ये बचपन से ही बड़े बहादुर थे । दस वर्ष की अवस्था में एक मदोन्मत्त हाथी को अपनी तरवार से विचलित कर पीछे हटा दिया था । तेरह वर्ष की अवस्था में बूंदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था । अट्ठारह वर्ष की अवस्था में थूण के अभेद्य दुर्ग को जीता था ।

कलह

इनके सबसे बड़े भाई सुख सिंह राज सिंहासन प्राप्त करने के पूर्व साधु हो गये थे और दूसरे भाई फतह सिंह का देहान्त उनके पिता के जीवन काल में ही हो गया था[११२] । इसलिए राजपद के वास्तविक अधिकारी यही थे । किन्तु अभाग्यवश जिस समय सं० १८०५ में इनके पिता की मृत्यु हुई, उस समय ये सपरिवार दिल्ली में थे । तत्कालीन मुगल बादशाह अहमदशाह अब्दाली ने इन्हे ही किशनगढ़ के राज्य का उत्तराधिकारी बनाया किन्तु अनुपस्थिति में ही इनके अनुज बहादुरसिंह ने महाराजा जोधपुर की सहायता से राज सिंहासन को हस्तगत कर लिया । फलतः सावंतसिंह अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने का दिल तोड़ प्रयत्न किया । भीषण रक्तपात हुआ । भाग्य ने पलटा खाया । विजय शत्रुपक्ष की रही ।

महाराजा ने कोई अन्य उपाय न देख कर मरहठों से किसी संधि द्वारा पुनः राज्य प्राप्ति के लिए दक्षिण की ओर प्रस्थान किया । रास्ते में वृन्दावन में पड़ाव डाला । ऐसा कहा जाता है वहीं किसी हरिदास नामक वैष्णव के कहने पर भगवद् भजन करने के निमित्त रुक गए तथा अपने पुत्र सरदार सिंह को युद्ध करने के लिए भेजा । सफलता ने वरण किया, राज्य के आधे भाग पर उनके पुत्र का अधिकार हो गया । सावंत सिंह ने वृन्दावन

११२- राज सिंह के पांच सुत, तिन में सुख सिंह ज्येष्ठ ।
मन लायो जोगी वनै, ताजे संसार सुख श्रेष्ठ ।।
फतह सिंह इजे भये, जंग जैरा मुत नीत ।
गयो कुंवर परलोक कौं गौड़न की घर जीत ।

डा० मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १३७ से उधृत
छप्पन योग चन्द्रिका पृष्ठ ३८-३९ ।

से जाकर आश्विन सुदी १० संवत् १८१४ को सरदार सिंह का राज्यतिलक किया ।[११३]

राज्य तिलक के पश्चात् पुनः वृन्दावन चले आये । वहीं साधवृत्ति से जीवन यापन करने लगे । दिन रात कृष्ण भक्ति में लीन रहे । वृन्दावन में इनकी उपपत्नी (वणीठणीजी) भी इनके साथ रहती थीं तथा कविता भी करती थीं । वृन्दावन के प्रति इनकी श्रद्धा तथा ममता निम्नांकित पक्तियों में उमड़ी पड़ती है ।—

राज कलह के मूल को विष अमल छुटायौ।
नागरिया वृन्दावन विपुल रस अमृत प्यायौ ।

वृन्दावन के प्रति इनकी "लगनि" की एक और कहानी मिलती है । एक बार जमुना पार इनको रात्रि हो गई थी । नाव का पता न था । लोगों के लाख समझाने पर भी जमुना में कूद पड़े तथा अपने उपास्य देव के पास पहुंच गए । इसका वर्णन उन्ही के शब्दोंमें इस प्रकार है-

देख्यो श्री वृन्दा विपिनपार । विच बहति महागभीर धार ।।
नहिं नाव नाहिं कछु और दाव । हे दई, कहा कीजै उपाय ।।
रहे वार लगनि को लगै लाज। गये पारहि पूरे सकल काज ।।

इन्होंने रणछोड़जी से दीक्षा ग्रहण की थी । श्री रणछोड़ जी वल्लभाचार्य जी की पाचवीं पीढ़ी में पड़ते हैं । रणछोड़ जी गोपीनाथ जी के शिष्य थे और उनकी गद्दी गोटा में थी ।[११४]

ग्रंथ

इनके ग्रंथों का संग्रह "नागर समुच्चय" नाम से ज्ञान सागर मंत्रालय बंबई से प्रकाशित हुआ है । यह ग्रंथ तीन खण्डों में विभाजित है : वैराग्य सागर,

---

११३- डा० मेनारिया राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १३८ ।

११४- वियोगी हरि- ब्रज माधुरी सार पृ० ३२८ ।

सिंगारसागर और पदसागर । इस संग्रह में ६९ ग्रंथों की सूची दी गयी है- किंतु इनमें से अधिकांश दस दस, बी-बीस छंदों की हैं ।

रचना काल-

इनकी सर्व प्रथम रचना "मनोरथ मंजरी" का रचनाकाल सम्वत् १७८० दिया हुआ है[११५] । इसके पहले की रचनाकाल वाली और कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है । वे सम्वत् १८१४ आश्विन शुक्ल १० को अपने पुत्र को राज्यभार देकर वृन्दावन गए थे और सम्वत् १८२१ तक जीवित रहे । कदाचित् अन्तिम समय तक कविता करते ह रहे होंगे । अतः इनका कविता काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जा सकता है ।

निधन काल -

मुंशी देवी प्रसाद ने इनका निधन काल सम्वत् १८२१ भादौं सुदी पंचमी लिखा है [११६] । यही तिथि सर्वमान्य है । इनकी समाधि जो वृन्दावन में है तथा नागर कुंज के नाम से विख्यात है, उस पर निम्नांकित लेख खुदा हुआ है ।

"श्री राधाकृष्ण गोवर्धन धार । वृन्दावन यमुना तट चारी ।।
ललिता दिक वल्लभ विठलेस । मोहन कृपा करो अवेस ।।
सुत कौ दै युवराज आप वृन्दावन आये ।
रूप नगर पति भक्ति वृन्द वहु लाड़ लड़ाये ।
सूर बीर गंभीर रसिक रिझवार अमानी ।
संत चरनामृत नेत्र उदधि लौं गावैं बानी ।।
नागरीदास विदित सौं कृपा दार नागर दरिया ।।
सावन्त सिंह नृपकलि विषै सत भेता विधि आचरिय ।।

- मेनारिया के "राजस्थान का पिंगल साहित्य" पृ० १३९ में से उधृत ।

११५- संबत् सतरासै असी, चौदस मंगलवार ।
प्रगट मनोरथ मंजरी वदि आस अबवार ।

११६- राज रसनामृत पृ० ५८ ।

पद प्रसंग माला

"नागर समुच्चय" में यह ग्रंथ भी प्रकाशित है। यह बहुत छोटी सी पुस्तिका है जो १८० पृष्ठ से प्रारम्भ होकर २४१ पृष्ठ पर समाप्त हो जाती है। इस प्रकार से यह केवल ६०-६१ पृष्ठों की रचना है। नागरीदास कृष्ण भक्त थे, अतएव उन्होंने इस ग्रंथ में प्रायः कृष्ण तथा राधा के उपासक भक्तों का नाम लिखा है। इस ग्रंथ का उद्देश्य भक्तों का गुणगान करना था * जो ग्रंथकार के ही कथन से स्पष्ट है –

"ब्रजवधून के चित्त गानहीं सौं आकर्षन करि बुलाई, गानहीं सौ आकर्षन करि नारद श्री कृष्ण कौ हृदय में बुलावत हैं, अस शिव के गान हीं सौं रीभिकरि जल है, द्रव गये, असै गान प्रिय, स्याम सुजान, तिनको लीलापद छन्द वंध रचना करि कैं वैष्णव गावत आये हैं, तिनके कछूक पद प्रसंग लिषौं हौं।"

इस ग्रंथ में वर्णन का क्रम यह है कि प्रत्येक भक्त के एक या एक से अधिक प्रसंगों का उल्लेख कर प्रत्येक प्रसंग के साथ पद उद्धृत किए गए हैं, इसी लिए इस ग्रंथ का नाम "पद प्रसंग माला" हुआ। इस ग्रंथ में जन भक्तों की चर्चा है उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं।–

(१) जयदेव (२) परमानंद (३) नामदेव (४) कबीरदास (५) रैदास चमार नरसी मेहता (६) मीरा (७) चतुरदास बोजी (८) मुरारिदास (९) राघोदास (१०) तुलसीदास (११) मानक चन्द (१२) छीतस्वामी (१३) ~~कुंभनदास~~ हरिवंश (१४) व्यास जी (१५) सूरसागर (१६) हरिदास (१७) कृष्णदास (१८) कुंभनदास (१९) चतुर्भुजदास (२०) गदाधर भट्ट (२१) सूरदास मदन मोहन (२२) स्वर्गसिन (२३) नरवादन (२४) मधुकरशाद (२५) नागरीदास (२६) भगवानदास मिही उपासिक (२७) किशोरदास (२८) वैष्णव पंडित अथवा भगवान सखीजी (२९) श्यामदास (३०) नरायनदास (३१) रूप सिंह (३२) तुलाराम उपनाम बावरी सखी जी (३३) मुरलीदास कीरतनियां (३४) एक राजपूत जो रूप नगर में नौकर था (३५) वल्लभरसिक (३६) गौरी गूजरी।

उक्त भक्तों में से कुछ के प्रसंगों का साम्य नाभादास के भक्तमाल में वर्णित प्रसंगों से है किन्तु ~~विशेषतः~~ विशेष नैकट्य प्रियादास की टीका से है। जैसा पीछे दिखलाया जा चुका है कि नाभादास ने अपने छप्पयों मे कहीं कहीं अलौकिक घटनाओं की ओर संकेत मात्र किया है तथा प्रियादास ने उन प्रसंगों का विस्तार दिया है। भक्त नागरीदास जी ने अपने प्रसंग गद्य में लिखे हैं। अतएव जहां पद्य में किसी बात का वर्णन संक्षेप में रहता है, वहां गद्य द्वारा उसका विस्तार किया हुआ मिलता है। आगे की तुलना से यह बातें और स्पष्ट हो जायंगी।

नाभादास के भक्तमाल तथा पद प्रसंगमाला की तुलना-

दोनों रचनाओं में केवल निम्नलिखित भक्तों के प्रसंगों में साम्य है जिन्हें सुविधानुसार इस प्रकार दिखलाया जा सकता है।

जयदेव, नामदेव, रैदास, मीराबाई, मुरारिदास, व्यासजी, षगसिन और नारायणदास नृतक के नाम भक्तमाल में छ० ४५,४३,११५, १२८, ९२, १६१, १४५ तथा पद प्रसंगमाला में क्रमशः पृ० (१८३-८६), (१८७-८८), (१९०-९१), (१९४-९६), १९८, (२०७-१०), (२२५-२६) तथा २२३ में आये हैं।

दोनों ग्रंथों में आए हुए समान प्रसंगों पर नीचे तुलनात्मक रीति से विचार किया जा रहा है-

जयदेवजी-

दोनों ग्रंथों में केवल एक प्रसंग ऐसा है जिसमें पर्याप्त समानता है वह यह है कि जयदेव जी को गति गोविन्द की अष्टपदियां इतनी प्रिय थीं कि राधा माधो सुनने के लिए आते थे। दोनों रचनाओं के समान प्रसंगों को समानार्थी टुकड़ो में विभाजित कर नीचे इस प्रकार दिखाते हैं।

भक्तमाल -

"प्रचुर भयो तिहुं लोक ~~ग~~ गीत गोविन्द उजागर।
कोक काव्य नव रस सरस सिंगार को सागर।।
अष्टपदी अभ्यास करै, तेहि बुद्धि बढ़ावै।

पद प्रसंगमाला -

"श्री जयदेव जी गीत गोविन्द बनायोः तामैं जो अष्ट पदी बनावत है, जो जा अष्टपदी मैं अच्छर आयोजु "पतति पतत्रे विचलति पत्रे" तहां जयदेव जी इन अच्छरन के अरथपर रीझि प्रेमानन्द मैं मगन भये वाही छिन इनही अच्छरनि अस जयदेव जी पर रीझि तबही वहां वनमैं आये। दरसन दीनो आप आज्ञा दई, जो ये अष्टपदी गावे" तब कै तो मन्दिर में गावैं कै एकांत स्थान बैठि गावैं।"

उपर्युक्त समान प्रसंगों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा भाव साम्य के स्थल विचारणीय हैं।

भ० प्रचुर भयो तिहुंलोक गीति गोविन्द उजागर
प० प्र० श्री जयदेव जी गीत गोविन्द बनायो।"
भ० अष्टपदी अभ्यास करै तेहिं बुद्धि बढ़ावै।
प० प्र०- अष्टपदी बनावत है।
भ० - श्री राधारमन प्रसन्न सुनत, निश्चै तहं आवै,
प० प्र० श्री राधा माधौ रीझि तबही बनमैं आवै।
शेष अन्य प्रसंगों में समानता नहीं है।

(३) नामदेव- नामदेव के संबंध में दोनों ग्रंथों में केवल एक प्रसंग साम्य है- वह यह है कि पंढुरनाथ के मंदिर के पिछवाड़े नामदेव के बैठने पर उनकी ओर मंदिर का द्वार घूम गया।

दोनों ग्रंथों के वर्णनों में निम्नांकित साम्य का स्थल दर्शनीय है-

भ० मा०- "देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती।
पंढुरनाथकृत अनुग ज्यो छानि सुकरि छाई घास की।।"

प० प्र० "दक्षिन में ठाकुरजी पांडुरनाथ जु, तिनको दरसन होत हो, आगें एक नटी नृत्य करत हीं, संकीरन ठौर में भीर बहुत भई ही, ता समय नामदेवजू दरसन को आयो, तिनकौ लोगनि ठौर न दई - - -। तब ये मंदिर के पाछै आप बैठे, दरसन के अन्तर को बहुत दुख मानि अकुलानि सहित, एक नयो पद बनाय गावत भयो ताही समय पाछली ओर द्वारन व्है गयो और नामदेव की ओर श्रीमुख भयो, सब दौरि नामदेवजू की पायन परे।"

स्पष्ट है कि उसी भाव को गद्य में विस्तार दिया गया है ।

रैदास-

इनके विषय में भी केवल एक प्रसंग और वह यह कि राजसिंहासन पर बैठे ठाकुरजी रैदासजी की आराधना पर उनके पास आ गए, समान है । इसको भी भक्तमालकार ने केवल सांकेतिक रूप में, राजसिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई तथा वर्णाश्रम अभिमान तजि, पदरज वंदहि जासुकी ।" लिखा है किन्तु इसमें अन्तर है कि पदप्रसंग मालाकार ने गद्य में इसी भाव को विस्तार से लिखकर उनका एक पद भी उद्धृत किया है ।

मीरांबाई -

इनके विषय में विष पीने से अमृत का सा प्रभाव होने के समान प्रसंग का वर्णन हुआ है । दोनों ग्रंथों के इस समान प्रसंग या वार्ता को समझने के लिए मीरा विषयक उक्त वर्णन को समानार्थी टुकड़ों में विभाजित कर नीचे इस प्रकार दे रहे हैं -

भ० मा०- दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कियौ ।
वार न वांकौ भयो, गरल अमृत ज्यों पियौ ।।

प० प्र० मा०- "राना बहुत समुझाय रह्यो, निदान एक विष को प्यालों उनको पठियो । कह्यो चरनामृत नाम लै कै दीजिए, उनकै प्रण है, चरणामृत के नाम तैं पी ही जाएंगी । सो ऐसे ही भयो, जानि बूझि पीयौ राना तो इनके मरिबो की राह देखत रह्यो अरु यह झांझ मृदंग संग व्है लै कै परम रंग सौं एक नयो पद बनाय ठाकुर आगे गावत भये ।" भेवल भाव- साम्य है । विष या गरल देना दोनों ने स्वीकार किया है । पद प्रसंगमाला में राना का उल्लेख है किन्तु भक्तमाल में किसी का नाम नहीं है । नये पद गाने की बात पद प्रसंगमाला में विशेष है ।

मुरारिदास-

इनके विषय में दोनों ग्रंथों में निम्नांकित प्रसंग का विकास हुआ है-

(क) "बिलौंदा" गांव के रहने वाले मुरारिदास ने, किसी विशेष महोत्सव में

पगों में घुघरू बांधकर नृत्य करते समय इस प्रकार लीन होकर एक पद गान किया कि उनके प्राण निकल गए ।"

इस प्रसंग में दोनों में बहुत निकट का साम्य है जो हर प्रकार से एक दूसरे से मिलता है, दोनों के समानार्थी टुकड़े नीचे दिए गए हैं -

भ० मा०- "विदित "बिलौदा" गांव देस मुरभर सब जानै ।।
महा महोच्छौ मध्य संत परिषद परवानै ।।
पगनि घूंघरू बांधि रामको चरित दिखायौ
देसी सारंगपानि, हंस ता संग पठायौ ।।

प० प्र०- मुरभर देस मैं एक गांव बलौदा, तहां मुरारिदास वैष्णव रहैं, तिनकैं वरसनैं दिन गुरू को महोच्छव होत हौं, ता महोच्छौ मैं नृत्य करत है, सो एक महोच्छव मैं नृत्य करत हे अभिनय बतावत हे तापद मैं यह तुक आई जु " जातन वैकुंठ स धरणी कुटुंब सहित चली करिको ।" तब प्रेम विवस है नपि, अस देह छूटि गई ।" सो पद ।"

इन प्रसंगों में अन्तर यह है कि पद प्रसंगमाला में "गुरू महोत्सव" लिखा है किन्तु भक्तमाल में किसी महोत्सव का नाम नहीं दिया गया है ।

व्यासजी-

व्यासजी के विषय में रास के मध्य नूपुर टूटने पर जनेऊ तोड़कर गूथने का यही समान प्रसंग दोनों ग्रंथों में पाया जाता है । दोनों ग्रंथों के समान प्रसंगों के स्थल दृष्टव्य हैं-

भ० मा० " नौगुण तोरि नूपुर गुह्यो महत सभा मधि रास के ।।

माला- एक समै वृन्दावन रास होत हो तहां सब गुसाईं महंतु वैष्णव गृहस्थ दरसन करत तहां नृत्यकरत श्री ठकुरानी जी कुं नूपुर टूटि गयो, सो व्यास जू हू उहां बैठे हे, इन अपनी जनेऊ तोरि पाइके अंगूठा एक मैं पकरि बट दैं नूपुर पोय चरन कै बांधि दियो । - -
सीयापर एक पद बनायो, सो वह पद "रसिक अनन्य हमारि जाति"

अन्तर केवल यह है कि माला में एक पद के गाए जाने का उल्लेख है अन्यथा सभी प्रकार का साम्य है ।

खर्गसिन-

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित समान प्रसंग का विकास हुआ है जो इस प्रकार है:-

ये कायस्थकुल में उत्पन्न हुए थे तथा शरदऋतु में किसी रास के मध्य अपने प्राण विसर्जित किए ।

इनके प्रसंग में निम्नांकित तुलनीय स्थल दृष्टव्य हैं ।

म० भा०- गोविन्द चंदगुन ग्रथन को "खर्गसिन" बानी विसद ।।
कायथ कुल उद्धार भक्ति दृढ़ अनह न चिल्यौ ।।
"गौतमी तन्य" उर ध्यान धरि, तन त्यागयो मंडल सरद ॥

प० प्र० माला- एक गृहस्थ कायथ महावैष्णव खड्गसैन नाम, सो विष्णुपद बहोत बनायो करैं, अरु ताकी रास वैष्णावन सबसौं अधिक रूचि, सो बहोत द्रव्य लगाय लगाय रास उत्सव कियौ करैं । एक समै सरद की पूरनवासी कौं रास मंडल चौतरा पर रास मैं एक पद बनावत हुते, सो जब भोग दै चुके तब अपनेई पद पै रीझि प्रेम बिबिस व्है देह छोड़ि दई ।। सो वह यह पद ।।

नागरीदास की एक अतिरिक्त विशेषता यह है कि उन्होंने खर्गसिन का एक पद भी उद्धृत किया है ।

नारायणदास नृतकः- दोनों ग्रंथकारों ने इनके संबंध में एक ही समान प्रसंग का उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है:-

नृतक नारायणदास हण्डियासराय में एक बार नृत्य करते समय इतने तन्मय हो गये कि उनका प्राणान्त हो गया ।

इन दोनों ग्रंथों के सम्पूर्ण वर्णनों में सभी दृष्टियों से समानार्थी प्रसंगों को नीचे दे रहे हैं-

भ० मा० नृतक नारायणदास कौ, प्रेम पुंज आगे बढ्यौ ।
पद लीनौ परसिद्ध प्रीति जामे दृढ़ नातौ ।
अक्तर तनमय भयौ मदन मोहन रंग रातौ ।।
नाचत सब कोउ आदि, काहि पै यह वनि आवै ।।
चिमलिखित सो रह्यौ, त्रिभंग देसी जु दिखावै ।
"हंडिया सराय" * देखत दुनी, हरिपुर पदवी को चढ्यौ ।

प० मा० – एक नराइन दास नाम नटवा, यह वैष्णाव प्रेमी, सो वह जहां भलो वैष्णाव श्रोता सुनै, जहां जाइ निर्लोभ कीर्तन करै, सो एक समै काहू नवाब ने हडिया सराय मैं, बहिमाला तुलसी की आगैं धरि वा आगैं नाचयौ, नवाब हूं देखत रह्यौ, बहोत रीझ्यौ, पद गावति हो तामैं यह तुक आई जु "मदन मोहन रंगरातो" ताको भाव तृभंगी है दिषावत हो, सो तृभंगी ही रही गयो, महाप्रेम आवेस मैं देह छूटि गयी सो वह यह पद ।। सांचो प्रीति ही को नातो ।।

अन्तर केवल यह है कि प्रसंगमाला में किसी नवाब का उल्लेख हुआ है तथा तुलसी की माला रखकर नृत्य करने को कहा गया है, किन्तु भक्तमाल में इस प्रकार का वर्णन नहीं है। इस प्रसंग में इतना साम्य है कि भक्तमालकार ने भी पद की प्रथम पंक्ति का उल्लेख कर दिया है जबकि पदप्रसंगमालकार ने सम्पूर्ण पद उद्धृत किया है।

निष्कर्ष

दोनों ग्रंथों के विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचते हैं-

(१) सम्पूर्ण "पद प्रसंगमाल" में लगभग ३८ भक्तों के प्रसंग लिखे गये हैं। उनमें जयदेव, नामदेव, रैदास, मीरांबाई, मुरारिदास, व्यासजी, वसिन और नारायणादास के प्रसंगों में दोनों में पर्याप्त समानता पाई जाती है।

(२) खोजी, नरवाहन, मधुकरशाह के संबंध में भक्तमाल तथा पदप्रसंगमाला में केवल नाम साम्य है, किसी घटना का विस्तार नहीं मिलता।[११७]

(३) परमानंद, कबीरदास, नरसीमेहता, तुलसीदास, कृष्णादास, गदाधर भट्ट और सूरजदास के वर्णन भक्तमाल मे भी पाये जाते हैं,[११८] किन्तु इनसे

११७- इन भक्तों के नाम भक्तमाल में क्रमशः ९७, १०५, १४७ छंदों में तथा पद प्रसंगमाला में पृ० सं० १९७, (२२६-२७), (२२७-२८) पर आए हैं।

११८- इन भक्तों का उल्लेख भक्तमाल में क्रमशः छं० सं० ७४, ६०, १०८, १२९, ८१, १३८, १३६ में तथा पद प्रसंगमाला में क्रमशः पृ० १८६, १९०, (१९२-९३), (२०१-४), (२१६-१८), (२२१-२२), (२२२-२४) में हुआ है।

संबद्ध वार्ताओं या प्रसंगों में कोई भी विशेष साम्य नहीं है ।

(४) दोनों ग्रंथकारों की वर्णन शैली में एक अन्तर है कि नाभादासजी ने छन्दों में रचना की है, जबकि नागरीदास ने गद्य में लिखा है । दूसरा बड़ा अन्तर यह है कि नागरीदास ने प्रत्येक प्रसंग के बाद उस भक्त विशेष का पद भी उद्धृत किया है जबकि भक्तमालकार की ऐसी कोई योजना ही नहीं थी । केवल नारायणदास नृतक के वर्णन में नाभादास नें उनके एक पद के ध्रुवक का उल्लेख कर दिया है ।

(५) यों देखा जाय तो भक्तमाल का क्षेत्र बहुत वृहद है, सगुण और निर्गुण, राममार्गी और कृष्णमार्गी भक्तों के चरित्रों का भंडार है । उसकी तुलना में पद-प्रसंगमाला में इने गिने भक्त हैं जिसमें अधिक संख्या में कृष्णोपासक भक्तों का वर्णन है ।

उपर्युक्त निष्कर्ष के बाद प्रसंगों के आदान-प्रदान का प्रश्न विचारणीय है, किन्तु भक्तमाल की रचना सं० १७१३ में हो जाती है और यद्यपि पद-प्रसंगमाला की रचना-तिथि का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है, किंतु पीछे यह सिद्ध किया गया है कि इसका रचनाकाल सं० १७८०-१८१९ तक होना संभव है । यह कदाचित् उनकी अन्तिम रचना है । इस प्रकार से इसका रचना-काल अनुमानतः संवत् १८१९ माना जा सकता है । भक्तवर नागरीदास ने "खोजी" जी के प्रसंग में टीका की चर्चा भी की है, अतएव यह निर्विवाद है कि इन्होंने इन प्रसंगों को भक्तमाल से ग्रहण किया है । यह अवश्य सत्य है कि "पद प्रसंगमाला" की रचना गद्य में हुई है इसलिए पद्य से अधिक इसमें विस्तार हो गया है ।

नागरीदास जी यद्यपि वल्लभ सम्प्रदायी थे, किन्तु उनके वर्णनों में कहीं भी साम्प्रदायिक खींच-तान की प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं होती । इनकी इसी रचना के अनुकरण पर आगे चलकर पुष्टि मार्गीय वार्ताओं की रचनाएं सम्भव हुईं ।

<u>प्रियादास की टीका और नागरीदास के पदप्रसंगमाला का तुलनात्मक अध्ययन</u> -

प्रियादास की टीका और पद प्रसंग में वर्णित भक्तों में केवल सोलह भक्तों के प्रसंगों में समानता है । शेष भक्तों के प्रसंग एक दूसरे से नहीं मिलते ।

समान प्रसंग वाले भक्तों के नामों की सूची टीका क० संख्या पद प्रसंग माला में मिलने वाले प्रसंगों की क्रम संख्याएं तथा पृष्ठ संख्याएं सुविधानुसार नीचे दी गई हैं जो इस प्रकार हैं ।

नाम	टीका क० संख्या[११९]	पद प्रसंगमाला प्रसंग सं०	प्रसंगमाला पृ० सं०
१-जयदेव	१४७-५०-५१-६०-६२	(~~पहला~~-दूसरा) पहला	पृ० १८४-८६ पृ० १८३-८४
२नामदेव	१२७-३६-३७	(पहला-दूसरा)	१८७-८८
३-कबीरदास	२८१	(१)	१९०
४-रैदासजी	३६४-६५	(१)	१९१-९१
५-नरसी मेहता	४३८-४० ४४५-४९	(पहला-दूसरा)	(१९१-९३)
६-मीराबाई	(४७५-७६-७७-७९-८०)	(दूसरा-चौथा-तीसरा)	१९४-९६
७-मुरारिदास	५०७	१	१९८
८-तुलसीदास	५०९-१० १४-१८	(पहला-दूसरा-तीसरा)	२०१-४
९-व्यासजी (हरिवंश के साथ)	(२६८-६९-७१)	(चौथा-सातवां-पांचवां)	२०९-१०
१०-कृष्णदास	३४४-४६	(दूसरा-पहला)	२१६-१८
११-गदाधर भट्ट	५२३-२४	१	२२१-२२
१२-सूरदास	४९८-५००-४९९	(पहला-दूसरा)	२२३-२४
१३-षर्गसेन	५९३	१	२२५-२६
१४-नरबाहन	४१९	१	२२६-२७
१५-मधुकरशाह	४८८	१	२२७ -२८
१६-नारायणदास	५६१-६२	१	२३३

११९- प्रियादास की टीका के क्रम से पद प्रसंगमाला नहीं लिखा गया है । कहीं कहीं क्रमों की गड़बड़ी है । इसलिए उसी क्रम से संख्याएं रखी गई है ।

उपर्युक्त भक्तों में से केवल जयदेव, नामदेव, कबीर, कृष्णदास, सूरदास तथा मधुकरशाह के समान प्रसंगों को क्रमशः समानार्थी टुकड़ों में विभाजित कर आगे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रियादास की टीका तथा पदप्रसंगमाला की तुलना

जयदेव-

इनके संबंध में निम्नांकित समान वार्ताओं का विकास हुआ है-
(१) जयदेव का गीत गोविन्द बनाते समय एक स्थल पर उनकी लेखनी का रुकना, उस स्थल की पूर्ति राधा-माधव अथवा लाल द्वारा करना, किसी माली की बालिका द्वारा बैगन की बारी में जयदेव जी के गीत गोविन्द के पदों का गान करना, ठाकुर द्वारा उस बालिका के पीछे पीछे घूमकर उसी गाने का सुनना, ठाकुरजी के जामे तथा "झगा" का बैगन के पौदों में उलझकर फट जाना, मंदिर में फटा वस्त्र देखकर, राजा तथा भीतरिया द्वारा कारण पूछने पर ठाकुर जी का स्वप्न में सब कुछ बतलाना, प्रातः काल नृप द्वारा, अष्टपदी किसी एकान्त स्थल में ही गाई जाय, इस बात की पूर्ति के लिये "डौंड़ी" तथा "दुहाई" लिखाना ।

(२) जयदेव जी का अपनी स्त्री सहित किसी राजा के यहाँ जाना, रानी द्वारा जयदेव जी की स्त्री की परीक्षा लेने के लिये झूठ ही जयदेव जी की मृत्यु बतलाना, भक्तबधू पद्मावती द्वारा परीक्षा का अभिप्राय समझकर मर जाना, राजा द्वारा यह बात मालूम होने पर स्वयं मरने के लिये उद्यत होना तथा जयदेवजी का अष्टपदी गानकर पद्मावती को जिलाना ।

दोनों वार्ताओं में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है । नीचे लिखे साम्य के स्थल ~~वर्णनीय~~ द्रष्टव्य है-

प्रि० टी० सुता एक माली की ।

प० प्र० मा० अस एक माली की लरकिनी भोरी ।

प्रि० टी० बैगन की बारी माझ तोरै ।

प० प्र० मा० इतनो बैगन की बारी मैं गावत डोलै ।

प्रि० टी० डोलै जगन्नाथ पाछें ।
प० प्र० मा० ताके संग संग ठाकुर फिरें ।

प्रि० टी० फेरी नृप डौंड़ी ।
प० प्र० मा० सो सुनि वहां को पृथ्वीपति हो तानें दुहाई फेरी।

प्रि० टी० गायो अष्ट वदी, सुरदिये तन जायो है ।
प० प्र० मा० मृतक सरीर कैं ढिग गीत गोविन्द की अष्ट पदी गावत भए तब ताही छिन पदमावती जी गावत सरजीवत है संग गावन लगे ।

ग्रन्थों के प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर पाये जाते हैः-

१- टीका मे जयदेव सम्बन्धी कई वार्ताएं विस्तार पूर्वक तथा कई छन्दों में आई हैं, जबकि प० प्र० मा० में तीन ही प्रसंग आये हैं ।

२- टीका के छन्द १४७ से उस पद को लाल द्वारा लिखे जाने की वार्ता आती है, केवल यही वार्ता प० प्र० मा० में दी गई है । उसी सिलसिले में टी० छं० १४८-४९ में जगन्नाथ द्वारा गीत गोविन्द की महत्ता दी जाती है । यह वार्ता प० प्र० मा० में छोड़ दी गई है ।

३- पद प्रसंग माला में जिस किसी विशेष घटना का वर्णन हुआ है, प्रायः उस घटना के पश्चात् कोई न कोई पद अवश्य लिखा गया है, परन्तु टीका में यह बात नहीं पाई जाती ।

४- टीका में राजा द्वारा "डौंडी" फिरवाने पर किसी मुग़ल का विश्वास गीत गोविन्द के पद गाने पर हो जाता है । इस पर उसे श्याम सुन्दर का दर्शन होता है तथा मुक्ति प्राप्त करता है । यह वार्ता भी प० प्र० में नहीं दी गई है ।

५- टीका के छं० १६०-१६९ तथा प० प्र० मा० के प्रथम प्रसंग में पद्मावती का अष्टपदी के पद सुनकर जी उठने का प्रसंग आया है । टीका में इसी प्रसंग के साथ साथ ठगों द्वारा जयदेव के हाथ पांव काटने पर किसी राजा द्वारा उन्हें अपने साथ ले जाने का प्रसंग आया है । इसका वर्णन भी प० प्र० मा० में नहीं आया है । शेष वार्ताएं दोनों ग्रंथों में समान हैं ।

नामदेव-

इनके संबंध में निम्नांकित समान वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है-

(क) नामदेव जी का बाल अवस्था से ही भक्ति और उन्मुक्त होना, लड़कों के साथ खेलते समय किसी वस्तु को ठाकुर, बना कर किसी वस्तु से उनकी आरती करना तथा घंटा बजाने आदि में ही परम सुख पाना ।

(ख) किसी मंदिर में दर्शन करने के लिये जाने पर इन्हें धक्का देकर लोगों द्वारा बाहर करना, इनका मंदिर के पिछले भाग की ओर बैठना तथा मंदिर का द्वार भी उसी ओर होजाना ।

इन वार्ताओं में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है, जो निम्नांकित है-

प्रि० टी० खेलत खिलौना प्रीति रीति सब सेवा ही की,
पट पहिरावैं पुनि भोग की लगाव हौं ।

प० पृ० मा० लरिकानहू के संग खेलैं तो काहू वस्तु को एक ठाकुर बनावैं, कछु वस्तु हाथ मै लै कैं वाकी आरती करैं ।

प्रि० टी० कीनी धकाधकी ।

प० पृ० मा० लोग ठेलि धकेलि देवैं ।

प्रि० टी० बैठे पिछवारे जाइ ।

प० पृ० मा० तब ये मंदिर के पाछैं आय बैठे ।

प्रि० टी० फेर्यो द्वार इतै गहि मंदिर फिराइयै ।

प० पृ० मा० ताही समय पाछली ओर डार व्है गयो, आगै बैठे हे तिनकौ पीठ को दरसन होत भयो, अस नामदेव जूकी और श्रीमुख भयो "

प्रि० टी० भई हिये प्रीति, गहे पांव सुख दाइयै

प० पृ० मा० सब दौरि नामदेव जी की पायन परे ।

दोनों ग्रन्थों के वर्णित प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर के स्थल दर्शनीय हैं ।

(क) प्रि० टी० छं० १२७ से १४७ तक नामदेव विषयक कई प्रसंग आये हैं जिनका वर्णन विस्तार-पूर्वक हुआ है । प० प्र० मा० में केवल चार प्रसंगों का उल्लेख आया है उसमें से केवल दो ही प्रसंग टीका से मिलते हैं ।

(ख) पहला प्रसंग प० प्र० मा० के पृ० १८६-८७ में खिलौना खेलते समय किसी वस्तु से ठाकुर जी की मूर्ति बनाने तथा पूजन करने से प्रारंभ होती है । इसके पहले की नामदेव और बामदेव सम्बन्धी घटनाएं छोड़ दी गई हैं । उसी प्रकार से नामदेव जी की भक्ति की ओर प्रवृत्ति देखकर, माता के रोकने पर कविता शक्ति के प्रस्फुरण की वार्ता टीकाकार ने नहीं लिखी है ।

(ग) दूसरी वार्ता मंदिर के द्वार फिरने की है, जो टी० १३६-३७ तथा प० प्र० मा के दूसरे प्रसंग में आई है । टीका-कार ने इस वार्ता का वर्णन राजा के परीक्षा लेने तथा उनकी क्षमा-याचना के पश्चात् लिखा है, जबकि प० प्र० मा० में केवल मंदिर के द्वार फिरने का प्रसंग है ।

(घ) प० प्र० मा० की दोनों घटनाओं के अंत में एक एक पद के पश्चात वार्ता समाप्त होती है, जबकि टीका में कहीं भी किसी पद का उल्लेख नहीं है ।

कबीर-

कबीर के संबंध में निम्नांकित समान वार्ता का विकास हुआ है :-

किसी अप्सरा का कबीर को छलने के लिये आना तथा इनका प्रभाव देखकर उसका निराश होकर चला जाना ।

दोनों वार्ताओं में निम्नांकित शब्द साम्य और वाक्य साम्य दृष्टव्य हैं ।

प्रि० टी० आई अपछरा, छरिबे के लिये, बेस किये ।

प० प्र० मा० एक समय कबीर जू बनमें बैठे हैं, तहां इनपै एकान्त स्थल मैं अपसरा स्वर्ग तैं आई ।

दोनों में निम्नांकित अन्तर भी हैं :-

(१) टी० में कबीर के विषय में १३ छन्द लिखे गए हैं, जबकि प० प्र० मा० में केवल एक ही प्रसंग का वर्णन है । यह वार्ता टीका के अन्तिम छन्द की

है ।

(२) टीकाकार ने लिखा है कि कबीर से हार मानकर "अपछरा" लज्जित होकर चली जाती है, परन्तु प० पृ० मा० में कबीर के एक पद को सुनकर ~~म~~ जाती है । इस प्रकार के किसीं भी पद का उल्लेख टीकाकार ने नहीं किया है । साथ ही साथ टीका में उसी वार्ता के भीतर प्रभु का चतुर्भुज रूप से दर्शन देने का उल्लेख आया है । इस प्रकार का भी कोई प्रसंग प० पृ० मा० में नहीं आया है ।

इनसे संबंधित आख्यानों में निम्नांकित समान वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है-

(१) कृष्णदास का कुछ सामग्री के लिये दिल्ली जाना, वहां किसी वेश्या के गाने पर "लालजी" अथवा "श्री गोवर्धननाथ जी" के योग्य देखकर, अपने साथ लाना, मंदिर में गाते हुये उस वेश्या का उसी मूर्ति में तदाकार हो जाना । (यह वार्ता+टीका ३४४-४५ तथा प० पृ० मा० के प्रसंग २ (प० २१७-१८) की है)।

(२) एक बार सूरदास जी का कृष्णदास जी से मिलना, उनसे पद बनाने के लिये आग्रह करना, कृष्णदास द्वारा ठाकुर जी रचित पद को पढ़ना, सूरदास जी का उसे प्रभु का पक्षपात बतलाना । यह वार्ता प्रि० टी० ३४६ तथा प० पृ० मा० के प्रसंग १ (पृ० २१६-१७) में आई है ।

दोनों वार्ताओं में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है । निम्नांकित साम्य के स्थल ~~दर्शनीय~~ द्रष्टव्य हैं:-

प्रि० टी० देखि रिझवार रीझ निकट बुलाय लई ।

प० पृ० मा० (क) हमारो सरदार बड़ो रिझवार है ।

(ख) श्री गोवर्धननाथ रिझवार के सुनाने योग्य है ।

प्रि० टी० "भये अनुराग-बस"

प० पृ० मा० "श्रवनानुराग बढ़त गयो"

प्रि० टी० "हरि मंदिर में लाये हैं"

प० पृ० मा० " ~~अब~~ वाको मंदिर में लै आये "

प्रि० टी० तन छूट्यो अंगीकार करी ।
प० प्र० मा० तब वाको सरीर छुटि गयो ।

प्रि० टी० आए सूर सागर सो कही, बड़े नागर हो।
प० प्र० मा० एक समै सूरदास जू कृष्णदास सौं मिलै ।

इन वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर पाया जाता है-

(क) कृष्णादास विषयक टीका में कई प्रसंग आए हैं, जबकि प० प्र० मा० में केवल इन्हीं दो प्रसंगों का वर्णन हुआ है ।
(ख) प० प्र० मा० के दोनों वार्ताओं के अंत में एक एक पद लिखा गया है, परन्तु टीका में कोई भी पद नहीं उल्लिखित हैं ।
(ग) टीका के कृष्णादास दिल्ली बाजार में जाते हैं, वहां जलेबी देखकर उसका भोग लगाते हैं और वह मंदिर में प्रत्यक्ष देखा जाता है । इतनी वार्ता प० प्र० मा० में नहीं है ।
(घ) टीका के कृष्णादास से सूरदासजी ने ऐसा पद बनाने के लिये कहा था जिसमें उनकी छाया न हो । उनको सोच में पड़ा देखकर गिरधारी ने पद बनाकर सेज पर रख दिया और उसको सुनकर सूरदास जी ने ठाकुर का पक्षपात बतलाया । यही वार्ता प० प्र० में दूसरे शब्दों में लिखी गई है । सूरदास जी एक बार कृष्णादास से मिलते हैं और स्वयं तथा उनसे पद रचना करने के लिए आग्रह करते हैं । कृष्णादास से पद न बनने पर "श्री गोवर्धननाथ" पद बनाकर कृष्णादास जी की गोद में रख देते हैं । शेष वही वार्ताएं दोनों ग्रन्थों मे वर्णन की गई हैं ।

सूरदास-

इनके संबंध मे निम्नलिखित घटनाएं विशेषरूप से दृष्टव्य है -

(१) किसी नेत्र वाले सूरदास को पातसाह का "अमीन" या "दीवान बतलाना, सूरदास द्वारा पातसाह के खजाने का सब रूपया संतों को खिला देना, सब थैलों में पत्थर और एक पत्र भरकर पातसाह के पास भेजना, स्वयं आंधी के समय गृहत्याग कर वृन्दावन भग जाना, पत्रों को पढ़कर पातसाह का

का प्रसन्न होकर भक्ति रंग में रंग जाय । (यह प्रसंग प्रि० टी० ४९८-५०० तथा प० पु० मा० के प्रसंग १ (पृ० २२२-२२३) में आई है ।

(२) सूरदास जी के पद "संतनि की पानही के रच्छक कहाऊं मैं" को पढ़कर, किसी परीक्षा लेने वाले संत द्वारा मंदिर के द्वार पर अपनी "पनही" सूरजी को देना, सूरद्वारा अपने भाग्य की प्रसंसा करते हुए वही पद गाना । (यह वार्ता-प्रि० टी० ४९९ तथा प० पु० मा० के प्रसंग २ (२२३-२४) में आई है ।

इन वार्ताओं में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाये जाते हैं, जो नीचे लिखे गए हैं -

प्रि० टी०	सूरदास नाम नैन कंज अभिराम फूले ।
प० पु० मा०	एक सूरधज ब्राह्मण गृहस्थ उनके नेत्र तो आछे हे"
प्रि० टी०	पृथ्वीपति संपति लै साधुनि खवाइ दई ।
प० पु० मा०	परन्तु कछु पातसाही खजाने के भी रुपीया वैष्णवन कौं षवाइ दये "
प्रि० टी०	"पाथर लै मरे आधी निसी भागे
प० पु० मा०	"थैलीन में पथर भरि भरि बिजिक की ठौर एक विष्णुपद लिषि सब थेलीन में वह कागज डारि दियो - - अस आप गृहस्थ कौं त्याग करि आधी राति भागी आई वृंदाबन आइ बैठे।
प्रि० टी०	संतन की पानही को ~~रच्छक~~ रक्षक कहाऊं मैं ।
प० पु० मा०	संतन की पानही को रक्षक कहाऊं मैं ।
प्रि० टी०	रह्यो बैठि जाय जूती हाथ मैं उठाय लीनी ।
प० पु० मा०	अरु सूरदास उनकी पानहीं हाथ लिये ठाडे रहे ।
प्रि० टी०	पूरी आस मेरी निसि दिन गाऊं मैं ।
प० पु० मा०	कहै महाराज मेरो तो मनोरथ आज ही पूरन भयो है ।

दोनों वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर भी है -

(१) टीकाकार ने सूरदास जी के विषय में कई प्रसंग लिखा है, परन्तु प० पु० मा० में केवल दो प्रसंगों का उल्लेख है ।

(२) परीक्षा लेने वाले संत की पनही की रखवाली करने के पश्चात्, टीका के अनुसार किसी गुसांई जी ने उन्हें मंदिर के भीतर आने की आज्ञा दी, कदाचित् ये विट्ठलनाथजी रहे होंगे। परन्तु प० प्र० में किसी भी गुसांईं का नाम नहीं आया है। शेष वार्तायें दोनों रचनाओं में समान हैं।

मधुकरशाह -

इनकी निम्नांकित वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है:-

मधुकरसाह को "ओडछे" अथवा बुन्देले का राजा बतलाना, कंठी तिलक धारण करने वालों की सेवा करने वाला, अपने भाइयों द्वारा कंठी माल धारण कराकर लाये हुए गधे का चरणामृत लेना तथा विमुखोंको इससे दुःख होना।

इन वार्ताओं शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है, जो निम्नांकित है-

प्रि० टी० कंठीधरि आवैकोय, धोय पग पीवै सदा।
प० प्र० मा० कंठी तिलक धरि वैष्णव मात्र आवैं, तिन सबकी सेवा प्रति
धरि रीति पूर्वक भली-भांति करैं।

प्रि० टी० भाई दूषि।
प० प्र० मा० भाई बन्धु बहोत दुष्ण मानैं।

प्रि० टी० "खरगर डार्यो माल भार है
प० प्र० मा० एक गधा के बहोत सी कंठी बांधि।

इन वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर भी पाया जाता है -

पद प्रसंगमाला में टीका के अतिरिक्त यह बात विशेष पाई जाती है - मधुकर शाह का पुरोहित व्यास और उनकी रानी का नाम "गनेसदेई" बतलाना, रानी द्वारा गधे के पांव का चणामृत लेकर पवित्र करने के हेतु गृह में छिड़कना तथा व्यासजी का प्रसन्न होकर एक नवीन पद बनाना जिसमें मधुकर शाह का नाम रखना।

रैदासजी-

दोनो ग्रंथों में रैदास जी के विषय में समानरूप से एक ही प्रसंग का विकास हुआ है ।

रैदास जी का उत्कर्ष देखकर ब्राह्मणों को बुरा लगा । वहाँ के राजा से न्याय की याचना की । राजा ने रैदास को भी पूजा का समान अधिकार दिया ।

इस प्रसंग में निम्नांकित अन्तर का स्थल भी द्रष्टव्य है ।

टीका में न्याय करने वाले राजा ने सब संतों की र तरह रैदास जी को सेवा करने की आज्ञा प्रदान की । किन्तुपद प्रसंगमाला में श्री ठाकुर जी की मूर्ति परीक्षा के लिए रखी गई । ब्राह्मणों द्वारा लाखों मंत्र पढ़ने पर भी नहीं आई *, जबकि माला के अनुसार एकपद गान करने पर भी रैदास जी की गोद में चली आई । माला में वह पद भी दिया हुआ है *, जबकि टीकाकार इस विषयमें में मौन हैं । जहाँ तक दोनों ग्रंथों का संबंध है टीका में कई प्रसंग आए हैं *, तथा माला में उक्त प्रसंग ही आया है ।

नरसी मेहता-

इनके विषय में निम्नांकित समान वार्ताओं का विकास हुआ है ।

(क) नरसी मेहता कन्या कीससुराल गए । इनको द्रव्यहीन समझकर वहाँ के लोगों ने निरादर किया । परिणाम स्वरूप सम्पत्ति का ढेर इनके सामने लाया गया ।

(ख) निन्दकों के कहने पर वहाँ के राजा के सम्मुख भी आराधना करते समय प्रभु के कंठ की माला टूटकर इनके गले में पूर्ववत आ गई ।

दोनों ग्रंथों में आए हुए प्रसंगों के निम्नलिखित अन्तर के स्थल भी दर्शनीय हैं ।

(१) टीका में कई छन्दों में नरसीमेहता विषयक प्रसंग आए हैं *, जबकि पद प्रसंगमाला में केवल दो ही प्रसंगों का विकास हुआ है । प्रायः टीका की वार्ताएँ विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं १, किन्तु पद प्रसंगमाला में इनका संक्षेप में वर्णन हुआ है ।

(२) टीका छं० ४३८-४० में प० प्र० माला का पहला प्रसंग प्रारम्भ होता है ।

इसमें दुहिता के यहां द्रव्यहीन होने के कारण अनादर वाली बात वर्णित है। नागरीदास ने लिखा है केवल एक कीर्तन गाने से सब सामग्री तैयार हो गई। इसी बात को टीकाकार ने विस्तार दिया है।

(३) पद प्रसंग माला के अनुसार नरसी के गले में केवल एक कीर्तन गान पर ही माला चली आई है। टीका में राग के दाम को गिरवी रखने की वार्ता का विशेष उल्लेख है।

(४) पद प्रसंगमाला में नरसी द्वारा गाये पदों का उल्लेख है जबकि टीकाकार इस विषय में मौन है।

तुलसीदास-

इनके विषय में दोनों ग्रंथों की समान वार्ताएं निम्नांकित हैं।

(१) तुलसीदास जी शौच से अवशिष्ट जल एक वृक्ष के मूल में छोड़ते थे। एक बार एक प्रेत प्रकट होकर इनकी इच्छानुसार हनुमान द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर रामदर्शन का उपाय बतलाया। तुलसीदास को उक्त हनुमान का दर्शन हुआ। उन्होंने राम-लक्षमण के दर्शन कराने को भी यत्न किए। किन्तु भ्रमवश तुलसीदास ने राम लक्ष्मण को नहीं पहचाना। यह वार्ता प्रि० टीका छं० ५०९-१० तथा पद प्रसंग माला के प्रसंग १ (पृ० २००-२०२) मे आई है।

(२) किसी स्त्री का पति मर गया। सती होने के लिए जाती हुई स्त्री को तुलसीदास ने सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। परिणाम स्वरूप मृतक जी उठा।

(३) "पातसाह" ने तुलसीदास की करामात देखने के लिए बुलवाया। करामात न दिखलाने पर बंदी-गृह में भेज दिया। इनकी प्रार्थना पर लाखों बंदरों ने उपद्रव किया। "पातसाह" ने क्षमा याचना की। तुलसीदास ने वह स्थान राम दूत हनुमान जी के लिए छोड़ने की आज्ञा दी। आजतक वह स्थान उसी रूप में है। यह वार्ता प्रियादास टी० ५१४-१७ तथा पद प्रसंगमाला के प्रसंग २ (पृ० २०२-२०३) में पाई जाती है।

(४) किसी समय तुलसीदास जी "मदन गोपाल" अथवा "श्री गोवर्धननाथ जी" के दर्शन के लिए गये। इनकी प्रार्थना पर वह मूर्ति राम मूर्ति में परिवर्तित हो गई। यह वार्ता प्रि० टी० ५१८ तथा पद प्रसंग मा० के प्रसंग ३ (पृ० २०३-४) मे आई है।

दोनों ग्रंथों की इन वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर के स्थल भी द्रष्टव्य हैं।

(क) टीका में तुलसीदास विषयक कई प्रसंगों का विस्तार पूर्वक वर्णन है। जबकि पदप्रसंग माला में केवल तीन ही प्रसंगों का संक्षेप में वर्णन हुआ है।

(ख) प्रि० टी० में (५०९) शौच से अवशिष्ट जल छोड़ने तथा प्रेत वाली घटना किस स्थल पर है इसका कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु पद प्रसंगमाला के प्रथम प्रसंग (पृ० २००-२०१) में स्पष्ट उल्लेख है कि यह घटना काशी की है।

(ग) प्रि० टी० ५१० तथा पद प्रसंगमाला के प्रथम प्रसंग में हनुमान के बतलाने पर राम लक्ष्मण के दर्शन की भी वार्ता आई है। इस दर्शन की घटना दोनों में भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन की गई है।

(१) टीका में तुलसीदास रामलक्ष्मण को घोड़े पर चढ़े हुए देखते हैं और कदाचित् भ्रमवश नहीं पहचानते हैं।

(२) पद प्रसंगमाला के तुलसीदास जी साधारण मलिन वस्त्रधारी मनुष्य के वेष में, किसी मृग को जिसके शरीर से रक्त टपक रहा था, उल्टे टाँगे हुए ले जाते देखते हैं।

(घ) टीका में सती होने के लिए जाने वाली स्त्री का पति भी जी जाता है, जब वह राम भक्त होने की प्रतिज्ञा करता है। किन्तु पद प्र० मा० में किसी प्रतिज्ञा का उल्लेख नहीं है।

(ङ०) प्रि० टी० ५१५ में दिल्ली पति पातसाह का नाम नहीं दिया गया है किन्तु पद प्र० माला प्रसंग २ में "पातसाह जहाँगीर" का नाम दिया हुआ है। साथ ही "अनीराय बड़गूजर" के कहने से तुलसीदास जी के पद गाने तथा बन्दरों के उपद्रव मचाने की वार्ता भी टीका में नहीं आई है।

(च) प्रियादास टीका ५१७ में वर्णित तुलसीदास का काशी जाकर पुनः वृन्दावन में आने तथा नाभादास जी से मिलने की वार्ता पद प्रसंग में नहीं आई है ।
(छ) प्रि० टीका में "मदन गोपाल" की मूर्ति राममूर्ति में परिवर्तित हुई ऐसा लिखा गया है किन्तु पद प्रसंगमाला में श्री गोवर्धननाथ का नाम है ।
(ज) पद प्रसंगमाला के प्रत्येक प्रसंग के अन्त में पद लिखा गया है, जब कि टीकाकार ने ऐसा नहीं किया है ।

मीरांबाई-

इनके विषय की निम्नांकित समान वार्ताओं का विकास हुआ है ।
(क) मीरांबाई से अप्रसन्न होने वाले राना से, चरणामृत की जगह स्वर्ण कटोर में विष भेजा । पीने पर मीरा की मृत्यु नहीं हुई ।
(ख) निन्दकों की बातों पर ध्यान करने वाले राना ने प्रत्यक्ष श्याम रंगी मीरा को देखा ।
(ग) मीरां वृन्दावन में जीवगुसांईं से मिलीं तथा स्त्री न देखने का उनका प्रण तोड़ा ।
(घ) मीरां घर त्याग कर द्वारिका गईं । मीरां को वापस लाने के लिए राना के आदमी ने धरना दिया । किन्तु मीरां वहीं श्रीरणछोड़ की मूर्ति में तदाकार हो गईं ।

दोनो ग्रन्थों में आए हुए प्रसंगों का अन्तर भी देखने योग्य है ।

(१) प्रिया टी० ४७५ तथा पद प्रसंगमाला के प्रसंग दो (पृ० १९४) में संतो का सत्संग न त्यागने पर विष देने की वार्ता आई है +, जबकि टीका में ननद के समझाने के बाद विषय दिया जाता है । पद प्र० मा० में ननद का नाम ही नहीं है ।

(२) टी० ४७६-७७ तथा पद प्रसंग माला प्र० चार (पृ० १९६) में राना द्वारा मीरां के ऊपर शक करने वाली वार्ता आती है । दोनों ग्रन्थों में यही वर्णन अपने अपने ढंग से लिखा गया है । घटना एक ही है । टीका के अनुसार राना मीरां पर शक कर चरों को नियुक्त करते हैं और अन्त में स्वयं तलवार लेकर जाते हैं । एस स्थल पर गिरधारी से वार्तालाप सुनकर सीधे पांव घर लौट आते हैं । परन्तु पदप्रसंगमाला के अनुसार राना जिस स्त्री को भेजते हैं वही

मीरा के अनुराग में मूर्छित हो जाती है और राना के पास नहीं आती ।

(३) टी० ४७९ तथा पद प्रसंग माला प्रसंग २ में जीवगुसांई से मिलने की वार्ता आई है । टीकाकार ने इसके पहले अकबर तथा तानसेन के आने का उल्लेख किया है किन्तु पद प्रसंग मा० में इनका भी उल्लेख नहीं है ।

(४) टीका में मीरा विषयक कई प्रसंगों का उल्लेख है जबकि पद प्रसंगमाला में थोड़े ही प्रसंगों का वर्णन है । प्रत्येक प्रसंग के साथ जो पद उल्लिखित है उनका टीका में नाम भी नही है ।

मुरारिदास -

दोनों ग्रन्थों में मुरारिदास को किसी महोत्सव में पदगान करते समय प्राणान्त होने की समान वार्ताओं का उल्लेख है ।

अन्तर-

इस प्रसंग में शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य उतना नहीं है । जितना अन्य भक्तों के प्रसंगों में । किन्तु घटना एक ही अपने ढंग से वर्णित है । इसी प्रकार अन्य भक्तों जैसे व्यास जी, गदाधर भट्ट, षर्गसिन, नरवाहन और नारायणदास के प्रसंगों में समानताएँ हैं । इनका उल्लेख टीका और पद प्रसंग माला में कहां हुआ है । टीका के आदि की सूची में उल्लिखित प्रसंग समानताओं का निर्देश किया जा चुका है । केवल कुछ अन्तरों के साथ प्रायः प्रसंग समान है ।

निष्कर्ष-

दोनों ग्रंथों में आए हुए समान प्रसंगों वाले भक्तों के तुलनात्मक अध्ययन से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं ।

प्रियादास की टीका और पद प्रसंग माला में वर्णित सोलह भक्तों के प्रसंगों में बहुत निकट का साम्य है । यहां तक कि शब्दों तथा वाक्यों में भी समानता है । केवल मुरारिदास के प्रसंग में एक ही घटना का वर्णन अपने ढंग का है ।

अन्तर -

प्रियादास की टीका और पद प्रसंगमाला के वर्णनों में कुछ अन्तर भी है। प्रियादास ने प्रायः प्रत्येक प्रसंग का विस्तार किया है। नागरीदास ने प्रसंगों को संक्षिप्त किया है। टीका का वर्णन कवित्त छन्दों में है। पद प्रसंगमाला ब्रजभाषा गद्य में है। इसी प्रकार पद प्रसंग माला में प्रत्येक प्रसंग के बाद कोई न कोई पद उद्धृत रहता है। टीकाकार की परिपाटी ऐसी नहीं है।

तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों की सूचनाओं में पर्याप्त समानता है। किन्तु किसने किससे लिया, इसका निर्णय करना यहां सरल है क्योंकि नागरीदास ने टीका को देखा था, इस बात का उल्लेख उनके शब्दों में ही दृष्टव्य है -

"मारवार में एक गांव एक पालरी तामै वैष्णव, एक रामानुजी चतुरदास जू नाम रहै, तिनको षोजी नाम प्रसिद्ध भयो सो ताको प्रसंग भक्तमाल के टीका मैं है विस्तार ह्वैबै को यामैं धर्यो नाहीं, ये साषी मैं ले षाजी नाम धरते, अरु विष्णुपद मैं चतुरदास नांव धरते[१२०]।

अतएव समान प्रसंगों के स्रोत के संबंध में कोई विचारणीय समस्या नहीं रह जाती। शेष में जहां कहीं अंतर है उनके संबंध में यही कहा जा सकता है कि वे या तो नागरीदास की मौलिक उद्भावना के कारण हैं या फिर किसी अन्य स्रोत से उन्होंने इन्हें ग्रहण किया होगा।

संत भीखादास का राजहिंडोला -

भीखादास के घर का नाम भीखानंद चौबे था। ये आज़मगढ़ के खानपुर बोहना नामक गांव के रहने वाले थे[१२१]। इनका जन्म लगभग सं० १७७० में माना

१२०- पद प्रसंगमला पृ० १९७।

१२१- भीखासाहब का जीवन चरित्र- वेल वेडियिर प्रेस पृ० १।

जाता है[१२२] । कहा जाता है कि अपनी दस वर्ष की अवस्था में ही अपने गुरु की खोज करने लगे थे[१२३] । अन्त में मुरकुड़ा ज़ि० गाज़ीपुर के निवासी संत गुलालसाहब से दीक्षा ली । अपने गुरु के संबंध में इन्होंने स्वयं लिखा है जो इस प्रकार है ।

यक भूपत बहुत विचित्र सुनतहिं भोग पुँछिउ है कहां ।
नियरे मुड़कुड़ा ग्राम जाके, शब्द आये हैं तहां ।।
चोप लागि बहुत जायके, चरन पर सिर नाइया ।
पुँछिउ कहां कहिदियो, मोंहि आदर सहित बैठाइया ।।
पर भाव बूझि मगन भयो, मनो जन्म को फल पाइया ।
लखि प्रीति दर्द दयाल द्रवये, आपनो अपनाइया ।।

महात्माओं की वाणी (प्रकाशक बाबा रामबरनदास साहेब)
पृ० ११३

उसी समय से भजन तथा सत्संग में लीन रहने लगे तथा अपने गुरु की मृत्यु संवत् १८१७ के पश्चात् गद्दी पर बैठे । संवत् १८४८ के आस पास परलोक सिधारे [१२४] ।

रचनाएं -

भीखा रचित निम्नांकित ग्रंथ हैं +

(१) राम कुंडलिया (२) राम सहस नाम (३) राम सबद (४) रामराज (५) राम कवित्त (६) भगत बछावली अथवा राजहिंडोला रचना में भक्तों का नाम आया है । उस पर विचार किया गया है ।

१२२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वर्मा पृ० ४०७ ।

१२३- जनम स्थान खानपुर बुहना, सेवत चरन भीखानन्द चौबे ।

बीते बारह बरस उपजी राम नाम सों प्रीति ।
निपट लागि चट पटी मानों चारिउ पन गयो बीति ।।

भीखा साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग, पृ० १४ ।

१२४- उत्तरी भारत की संत परम्परा- परशुराम चतुर्वेदी पृ० ४८६ ।

राजहिंडोला[१२५]

संत भीखादास की इस रचना में कलियुग के लगभग ५० से अधिक भक्तों का नाम आया है। इसमें अन्य युगों के भक्तों के साथ साथ नाथ-पंथी योगियों के नामों का भी उल्लेख है। सभी भक्तों को शब्द हिंडोला पर झुलाया गया है। कलियुग के भक्तों की सूची दी जा रही है।

"माधोदास, टीकम, नींबानंद, कर्मा, जैदेव, सूर, तुलसी, रैदास, नाद जगन्नाथ माणी, नित्यानन्द, चैतन्य, नामदेव, तिलोचन, दास मुरारि, वल्लभ, नानक, चत्रभुज, मीरा, अनन्तानंद, नरहरि, कान्हा, नाभा, तत्वा, तुलसी, मदनमोहन सूर, कूवा, कृष्णदास नरसी, रामराय, हरिराय, कालीदास, कनेरी, नरोत्तम भगवान, पीतांबरदास, समन, सदन, गुंजा माली, संत दास, कमाल, बुधन, विद्यापति, जयदेव, धर्मदास, मलूक, धरनीदासस केसो और बूला आदि"।

संत भीखा ने उक्त भक्तों के विषय में किसी प्रसंग या घटना का उल्लेख नहीं किया है, बल्कि सभी भक्तों का केवल नाम गिनाया है। इसमें अधिकतर भक्त उनके पहले के हैं तथा कुछ उनके समकालीन हैं। इस रचना का इतना ही ऐतिहासिक महत्व है।

भगवत् रसिक का निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध -

भगवत रसिक जी ने टट्टी सम्प्रदाय के मुख्याचार्य श्री ललित किशोरी जी के शिष्य स्वामी ललित मोहिनी दास जी से दीक्षा ग्रहण की थी। सहचर-शरणजी ने ललित मोहिनी जी का समय १७८० से १८५८ इस प्रकार माना है

१२५- इन भक्तों का नाम संत भीखादास की हस्तलिखित प्रति के आधार पर दिया गया है। यह प्रतिलिपि नागरी प्रचारणी सभा में संख्या १६३४।९४९ में कई पाण्डुलिपियों के साथ नत्थी है। इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है। किन्तु लिपिकाल सं० १९९८ लिखा हुआ है। उस प्रतिलिपि के अनुसार इसकी पृ० सं० ४७,५० है। पृ० ४७,४८ तक अन्य युगों के भक्तों को झुलाया गया है। केवल पृ० ४९ में कलियुग के भक्तों का नाम है।

ललित मोहिनी प्रभा सोहिनी आस्विन सुदि दसमी कौं ।
कियो प्रकाश सरद जनुंद्रुम वर्षायो सु अमी को ।
संवत सत्रह सौ सुअसी को अति प्रमोद को दानी ।
सरन माघ वदि इक दसमी को सबही ने यह जानी ।
फागुन वदि नवमी को प्रमुदित रंग महल को गमने ।
वर्षा अठारह सौ अठावन निरखत राधा रमने ।।[१२६]

भगवत रसिक का जन्म अनुमानतः सम्वत् १७९५ माना गया है ।[१२७] इस प्रकार से इनका रचना काल १८३० से १८५० के बीच हो सकता है[१२८]। इन्होंने अपनी उपासना से संबंध रखने वाले पद, कवित्त, कुण्डलियां और छप्पय आदि की रचनाएं की है । ये वैराग्य तथा श्रृंगार दोनो वर्णनो में सिद्धहस्त थे । इनका ग्रंथ निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध भक्तों की नामावली है जो ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास की अमूल्य सामग्री है । इस ग्रंथ को लखनऊ निवासी लाला केदारनाथ वैश्य ने छपवा कर वितरण करवाया था तथा "भक्त नामावली शीर्षक से बृजमाधुरी सार के पृष्ठ ४१६-१७ में वियोगी हरि ने प्रकाशित करवाया है ।

लेखक को इसकी एक हस्तलिखित प्रति प्रयाग संग्रहालय में देखने को प्राप्त हुई थी ✗, जो "अनन्य रसिकाभरण" तथा "निरोधमन मंजन" ग्रंथ के साथ एक ही में जुड़ी है । ये दोनों ग्रंथ भी क भगवत रसिक के बतलाये जाते हैं । ~~अनन्यम~~ "रसिकाभरण" ग्रंथ का लिपिकाल १९३८ दिया हुआ है अतः उक्त ग्रंथ का भी लिपिकाल वही होगा । रचनाकाल नहीं दिया गया है । ग्रंथ की पुष्पिका इस प्रकार हैः-

"इति श्री अनिन्य रसिका भरन ग्रंथ द्वादस झांका । श्री राधावल्लभो जयति ।। श्री कृष्णाय नमः ।। मिती फाल्गुण कृष्ण ।।७।। गुरौ ।। संवत १९३८)। लिषतं राम प्रसाद ।।

१२६- बृजमाधुरी सार वियोगीहरि पृ० ४०० से उद्धृत ।
१२७- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३५७
बृजमाधुरी सार-वियोगी हरि पृ० ३९९ ।
१२८- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३५७ ।

निश्चयात्मक ग्रंथ में आये हुए भक्तों की सूची -

इस ग्रंथ में लगभग १२३ भक्तों के नाम उद्धृत किये गये हैं जिसमें अन्य युगों तथा इस युग के भक्तों का नाम आया है । नामों में भी कोई क्रम नहीं है । इसे केवल सच्चे रूप में भक्तनामवली की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि नामों के अतिरिक्त कोई भी अन्य संकेत नहीं है । उदाहरण स्वरूप कलियुग के कुछ भक्तों की सूची नीचे दी जा रही है:-

(१) विष्णुस्वामी (२) निम्बार्क (३) माधौ (४) रामानुज
(५) लालाचारज (६) मनुरदास (७) कूरेस (८) ग्यानदेव
(९) तिलोचन (१०) पद्मावती (११) जयदेव (१२) बिलवमंगल
(१३) चिन्तामणि (१४) केशव भट्ट (१५) श्री भट्ट (१६) नारायण भट्ट
(१७) गदाधरभट्ट (१८) विट्ठलनाथ (१९) वल्लभाचार्य (२०) नित्यानंद
(२१) चैतन्य महाप्रभु (२२) भट्टगोपाल (२३) रघुनाथ गोसांई (२४) मधू गोसांई
(२५) व्यासदास (२६) हरिवंश गुसाई (२७) श्री स्वामी हरिदास
(२८) विपुल बिहारिन दास (२९) नागरि (३०) नवल माधुरी (३१) तानसेन
(३२) अकबर (३३) करमेती (३४) मीरा (३५) करमाबाई आदि ।

इन भक्तों में भगवत् रसिक ने अकबर और तानसेन की भी गणना की है।

"लघुजन कृत "भक्तमाल संत सुमिरिनी"

लघुजन के विषय में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता । इनकी उक्त रचना की प्रतिलिपि साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय में प्राप्त हुई है[१२९] । यह भक्तमाला कई अन्य पुस्तकों के साथ संगृहीत है । इसका रचनाकाल तथा लिपिकाल नहीं दिया हुआ है । किन्तु एक स्थल पर अन्य ग्रंथ में जो इसी के साथ नत्थी है, लिपिकाल सं० १९११ दिया गया है[१३०]। सम्मेलन के हस्तलिखित ग्रन्थ की

१२९- साहित्य सम्मेलन संग्रहालय सं० ४१८ वेष्ठन सं० १९६२

१३०- "इति श्री सहचर सरन विराच ताऊ । गमंजावली व्रत संपूरनम् ।
फागुन बदि १ संवतु १९११ ।

सूची में उक्त पुस्तक के रचयिता का नाम "गंगादास लघुजन" लिखा हुआ है। किन्तु सम्पूर्ण ग्रंथ में गंगादास का नाम नहीं मिला। ग्रन्थ के अन्त में रचयिता का नाम इस प्रकार उद्धृत है।

धरमादिक जग लहत सकलनर बरनत बुद्ध प्रकासी।
श्रीरामानुज संत कृपातैं रची परमसुख रासी ।।
इतिश्रीसंत सुमिरिनी संपूरनं लघुजन-कृत
संपूरनं श्री राम राम राम।

इन पंक्तियों ~~के अध्ययन~~ से यह भी मालूम होता है कि ग्रंथकार कोई रामानुजी वैष्णव था।

संक्षिप्त परिचय -

इस भक्तमाल में पहले गणेश जी के नाम से मंगलाचरण का पद है। उसके पश्चात् अन्ययुगों के भक्तों का नाम है। फिर रामानुज, विष्णुस्वामी, माधवाचार्य, निम्बादित्य, रामानन्द तथा उनके बारह शिष्यों का यशगान लिखा गया है।

घना, पद्मनाभ, माधोदास, कृष्णचैतन्य, नित्यानन्द, कैसोभट, सूरसागर हरव्यास, व्यासदास रसिक शिरोमनि, जीवगोसाईं, लोकनाथ, रसिक मुरारी गुपाल, गजाधर, सदना, षोजी, रांका-बांका, संत दास, गोविन्द स्वामी, तिलोक भुंजामाली, गनेशदेई, चतुर्भुज, मीरा, पृथ्वीराज, जैमल, षेम, रामरैन, किशोर, संददास, मदन मोहन, श्री मुरारि, तुलसीदास, परसराम, कान्हर, कोल्ह आल्हा, पृथ्वीराज, रतनावली, चतुरोनागा, केवल कूंबा, केवल राम, गजाधर स्वामी, रामदास, श्री भगंवत, माधौरसिक, प्रियादास, श्री नाभास्वामी के नामों का उल्लेख है। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने भक्तमाला लिखने तथा पढ़ने के महत्व को बतलाया है।

रचनाकाल-

इस ग्रंथ में सबसे बाद में प्रियादास के नाम का उल्लेख है। रचना-काल के विषय में ग्रन्थकार ने इस प्रकार लिखा है +

"प्रियादास श्री नाभास्वामी तिनकौ करौं प्रनाम ।
जिनके उरविच भक्त बसत हैं सबबिध करनै पूरन काम ।।
सप्तदीप दस चार लोक में बसत भगत जग जेते ।
होंगे दौस पुनः हुहै बिमऊं सब तेते ।।

यह स्पष्ट है कि रचना प्रियादास की टीका के बहुत बाद की है और उन्नीसवीं सदी के अर्द्ध शतक तक संभव हो सकती है ।

विशेषताएं -

इस भक्तमाला में केवल भक्तों का नाम है । कवि रामानुजी सम्प्रदाय का है । अतएव नाभादास के भक्तमाल में जिन भक्तों का नाम आया है उनका संक्षेप में उल्लेख किया है । इस रचना का ठीक वही कृम है जो भक्तमाल का है । पहले अन्य युगों के भक्तों का नाम है बाद में कलियुग के भक्तों के नामों का उल्लेख है । प्रायः नामों की गणना की गई है किसी भी प्रसंग का उल्लेख नहीं है ।

वै नरायन की भक्त सुमिरनी-

ये कौन थे इनके विषय में कुछ नहीं ज्ञात है । केवल इतना मालूम है कि ये प्रियादास जी के शिष्य थे तथा उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने उक्त ग्रंथ लिखा । यह भक्त सुमिरनी तेरह पृष्ठों की है जो सम्पूर्ण रीति से नाभादास जी के भक्तमाल पर आधारित है [१३१]। खोज रिपोर्ट (पृ० मै० रि०) में टीकमगढ़ लाइब्रेरी की जिस प्रति से सूचना दी गई है उसका लिपिकाल सं० १८३८ है । मिश्रबंधुओं ने भी उक्त रिपोर्ट के आधार पर इनका कविताकाल सं० १७६९ माना है [१३२] ।

दयालदासजी का"करुणासागर"

ये रामसनेही पंथ के आचार्य रामदासजी महाराज के पुत्र थे [१३३] ।

१३१-खोज रिपोर्ट १९०६-८, सं० १४३ ।

१३२- मिश्रबंधु विनोद, पृ० ५७२, कवि ६३५ ।

१३३- तब आयसु शिरपर धरिकै बाल लिए अवतार इल
रामदास पितु पायधिन सुन्दर माता कूख भल।।२ जन्मलीला पूर्णदासकृत
श्री रामसनेही धर्मप्रकाश पृ० ३० ।

श्री पूर्णदास ने, जिनका जन्म संवत् १५२८ में हुआ था और जो खेड़ापा की गद्दीपर सं० १८८५ में दयालदासजी के बाद विराजे, अपने ग्रंथ "जन्मलीला परची" में इनकी बड़ी प्रशंसा की है[१३४]। जन्म स्थान बड़गांव तथा दयालजी महाराज के विषय में इसी ग्रंथ के अनुसार विशेष जानकारी होती है[१३५]। उक्त ग्रंथ में उनके जन्म संवत् १८१६ का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:"

बड़ गांवशुभ वास जहां इक सदन कहीजै ।
नमो द्याल तहां जन्म प्रथम परचीसुलहीजै ।।३।।

समत अठारह जान वरष षोडस परवानो ।।
तामध मिंगसर मास शुक्ल एकादशि जानो ।।

उन्होंने अपने पिता रामदासजी से दीक्षा ग्रहण की थी, जिसका उल्लेख जन्मलीला में इस प्रकार हुआ है -

रामदास महराज के, द्यालशिरोमणि सिक्ख ।
जन्म सुलीला वाणी हू निज गुरुरूप प्रत्यक्ष ।।
— जन्मलीला दोहा २ ।

अपने गुरु तथा पिता के मरने के पश्चात् सं० १८५५ आषाढ़ शुक्ल ८ गुरुवार को वे गद्दी पर विराजमान हुए[१३६]।

मृत्यु- इनकी मृत्यु कब हुई थी, पूर्णदास जी ने अपनी जन्मलीला में इसका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु जनश्रुति के अनुसार उनकी मृत्यु संवत् १८८५ में मानी गई है[१३७]।

१३४- श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० ३६, ३७ ।

१३५- दयालदास जी की जन्मलीला ~~वर्त~~ परिची श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश ग्रंथ में प्रकाशित है अतएव उसी के अनुसार इनके जीवन चरित्र के विषय में प्रकाश डाला गया है ।

१३६- श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० ३६ ।

१३७- वही, पृ० ३९१ ।

रचनाएं:-

इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ "करुणा-सागर" है। इसके अतिरिक्त इनके दो ग्रंथ "गुरु प्रकरणपरिची" तथा कुछ फुटकर पदों का भी पता चला है। इनके दोनों ग्रंथ "करुणा सागर" तथा "गुरु प्रकरण" प्रकाशित हैं। पहला ग्रंथ "श्री रामसनेह धर्मप्रकाश" में २५६ से ३०६ पृष्ठों तक है तथा दूसरा श्री आनन्दाश्रम "बीकानेर" से प्रकाशित है।

रचनाकाल-

इनका रचनाकाल वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल में सं० १८०९ माना गया है[१३८] जो अशुद्ध ज्ञात होता है क्योंकि जन्मलीला परची के अनुसार उनका जन्म ही संवत १८१६ में हुआ था, उससे पूर्व उनका रचनाकाल मानना असम्भव है। संवत् १८५५ में रामदासजी महाराज की मृत्यु के पश्चात् वे गद्दी पर बैठे तथा इनकी रचना गुरु प्रकरण परिची भी उक्त संवत् में समाप्त हुई।[१३९] इस प्रकार उनके रचनाकाल की आरम्भिक सीमा सं० १८५० तथा अंतिम सीमा सं० १८६० के कुछ पश्चात् तक मानी जा सकती है।

करुणा-सागर-

इस ग्रंथ द्वारा विविध छन्दों में लगभग ५० भक्तों के चरित्रों के अलौकिक प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं। प्रारम्भ में चार दोहे ईश वन्दना के मिलते हैं। इस ग्रंथ में आधे से अधिक अन्य युगों के भक्तों के विषय में प्रसंग दिए गए हैं। सतयुग के अतिरिक्त अन्य युगों के भक्तों का वर्णन ध्रुव से प्रारम्भ होता है। उसके पश्चात् इस युग के भक्तों का वर्णन रामदास से प्रारम्भ होकर नाभादास जी तक समाप्त हो जाता है। ग्रंथ का अन्त भी ईश महिमा के छन्दों से ही होता है।

१३८- वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल भूमिका, पृ० १४।

१३९- गुरु प्रकरण परिची पृ० १२२।

ग्रंथ में आए हुए प्रमुख भक्तों के नाम निम्नलिखित हैं:-

(१) नामदेव (२) कबीर (३) रैदास, पीपा, धनाभक्त, चौहान भुवन, हरिभक्त ब्राह्मण, घाटम, जैमल, मीराबाई, नरसी मेहता, दादू दयाल, बोढाणारामदास ग्वालभक्त, जसूस्वामी, रामदासजी महाराज, तुलसीदास, मैदानी माधोदास, नरहरियानन्द, नन्ददास, लालाचार्य, करमाबाई तथा नाभादास ।

करुणासागर तथा नाभादास के भक्तमाल की तुलना:-

उपर्युक्त भक्तों में से धना, मीरा, नन्ददास, ग्वाल भक्त, जसूस्वामी, नरहरियानन्द, करमाबाई, भुवन चौहान तथा जैमल के समान प्रसंग करुणासागर ग्रंथ में क्रमशः छं० सं० ७,९, १३,१२, ११, १६, ८ में तथा नाभादास के भक्तमाल में छं० सं० ६२, ११५, ५४, ६७, ५० और ५२ में आए हैं । नीचे दोनों ग्रंथों में आए हुए इन समान प्रसंग वाले भक्तों के विषय में क्रमशः तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है:-

धना-

इनके विषय का केवल एक ही प्रसंग अर्थात् बिना बीज बोये ही खेत में उग आना दोनों में समान रूप से मिलता है । इसके पूर्व के तुलनात्मक प्रसंगों में नाभादास कृत भक्तमाल का धना सम्बन्धी छप्पय कई बार उद्धृत किया जा चुका है । करुणासागर में उक्त प्रसंग की चर्चा इस प्रकार आई है:-

"खेती निपाई पागमाई, बिना बाई सम्भये ।"

पहले इस बात का संकेत किया जा चुका है कि अनन्तदास की परिचयी में भी इस प्रसंग का उल्लेख ज्यों का त्यों मिलता है । इस प्रसंग के अतिरिक्त शेष में कोई समानता नहीं मिलती । "करुणासागर" में इसके अतिरिक्त दो प्रसंग प्रभु द्वारा इनकी गाय चराने तथा भात खाने के मिलते हैं । भक्तमाल में किसी संत को गेहूं खिला देने का वर्णन है ।

मीरांबाई-

मीरां विषयक दो प्रसंग दोनों ग्रंथों में समान हैं ।

१- दुष्टों द्वारा दिया गया "गरल" भी अमृत के तुल्य हो गया ।

२- मीरां का प्रेम गोपियों के समान था ।

दोनों ग्रंथों से सम्बद्ध स्थल नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

करुणासागर- नृपदुष्ट अख्खी गरल दख्खी इष्ट पख्खि सो गए ।

भक्तमाल- दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ ।

करुणासागर- मीरां सरख्खी गोपि अरख्खी जगत न रख्खी लाज ए ।

भक्तमाल- सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलजुगहिं दिखायौ ।।

अन्तर केवल इतना है कि भक्तमाल में यह प्रसंग कुछ विस्तार से मिलता है जबकि "करुणा-सागर" में संक्षिप्त वर्णन है ।

नन्ददास- इनके सम्बन्ध में मरी हुई गाय को पुनः जिला देने के प्रसंग में समानता है । उदाहरणतया-

करुणासागर- नन्ददास के हेत जो गऊ जिवाई राम ।
भये खिसाने विप्रसब जनके सारे काम ।।

भक्तमाल - नाभा ज्यों नंददास मुई एक वच्छि जिवाई ।

अन्तर-

करुणासागर में नन्ददास जी के विषय में ब्राह्मणों के द्वेष की वार्ता का वर्णन है । उसी प्रकार भक्तमाल में नामदेव की तरह उनके द्वारा गऊ जिलाने की बात कही गई है ।

इसी प्रकार ग्वालभक्त की चोरी गई भैंसि पुनः वापस आने की, जस्सूस्वामी के चुराए हुए बैल का प्रभु की कृपा से उसी स्थान पर दिखलाई पड़ने की, नरहरियानन्द के घर देवी अथवा दुर्गा द्वारा लकड़ी लाकर रखे जाने की, करमाबाई के घर प्रसाद पाने की, भुवन चौहान के काष्ठ की तलवार लोहे की हो जाने की तथा जैमल की रक्षा के लिए प्रभु के युद्ध करने की वार्ताएं दोनों ग्रंथों में समान हैं ।

निष्कर्ष:-

नाभादासकृत भक्तमाल (रचनाकाल सं० १७१५ तक) से दयालदासकृत करुणासागर (रचनाकाल सं० १८६०) तक लगभग १४५ वर्ष का सिद्ध होता है। उन्होंने नाभादास का स्मरण श्रद्धापूर्वक किया है। जिससे ज्ञात होता है कि यह उनके भक्तमाल से पूर्णतया परिचित भी थे। नाभादास सम्बन्धी उल्लेख इनके करुणासागर में इस प्रकार मिलता है:-

तब जन शरणै आय, हरवंश इक डावरो,
नाभादास सहाय, चरमाखुल संजय सदी ।।४।।

जनपद पंकज धूर, चरन उर मनभंजन कर्यो,
रामशब्द भरपूर, ताहि नेम ऐसे खुले ।।५।।

मुखेला, सूफन्त, अद्भुत वरण्यो ब्रह्मपद,
हरिशरणोा जूफंत, "धालवाल" यह आसरो ।।६।।

नाभादास के अतिरिक्त भक्तमालकारों में उन्होंने अपने गुरु तथा पिता रामदासजी का यद्यपि विस्तार से वर्णन किया है किन्तु समान प्रसंगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे अपने गुरु कीअपेक्षा नाभादास से अधिक प्रभावित थे।

करुणासागर की विशेषताएं:-

यद्यपि इस ग्रंथ में भी अन्य भक्तमालों तथा नामावलियो की भांति भक्तों के चरित्रों का असम्भावी घटनाओं का ही वर्णन है तथा किसी तिथि आदि का उल्लेख नहीं है फिर भी नाभादास जी तथा राघवदास जी दादू पंथी के भक्तमाल के ढंग पर लिखा गया यह ग्रंथ इसलिए महत्वपूर्ण है कि प्रायः कुछ को छोड़कर शेष सभी भक्तों के प्रसंगों कावर्णन अधिक विस्तार से किया गया है, केवल नाम गिनाने का उपचार नहीं किया गया है।

अन्य भक्तमालों की तुलना मे इसकी एक विलक्षणता इसकी पंचमेल भाषा का है। कहीं कहीं तो इन्होंने सात भाषाओंका प्रयोग किया है जैसे -

जुग जुग पालत जन एखो साचा करण सवाल ।

सो निर्बल या जगत में जाके बल गोपाल ।

किन्तु कहीं कहीं इनकी भाषा व देखकर चेतनदासकृत "प्रसंग पारिजात"[१४०] का स्मरण हो आता है जिसमें देशवाड़ी प्राकृत के १०८ अदणा छन्दों में स्वामी रामानंद का जीवन चरित्र वर्णित है । इस प्रकार का एक छन्द करुणासागर से नीचे उद्धृत किया जा रहा है-

प्रकृत्ति पचीस तेतीस प्रचण्डय मण्ड स मण्डय पिंड इता ।

हुय थंड विहंडय जीव स डंडय सूर प्रचंडय मन्न मता ।।

ततकाल विकराल विहाल सभै पड़ व्याधि गिराह सनाह बुरो ।

भव के दुख टार उगार अपंपर पार गजेंदर जेम करो ।।

- रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २९९ ।

भगत चालीसा- भगतकृत -

भगत जी के विषय में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी । केवल खोज रिपोर्ट में इनकी सूचना आई है[१४१], किंतु वहां भी ग्रंथ का रचनाकाल नहीं दिया गया है । लिपिकाल सं० १९५७ है । यह केवल तीन पृष्ठों में लिखी गई है और बहुत बाद की रचना जान पड़ती है ।

भक्तनामावली या हरिजन जसावली- सुधामुखीकृत

इसकी सूचना भी खोज रिपोर्टों में ही मिलती है[१४२] । यह भक्त नामावली केवल आठ पृष्ठों की है । भक्तमाल में जिन भक्तों के वर्णन हैं उन्हीं के नाम इसमें गिनाए गए हैं[१४३] । प्रस्तुत पाण्डुलिपि में कोई तिथि नहीं दी गई है। इनके गुरु का नाम शीलामणि था । शीलामणि जी की एक रचना "अष्टयाम" का रचनाकाल सं० १८४४ है, अतः इनका रचनाकाल इसके बाद का होगा[१४४]

१४०- प्रकाशक-भागवत दास मिश्र, श्री रामनाथ मंदिर, रामगंज मार्ग, अयोध्या, फ़ैज़ाबाद, सन् १९५१ ई० ।

१४१- खोज रिपोर्ट- १९०९-११, सं० २० ।

१४२- वही, १९२३-२५, सं० ४१० तथा २०-२२, सं० १८६ ।

१४३- वही, १९२३-२५, सं० ४१० ।

१४४- वही, १९२०-२२, सं० १८६ ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय की अन्य "भक्त नामावलियां"-

इस सम्प्रदाय का सबसे उत्तम तथा प्रथम इतिहास भगवत मुदित के रसिक अनन्यमाल में मिलता है। उसके पश्चात् उत्तमदास जी का अनन्यमाल है। इसमें हित हरिवंश चरित्र की मौलिकता है। शेष चरित्रों का वर्णन तो रसिक अनन्यमाल में वर्णित चरित्रों का संक्षिप्तीकरण है। उत्तमदास जी के अनन्यमाल के आधार पर सं० १७६० में जयकृष्णजी द्वारा "हित कुल शाखा" ग्रंथ रचा गया। इसमें कुछ ऐतिहासिक तिथियों का प्रामाणिक उल्लेख है जिससे इसका बड़ा महत्व है। इन ग्रंथों के विषय में पीछे विचार किया गया है। इसी सम्प्रदाय के एक आचार्य श्री रूपलाल ने "हित चरित्र" वृजभाषा में लिखा है +, जो उत्तमदास जी द्वारा रचित "हित चरित्र" के समान नहीं है। केवल उसमें कुछ प्रसंग अधिक विस्तार के साथ लिखे गए हैं। इन्होंने बृजभाषा गद्य में हरिदासस्वामी, हरी राम व्यास, श्री गोपालभट्ट और राजा नरवाहन के चरित्र पर भी प्रकाश डाला है इसमें से नरवाहन और हरिराम व्यास के प्रसंग भगवत मुदित के रसिक अनन्यमाल से मिलते जुलते हैं। इन्हीं रूपलाल जी के शिष्य वृन्दावन दास जी ने राधाबल्लभीय साहित्य तथा संप्रदाय का इतिहास लिखने में बड़ा योग दान दिया है।

वृन्दावनदास-

ये पुष्कर क्षेत्र में रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७६२ में हुआ था[१४५]। राधावल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी हित रूप जी इनके गुरू थे। तत्कालीन गोसांई जी के गुरुभ्राता होने के कारण लोग इन्हें चांचा जी कहते थे। सावंतसिंह (नागरीदास) के भाई बहादुरसिंह इनको अधिक मानते थे। अतएव ये किशनगढ़ में अधिक रहते थे। किन्तु जब राज घराने में राज्य सम्बन्धी

१४५- हि०सा० का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३५५।

झगड़े खड़े हुए तो वहां से वृन्दावन चले आए और मृत्यु-पर्यन्त वहीं रहे ।

रचनाकाल-

"चाचा" जी की सबसे प्रथम रचना "अष्टयाम समय प्रवन्ध " का रचनाकाल सं० १८०० कार्तिक शुक्ला एकादशी तथा अंतिम रचना "सेवक जस विरुदावली" का रचनाकाल सं० १८४४ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी गुरुवार है[१४६]। इनकी रचना "रसिक अनन्य परिचावली" अपूर्ण है।कदाचित् यही उनकी अंतिम रचना हो[१४७]। अतएव इनका कविताकाल सं० १८०० के कुछ पूर्व से लेकर सं० १८४५ तक माना जा सकता है । इस प्रकार से सं० १७६० में जन्म तथा १८४५ के आस पास मृत्यु हो जाने से इनकी अवस्था ८५ वर्ष ठहरती है । अतएव अपनी वृद्धावस्था में इहलोक लीला समाप्त की ।

रचनाएं-

"चाचा वृन्दावन दास"के सवा लाख पद बनाने की जन-श्रुति है । इन्होंने बड़े छोटे कई ग्रंथों की रचनाएं की हैं जिनकी एक लम्बी सूची स्नातक जी ने अपने ग्रंथ में दी है[१४८]।

चाचा जी के चार ग्रंथों "हरि प्रताप बेली"(१८०३) "भक्ति प्रसाद वेली" (१८०९) "हित हरिवंश सहस्त्रनाम"(१८१२) तथा "रसिक अनन्यमाल परचावली" में भक्तों के विषय में स्फुट प्रसंग मिलते हैं । इनमें से अंतिम पुस्तक प्रकाशित है[१४९]। प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक ने उन सभी लोगों का स्मरण किया है जो राधा-वल्लभीय भक्ति पद्धति के विधायक हैं । इस ग्रंथ में हित जी के जन्म से लेकर उनके निकुंज गमन तक की प्रमुख घटनाएं वर्णित हैं । अन्त में भक्ति पद्धति की रूप-रेखा प्रस्तुत की गयी है, जहां प्रारम्भ के २०० पदों में हित जी की प्रारम्भिक

१४६- बृजमाधुरी सार ,वियोगी हरि, पृ० ३८० ।

१४७- राधावल्लभ सिद्धान्त और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० ५२४-२७ ।

१४८- वही, पृ० ५५० ।

१४९- श्री हित हरिवंश सहस्त्रनाम-प्रकाशक श्री राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृन्दावन ।

घटनाओं का वर्णन मिलता है । उसी प्रकार उन साधु संतों का भी नामोल्लेख है जो हित जी के सम्पर्क में आए थे अथवा उनसे प्रभावित थे । उदाहरण के लिए एक पद नीचे दिया जाता है जिसमें कुछ संतों के केवल नाम हैं:-

नमामि श्री हरिवंश चरन दृढ़ रति नरवाहन ।
जुगल केलि धनु दयौ व्यास नन्दन उत्साहन ।।
नमामि श्री हरिवंश प्रबोधानन्द सहायक ।
नमामि श्री हरिवंश विपिन सम्पति दर सायक ।।
नमामि श्री हरिवंश भक्ति रस हरिदास अस ।
नमामि श्री हरिवंश पैज राखी जु विदित जस ।।२१८।।

उक्त प्रसंग में ही आगे निम्नांकित भक्तों का उल्लेख है:-

(१) परमानंद	(२) पूरन दास	(३) नाहरमल	(४) विट्ठलदास
(५) मोहनदास	(६) गंगाबाई	(७) जमुनाबाई	(८) कर्मठीबाई
(९) नवलदास	(१०) मनोहरदास	(११) गंगू	(१२) गोविन्ददास
(१३) छविलदास	(१४) हरिप्रियादस	(१५) सोमनाथ	(१६) मोहन
(१७) रंगनाथ	(१८) जयमल	(१९) चतुर्भुज दास	(२०) नागरीदास
(२१) लालस्वामी	(२२) ध्रुवदास	(२३) कल्याण पुजारी	(२४) दामोदर
(२५) अनन्त भट्ट	(२६) सेठास्वामी	(२७) जसवंत	(२८) भागमती
(२९) पुहकर	(३०) द्वारकादास	(३१) रामदास	(३२) कन्हरस्वामी

उपर्युक्त भक्तों में से परमानन्द, जयमल, जसवन्त तथा द्वारिकादास आदि के जो समान प्रसंग भगवत मुदित के रसिक अन्नन्यमाल में हैं उन प्रसंगों की भक्तमाल तथा टीका में आए हुए समान प्रसंगों से तुलना की गयी है । अतएव यहां उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है । समान प्रसंगों के आधार पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह ग्रंथ भी रसिक अनन्यमाल, भक्तमाल तथा प्रियादासकृत टीका से अवश्य प्रभावित है ।

रसिक अनन्य परिचावली-

इस ग्रंथ में चाचा जी ने अपने समय तक के भक्तों का वर्णन किया है। स्नातक जी ने इस ग्रंथ को २४६ छन्दों का और अपूर्ण बताया है[१५०]। खोज रिपोर्ट में चालीस पृष्ठों में समाप्त होने वाली इसकी एक प्रति विशेष का उल्लेख है जो पूर्ण बतलाई गई है[१५१]। किन्तु बहुत यत्न करने पर भी यह प्रति देखने को नहीं मिली। उक्त रिपोर्ट में लगभग १२५ भक्तों की सूची दी गयी है जिनमें से प्रमुख भक्तों का नाम इस प्रकार है:-

श्री नारायण -अच्युतेम्बर- विजयभट्ट- मिश्र प्रभाकर- जीवन सुत हिमकर तारा- हित हरिवंश उनके चारों पुत्र - श्री नागरकृष्णदास - सदानन्द - गिरिधर -दामोदर-बिहारी लाल - कुंजलाल - नन्दकिशोर - इन्द्रमनि- सुखलाल- हरिलाल - प्रियालाल -वृजलाल - मुकुन्दलाल- रूपलाल- उदयलाल आदि।

इनमें बहुत से ऐसे वैष्णवों के नाम है जो भक्तमाल में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि हित वृन्दावन ने उन्हीं भक्तों का नाम दिया है जो उनके राधा-बल्लभीय सिद्धान्तों के अनुसार "रसिक" थे। इसी से नाम भी इसका "रसिक परिचावली" रखा है।

गो० चन्द्रलालकृत "वृन्दावन प्रकाशमाला"-

गो० चन्द्रलाल ने इस ग्रंथ में अपने समकालीन राधावल्लभी संतों का परिचय दिया है, इसकी एक विशेषता और है कि इसमें तत्कालीन वृन्दावन का भौगोलिक परिचय भी सम्यक् रूप से प्राप्त होता है। इसका रचनाकाल सं० १८२४ बताया गया है।

गोविन्द अलि कृत "रसिक अनन्य गाथा"-

इस ग्रंथ के आरम्भ में आरम्भ से लेकर इसके रचनाकाल (सं० १८४४) तक के

१५०- डा० विजयेन्द्र स्नातक- राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य पृ० ५२७।

१५१- खोज रिपोर्ट- १९३२ (२३२ एल०)।

राधावल्लभी संतों का परिचय दिया गया है । आरम्भ में आचार्य कुल के प्रसिद्ध महात्माओं के परिचय भी दिए गए हैं ।

उपर्युक्त दोनों ग्रंथ मेरे देखने में नहीं आ सके, इनकी सूचना श्री ललिता प्रसाद पुरोहित ने स्वयं संपादित "रसिक अनन्यमाल" की भूमिका (पृ० १५) में की है ।

- - - -

अध्याय ४

नाभादास के भक्तमाल की टीकाएं तथा टिप्पणियां

अध्याय ४

नाभादास और उनके परवर्ती भक्तमालों की टीकाएं तथा टिप्पणियाँ

(क) नाभादास के भक्तमाल की टीकाएं तथा टिप्पणियाँ:-

(१) प्रियादास की टीका - भक्ति रस बोधिनी:

प्रियादास तथा टीका की प्रेरणा:-

प्रियादास जी के माता पिता के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कृष्णदत्त बाजपेयी के अनुसार इनका जन्म सूरत नगर के राजपुरा गांव मे हुआ था[१]। रचना के सम्बन्ध में भक्तमाल की टीका के निम्नलिखित प्रारम्भिक कवित्त छन्द से कुछ जाना जा सकता है:-

महाप्रभु "कृष्णचैतन्य" मनहर जू के,
चरण कौ ध्यान मेरे, नाम मुख गाइयै।
ताही समय "नाभा जू" नें आज्ञा दई,
लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइयै।
कीजिए कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै,
जगै जंगमाहि, कहि, वाणी बिरमाइयै।
जानौं निजमति ऐपै सुन्यौं भागवत,
शुक द्रुमनि प्रवेश कियौ, ऐसेई कहाइयै[२]।

इस कवित्त में टीका के लिखे जाने की प्रेरणा के विषय में प्रियादास कहते हैं कि "महाप्रभु कृष्ण चैतन्य" का कीर्तन करते समय अपने स्वामी "मनहरण" या "मनोहर" जी का ध्यान मन मैं कर रहा था, उसी समय श्री नाभा जी की वाणी, भक्तमाल की विस्तृत टीका कवित छन्द मैं करने के लिए सुनाई दी और इससंदेश के पश्चात् तत्काल उनकी वाणी विलीन हो गई।" फिर प्रियादास

१- बृज का इतिहास, पृ० २५६।

२- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास कवित्त १।

अध्याय ४

नाभादास और उनके परवर्ती भक्तमालों की टीकाएं तथा टिप्पणियाँ

(क) नाभादास के भक्तमाल की टीकाएं तथा टिप्पणियाः-

(१) प्रियादास की टीका - भक्ति रस बोधिनी:

प्रियादास तथा टीका की प्रेरणाः-

प्रियादास जी के माता पिता के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कृष्णदत्त बाजपेयी के अनुसार इनका जन्म सूरत नगर के राजपुरा गांव मे हुआ था[१]। रचना के सम्बन्ध में भक्तमाल की टीका के निम्नलिखित प्रारम्भिक कवित्त छन्द से कुछ जाना जा सकता है:-

महाप्रभु "कृष्णचैतन्य" मनहर जू के,
चरण कौ ध्यान मेरे, नाम मुख गाइयै।
ताही समय "नाभा जू" नें आज्ञा दई,
लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइयै।
कीजिए कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै,
जगै जंगमाहि, कहि, वाणी बिरमाइयै।
जानौं निजमति ऐपै सुन्यौं भागवत,
शुक द्रुमनि प्रवेश कियौ, ऐसेई कहाइयै[२]।

इस कवित्त में टीका के लिखे जाने की प्रेरणा के विषय में प्रियादास कहते हैं कि "महाप्रभु कृष्ण चैतन्य" का कीर्तन करते समय अपने स्वामी "मनहरण" या "मनोहर" जी का ध्यान मन में कर रहा था, उसी समय श्री नाभा जी की वाणी, भक्तमाल की विस्तृत टीका कवित छन्द में करने के लिए सुनाई दी और इससंदेश के पश्चात् तत्काल उनकी वाणी विलीन हो गई।" फिर प्रियादास

१- बृज का इतिहास, पृ० २५६।

२- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास कवित्त १।

ने विचार किया कि जिस प्रकार शुकदेवजी वृक्षों में प्रवेश करके स्वयं "शुकोऽहम्" इत्यादि वाणी करने लगे थे उसी प्रकार नाभादास जी ~~स्वयं~~ स्वयं मेरे हृदय में वास या प्रवेश करके टीका पूर्ण करवायेंगे ।

टीका सम्पूर्ण हो जाने पर प्रियादास जी ने इस तथ्य का संकेत भी इस प्रकार किया है:-

नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ,
मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाईनीके गाइकै ।
भक्ति विश्वास जाके ताहीं को प्रकाश,
कीजै भीजै रंग हियो लीजैसंतनि लड़ाइकै[3]।

अर्थात् नाभादासजी की जिस अभिलाषा का संकेत प्रथम छन्द में है, उसे भलीभांति पूर्ण किया इसका उल्लेख उपर्युक्त छन्द में स्पष्ट है । पहले कवित्त की ही पंक्तियों के आधार पर राधाकृष्णदास का यह अनुमान[4] कि नाभादास जी ने प्रत्यक्ष रूप से टीका करने की अनुमति दी थी, गलत सिद्ध होती है । कदाचित् इसी आधार पर श्यामसुन्दरदास जी ने प्रियादास जी को नाभादास जी का शिष्य मान लिया है[5]। मिश्रबन्धु ने भी इसी तथ्य को मान लिया है कि नाभादास की आज्ञा से ही प्रियादास जी ने यह टीका लिखी है, यह आज्ञा उन्होंने पहले ही दे रखी थी[6]। लेकिन वास्तव में प्रियादास जी चैतन्य सम्प्रदायी "मनहरण" या "मनोहरदासजी" के शिष्य थे जो उपर्युक्त प्रथम छन्द के अतिरिक्त उनके अन्य छन्दों की निम्नलिखित पंक्तियों से भी प्रमाणित होता है-

जनमन हरिलाल मनोहर नांव पायौ,
उनहू को मनहरि लीन्हों ताते राय हैं[7] ।

३- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास, कवित्त ६३३ ।
४- भक्तनामावली राधाकृष्णदास पृ० ९२ ।
५- हिन्दी की खोज रिपोर्ट, संक्षिप्त विवरण प्रथम भाग, + पृ० ६२ ।
६- मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृ० २४७-४९ ।
७- भक्तमाल रूपकला (सटीक) प्रि०दास० कवित्त ६३० ।

इन्हीं के दास दास "प्रियादास" जानौं,

तिनकै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है[८]।

गोवर्धन नाथ जू का हाथ मन पर्यो ज्याको,

कर्यो वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है ।

इन दोनों कवित्तों से ज्ञात होता है कि उनके गुरुदेव कवि और रसिक थे । उन्हीं के प्रसाद से उन्हें यह गुण प्राप्त हुआ ।

दूसरे कवित्त में स्पष्ट उल्लेख है कि उन्हीं मनोहरदास के दास प्रियादास जी थे । इन्होंने वृन्दावन में रहकर इस महान् टीका को पूर्ण किया । शिवसिंह ने भी प्रियादास को वृन्दावन वासी बतलाया है[९]।

कुछ लोगों ने इन्हें नित्यानन्द का अनुयायी तथा बंगाल का निवासी बतलाया है, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता[१०]।

उनके जन्म के विषय में हमें और कुछ भी ज्ञात नहीं है और न यही ठीक से ज्ञात है कि वे वृन्दावन कब से आकर रहने लगे थे । टीका की रचना के अनुसार इतना कहा जा सकता है कि विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इनकी मृत्यु वृन्दावन में हुई थी ।

टीका का नाम तथा रचनाकाल:-

प्रियादास की टीका "रस बोधिनी" नाम से प्रसिद्ध है[११]। उसके रचनाकाल का उल्लेख उनके एक कवित्त में इस प्रकार हुआ है:-

---

८- भक्तमाल रूपकला सटीक, प्रियादास कवित्त ६३१ ।

९- सरोज कवि, सं० ३९९ ।

१०- गार्सा द तासी, हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० १५७
(अनु० डा० वार्ष्णेय)

११- हृदै सरसाई, जो पै सुनिये सदाई,
यह भक्त रस बोधिनी सुनाय टीका गाइयै ।
-भक्तमाल सटीक, प्रियादास कवित्त २ ।

संवत् प्रसिद्ध दस सप्त सत उन्हत्तर
फाल्गुन ही मास बदी सप्तमी बिताइकै ।
नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै
प्रियदास दास उर बसौ रहौ छाइकै[१२]।।

जिससे ज्ञात होता है कि विक्रमी सम्वत् १७६९ की फाल्गुन सुदी सप्तमी को टीका समाप्त हुई थी ।

नाभा जी के २१४ मूल छन्दों की प्रियादास जी ने ६२९ कवित्त छंदों में टीका की है अतएव टीका के छन्दों की संख्या ६२९ है । अन्त में गुरु प्रशंसा तथा टीका समाप्ति सूचक चार छन्दों को मिलाकर कुल ६३३ छन्द मिलते हैं ।

अन्य रचनाएं:-

श्री कृष्णादत्त बाजपेयी[१३] ने इनकी अन्य रचनाओं में अनन्यमोदिनी, चाहबेली, भक्तसुमिरिणी, रसिक मोहिनी तथा भागवत भाषा के नाम दिए हैं । किन्तु इनमें से भक्त सुमिरिणी को खोज रिपोर्ट में जमालकृत बताया है ।

योजना-

भक्ति रस बोधिनी के प्रथम आठ छन्द भूमिका स्वरूप हैं । पहले में गुरु (मनोहरदास) की वंदना, दूसरे में भक्तमाल की महिमा, तथा टीका का नामकरण और शेष में भक्तिरस का माहात्म्य वर्णित है ।

इस प्रकार से पूर्वार्द्ध भक्तमाल (जिसमें कि सतयुग, त्रेता, और द्वापर के भक्तों के वर्णन हैं, समाप्त होता है) अर्थात् नाभादास के चार दोहे, तेइस छप्पयों के लिए प्रियादास के १०५ कवित्त छन्दों में टीका मिलती है । पुनः मूल भक्तमाल के क्रमानुसार कलियुग के भक्तों का वर्णन है । अन्त में दो छन्दों में गुरु की प्रशंसा तथा इस मंगलकार्य की समाप्ति का वर्णन होता है । फिर छं० ६३२ में नाभादास की अभिलाषा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा-पालन का उल्लेख करते हुए

१२- भक्तमाल सटीक, प्रियादास कवि० ६३३।
१३- बृज का इतिहास, पृ० २५६ ।

कवि ने अन्तिम छन्द में भगवान से प्रार्थना की है कि "भक्ति विमुख" का मुख देखने का उसे दुर्भाग्य न प्राप्त हो ।

पीछे यह दिखलाया गया है कि भक्तमालकार ने भक्तों का वर्णन प्रायः दो प्रकार से किया है । भक्तमाल में इन दोनों प्रकारों से वर्णन किए गए भक्तों के विषय में भक्तमालकार के दिए हुए कुछ संकेतों के आधार पर अथवा अन्य सूत्रों से संचित चमत्कारपूर्ण अथवा अलौकिक घटनाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करना ही टीका का मुख्य विषय है ।

टीका का मुख्य आधार:-

इस टीका का मुख्य आधार पूर्ववर्ती भक्तमाल साहित्य, परिचयी साहित्य तथा भक्तनामावलियां हैं । प्रथम प्रकार की रचनाओं में राघौदास कृत भक्तमाल, भगवत मुदित कृत "रसिक अनन्यमाल" और उत्तमदास का "रसिक माल" महत्वपूर्ण हैं । परिचयियों में सबसे अधिक अनन्तदास की परिचयियों का उपयोग हुआ है । तीसरी कोटि की रचनाओं में ध्रुवदास की "भक्तनामावली" है । इनके अतिरिक्त उस समय तक प्रचलित जन-श्रुतियों तथा आए हुए प्रसंगों का भी उपयोग हुआ है ।

वैसे तो प्रियादास जी ने सर्वत्र भक्तमाल की सामग्री तथा उसके क्रम का अनुसरण किया है किन्तु उसके अतिरिक्त नवज्ञात घटनाओं तथा प्रसंगों का भी संमिश्रण किया है । कहीं-कहीं उन्होंने स्वतन्त्र रूप से एकाध नये भक्तों के प्रसंग दिए हैं । जिनका नाम मूल भक्तमाल में नहीं मिलता । आगे तुलनात्मक दृष्टि से उनकी समानताओं तथा विषमताओं पर विचार किया जा रहा है ।

सामूहिक वर्णन वाले छप्पय-

(क) ऐसे छप्पय जिनमें केवल नाम आए हैं उनमें कुछ नामों के साथ अलौकिक घटनाएं जोड़ी गयी हैं । उदाहरण स्वरूप नाभादास के छप्पय ९४, ९६, ९७, ९८, १००, १०१, १०२ और १०५ आदि लिए जा सकते हैं । इन छप्पयों में कई नाम आए हैं।उनमें से कुछ के साथ की अलौकिक घटनाएं द्रष्टव्य हैं।

छप्पय सं० ९४ में १३ नाम आए हैं जो निम्नलिखित हैं:-

(१) गोपाल भट्ट (२) हृषीकेश (३) अवि भगवान जी (४) विट्ठल विपुल जी (५) अधिकारी श्री कृष्णदास (६) जगन्नाथ थानेश्वरी (७) लोकनाथस्वामी (८)मधुगोसांई (९) घमण्डी जुगल किशोर (१०) श्रीरंग (११) कृष्णदास (१२) भूगर्भगोसांई (१३) जीव गोस्वामी।

इनमें से गोपाल भट्ट, अविभगवान, विट्ठल विपुल, जगन्नाथ थानेश्वरी, लोकनाथ स्वामी, मधुगोसांई, कृष्णदास ब्रह्मचारी, कृष्णदास पंडित, तथा भूगर्भगोसांई के विषय में एक एक कवित्त लिखा गया है। शेष चार भक्तों के विषय में टीकाकार मौन है।

इसी प्रकार छ० ९६ में १८ नाम आए हैं उनमें से केवल "सदन" तथा "काशीश्वर" के विषय में क्रमश:३४-९८ में कुछ वर्णन है।

सामूहिक छप्पयों में कुछ नामों के साथ अलौकिक घटनाओं का सम्मिश्रण है उनमें कुछ चमत्कार पूर्ण घटनाएं मिलाकर टीकाकार ने उन्हें और बढ़ाया है। इस प्रकार के बहुत से ~~कवित्त~~ छप्पय हैं जैसे छ० ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५६, ५९ और ६० आदि। ~~कवित्त~~ छप्पय ५१ में निम्नांकित अलौकिक घटनाओं का संकेत हैं:-

(क) एक नृपति जिसने प्रसाद की अवज्ञा ही अपनी भूल समझ कर अपना दाहिना हाथ कटवा डाला था। वही "दौना" के रूप में पैदा हुआ।

(ख) कभी की खिचड़ी जगन्नाथ को अधिक अच्छी लगी जब कि छप्पन भोग फीका लगा।

(ग) दो कन्याओं द्वारा "सिलपिल्ले""सिलपिल्ले" कहने पर भगवान स्वयं चले आए।

(घ) किसी रानी का अपने पुत्र को इसलिए विष देना ताकि भक्त संत उसके घर और दिन तक ठहरें।

इनमें से प्रथम घटना का विस्तार तीन अन्य कवित्तों द्वारा किया हुआ मिलता है जो इस प्रकार है:-

प्रसाद की अवज्ञा तें तज्यौ नृपकर,
एक करिकै विवेक सुनौ जैसे बात भई है ।
खेले भूप चोपरि कौं, आयो प्रभु मुक्त शेष,
दाहिनै मैं पासै, बाये छुयो मति गई है ।
लै गए रिसाइ कै, फिराइ महादुःख पाइ,
उठ्यो नरदेव गृह गयो सुनि नई है ।
लियो अनशन, हाथ तजौ चाही छन,
तब सांचो मेरौ प्रन बोलि विप्र पूंछि लई है ।।१९३।।

" काटे हाथ कौन मेरो? रह्यो गहि मौन यातो,
पूछत सचिव कथा विथा सो विचारियै ।
आवै एक प्रेत, मो दिखाई नित देत निशि,
डारिकै झरोखा कर शोर केर मारियै ।"
"सोऊ ढिग आई" वहौ आपुकौं छिपाई,
जब डारै पानि आनि तपही सुमारि डारियै ।
कही नृप "भले" चौकी देश में घुमायौ,
भूप डार्यो उठि आइ छेद न्यारो कियो वारियै ।।१९४।।

देखि कै लजानौ, "कहा किया मैं अजानौ",
नृप कही प्रेत मानौ यही हरि सों बिगारियौ ।
कही जगन्नाथ देंव, लै प्रसाद जावौ उहां,
ल्यावौ हाथ बोवौ वाग, सोई उर धारियै ।
चले तहां धाई भूप आगे मिल्यो आई,
हाथ निकस्यो लगाइ हियै भयो सुख भारियै ।
ज्याये कर फूक, ताके भए फूल दौना के,
नितही चढ़त अंग गंध हरि धारियै ।।१९५।।

नाभादास ने केवल प्रसाद की अवज्ञा संबंधी घटना का संकेत मात्र किया है। राजा का हाथ किस प्रकार कटा उसका टीकाकार ने उपर्युक्त छन्दों में विस्तृत विवरण दिया है।

जहां एक छप्पय में एकही नाम के साथ कुछ घटनाओं का वर्णन है उसकी भी दो रूपों में टीका की गयी है:-

(क) नाभादास द्वारा पूरे छन्दों में वर्णित किसी एक भक्त के संबंध में जहां किसी घटना का संकेत मात्र है वहां भी प्रियादास जी ने विस्तार देने का प्रयत्न किया है। ऐसे भक्तों में श्रीधर स्वामी,[१४] विल्वमंगल,[१५] एक भगवतनिष्ठ राजा[१६], गुरु शिष्य[१७], लाखाभक्त[१८] और अंगदजी[१९] आदि हैं। उदाहरण के लिए श्रीधर स्वामी के विषय में नाभादास ने एक छप्पय में यह उल्लेख किया है कि श्रीधर की भागवत टीका को विष्णु माधव ने अपने हाथों सुधारा-

"माधौ सुनकर सुधार दियौ"[२०]। इस संकेत को लेकर प्रियादास जी ने पूरे एक कवित्त की रचना कर डाली है।

पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते,
भागवत टीका कै आपस मैं रीभियै।
भयो जू विचार काशीपुरी अविनाशी माँफ,
सभा अनुसार जोई सोई लिखि दीजियै।।
ताको तो प्रमान भगवान "विन्दु माधौ जी" हैं,
साधौ यही बात धरि मंदिर मैं लीजियै।।

१४- भक्तमाल रूपकला सटीक छ० ४५।
१५- " " " छ० ४६।
१६- " " " छ० ५६।
१७- " " " छ० ५८।
१८- " " " छ० १०७।
१९- " " " छ० ११३।
२०- " " " छ० ४५।

धरै सब जाय, प्रभु सुकर बनाय दियौ,
किये सर्व ऊपर लै, चल्यौ मति कीजियै[२१]।।

भक्तमाल में कुछ ऐसे भी भक्त हैं जिनके विषय में भक्तमालकार ने किंचित् प्रमुख घटनाओं का सांकेतिक वर्णन किया है । टीकाकार ने प्रायः उन घटनाओं का विस्तार से तो वर्णन किया ही है, उसके साथ ही साथ ऐसी नवीन चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया है जिनका कुछ भी संकेत भक्तमाल मे नहीं है ऐसे भक्तों में कबीर[२२], पीपा,[२३] कृष्णदास[२४], व्यास[२५], नरसीभक्त,[२६] सूरदास[२७], मदन मोहन और गोस्वामी तुलसीदास[२८] मुख्य हैं । उदाहरण के लिए नाभादास जी ने कबीरदास जी के विषय में लिखा है कि उन्होंने भक्ति के विरोधी सभी धर्मों को अधर्म बतलाया है । उन्होंने बिना भजन के योग, व्रत, यज्ञ, दान, इत्यादि सबको व्यर्थ सिद्ध किया है । हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए समान बातें कही हैं । अपनी रमैनी, सबदी और साखी में किसी विशेष मत का पक्षपात नहीं किया है । आपकी मंगलमय वाणियों में किसी विशेष मत की सुहाती अथवा मुंहदेखी बातें नहीं हैं[२९]।

प्रियादास जी ने इस प्रसंग को निम्नलिखित रूप में बढ़ाया है – "म्लेच्छ" कबीर को नभवाणी द्वारा रामानन्द को गुरु करने की आज्ञा मिली । परिणामस्वरूप गंगा स्नान के लिए जाते हुए रास्ते पर पड़े हुए कबीर के शरीर पर स्वामीजी के चरण पड़ते ही जो "राम""राम" शब्द निकला उसी को कबीर

२१– भक्तमाल रूपकला प्रियादास टीका कवित्त १६४ ।
२२– " " सटीक छं० ६० ।
२३– " " " छं० ६१ ।
२४– " " " छं० ८१ ।
२५– " " " छं० ९२ ।
२६– " " " छं० १०८ ।
२७– " " " छं० १२६ ।
२८– " " " छं० १२९ ।
२९– " " " छं० ६० ।

ने गुरुमंत्र समझ लिया[३०]।

जब कबीर ने माला तिलक धारण किया तथा "राम" "नाम" जपना आरम्भ कर दिया और पूछे जाने पर अपने गुरु का नाम रामानंद बतलाया तब स्वामी जी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा । अंत में पर्दे की आड़ से पूछे जाने पर सारी घटना का वर्णन उन्होंने किया । स्वामी जी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया[३१]।

दूसरी नवीन घटना इस प्रकार है : कबीर दास जी कपड़ा बुनने का उद्यम करते थे :, और वे सब बातें भूलकर भक्तिपूर्वक व्यापार करने लगे । वे इसी से लाभ उठाते थे और समस्त परिवार का निर्वाह करते थे । एक दिन किसी साधु को थान का आधा कपड़ा फाड़कर देने लगे, किन्तु इसके कहने पर कि आधे कपड़े से पूरा नहीं पड़ सकता, कबीरदास जीनेउसे पूरा थान ही दे दिया[३२]। माता,स्त्री, पुत्र आदि उनकी प्रतीक्षा में थे किन्तु कबीरदास यह सोच कर कि "छूछे हाथ घर कैसे जाऊं" तीन दिन तक बन में ही रह गए । भगवान स्वयं व्यापारी के वेष में बैलों पर खाद्य सामग्री लादकर कबीरदास जी के घर पर अनरु रख गए । इनके परिवार वालों ने दूसरे की सामग्री समझकर कोतवाल आदि के दण्ड के भय से कोई सामान नहीं लिया । और वह वहीं पड़ा रहा[३३]। दो चार आदमियों ने कबीरदास को ढूंढ़ निकाला । उन्होंने प्रभु की इच्छा समझकर सारी सामग्री संतों को बांटकर ताना वाना का कार्य छोड़ दिया तथा वे भजन करने लगे । इस पर ब्राह्मणों ने क्रोध करके कहा "रे जुलाहे" सब धन शूद्रों को बांटकर हम ब्राह्मणों को तूने पूछा तक नहीं[३४]।" जब ब्राह्मणों ने बहुत परेशान किया तब कबीर बाज़ार से सारी सामग्री लाने का बहाना करके कहीं

३०- भक्तमाल रूपकला प्रियादास कवित्त २६२ ।

३१- वही, प्रियादास " २६९ ।

३२- वही, सटीक " २७० ।

३३- वही, " २७१ ।

३४- वही, " " २७२ ।

छिप गए। प्रभु ने कबीर का रूप धारण कर ब्राह्मणों को द्रव्य देकर प्रसन्न किया[३५]। पुनः प्रभु स्वयं कबीर के पास ब्राह्मण का रूप धारण करके आए और बोले "किसी को अब भूखों मरने की आवश्यकता नहीं, कबीर के घर जो भी दुखिया जाता है वही ढाई सेर अन्न पाता है।" कबीर ने घर आकर यह कौतुक देखा और भीड़ कम करने के लिए एक नया कौतुक रचा। वे एक वेश्या को साथ लेकर घूमने लगे[३६]। इसके पश्चात् की कुछ घटनाएं कबीर के विषय में लिखी गयी हैं जो कि संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

(क) राजा के दरबार में बैठकर पानी गिराने से जगन्नाथ जी में पण्डा का पांव जलने से बचाया[३७]।

(ख) राजा रानी द्वारा पता लगाने पर घटना सही मालूम हुई तथा उन अपराध क्षमा करने की याचना की[३८]।

(ग) ब्राह्मणों के शिकायत करने पर बादशाह सिकन्दर ने कबीर को पकड़ मंगाया। काज़ी के कहने पर कबीरदास जी ने सलाम नहीं किया[३९]।

(घ) बादशाह ने लोहे की जंज़ीर में बांधकर गंगाजी में डुबा दिया लकड़ी में आग लगवाकर उस पर उन्हें लिटा दिया। उसके बाद मतवाला हाथी छोड़ा गया किन्तु कबीर का कुछ भी न बिगड़ा[४०]।

(ङ) बादशाह ने क्षमा याचना की[४१]।

(च) ब्राह्मणों ने कबीर की ओर से बिना उनकी आज्ञा के अनेक साधुओं को निमंत्रण

३५- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास क० २७३।
३६- " " " " क० २७४।
३७- " " " " क० २७५।
३८- " " " " क० २७६।
३९- " " " " क० २७७।
४०- " " " " क० २७८।
४१- " " " " क० २७९।

दे दिया । प्रभु ने कबीर के वेष में आकर सबका आतिथ्य किया[४२]।

(छ) परीक्षा लेने वाली कोई अपसरा निराश लौट गयी । "मग्गह" में फूलों की शय्या पर लेटकर स्वर्ग सिधारे[४३]।

इसी प्रकार पीपा जी[४४] के विषय में जब टीकाकार कई कवित्तों मे चमत्कार पूर्ण घटनाओं का वर्णन कर चुकता है तो पचीसों नवीन घटनाओं का वर्णन दो कवित्तों में करता है । केवल एक छन्द में १५ घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करता है -

गूजरी को धन दियो, पियो दही संतनि नै, ब्राह्मणों को भक्त कियो, देवी ही निकारि कै, तेली को जियावै भैसिं चोरनि पै फेरि ल्यावो, गाड़ी भरि आयो तन पांच ठौर जारि के, कागद लै कोरो करयो, बनियां को सोक हरयो, मरो घर त्यागि, डारी हत्याहू उतारि कै, राजा को औकर भई, संत को जू दियौ दई, लई चीठी मानि नए श्री रंग उतारि के[४५]।।२०४।।

उपर्युक्त घटनाएं मूल भक्तमाल में नहीं मिलती ।

भक्तमाल के अतिरिक्त नवीन भक्तों से संबद्ध नवीन घटनाएं:-

इस प्रकार की अलौकिक घटना का सम्बन्ध किसी "त्रिपुरदास" जी के साथ जोड़ी गयी है । भक्तमाल कार ने इनके नाम का छप्पय भी नहीं भी नहीं लिखा है[४६]। प्रियादास जी ने ३४० से ३४३ तक के कवित्तों में इनके

४२- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास क० २८० ।

४३- " " " " क० २८१ ।

४४- " " " " छ क० ६१ ।

४५- इन सभी "घटनाओं के विस्तार के लिए देखिए भक्तमाल रूप कला सटीक वार्तिक तिलक, पृ० ५१५ ।

४६- भक्तमाल रूपकला सटीक पृ० २७० ।

विषय में निम्नांकित सूचनाएं दी हैं:-[४७]

त्रिपुरदास कायस्थ "ठाकुर" के लिए दगला (सई का अंगरखा) भेंजा करते थे। कोई समय ऐसा आया कि राजा ने उनका सारा धन हरण कर लिया। नित्य भोजन भी मिलना असम्भव हो गया जब शीत ऋतु आई तो और कोई उपाय न देखकर घर मे रखी दवात को बेंचकर दगला भेंजना निश्चित किया[४८] बाज़ार में उस "दावात" को बेंचकर एक रूपया प्राप्त किया। उसमें लाल रंग का वस्त्र लेकर गुसाईं जी के किसी आदमी को भेजकर कहा कि केवल उसे भंडारी के हाथ में देना। गुसांईं जी से मत कहना[४९]। भंडारी ने उसे निकृष्ट समझकर उसे सभी वस्त्रों से नीचे दबाकर रखा दिया। ठाकुर की ठन्डक न गई। गुसांईं जी के पूछने पर भंडारी ने त्रिपुरदास की "कवाय" को छोड़कर सबका नाम लिया[५०]।

गुसांईं जी ने "त्रिपुरदास" के उस मोटे वस्त्र के विषय में सुनकर तुरन्त मंगवाया। उनकी "कवाय" सिलवाकर प्रभु को पहनायी। उनकी ठन्डक सद्यः दूर हो गयी[५१]।

ऐसी विस्तारपूर्ण टीका करने वाले प्रियादास जी ने भक्तमाल के अनेक

४७- इनके विषय में रूपकला जी ने लिखा है कि ये शेरगढ़ के निवासी तथा विट्ठलदास जी के अति प्रिय शिष्य थे।

४८- भ० मा० रू० क० सटीकप्रियादास क० ३४२।

४९- भ० मा० रू० क० सटीक कवित्त- ३४१।

५०- " " " " " " ३४२।

५१- सुनीन "त्रिपुरदास" बोल्यो धन नास भयो,
मोटो एक थान आयौ राख्यौ है बिछाय कै।
ल्यायो वेगि याही छिन "मन की प्रवीन जानि"
ल्यायो दुःख मानि ज्यों तिलई सों सिवाय कै।"
अंग पहिराई सुखदाई काँपै जाई अति,
कही तब बात "जाड़ो गयो भरिमाय कै।"
नेह सरसाई, लै दिखाई उर आई सबै,
ऐसी रासिकाई हृदै राखी है बसाय कै।

भ०मा०रू०क०सटीक प्रि०दास० क० ३४३।

छंदों पर[५२] कोई टिप्पणी नहीं लिखी । ये सामूहिक तथा फुटकरिए दोनों प्रकार के वर्णनों वाले छन्द हैं ।

निष्कर्ष- इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रियादास की टीका में पौराणिक शैली का अनावश्यक विस्तार मिलता है । सभी भक्तमालों, परचइयों और नामावलियों का उपयोग तो उन्होंने किया ही है *, उस समय तक प्रचलित जनश्रुतियां तथा प्रवादों का भी भरपूर उपयोग किया जिससे मूल भक्तमाल के संकेत में चारों ओर विस्तृत घटनाओं और आख्याओं का ताना बाना उलझा गया है । कहीं कहीं ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध की भी सूचनाएं जोड़ी गई हैं जो भक्तमाल में नहीं हैं । त्रिपुरदास कायस्थ का पूरा नपरिचय ऐसा जोड़ दिया है जो मूल में नहीं मिलता । अतः यह टीका टीका न होकर एक स्वतंत्र ग्रंथ का रूप धारण कर लेती है[५३]।

विवेचनाः- पीछे यह दिखलाया जा चुका है कि नाभादास ने अपने मूल छप्पय में भक्तों के पूर्ण जीवन की झांकी न देकर केवल किसी घटना विशेष का उल्लेख किया है । प्रियादास की टीका में यह कमी ज्यों की त्यों रह गई है । इन्होंने तिथियों का उल्लेख एकदम नहीं किया है । इससे भक्तों के समय के विषय में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है । इसने केवल कहीं कहीं अलौकिक घटनाओं का वर्णन करते समय कुछ संकेत मिलते हैं जिनसे कुछ जानकारी हो जाती है, यद्यपि यह जानकारी अधूरी ही रह जाती है, फिरभी उन वर्णनों द्वारा भक्तों के आगे पीछे के समय का कुछ पता अवश्य चलता है, जैसे कील्हदेव[५४]

५२- ऐसे छन्द निम्नलिखित हैः-
६४, ६६, ७३, ७६, ७८, ८०, ८१, १००, १०९, ११०, ११८, १२२, १
१३०, १३३, १३६, १४३, १५१, १५३, १५५, १५८, १५९, १६३, १६६,
१६८, १७२, १७५, १७८, १८२, १८४, १८९, १९२, १९५, १९७, १९९ अ

५३- भ०मा०रू०क० सटीक प्रियादास क० ३४०-४३ ।

५४- श्री सुमेरदेव पिता सूबे गुजरात हुते,
भयो तनु पात सो विमान चढ़ि चले हैं ।
बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढ़िग,
देखे नम तात उठि कहि "भले" भले हैं ।
-भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास ।१२१।

तथा अग्रदास[५५] के मिलन का वर्णन महाराजा मानसिंह के साथ लिखा है । इससे महाराजा के समय के अनुमान से इन लोगों के समय के जानने में कुछ सहायता मिलती है । उसी प्रकार अंगद सिंह के समय विषय में कवि का संक्षिप्त उल्लेख दृष्टव्य है:-

"रायसेन" गढ़वास नृपसो "शिलाहदी" जू
तातो यह काका कहै "अंगज" विमुख है[५६]।

अर्थात् श्री अंगदसिंह जी क्षत्री "रायसेन" गढ़ के वासी राजा सिलाहदी सिंह के चाचा थे । ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण किन्तु संक्षिप्त विवरण कुछ अन्य भक्तों के विषय में भी मिलते हैं ।

टीकाकार की भूलें:-

प्रियादास द्वारा वर्णित अधिकांश घटनाएं इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती । उदाहरण के लिए टीकाकार ने अपने एक कवित्त में[५७] तानसेन के साथ मीराबाई से सम्राट् अकबर की भेंट का वर्णन किया है ।

किन्तु मीराबाई तथा सम्राट् अकबर समकालीन नहीं थे, क्योंकि मीराबाई का जन्म संवत् १५५५ के लगभग कुड़की नामक ग्राम में हुआ था[५८]। ये मेड़ते के राठौर रावदूदाजी के चतुर्थपुत्र रत्नसिंह की पुत्री थीं[५९]। इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा

५५- दरसन काज महाराज मानसिंह आयो,
छायो बाग, मांझ वैठे भार पाल हैं ।
झारि कै पतौवा गए, वाहिर लै डारिवो को,
देखी मीरभार रहे ढिये रसाल हैं । भ० मा० रू० क० प्रियादास क०।

५६- वही, क० ४५७ ।

५७- वही, क० ४७९ ।

५८- ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५९ ।

५९- वही, " " " "
मुंशी देवी प्रसाद- मीरावाई का जीवन चरित्र पृ० ६ ।
कविराजा श्यामलदास- वीर विनोद प्रथम प्रकरण पृ० १०२ ।

सागा (१५५६-५८) के जेष्ठपुत्र भोजराज के साथ संवत् १५७३ में हुआ था। विवाह के थोड़े ही दिनों बाद मीराबाई विधवा हो गई। यह दुखद घटना संवत् १५७३ और १५८८ संवत् के बीच घटी थी[६०]। ओझा जी ने इस घटना का समय सं० १५७५-८० के बीच माना है[६१]। इनकी मृत्यु संवत् १६०३ में हुई थी[६२]*, तथा मृत्यु के समय सम्राट् अकबर की अवस्था केवल चार वर्षों की थी, क्योंकि सम्राट् का जन्म संवत् १५९९ में हुआ था। इस समय तो वह गद्दी पर भी नहीं बैठा था। इसके सिंहासनारूढ़ होने का समय संवत् १६१३ है। अतएव यहां कालदोष स्पष्ट है[६३]।

टीका का महत्व-

प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी बर्टन पेज ने प्रियादास की टीका के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि भक्तमाल के मूल से टीका का कोई संबंध नहीं है[६४]।

इसी प्रकार सर जार्ज ग्रियर्सन ने टीका की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए उसकी घटनाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित टिप्पणी दी है:-

"भक्तमाल में भक्तों की प्रमुख विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए उस

६०- मुंशी देवी प्रसाद- मीराबाई का जीवन चरित्र, पृ० ७।

६१- ओझा -उदयपुर का इतिहास, पृ० ३५९।

६२- (क) मुंशी देवी प्रसाद-मीराबाई का जीवन चरित्र पृ० २७।
(ख) ओझा- उदयपुर का इतिहास पृ० ३६०।

६३- मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० ११९।

६४- The Tika is seldom a direct commentary on the Mul. In a Musical metaphor, we might say that the Tika is a variation incorporating much fresh episodic material but without restatement of the theme in any form. School of Oriental and African Studies, University of London, 1957, page 145.

व्यक्ति की प्रशंसा ऐसी शैली में की गई है जिसे अतुलनीय अस्पष्टता की संज्ञा दे दी गई होती यदि सम्वत् १७६९ में प्रियादास ने इसके प्रत्येक छन्द की टीका न लिख दी होती जो कि संतों के जीवन की विभिन्न दन्तकथाओं के असंबद्ध और अस्पष्ट संकेतों से और भी गड़बड़ हो गई है[६५]। " डा० माता प्रसाद गुप्त का विचार भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है:-

"प्रियादास जी की टीकाओं के पढ़ने पर साधारणतः यह जान पड़ता है कि वे पाठक के हृदय में केवल एक बात भलीभांति बैठा देना चाहते हैं और वह यह कि जैसे ही कोई प्राणी सांसारिक जीवन से विरक्त होकर परमार्थ साधन में दत्तचित्त होता है, उसका जीवन अनिवार्य रूप से अलौकिक हो जाता है और असंभावनाओं को संभव कर दिखाना ही उसके जीवन का एक मात्र कार्य रह जाता है[६६]।"

प्रियादास जी की टीका में पौराणिकता का पुट भी मिलता है। आज भी व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में दन्त-कथाओं और पौराणिकता की सत्ता अमिट है। लोगों की कल्पना, भावना और विचार उनको सदैव जीवित रखने में सहायक होंगे। ऐसी परिस्थितियों में ऐतिहासिक तथ्यों एवं सत्य का बहुत बड़ा अंश कथाओं एवं कहानियों में उलझा हुआ एक विवेकशील अनुसंधान की प्रतीक्षा कर रहा है[६७]। विश्व के अन्य महापुरुषों की कला-कृतियों की भांति भक्तमाल भी अपनी महत्ता एवं लोकप्रियता से बाधित है। भक्तमाल की अलौकिक घटनाएं सामान्य मानवीय बुद्धि का अतिक्रमण कर गई हैं जिसके कारण भक्त-मण्डली में उसकी "देवोपम" पूजा हो रही है।

भक्तमाल के भक्तों में इतनी शक्ति आ ~~मने~~ जाती है कि इनके प्रभाव

६५- माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिन्दोस्तान, अनु० डा० किशोरी लाल गुप्ता, कवि सं० ५१, पृ० ९८।

६६- डा० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास पृ० ६६।

६७- डा० राजबली पाण्डे- विक्रमादित्य आफ् उज्जैनी: फाउन्डर आफ् विक्रम-इरा- पृ० २।

से मृतक जी उठता है,बाघ की हिंसक वृत्ति समाप्त हो जाती है । मतवाला हाथी अपने क्रोध को त्याग देता है, शंकर का बैल प्रत्यक्ष प्रसाद ग्रहण करता है, गंगाजी अपनी मार्ग भक्त होती है, मूर्ति के भी बाल सफेद हो जाते हैं, दारु का "सार" हो जाता है, यही नहीं प्रभु भक्तों की रक्षा सदैव करते रहते हैं, घोड़े पर सवारी करते हुए उसके दुश्मन को मार भगाते हैं, अपने आप सभी सामान भक्त के घर पहुंचा देते हैं, यदि कहीं जंगल में भी भक्त पुकारता है तो प्रत्यक्ष हो जाते है, गंगा में डूबने तथा अग्नि में जलने से भक्त को बचा लेते हैं ।

इस भक्तमाल के साथ ही साथ टीका का भी अक्षुण्ण महत्व है और इसमें संदेह के लिए स्थान ही नहीं रह जाता कि यदि प्रियादास की टीका न होती तो भक्तमाल के लगभग दो सौ चरित्रों में से अधिकांश के विषय में अनभिज्ञ रहना पड़ता। कारण उसका प्रत्यक्ष है कि भक्तमाल में केवल कुछ घटनाओं का संकेत मात्र ही था । वह बिना टीका के सुलझने के स्थानपर और भी उलझ जाता । इस स्थल पर यदि भक्तमाल को एक "सूत्रग्रंथ" मानलें और टीका को उसका भाष्य तो इसमें अत्युक्ति न होगी । अतएव यह सत्य है कि बिना टीका के भक्तमाल महत्वहीन हो जाता । आज हम प्रत्यक्ष देखते है कि भक्तमाल के साथ टीका तथा नाभादास के साथ प्रियादास का नाम चल रहा है । भक्तमालकार को इतना ऊपर उठाने का कार्य प्रियादास ने ही किया । परिणामस्वरूप उनकी कृतियां उनके नामों को अमर बनाकर देश के जनमानस में प्रतिष्ठापित हो गई है ।

यह टीका भी भक्तमाल की ही तरह नाथसिद्धों और वैष्णवभक्तों की प्रवृत्तियों का अन्तर स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है[६८]। नाथपंथियों को सर्वत्र अपने योग और तप का भरोसा था । इधर वैष्णव भक्त अपना सर्वस्व भगवान की "मोहिनीमूर्ति" पर निछावर कर चुका था । भगवान सर्वत्र हैं +,और रक्षा का भार वही लेते हैं ऐसा भक्तों का अटल विश्वास ह था । जो भक्त निश्छल

६८- डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी साहित्य उसका उद्भव तथा विकास पृ॰ २४०-४१ ।

भाव से भगवान का शरणागत होता है, भगवान उसकी सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। भक्तमाल के सभी भक्तों के सामने सर्वदा यही आदर्श दृष्टिगत होता है। इस नयी प्रवृत्ति ने भक्तों को बहुत ही लोकप्रिय बनाया।

भक्तमाल की टीका के वर्णित भक्तों के चरित्रों में हमारी भारतीय संस्कृति की आतिथ्य सत्कार तथा गुरु पूजा आदि की परम्परायें निहित हैं। भक्त आतिथ्य सत्कार को प्रमुख मानकर अपनी लज्जा और मर्यादा को भी तिलाञ्जलि करने को उद्यत रहता है। संत पीपाजी की अनुपस्थिति में उनके घर कुछ साधु आ जाते हैं। घर में एक मुट्ठी अन्न नहीं रहता। उनकी पत्नी चिन्ता से व्याकुल हो जाती है। फिर एक "विषयी बनिका" के पास से खाद्य सामग्री इस शर्त पर पाती है कि उनकी विषय की वासना की पूर्ति के लिए रात्रि के समय स्वयं उसके घर पर उपस्थित होगी। घर पहुंचकर संतों को उचित भोजन कराती है। पीपा जी के आने पर सारी घटना मालूम हो जाती है। पीपा जी भगवान पर भरोसा करते हैं। उस निश्चित समय पर अपनी मान मर्यादा लज्जा का तिलाञ्जलि देकर अपने कंधे पर अपनी पत्नी को इसलिए बैठाकर ले जाते हैं कि उनके पांव भींग न जायँ। ऐसे आतिथ्य सत्कार के उदाहरण संसार के साहित्य में दुर्लभ है। परिणाम यह होता है कि उसकी बुद्धि ठीक हो जाती है और पीपाजी का शिष्यत्व स्वीकार करता है[६९]। इसी संदर्भ में पीपाजी के साथ "चीधड़ भक्त" तथा उनकी पत्नी की वार्ता आई है। इनके यहां पीपाजी अपनी पत्नी के साथ पहुंचते हैं। चीधड़ को दरिद्र समझ कर कोई उसे एक पाव अन्न भी नहीं देता। अन्त में चीधड़ की पत्नी अपना "लहंगा" बेचकर उनका सत्कार करती है[७०]।

इसी प्रकार व्यासजी[७१] तथा रामदासजी[७२] भी अतिथि सत्कार के लिए प्रसिद्ध थे। कोई भी अतिथि संत उनके यहां से अप्रसन्न होकर नहीं जाने पाता

६९- भक्तमाल सटीक, प्रियादास कवित्त २९८ तथा २९९।

७०- दे० " " " " पृ० २९१।

७१- वही, " " " पृ० ३७०।

७२- वही, " " " पृ० ६२६।

था । अपनी कन्या के विवाह की समस्त खाद्य सामग्री उन्होंने संतों को खिला दी[७३]।

कृष्णदास पयहारी का अतिथि सत्कार भी भावना इन लोगों से और भी बढ़कर थी, क्योंकि इन्होंने अपनी गुफा के सामने खड़े हुए सिंह को अपनी जंघा का मांस स्वयं काटकर खिला दिया था[७४]।

टीका के महत्व का मूल्य इसी से आंका जा सकता है कि इस सटीक भक्तमाल का अनुवाद प्रायः सभी भाषाओं में हो चुका है । बंगला में लालदास ने इसका अनुवाद किया है और अंत में एक लम्बा परिशिष्ट जोड़कर गौड़ीय वैष्णवों के सिद्धान्तों का समावेश किया गया है । इसने बंगला साहित्य को बहुत प्रभावित किया । सुना जाता है कि इसका अनुवाद मार्तण्ड बुआ ने मराठी भाषा में किया । इसी का एक अनुवाद उड़िया में भी हुआ है । तथा इसी के अनुकरण पर बहुत सी टीकाएं बनीं । बालकराम जी ने "भक्तमाल गुण चित्रणी" टीका लिखी । अन्य सम्प्रदाय वालों ने भी इसका अनुकरण किया । दादूपंथी राघवदास जी ने नाभादास के भक्तमाल के अनुकरण पर अपना "भक्तमाल" लिखा । चतुरदास ने उसपर प्रियादास की टीका के अनुकरण पर टीका लिखी । शैव भक्तों की चरितावली तथा सिख सम्प्रदायमें भी भक्तों के चरित वाले ग्रंथ बने । इस टीका की भी टिप्पणियां, टीकाएं लिखी गयी हैं । इसमें "वैष्णवदास" की टीका बहुत प्रसिद्ध है । "साधु मलूकदास" तथा "हुसाल-दास" ने भी इस टीका की टीकाएं की । उर्दू भाषा में भी इसका अनुवाद हो चुका है । ग्रंथ के अन्त में टीकाकार स्वयं उसके महत्व की घोषणा करते हुए कहता है कि इसका श्रवण करने से अनेक जीवों का उद्धार हो गया । इस टीका के पठन पाठन से राग द्वेष से कलुषित बुद्धि भी शुद्ध हो जाती है तथा इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मूल के लिए इसका ऐसा मेल बैठा है कि प्रायः यह विस्मृत हो जाता है कि मूल का अध्ययन कर रहे हैं अथवा

७३- भक्तमाल रूपकला सटीक प्रियादास कवित्त पृ० २७० ।

७४- वही, " " ६१४ ।

टीका का । स्वयं टीकाकार के शब्दों में"भक्ति रस बोधिनी" का महत्व ध्यान देने योग्य है:-

कीनी भक्तमाल सुरसाल नाभा स्वामी जू ने,
तरे जीव जाल, जग जनमय पोहिनी ।
"भक्ति रस बोधिनी" सो टीका मति सोधिनी,
बांचत कहत अर्थ लागी अति सोहिनी ।
जो पै प्रेम लछिना की चाह अवगाहि चाहि,
मिटै उर दाहु नैकु नैननि हू जोहनी ।
टीका अरु मूलनाम मूल जात सुनै जब,
रसिक अनन्य सुख होत विश्व मोहिनी[७५]।

प्रियादास जी भक्त और कवि दोनों थे । टीका भक्ति भावना के अभिव्यक्तिकरण की प्रौढ़ रचना कही जा सकती है । मनुष्य जब अपनी भावावेश की चरमावस्था पर आसीन हो जाता है तभी भक्ति के रूप का निर्माण होता है अथवा अन्तःकरण के भावों का जब वेग के साथ स्फुरण होना चाहता है उस समय भक्त की वाणी से जो प्रसूत होता है वह साहित्य के रूप में सम्मुख आता है । प्रियादास जी जिस समय भक्तों के चरित्रों का वर्णन प्रस्तुत करना चाहते हैं ; उनकी रचनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् कार्य की धारणा पहले से ही बन जाती है कि भक्तों के चरित्र और साधारण मनुष्यों के चरित्रों में आकाश-पाताल का अन्तर होता है । इन्होंने केवल कला के प्रदर्शन के लिए रचनाएं नहीं प्रस्तुत कीं । फिर भी काव्य के सभी गुण बिना प्रयास उनकी कविता में आ गए हैं ।

इनकी कविता भक्तिरस प्रधान है,उसमें माधुर्य और प्रसादगुण की व्यापकता है । ओज गुण तो कुछ प्रभावहीन सा दृष्टिगत होता है । अपनी समस्त रचना में कवि सर्वत्र दैन्य भाव से ही अग्रसर होता है । हमारा कवि प्रतिभा सम्पन्न है । अतएव इसकी वाणी में अलंकार अनायास ही आ गये हैं।

७५- भक्तमाल सटीक, प्रियादास कवित्त सं० ६३२ ।

यद्यपि यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पूर्वनिश्चित योजना को सामने रख कर इन्होंने अलंकारों का समावेश नहीं किया है। इनकी रचनाओं में मुख्यतः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, उदाहरण और विभावना का प्रयोग हुआ है।

(२) अनन्तदास की परिचयियों तथा प्रियादास की टीका का तुलनात्मक अध्ययन

प्रियादास की टीका से भी अनन्तदास की उन्हीं परिचयियों से तुलना करने का प्रयास किया जा रहा है जिनके विषय में पीछे विस्तृत विवरण दिया गया है[७६]। ये परिचयियां पीपा[७७], त्रिलोचन, धना, कबीर, नामदेव, रैदास और रांका-बांका के विषय में लिखी गई हैं।

नीचे दोनों ग्रंथों में उपर्युक्त भक्तों के संबंध में मिलने वाले प्रसंगों में जो समानताएं और वैषम्य हैं उन पर नीचे विचार किया गया है।

रैदास-

इनके संबंध में निम्नांकित वार्ताओं का विकास हुआ है:-

(क) पूर्व जन्म के पाप से रैदास जी का किसी चमार के घर पैदा होना

७६- दे० पीछे "अनन्तदास की परिचयियां" शीर्षक।

७७- परिचयी में पीपा के साथ श्रीरंग की वार्ता हुई है, तथा कई प्रसंगों का वर्णन भी है। प्रियादास जी ने श्रीरंग के विषय में दो छप्पयों (११७-११८) में अलग से लिखा है, किन्तु यहां पीपा के साथ ही श्रीरंग की वार्ताओं पर विचार किया गया है।

पूर्व जन्म का ख्याल हो जाने के कारण, माता का स्तन तभी पान करना जब रामानंद जी की आकाशवाणी द्वारा आज्ञा सुनना ।

(२) भक्तिभाव में लीन देखकर माता पिता का अलग करना, रैदास का घर के पिछवारे रहकर चमड़े का जूता बनाना और संतों की सेवा करना ।

(३) प्रभु का "भगत" रूप धारण कर आना, और किसी प्रकार उन्हें "पारस" पत्थर देना, किन्तु रैदास जी का उसका कुछ भी उपयोग नहीं करना। १३ महीने पश्चात् पुनः प्रभु का आना और पांच पाव मोहर प्रतिदिन उन्हें मिलना ।

(४) रैदास जी का नवीन मंदिर बनवाकर संतों की सेवा करना, ब्राह्मणों का उनका प्रभाव देखकर डाह करना, अन्त में राजा से उनकी निन्दा करना किन्तु उनका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर ~~उन्हें~~ राजा का हार मानना ।

(५) चित्तौड़ की किसी रानी "झाली" का रैदास जी का शिष्य होना, ब्राह्मणों का पुनः दुराग्रह करना । अंत में परीक्षा के समय श्री ठाकुर जी का रैदास जी के गोद में आना और ब्राह्मणों का हार मानना ।

(६) झाली के निमंत्रण पर रैदास जी का आना तथा ब्राह्मणों के हठपर दो वस्तुओं को दिखाकर प्रभाव दिखलाना ।

(क) ब्राह्मणों को भोजन करने पर सभी ब्राह्मणों के पास रैदासजी का दिखलाई पड़ना ।

(ख) अपने शरीर से जनेऊ निकाल कर दिखलाना ।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित शब्द साम्य और वाक्य साम्य भी पाया जाता है -

प० अरध राति हुई अकासवानी । तब रामानंद मन मैं जानी ।।

टी० भई नभ वानी रामानंद मनमें जानी ।

म० अस्तन दान की रैदासू ।

टी० स्तन पान कियौ, जियो लियो उन्ह ईस जानि ।

प० सी नो चाम मोल ले आवै । ताकी पनही अधिक बनावै ।

टी० ल्यावै चाम करे जूती साधु संत को संभारही ।

प० "दब्बर बांधि छान में धरहू"।

टी० "शजी यह छानि मांफ लै है जु निकारि = कै"

प० सुपने तर मैं विनती करई । मुहर पांच संपट में धरई ।।

टी० पावैं से वत मुहर पांच, नितही प्रतीर्णी कौ ।

प० मंन्दिर महल कीया बहुतेरा । तहां भगतन करें डेरा ।।

टी० संतानि बसाय हरि मंदिर चिन्तयो है ।

प० तान के माही जनेऊ काढ़ी । तव सब देखि भये है थाढ़ी ।।

टी० स्वर्ण को जनेऊ काढ्यो, त्वचा कीनी न्यारिये ।।

इन उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर है:-

(१) पहले प्रसंग में रैदास जी का पूर्व जन्म में रामानंद जी का शिष्य, ब्रह्मचारी होने का वर्णन है । गुरु की आज्ञा के विरुद्ध किसी बनिये के घर से चुटकी मांगने के कारण, गुरु के श्राप से चमार के यहां रैदास जी का उत्पन्न होना लिखा है । जबकि परिचयी में ब्राह्मण होकर मांस खाने के अपराध से चमार के गृह पैदा होने का वर्णन है ।

(२) दूसरा प्रसंग प्रायः एक सा है ।

(३) तीसरा प्रसंग प्रायः दोनों ग्रंथों में समान है।

(१) अन्तर केवल यह है कि टीका में "रापी" से कंचन की परीक्षा ली गई है और परिचयी में सुई से ।

(२) रैदास और प्रभु में पारस लेने न लेने का विस्तार के साथ वर्णन है जबकि टीका में संक्षेप में ।

(४) चौथे प्रसंग में ब्राह्मणों के क्रोध करने पर उस नगर के राजा के सम्मुख परीक्षा के लिए शालिग्राम की मूर्ति - रैदास जी की गोद में स्वयं चली गई, किन्तु ब्राह्मणों के पास नहीं आई । इतना परिचयी के प्रसंग में और जोड़ा गया है ।

(५) पांचवे प्रसंग मे चित्तौड़ की रानी "झाली" का शिष्य होने के लिए काशी में कबीर के पास जाने तथा उनको कम्बल के नीचे पड़ा देखकर चली आने का प्रसंग परिचयी में और जोड़ा गया है। इस बार झाली को शिष्या बनाने पर रैदास के सम्मुख ही ब्राह्मणों के नाना प्रकार से उपद्रव की बात कही गई है * और कबीर की आज्ञा से मूर्ति की परीक्षा ब्राह्मणों और रैदास के बीच हुई *, किसी राजा के सम्मुख नहीं । किन्तु टीका में किसी राजा के सम्मुख हुई तथा टीका ब्राह्मणों के रोष का कारण झाली को शिक्षा देने का नहीं है अपितु शालिग्राम के पूजने का था ।

(६) छठें प्रसंग में परिचयी में (क) कबीर, सैन और रैदास का आपस में निर्गुण, सगुण पर वार्तालाप का अंश विशेष जोड़ा गया है (ख) तथा कबीर को रैदास ने अपने गुरु के समान अपना बड़ा भाई समझ कर पुनः झाली के गृह जाने की अनुमति ली है[७८]। (ग) परिचयी में इसका विशेष विस्तार है ।

तिलोचनः-

दोनों ग्रंथों की वार्ताओं में साम्य इतना अधिक है कि कई स्थलों में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है । नीचे लिखे साम्य के स्थल ध्यान देने योग्य हैं:-

प० फाटी कमली टूटी पनहीं, कामरी पन्हैया सब नई करि दई है ।

टी० फटी एक कामरी पन्हैया टूटी पाय है ।

प० कहां तैरो बाप कहां तेरो भाई ।।

टी० बाप महतारी मेरे कोऊ नाहि सांची कहै ।

प० "नाम हमारो अंतरजामी ।"

टी० "अन्तरजामी नाम मेरो"

प० "तेल्ह मेल्ह स्थान करावा"

७८- तब रैदास बिचारी बाता । गुरु समान कबीर बड़ भ्राता ।

+ + + +

आज्ञा लई कबीर की । पुनि आज्ञा प्रभु लीन्ह ।

टी० और भींड़िकै न्हवायौ, तन मैल को छुटायो

प० ऐक दिना मन आई ऐसी। जाय परोसन के ढ़िग वैसी ।।

टी० "एक दिन गई ही परोसिन कै"

प० दिन दसतिलोचन्द तज्यो अन पानी

टी० बीते दिन तीन अन्न जल करि दीन एरा ।

प० ऐसो करत बहुत दिन बीता

टी० ऐसो करत मास तेरह वितीत भये ।

इन उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित अंतर हैः-

(क) टीका छ० १८० में नामदेव और तिलोचंद दोनों का गुरु भाई होना तथा बनिये के कुल में उत्पन्न होने की बात कही गई है जो परिचयी में नहीं है ।

(ख) टीका छ० १८२, ८३ की घटना का कृम परिचयी में ऊपर की कुछ पंक्तियां नीचे, और नीचे की कुछ पंक्तियां ऊपर हो गई हैं जिनका वर्णन तुलनीय अंशों में यथास्थान किया जा चुका है । अतः घटना कृम में भी भेद है ।

धनाभक्त:-

धना जी के प्रसंग जो दोनों ग्रंथों में आए हैं, उनमें समानता कम पाई जाती है । प्रियादास जी ने अपनी टीका कवित्त ३०६-३०७-३०८ में धना विषयक प्रसंगों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैः-

भगवत भक्त की पूजा करते देखकर शालिग्राम की पूजा करने की याचना करना, उस भक्त द्वारा पत्थर की मूर्ति देना, शालिग्राम समझकर धना द्वारा पूजा करना, प्रभु का प्रसन्न होकर गाएं चराना, उस उक्त भक्त को भी प्रभु का दर्शन कराना तथा प्रभु के बतलाने पर रामानन्द का शिष्य होना ।

इसके विपरीत परचयी में है बिना खेत में बीज बोने पर अंकुर उग आना, साधु समागम तथा उनका सत्कार करना, खाने के पश्चात् एक एक तूंबा देना तथा रामानन्द का शिष्य बतलाना ।

उपर्युक्त प्रसंगों में साम्य होते हुए भी अन्तर अधिक दिखलाई पड़ता है। इसका कारण यह हो सकता है कि टीकाकार ने इसे अन्य स्रोत से लिया हो अथवा स्वतः नये प्रसंग की उद्भावना की हो।

रांका- बांका:-

इनके प्रसंगों में निम्नांकित वार्ताओं का विकास हुआ है :-

(१) रांका-बांका (पति पत्नी) का पंढरपुर में निवास करना, लकड़ी बीनकर अपना निर्वाह करना, नामदेव और कृष्णदेव का उनका दुख दूर करने के लिए रास्ते में थैली रखना तथा रांका - बांका का उसे धूल से ढककर चलाजाना।

(२) दोनों आदमियों का उस जंगल में लकड़ी को एक जगह इकट्ठा करना, रांका-बांका का दूसरे की समझकर उसे न लेना अंत में कृष्ण द्वारा उन्हें अपने घर लाना तथा उन्हें केवल वस्त्र लेने के लिए विवश करना।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित शब्द साम्य और वाक्य साम्य भी पाया जाता है:-

प० काठी बेचै करै रसोई।

टी० लकरीन बीनि करि, जीविका नवीन करैं।

प० कंचन को आभूषण कीन्है, पंथ में जाइ डारि सब दीन्है ।।

टी० रहै बन छिपि दोऊ, थैली मग मांझ डारियै।

प० (क) इहा साथ लकड़ी को आवै।

(ख) सारी राति लकड़िया तोड़ी।

टी० जो पै दाह गात, चलौ लकरी सकेरियै।

प० यह पराई हाथ न छीजै।

टी० देहू मिलि पावै तऊ हाथ नहि छीजियै।

इन प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर है:-

पहले प्रसंग में परिचयी में रुपए की थैली न लेने पर वस्त्र लेने के लिए नामदेव और हरिदेव का प्रयत्न करना तथा उनके विफल होने का वर्णन है, जब कि टीका में इस सम्बन्ध में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं है।

दूसरे प्रसंग में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है । केवल परिचयी में रांका- बांका के भक्ति का उपदेश, विस्तार के साथ वर्णित है ; जबकि टीका में इनको उपदेश देने का उल्लेख नहीं है ।

इन उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त परिचयी में दो प्रसंग और आए हैं ; जिनका विस्तार के साथ वर्णन है । ये दोनों प्रसंग टीका में नहीं है ।

(१) नामदेव की "बालकी" और राधा की पत्नी से जल भरते समय घड़ा छू जाने पर वार्तालाप, तथा नामदेव के आने पर रांका का भक्ति का उपदेश ।

(२) दूसरे के गृह से अग्नि न लाने की बात है ।

नामदेव:-

इनके सम्बन्ध में निम्नांकित वार्ताओं का विकास हुआ है:-

(क) नामदेव के पिता ने किसी दिन ठाकुर की सेवा दूध मिलाकर करने की आज्ञा दी । कराही में औटाकर देने पर किसी प्रकार प्रार्थना करने पर ठाकुर ने दूध पिया ।

(ख) नामदेव को "छिपा" समझकर ब्राह्मणों द्वारा मंदिर से बाहर करना तथा मंदिर का दरवाजा उनकी ओर होना ।

(ग) घर में अग्नि लगने पर प्रभु ने उनकी छान्नि अपने हाथ से छाई।

(घ) "गयारसि" अथवा एकादशी का व्रत छुड़ाने के लिए विप्ररूप प्रभु का धारण कर आना तथा उनके ऊपर जान देना। अंत में चिता में जलने के लिए नामदेव को उद्यत देखकर प्रभु का मुसकराकर उनके ऊपर प्रसन्न होना ।

(ङ०) "मलेक्षराज" अथवा "पातिसाह" के कहने पर मरी गाय जिला देना ।

(च) तुलादान देने वाला वणिक तुलसी के पत्र के बराबर सोना भी दान न दे सका ।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित शब्द साम्य और वाक्य साम्य भी पाया जाता है :-

प०	नामदेव कौ पिता सेवा सदा ही करते ।
टी०	देवो मोहि सेवा मांझ अति ही सुहावई ।।
प०	अध्यो अति नछान्नि माइा लुगाढ़ि औंटायो ।
टी०	अब करो मति फेर अजू चितदै औंटाइयै ।।
प०	अजहू अभिक दूध में मिसिरी छिटकावैं ।
टी०	तामें दूध सो सुवास मध्य मिश्रिरी मिलाइयै ।
प०	देहुरा फेरि लियाया
टी०	फिरयौ द्वार इतै जाहि मन्दिर "फेराइये"।
प०	नगर में भई अगिनी लोग सापा ले जाया ।
टी०	औचक ही घर मांझ सांझ ही आगिनि लायी ।
प०	सबको छावै छानि नामदेव छानि न छावै ।
टी०	भए यौं प्रसन्न छानि छाई आप सारियै ।
	पूछै आनि लोग "कौन छाई हो" छ्वाइ लीजै ।
प०	अन मैं कहूंन पायो ।
टी०	भई एकादशी अन्न मांगत बहुत भूखो ।
प०	करामात कैसी है भाई ।
टी०	होय करामात तोपै काहे को कसव करै ।
प०	मुई गाई तब आइ जिवाई ।
टी०	लई पै जिवाय गाय सहज सुभाय है ।
प०	साह एक पंढरपुत्र माही, चढ्या तुला जान्यो सब काही ।
टी०	हुती एक साह, तुला दान का उछाह भयो ।
प०	ऐक बुलावा, दोइ पठाऐ, तीजे बोले नामदेव आऐ ।
टी०	ल्यावौ जु बुलाइ "एक, होय तो फिराय दियो"
	तीसरे सो आए, कहां कहो? बड़भागी हैं ।
प०	तौ पात एक तुलसी कौ आनौ
टी०	जाके तुलसी है ऐसे तुलसी के पय मांझ।
प०	ता समान तौलौ तुम सोना ।
टी०	पासौं तोल दीजिए
प०	तौला पांच सात किन लेहू ।

टी० लई सो तराजू जासौ तुलौ मन पांच सात ।

इन प्रसंगों का अन्तर भी भलीभांति समझ लेना चाहिए:-

पहले प्रसंग में टीकाकार ने टीका १२७, २८ में नामदेव के पिता वाम देव की विधवा स्त्री से उनका उत्पन्न होना लिखा है, जबकि परिचयीकार इस सम्बन्ध में मौन हैं। इसी प्रकार से टीका १३०, १३१, १३२ में नामदेव का ठाकुर को दूध पीने पर, छुरी से गला काटने के लिए उद्यत होना, पिता वामदेव के आने पर वही प्रसंग कहना तथा उसी छुरी की धमकी सुनकर ठाकुर के दूध पीने की बात परिचयी में नहीं कही गई है तथा परिचयी में उनके पिता का नाम भी नहीं लिखा गया है ।

दूसरे प्रसंग मे टीकाकार ने नामदेव की "पनही" लेकर मंदिर में जाने का वर्णन किया है जबकि परिचयीकार ने लिखा है कि लोगों ने छीपा जाति वाले नामदेव को देखकर मंदिर से निकाल दिया ।

तीसरे प्रसंग में कोई उल्लेखनीय बात नहीं कही गई है ।

चौथे प्रसंग में एकादशी व्रत छुड़ाने की बात, तथा अंबरीष आदि के उदाहरण परिचयी में बहुत विस्तार पूर्वक लिखे गये हैं । जबकि टीका के दो छं० १४२, ४३ में संक्षेप में इसका उल्लेख है । इसके साथ साथ टीकाकार ने छं० १४३ में नामदेव द्वारा किसी प्रेत की मुक्ति की बात कही है किन्तु परिचयी में यह बात छोड़ दी गई है ।

पांचवें प्रसंग में परिचयी में "पातिसाह" के सामने नामदेव को बुलाया जाना, उनको सलाम करने के लिए विवश करना, नामदेव का सलाम करने के लिए उद्यत न देखकर नामदेव को मारने के लिए खूनी हस्ती को विवश करना । आदि वाते टीका में छोड़ दी गई हैं । १८५६ की प्रति में "गाय जियाई" हस्ती डरप्यो है" का वर्णन आया है ।

इसी सम्बन्ध में टीका १३५, ३६ में पातसाह द्वारा पर्यंक देना, नामदेव का नदी में गिरा देना, पातसाह का वही पर्यंक पुनः मांगना, तथा उनके मांगने पर नामदेव द्वारा कई पर्यंक उसी प्रकार के जल सेनिकाल कर दिख लाना, यह बातें परिचयी मे छोड़ दी गयी है ।

अंतिम प्रसंग १८५६ वाली प्रति का है । इसमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं है ।

टीका और परिचयी के वार्ता-प्रसंगों के क्रमों में भी अन्तर है ।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त निम्नांकित दो प्रसंगों का उल्लेख परिचयी में अधिक है-

(क) नामदेव का किसी मरे हुए बैल का जिलाना ।

(ख) श्वान रूप धारण कर प्रभु का नामदेव की रोटी खाना ।

कबीर:-

दोनो ग्रंथों में निम्नांकित वार्ताओं या प्रसंगों का विकास हुआ है-

(क) कबीर का आकाशवाणी सुन कर माला तिलक धारण करना तथा गंगा के किनारे स्नान के लिए जाते हुए रामानंद के चरणों के नीचे पड़कर उनके मुंह से रामनाम सुन कर वही गुरु मंत्र मानना । रामानंद जी का परदे के भीतर से सारी बातें सुनना तथा परदा हटाकर उन्हें भक्ति का उपदेश देना ।

(ख) कबीर का कपड़ा बुनकर जीविका निर्वाह करना, प्रभु का फ़कीर से वस्त्र मांगना, कबीर का सब वस्त्र उन्हें देना, परिवार के डर से कबीर का घर न आना, प्रभु का बैल पर बहुत सामग्री लाना, चार मनुष्यों द्वारा कबीर को भी बुलाना, तथा कबीर का प्रभु की माया समझकर प्रसन्न होना और उसे सन्तों की सेवा में लगा देना । अपने उपयोग के लिए सारी सामग्री प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों का कबीर से हठ करना ।

(ग) कबीर जी का उन्हें समझाना, उनके द्रव्य के लिए बहाना करके दूर जाना, प्रभु का द्रव्य लेकर कबीर वेष से सबका सत्कार करना तथा अंत में कबीर से उनके सत्कार की वार्ता कहकर उन्हें घर लाना, कबीर जी का ब्राह्मणों को सब द्रव्य दे देना तथा स्वयं किसी गणिका के साथ टहलना ।

(घ) नगर के लोगों का कबीर की हँसी उड़ाना, कबीर का नगर

के राजा के पास जाना, वहां के राजा का उचित सम्मान न करना उसी समय कबीर का जगन्नाथ जी के जलते हुए पण्डा के ऊपर जल छिड़कना, राजा को वह बात सत्य मालूम होने पर रानी सहित क्षमा याचना करना तथा कबीर का क्षमा कर देना ।

(ङ०) किसी समय सिकंदर बादशाह के काशी आने पर, मुल्लाओं तथा कबीर की मां द्वारा शिकायत करना, सिकंदर के सामने कबीर के सलाम न करने पर, जंजीर से बांधकर गंगा में बहाना, प्रज्वलित अग्नि में डालना, तथा मदमस्त हस्ती द्वारा कुचलाने का प्रयास विफल देखकर सिकंदर का क्षमा याचना करना ।

(च) ब्राह्मणों द्वारा पुनः प्रपंच रचाकर कबीर के नाम पर निमंत्रण देना, कबीर के छिप जाने पर प्रभु का कबीर वेष धारण कर सत्कार करना ।

(छ) कबीर को छलने के लिए अपसरा का आना, उनका विफल होकर चला जाना, कबीर का काशी छोड़कर मगहर में शरीर त्यागना तथा उनकी लाश के स्थान पर हिन्दुओं और मुसलमानों का पुष्प पाना ।

दोनों ग्रंथों की वार्ताओं में साम्य इतना अधिक है कि कई में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है । नीचे लिखे साम्य के स्थल ध्यान देने योग्य हैं:-

प०	माला तिलक बणाया, कबीर करैं संतन का माया ।
टी०	कीनी वही बात माला तिलक बनाय गात ।
प०	रामानंद लग गहे पुकारा
टी०	पहुंची पुकार रामानंद जू के पास
प०	तब रामानंद तुरत बुलाया, आगै पीछै परदा दाया ।
	रे कहि माला कब दीनी तोही, अबहू नाप हमारै लेई ।
टी०	"ल्यावौ जु वकरि वाको कब हम शिष्य कियो ।
	ल्याये करि परदा में पूछी, कहि डारियै ।
प०	आगी फारि दैन जब लागौ सारि देह मगतहू नागौ,
टी०	दियौ तुरतहि गहन न लायौ, तब कबीरन मंदिर आयौ ।

टी० लायो देन आसौ फारि, आते सो न काम होत
दियो सब लियौ जावै चहै उर धारिये ।

प० हाटैं बाटैं रहै लुकाई

टी० दबि रहे हाटनि मैं ल्यावै कहा गाय को

प० घर बैठा बालद ले गया

टी० बालद लै आये दिन तीन यौं बिताए

प० जना चार कबीर कूं ल्याया ढीठि ढीठि कर घर लेइ आया

टी० गये जन दोय चार, ढूंढ़ि कै लिवाय आये
आये घर सुनी बात जानी प्रभु पीर को

प० अब तौ नाज नहीं घर याही
लै आऊं तुम बैठो छाहीं ।

टी० घर मैं तो नाहि पंडौ जाहि तुम रहौ बैठो

प० जहां कबीर तहां हरि गईऊ, ऊन पहिचाने वामन भयऊ
बेठो कहा करे रे भाई, काहे न तू कबीर कै जाई

टी० वामन कै रूप धरि आये छिपि बैठे जहां
काहे कौ मरत मौन जावौ तू कबीर के

प० मंदा चार सेर अढ़ाई

टी० को आ जाय द्वार ताहि देत हैं अढ़ाई सेर

प० अब देषौ गनिका संग लीनी

टी० वारमुखी लई संग मानौ वही रंग रगे

प० तिहि औसर कबीर जल ढार्‌यो

टी० कियो एक चीज उठि जल ढरकायो है ।

प० हरि कौ पंडौ जरत बुझायो

टी० "जगन्नाथ पण्डा पांव जरत बचायो है

प० कांध कुटारी गालिकै माथै तृण कौ भार

टी० चले ही बनत चले, सीस तृण बोझ भारी
गरे सो कुल्हारी बाधि, तिया संग मीजिये ।

प० दूर ते कबीर उठि गायौ, राजा देखि प्रेम ह्वै आयौ

टी० दूर ते कबीर देखि ह्वै गये अधीर महा
आये उठि आगे कह्यौ, डारि मति रीझियै ।

प० नांख्यौ पगी मेल्यो जंजीर, ले बोरयो गंगा के तीर

टी० बांधि कै जंजीर गंगातीर मांझ बोरि दिये ।

प० बामन वहकौ मूड मुड़ायौ ।

टी० मुड़िन मुड़ायो भेष सुंदर बनायो है ।

प० इन्द्र अपछरा पढ़ाई तबही

टी० आई अपछरा छलिबे के लिये वेस किये ।

प० वो अवतीस का फूल मगाया, तले ऊपरै सैन कराया

टी० बहु फूलनि मंगाय, पौढ़ि मिल्यो बहुरागी हैं ।

इन उपर्युक्त प्रसंगों में अंतर इस प्रकार है-

(क) प्रसंग दोनों ग्रंथों में लगभग एक सा है[७९]।

(ख) प्रसंग में कबीर की माता के द्रव्य के विषय में पूछने पर प्रभु का कथन है माता बात सुनो, काशी के विश्वनाथ अधिकारी हैं[८०], उनके दर्शन के लिये राजा ने यह द्रव्य चढ़ाया है और अब कबीर के घर भेज दिया है-यह बातें परिचयी की टीका में नहीं हैं ।

(ग) प्रसंग भी लगभग दोनो ग्रंथों में समान है ।

(घ) प्रसंग परिचयी में विस्तार से लिखा गया है जब कि टीका में अत्यन्त संक्षेप में ।

(ङ०) प्रसंग भी दोनों ग्रंथों में एक समान ही है ।

(च) प्रसंग भी दोनो ग्रंथों में समान है ।

(छ) इस प्रसंग में परिचयी में दो बातें विशेष है जो टीका में नहीं है ।

(१) कबीर के जीवन के विषय में लिखा है कि "बालपन दोधा में बीता" बीस वर्ष बाद चेत हुआ, बरस सौ तक भक्ति किया और उसके पश्चात

१- १७४० की प्रति में पहला प्राण छोड़ दिया है ।

२- सुनरी माता बात हमारी, कासी विश्वनाथ अधिकारी
ताकै दरसन राजा आयौ, तिन कबीर को द्रव्य चढ़ायौ ।

मुक्ति मिली ।

बालपनौ दीक्षा मे गयौ, बीस बरसतै चेतन भयौ। } १८५६ की प्रति
बरस सकल लगि कीनी भगति, ता पीछै पाई मुकति॥

१७८० की प्रति में - बालपना बालापन गया, बीस बरस का चेतनि भया ।
बरस सौ लगि कीनी भगति, ता पीछै पाई है मुकति ।।

(छ२) उनके मृतशव के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों का झगड़ा परिशिष्ट में विस्तार के साथ दिया गया है ।

पीपा-

पीपा संबंधी आख्यानों में निम्नांकित वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है-

(क) पीपा का देवी अथवा भवानी का भक्त होना, उन्हीं देवी की आज्ञा से काशी जाकर रामानंद का शिष्य होना ।

(ख) कुछ दिन संत सेवा के पश्चात् पीपा जी का पत्र पाकर कबीर आदि के साथ रामानंद का आना, पीपा जी का राज्य छोड़कर अपनी स्त्री सीता के साथ चला जाना ।

(ग) पीपा को वापस ले जाने के लिये किसी ब्राह्मण का विष खाकर मरना, पीपा द्वारा उसे जिलाना तथा पीपा का कृष्ण रुक्मिणी के दर्शन के लिए सिन्धु में बहना ।

(घ) कृष्ण की आज्ञा पाकर बाहर आना, आगे चलकर किसी पठान द्वारा उनकी स्त्री को छीनजाना तथा प्रभु द्वारा रक्षा करना ।

(ङ०) "सेषासांई" के गांव में ~~जहां~~ सूखे बांस हरे करना तथा चीधर भक्त के गृह आना ।

(च) चीधर भक्त की स्त्री का वस्त्र बेंचकर इनका स्वागत करना तथा सीता का वेश्या वेश में नाज की ढेर की ढेर इकट्ठा कर चीधर को देना ।

(छ) चोरों द्वारा सांपों से भरे हुए वर्तनों को सीता के घर में फेंकना तथा उसका मोहर होजाना।

(ज) किसी नृप का आना तथा उसे दीक्षा देना ।

(झ) सूरज सेन को घोड़ा, वस्त्र आदि देना तथा सूरज के भाई का प्रसन्न होकर उनका घोड़ा बांध लेना किन्तु पीपा के यहां उस घोड़े का दिखलाई देना ।

(य) सूरज के भाई का बनजारों से पीपा जी को झूठ ही बैल का व्यापारी बतलाना, बनजारों के आ जाने पर पीपा जी का निमंत्रित साधुओं को बैल बतलाना तथा बनजारों का प्रसन्न होकर साधुओं को बहुत सा वस्त्र बांटना ।

(ट) पीपा जी की स्त्री का किसी विषयी वणिक से रात्रि के समय आने की प्रतिज्ञा पर सामान लाने, पीपा जी द्वारा वहां पहुंचाये जाने तथा उस वणिक द्वारा क्षमा याचना की वार्ता कही गयी है ।

(ठ) चार विषयी साधु वेष धारियों द्वारा सीता को सिंह रूप में फुफकारती हुई पाना ।

(ड) एक विषयी साधु को सीता का सर्वत्र दिखलाई पड़ना तथा उसका क्षमा याचना करना ।

(ढ) सूरज सेन के यहां आना, उनके हृदय की बात बतलाना तथा उनकी बांझ स्त्री के सामने सिंह रूप में दिखलाई पड़ना ।

(ण) तेली का खोया हुआ बैल घर पर देखना[८१] ।

(त) किसी गूजरी को उस दिन के पूजे का समस्त धन दान कर देना ।

(द) (१) श्री रंग के यहां जाना, मानसी सेवा ही में माला पहनाना ।

(२) श्रीरंग तथा पीपा जी से वार्तालाप, श्री पीपा द्वारा किसी मरे हुए बैल का उल्लेख, जो उनके पहले जन्म से सम्बन्धित था ।

(३) पुत्र को प्रेत द्वारा डराने पर उद्धार का वृत्तान्त ।

(४) पीपा जी का किसी कंडा बीनने वाली का बुलाना, उसे देखकर श्रीरंग जी का अप्रसन्न होना, पीपा जी द्वारा उसे भक्ति का मार्ग बतलाकर, कंठी, माला आदि देना, यह देखकर घरवालों द्वारा बाहर निकलवाना तथा उस स्त्री की भक्ति देखकर, श्रीरंग का प्रभावित होना[८२]।

८१- इन प्रसंगों की टीका छ० ३१४,५ में केवल गणना की गई है । अतः इन्हें तुलनीय अंशों में २०४ में क्र० सं० नहीं लिखा गया है ।

८२- श्रीरंग संबंधी वार्ता- टीका ३१७-१८ में अलग से लिखी गई है ।

(थ) देवी की उपासना करने वाले ब्राह्मण के घर पीपा द्वारा भोग लगाने पर देवी का प्रसाद न पाना, उस ब्राह्मण द्वारा गाड़ी भरा अन्न लेते देखकर पीपा का मोहर भरा थैला देना तथा चोरों का उनसे क्षमा याचना करना ।

(ध) किसी ब्राह्मण को वैष्णव वेष में आने पर उसे उसकी कन्या के लिये बहुत सा द्रव्य सूरसैन से दिलवाना ।

(न) टोडे में कीर्तन करने पर सब धन मिला हुआ किसी ब्राह्मण को देना ।

(अ) हत्यारे के हाथ का भोजन सबको खिलाना ।

(आ) अकाल पड़ने पर"टोडे" में किसी बनिये से कर्ज लेना, समय के पहले मांगने पर उसका लिखा हुआ कागज कोरा दिखलाई पड़ना ।

(इ) किसी तेलिन के राम राम कहने पर उसके पति का जी उठना

(ई) पांच स्थानों से एक ही बार निमंत्रण आने पर सब जगह शरीर धारण कर जाना ।

(उ) टोडे में कीर्तन करते समय चंदोवा जलने पर वहीं हाथ से बुझाना ।

दोनो ग्रंथों की वार्ताओं में साम्य इतना अधिक है कि कई स्थलों में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य साम्य भी पाया जाता है । नीचे लिखे साम्य के स्थल ध्यान देने योग्य हैं -

प० पीपा पूजै आदि भवानी, देवी नगर को थकी रानी ।

टी० लयो पन देवी सेवा, रंग चढ्यौ भारियै ।

प० अरध राति सोवत कै जागा, उठि बैठे तव रोवन लागा ।

टी० सोयो निशि, रोयो देखि, सुपनो बेहाल आति ।

प० तब देवी कीनू उपकारा । जातै पीपा उतरै पारा ।।
नगर बनारसी रामानंदू । ताके तनमन बहुत अनंदू ।।
सो गुरू करहु बतावइ भगती । + +

टी० पूछ्यो हरि पाइबे को मगजब देवी कही
वैसेही रामानंद गुरु करि प्रभु पाइयै ।

प० लीयो रैदास कबीर संगाती

टी० कबीर रैदास आदिदास सब संग लिये आप ।

प० करी मांक भेषहि कीनी । ऐकऐक ओढ़न कू दीनी

टी० कामरी न फारि मधि, मेखला पहिरि लेवो ।

प० आगे लैन जन द्वै आए । कृपा करी गोपाल पठाए ।।

टी० आये आगे लैन आप, दिये है पठाय जन

देखि द्वारावती कृष्ण मिले बहु माय है ।

प० कामन कोठी मांग दुराई । ताकौ वस तर देख्यो जाई ।

टी० लहंगा उतारि वेचि दियो, ताकौ सीरी लियौ ।

प० जो देषै तो मुहरैं वगरी । पांच तौरा की सगरी ।

गनी सात सै बावन गरवा । सेर पांच तावें की चरवा ।।

टी० ऐसे आयपरी, गनी, सात सब बंस भई,

तोलैं पांच वाट करै एक के प्रमान को ।

प० घर मै कछु न दोसै नाजू ।।

टी० अन्न कछू नाहिं कहूं जाय करि ल्याइये ।

प० एक बनियौ बिठाई भारी ।

टी० विषयी वनिक एक देखि कै बुलागइ लई ।

प० ऐक निसा समीप रहै मोदी ।

टी० दई सब सौंज कही "सही निति आइयै"।

प० सीता सती कियौ सिगारु। निसि अंधियारी बरसै मेहा ।।

टी० करिकै सिंगार सीता चली झुकि मेंह आयौ ।।

प० पीपै लीनी कंध बढ़ाई ।

टी० कांधे पै बढायौ बपु बनिया रिझाइयै ।

प० लै बनियां की हाट उतारी ।

टी० हाट पै उतारि दई ।

प० बनियां बूझै कहाँरी माई । सूके पगाँ तू काकरि आई ।

टी० कहे सूके पग माता कैसे करि आई हो ।।

प०　　पीपा कहै वचन तब ऐसो । सूरज है मोची को वैसो

टी०　　"बड़ौ मूढ़ राजा मोजा गाँठि बैठ्यौ मोची घर ।।

उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर के स्थल भी दृष्टव्य हैं ।

(क) यह प्रसंग परिचयी में विस्तार के साथ लिखा गया है जबकि टीका में संक्षेप में वर्णन है ।

(ख) परिचयी में वर्णन है कि संत/ पीपा जी ने बारह वर्ष बाद अपने गुरु रामानन्द जी को बुलाया था, जबकि टीका में केवल एक वर्ष बाद लिखा है ।

प्रसंग (ग) (घ) (ङ०) (च) (छ) (ज) (झ) (ञ) दोनों ग्रंथों में समान हैं, किन्तु परिचयी में विस्तार के साथ लिखा गया है ।

(ट) इस प्रसंग में "पतिव्रता" धर्म का परिचयी में लगभग एक पृष्ठ में वर्णन है, टीकामें"पतिव्रता" के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं है ।

प्रसंग (ठ) (ड) (ढ) (ण) तथा (द) (थ) का केवल नाम मात्र अथवा संकेत मात्र टीका में वर्णन है, किन्तु परिचयी में पर्याप्त विस्तार से लिखा गया है ।

(द) प्रसंग में श्रीरंग और पीपा विषयक वार्ता का परिचयी में लगभग दो पृष्ठों तक वर्णन है । टीकाकार ने श्रीरंग के लिए, अलग से दो छप्पयों में वर्णन किया है, तथा टीका में कंडा बीनने वाली का प्रसंग आया ही नहीं है ।

इस प्रसंग के पश्चात् सभी प्रसंग परिचयी में कई पंक्तियों में लिखे गए हैं, जबकि टीका में उनके विषय में केवल संकेत है ।

निष्कर्ष

परिचयी के सभी प्रसंगों का कदाचित् टीकाकार ने संक्षेप में वर्णन इसलिए किया होगा, क्योंकि भक्तमाल में कई सौ भक्तों के विषय में लिखना था और परिचयीकार ने थोड़े से भक्तों को अपनाया है ।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् हमें निम्नांकित बातें मालूम होती हैं:

(क) पीपा, त्रिलोचन, धना, नामदेव, कबीर, रैदास और राका-बांका

के लगभग सभी प्रसंग दोनों ग्रंथों में समान हैं जिनमें प्रायः शब्द साम्य, वाक्य साम्य भी ~~समान~~ हैं । केवल धना जी के प्रसंगों में थोड़ी सी भिन्नता है, फिर भी समानता के स्थल भी पाये गए हैं ।

(ख) परिचयी में पीपा, कबीर तथा रैदास के बहुत से प्रसंग विस्तार के साथ लिखे गए हैं, किन्तु प्रियादास जी ने केवल संकेत कर दिया है, विशेष कर संत पीपा विषयक प्रसंगों को ।

(घ) परिचयीकार को केवल आठ भक्तों या संतों के विषय में लिखना था किन्तु टीकाकार को दो सौ से अधिक भक्तमाल में आये हुए भक्तों की टीका करनी थी । अतः प्रसंगों के विस्तार का अवसर न मिला होगा ।

(ङ०) कुछ प्रसंगों की उद्भावना टीकाकार ने स्वयं कर ली होगी अथवा किसी ~~अन्यत्र~~ स्रोत से भी लिया होगा ।

अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अनंतदास की परिचयी की रचना सम्वत् १६४५ से प्रारम्भ होती है और पीपा की परिचयी के आधार पर इसकी रचना सम्वत् १६५७ अथवा उसके बाद तक चलती रहती है । भक्तमाल के टीकाकार प्रियदास जी अपनी टीका सं० १७६९ में समाप्त करते हैं । इस प्रकार अनंतदास की परिचयी टीका से लगभग ११० वर्ष पूर्व समाप्त हो जाती है । अतः उक्त प्रसंगों को अपनी रचना में स्थान देना टीकाकार के लिए स्वाभाविक है ।

प्रियादास की टीका तथा रसिक अनन्यमाल का तुलनात्मक अध्ययन

रसिक अनन्यमाल में ३४ भक्तों की वार्तायें आई हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है । इन चौंतीस भक्तों में से जिन भक्तों की वार्तायें समान है, उन्हें सुविधानुसार इस क्रम से रखा गया है –

माल क्रम संख्या	नाम	टीका छं० संख्या
१	नरबाहन	४१९
८	हरीदास तुलाधारी	५७९–८०
१०	प्रबोधानंद सरस्वती	६१३

माल क्रम संख्या	नाम	टीका छं० संख्या
१८	जैमल	२३१-३२ तथा ४८६-८७
१९	भुवन	२२४
२३	चतुर्भुजदास	४९३-९६
२६	हरीदास तूवंर	६०९-१०-११
३०	जसवंत सिंह[८३]	२१९-२२
३३	द्वारिका दास	६२७-२९

नरवाहन-

इनका वर्णन टीका छं० ४१८ में हुआ है तथा ये हित जी के प्रथम शिष्य हैं। इनके संबंध में निम्नांकित वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है:-

भौगांव निवासी नरवाहन द्वारा किसी व्यापारी की नाव लूटकर बंदी खाने भेजना, किसी चेरी या "लौंडी" द्वारा निर्देश करने "राधा वल्लभ" का नाम लेने, पूछने पर हरिवंश जी का शिष्य बतलाने पर, कारागार मुक्त होना तथा उस व्यापारी का भी हरिवंश जी से दीक्षा लेना।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित छोटे छोटे साम्य के स्थल भी समान स्रोत का ध्यान दिलाते है-

किसी -लौंड़ी" या चेरी द्वारा निर्देश करने "राधावल्लभ और हरिवंश के नाम लेने तथा व्यापारी का भी हितजी का शिष्य होने आदि की घटनाएं।

इन प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर भी पाया जाता है-

माला में हरिवंश जी से नरवाहन के दीक्षा लेने, उस महान व्यापारी को सरावगी तथा धर्म विरोधी बतलाने, उसे युद्ध में पराजित करने की घटना का विस्तार के साथ वर्णन है जबकि टीकाकार इस विषय में मौन है। उसी प्रकार से टीका में हितजी द्वारा "रीझि पर दियौ है" लिखा गया है। जबकि माला में इसका नाम भी नहीं है। अंतिम अंतर यह है कि माला में इसका बहुत विस्तार के साथ वर्णन है जबकि टीका में संक्षेप में।

८३- इनकी वार्तायें सदाव्रती महाजन और भगवन्त के नाम से क्रम सं० टीका छं० २१९ से २२ तथा ६९७-२९ में आई है।

हरिदास तुलाधारी-

इनका वर्णन टीका ५७९-८० में हुआ है तथा ये अनन्यमाल के आठवें भक्त हैं। इनके संबंध में निम्नांकित वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है-

हरिदास तुलाधारी का वैद्यों द्वारा मृत्यु समीप सुनकर वृंदावन जाना तथा अपने इष्ट गुरु का दर्शन करना ।

इन प्रसंगों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य के स्थल दर्शनीय हैं:-

टीका-ज्यौं ज्वर नाड़ी छीन, छोड़ि गये वैद तीन
बोल्यौ यो प्रवीन "वृंदावन रस भूमहीं" ।
माल- वैदनि कही नाटका छूटी । बानी वृद्धि इष्ट सौं जूटी ।।
टी- आवत ही मग माँझ छूटि गयौ तन,
मा० ज्यौं ज्यौं वृंदावन तन आवै ।

इन प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर भी हैं ।

(क) रसिक अनन्यमाल का वर्णन ९५ वर्ष की अवस्था में वन में हरिदास का गुरु के दर्शन के लिये जाने पर, सिंह विषयक घटना तथा पुरुषोत्तम नामकी घटना का वर्णन टीका में नहीं है ।
(ख) टीका में हरिदास को काशी में रहने, उनकी चार लड़कियों को"अंगीकार" कराने की घटनाओं का वर्णन है जबकि "माल" में इसका वर्णन नहीं है ।
(ग) रसिकअनन्यमाल में उल्लेख है कि दो महीनों में वृंदावन में पहुंचकर तथा सबसे मिलने के पश्चात् इनका परलोक वास हुआ, जबकि टीकाकार ने लिखा है कि रास्ते में इनकी मृत्यु हो जाने पर भी शरीर द्वारा ब्रज के संतों से मिले ।

प्रबोधानंद सरस्वती-

इनके संबंध में निम्नांकित वार्ता या घटना का विकास हुआ है-

प्रबोधानंद जी का वृंदावन का प्रेमी होना, कुंजकेलि का वर्णन करना तथा वृंदावन रहकर सब न्यौछावर करना ।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य भी पाया जाता है-

टी०-राधाकृष्ण कुंज केलि, निपट नवेलि कही ।

मा०- कुंज रहस्य ग्रंथ वहु कीने ।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित अन्तर के स्थल भी द्रष्टव्य हैं-

(क) टीकाकार ने इन्हें "चैतन्यचन्द जी" को शिष्य बतलाया है जबकि अनन्यमालककर ने हितजी का शिष्य कहा है ।

(ख) माल में इनके विषय में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है * जबकि टीका में केवल एक "छन्द" में इनका वर्णन है ।

(ग) "मालग में इन्हें संन्यासी बतलाया गया है जो टीकाकार ने नहीं लिखा है । किन्तु भक्तमालकार ने इन्हें संन्यासी लिखा है ।

(घ) "माल" में इन्हें काशी का रहने वाला तथा परमानंद के निर्देश से हितजी के शिष्य हुए हैं । पहले हितजी ने संन्यासी समझकर दीक्षा देने से अस्वीकार किया किन्तु इनकी अटल भक्ति देखकर इन्हें अपना शिष्य बनाया । यह सम्पूर्ण घटना टीका में उल्लिखित नहीं है ।

इसका समाधान निम्नांकित प्रकार से हो सकता है-

(क) प्रियादास जी ने इन्हें "कृष्ण चैतन्य जू के पारसद" लिखा है जबकि अनन्यमाल के रचयिता ने हितजी का शिष्य बतलाया है । जहां तक इनके सन्यासी होने का सम्बन्ध है उसे तो भक्तमालकार भी मानते हैं तथा रसिक अनन्यमाल मे भी उल्लेख है । ऐसा प्रतीत होता है कि पहले ये सन्यासी रहे हों किन्तु बाद में हितजी के शिष्य हुए हों जैसा कि अनन्यमाल में वर्णन है । क्योंकि हितजी सन्यासी समझकर पहले दीक्षा नहीं दे रहे थे । बाद में इनके शिष्य हुए ।

<u>जैमल-</u>

इनके संबंध में निम्नांकित समान वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है-

(क) जैमल नृप का प्रभु सेवा में लिप्त रहते देखकर किसी भेदिया के कहने पर किसी राजा का चढ़ाई करना, जैमल का रूप धारण कर प्रभु द्वारा बैरी की सेवा का संघार करना, राजा द्वारा अपने घोड़े को प्रस्वेद से लिप्त देखकर प्रभु की इच्छा मुख्य समझना।

(ख) प्रभु की सेवा के लिए प्रसाद के ऊपर मंदिर बनवाना, वहां चढ़ने के लिए दास की सीढ़ी बनवाना, तथा एक बार स्त्री द्वारा प्रभु का दर्शन पाना सुनकर राजा द्वारा उसके भाग्य की बड़ाई करना।

इन उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य के स्थल द्रष्टव्य हैं:-

टी० "भेद पाइ लियौ कियौ आनि घेरौ"

मा० सनमुख जात न हेरे। महा कटक लेके पुर घेर्यौ ।।

टी० माता जाइकै सुनावही।

मा० डरपी जैमल की महतारी।

टी० "देखै हाकै घोरो"

मा० घोरो गरम प्रस्वेद चुचात

टी० नीचे मानि मंदिर सौं सुंदर विचारी बात

मा० तब प्रभु कौ मंदिर बनवायौ

टी० छात पर बंगला कै चित्र लै बनाये हैं

मा० तहां एक चित्रसारी रची। चित्रनि चित्र हेममनि षची ।।

टी० ताकी दास सीढ़ी करि रचना उतारि धरैं।

मा० चढ़ै निसैनी दास भगाय, सेवा करितब धरे उठाइ ।।

टी० तिया हू न भेद जानै, सो निसेनी धरी बानै।

मा० भाग खुले तिय अवसर पायो, सीढ़ी तिय तहां लगाई ।।

टी० जानी भाग अधिकाई।

मा० मन में तिय को भाग सराहो ।।

उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित अन्तर हैं:-

(क) टीका में उल्लेख है कि जैमल के एक द्वेषी भाई ने उनके ऊपर आक्रमण करवाया था किन्तु माल में वर्णन है कि किसी भेदिया ने।

(ख) "माल" में उल्लेख है कि "राय मडौवर" ने आक्रमण किया था जबकि टीकाकार ने किसी का नाम नहीं दिया है ।

(ग) "माल" में बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है जबकि टीका में बहुत संक्षेप में ।

(घ) टीका में जैमल की घटना दो स्थलों पर टीका छ० २३१-३२ में तथा ४८६-८७ में लिखी गई है । इस क्रम से माल का प्रसंग (ख) पहले होना चाहिए था ।

(च) टीका में वर्णन है कि आक्रमण करने वाले नृप को राजा ने सवारी में उसके घर पहुंचाया तथा वह भी भक्त हो गया किन्तु माल में इसका उल्लेख नहीं है ।

भुवन चौहान-

इनका वर्णन टीका छ० २२४ में हुआ है । ये माल के १९वें भक्त हैं । इनकी विषय में आई हुई समान वार्ताओं या घटनाओं को नीचे दे रहे हैं ।

भुवन चौहान का किसी रानां से सम्बन्ध बतलाना, किसी मृगी को तलवार से मारने के पश्चात् भक्ति पैदा होना, सार के स्थान पर दास की तरवार रखना तथा रानां के द्वारा परीक्षा लेने पर दास से "सार" की तरवार दिखलाई पड़ना ।

उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य पाया जाता है:-

टी० यह मुगलाख बात

मा० सवा लाख कौ पहौ दियौ

टी० चल्यो सो सिकार नृप संग भीर धाई है ।।

मा० इक दिन राना चल्यो सिकार ।।

टी० और एक भाई, देखी तरवार दास,
सक्योन संभार, जाय रानां सो जनाई है ।

मा० राना जू सौं दुहुनि सुनाई । भवन दास तरवार बनाई ।

टी० क्रम सौं निहारि, कही भुवन"विचार कहा ।"

मा० क्रम सौ सब निकाढ़ि दिखराई ।

टी० कहौ चाहौ दारमुख निकसत "सार" है ।

मा० कह्यौ चहत यह दास कौ । प्रभु मुख निकसत सार कौ ।।

इनमें निम्नांकित अन्तर भी पाया जाता है-

(क) माल में सम्पूर्ण घटना कुछ विस्तार के साथ लिखी गई है ; जबकि टीका में संक्षेप में ।

(ख) भुवन की माता का समझाने का एक विस्तृत विवरण "माल" में है । जबकि टीका में केवल एक पंक्ति में समझाया गया है ।

(ग) टीका में दो लाख का वट्टा देने के लिए कहा गया है किन्तु माल में सवा लाख ।

(घ) माल में भुवन के विषय में लिखा है कि "यह सुनि माता बहुत सिहाई। श्री वनचंद पै दिछ्या धाई "।। किन्तु टीका में इसका उल्लेख नहीं है कि ये किसके शिष्य थे ।

चतुर्भुज-

इनके सम्बन्ध में निम्नांकित वार्ताओं या प्रसंगों का विकास हुआ है -

(क) गोडवाने देश में हिंसा करके जीवों को अपने इष्ट देवता पर चढ़ाते देखकर वहां के इष्ट देवता प्रभावित करना तथा सबको भक्त बनाना ।

(ख) कथा,(भागवत)कहते किसी चोर के दृढ़ विस्वास पर जलता हुआ लोहे के फलक का ठेढ़ा होना तथा राजा का प्रभावित होकर भक्त होना ।

इन उपर्युक्त प्रसंगों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य के स्थल दर्शनीय हैं:-

टीका - ऐसे शिष्य किये, माला कंठी पाय जिये ।

माल - दिछ्या दै मुनि सिच्छ्या कीनी । तिलक प्रसादी माला दीनी।।५७।।

टीका - दियौ फारौ हाथ लै उबार्‌यौ प्रभु रीति लगी धारियै ।।

माल - सांचौ है तौ फारौ लेहु । इनहू फारौ लैनौ कहेव ।।

टीका "राजा झूठ मानि कह्यौ, करौ बिन प्रान वाकौ"
साधु ये विराज मान लै कलंक दियो है ।

माल तापर राजा बहुत रिसायौ । मारौ यहि जु साधु सतायौ ।।

इस प्रकार के बहुत से साम्य के स्थल ढूंढ़े जा सकते हैं ।

इन उपर्युक्त प्रसंगों मे निम्नांकित अन्तर भी पाया जाता है -

(१) टीका छ० ४९६ में संतों द्वारा खेत की बात आने का प्रसंग आया है इसका उल्लेख माल में नहीं है ।

(२) माल में प्रेतों के उद्धार का भी वर्णन विस्तार के साथ हुआ है, किन्तु टीका में इस विषय का संकेत भी नहीं है ।

(३) दोनों ग्रंथों के कथाक्रम में भी अन्तर है उदाहरण स्वरूप टीका के अनुसार माल का तृतीय प्रसंग गोडवाने देश के उद्धार का है । यह प्रारम्भ मे होना चाहिए ।

(४) उपर्युक्त प्रसंग में देवी का दीक्षा देने का प्रसंग माल में विस्तार के साथ हुआ है जबकि टीका में अत्यन्त संक्षेप में । इसके साथ साथ माल में गोडवाने के राजा को चारपाई सहित उलटने का भी वर्णन है किन्तु टीका में केवल स्वप्न देखने का ।

(५) चतुर्भुज द्वारा कथा कहने उसमें अपार भीड़ होने तथा राजा द्वारा भी जलता "फार" लेने का प्रसंग विस्तार के साथ माल मे वर्णन किया गया है । किन्तु टीका में अत्यन्त संक्षेप में इसका वर्णन है । तथा राजा द्वारा जलते हुए "फार" लेने का प्रसंग टीका में नहीं आया है ।

सदाव्रती महाजनः-

इनके सम्बन्ध में निम्नांकित वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है -

किसी महाजन अथवा जसवन्त सिंह का साधु संतों में अटल विश्वास होना, एक ठग साधु द्वारा उनके लड़के का प्राण लेकर, समस्त आभूषणों को ले लेना उसका पता चलने पर इस संत सेवी का अपनी कन्या का विवाह कर देना तथा प्रभु

द्वारा उस लड़के का भी जीवित हो उठना ।

इन प्रसंगों में निम्नांकित शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य के स्थल भी ~~दर्शनीय~~ द्रष्टव्य हैं:-

टीका सदा, सुत सौं सनेह नित खेलै संग जाय कै ।
माल बहुत भांति जु षिलावै षेल ।
टीका फेरी पुर डौंड़ी, ताके संग संत
माल बहुरि नगर में डयौढ़ी फेरी
टीका गूरि गाड़ि गृह आयो पछिताय कै
माल उन गाड़ी है बालक भारी
टीका जानी सकुचायो संत वोलि उठी तिया "सुता देकै नीके राखियै"।
माल तिया कही मेरे ईसन आई । तुरत साधु सो करी सगाई ।

इन उपर्युक्त वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर भी है:-

(क) माल में जसवंत भक्ति किस प्रकार करते थे इसका एक विस्तृत विवरण दिया गया है किन्तु टीका में इसका संकेत मात्र वर्णन है ।

(ख) "अनन्यमाल" में ठग साधु को रास्ते में जसवंतसिंह किस प्रकार मिले और कैसे लाये इसका भी विस्तार के साथ उल्लेख है, जबकि टीका में रास्ते में उनके मिलने का प्रसंग ही नहीं आया है ।

इस प्रकार से तुलना करने के पश्चात हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं ।

(क) रसिक अनन्यमाल की रचना पहले सम्वत् १७१४-२० के बीच समाप्त हो जाती है, और प्रियादास कीटीका की रचना १७६९ में होती है । अतः प्रियादास जी इन प्रसंगों को अपनी टीका में स्थान दे सकते हैं । इसकी पुष्टि इस प्रकार से और भी हो जाती है क्योंकि दोनों एक ही सम्प्रदाय में दीक्षित है ।

(ख) उपर्युक्त दो वार्ताओं में नाम परिवर्तन के साथ प्रसंगों का निर्माण

हुआ है । कदाचित् दोनों प्रसंगों का स्रोत अन्य भी हो सकता है अथवा केवल नाम परिवर्तन के साथ वही प्रसंग मिला दिए होंगे ।

(४) भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका पर वैष्णवदास की टिप्पणी:-

वैष्णवदास जी प्रियादास जी के पौत्र थे । वे भी वृन्दावन में निवास करते थे । इनके माता पिता आदि के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं उपलब्ध हो सकी । इन्होंने निम्नांकित ग्रंथों की रचनाएं की हैं ।

(१) गीत गोविन्द भाषा[८४] (सं० १८१४) ।

(२) भक्तमाल माहात्म्य ।

(३) भक्तमाल प्रसंग अथवा भक्तमाल टिप्पणी ।

भक्तमाल टिप्पण -

वैष्णवदास की सबसे प्रसिद्ध और मुख्य रचना यह टिप्पण है । इसकी तीन प्रतियां देखने को मिलीं - एक महाराजा काशीनरेश के संग्रहालय में है दूसरी नागरी प्रचारिणी सभा काशी और तीसरी डा० माताप्रसाद जी के निजी संग्रहालय में । तीनों ग्रंथों में रचनाकाल का उल्लेख नहीं है किन्तु ग्रंथ के लिपिकाल का उल्लेख इस प्रकार है जो क्रमशः नीचे उद्धृत किया जा रहा है -

(१) "इति श्री भक्तमाल नाभाजू कृत टीका प्रियादास कृत वैष्णवदासकृत दृष्टान्त सम्पूर्ण ।। संवत् १८४४ वर्षे मास फाल्गुन सुदि ८ बार शुभ ता दिन समाप्त भई । आरम्भ भादौ की प्रतिपदा को कीया समापत हुई फागुन मै ।। कासि मध्ये चौसटी समीपे गंगा तटे श्रीरामचंद्रायनमः राम ।।"

(२) "अठोर सो चवालीस को संवत् आस्विनमास, शुक्लपक्ष तिथि पंचमी मंगलवार प्रकास ।"[८५]

८४- दे० खोज रिपोर्ट १९०९-११ सं० ३२४ ।

८५- नागरी प्रचारिणी सभा की अपनी सूचना में इसे ग्रंथकाल रचनाकाल माना है। किन्तु महाराजा की लाइब्रेरी में उक्त संवत स्पष्टरूप से लिपिकाल के लिए दिया है अतएव सभा की प्रति का भी लिपिकाल होना अधिक संभव है न कि रचनाकाल ।

(३) इति श्री भगतमाल टिप्पन सहित समाप्त ।।१८।।८०।। मिति पौष सुक्ला १२ भौमवार लिषि गुलाब राय ।।
प्रस्तुत अध्ययन इसी प्रति पर आधारित है ।

इस प्रति में कुल २०७ खुले पत्र हैं जिनका आकार लगभग सवा फुट लंबा और ७ इंच चौड़ा है । इसके पूर्व चार पत्रों का "भक्तमाल माहात्म्य" भी संलग्न है जिसका लिपिकाल सं० १८८८ "मिति पुस वदि ११।। वृहस्पति।। दिया हुआ है । कुछ विद्वान इसे भी वैष्णवदास की रचना मानते हैं,किन्तु कुछ लोगों को इनकी रचना होने के सम्बन्ध में संदेह है[८६]।

टिप्पण का रचनाकाल-

रूपकला जी ने वैष्णवदास के टिप्पण का रचनाकाल सं० १८०० माना है[८७]। उपर्युक्त दोनों प्रतियों का लिपिकाल सं० १८४४ है । अतएव इसका रचनाकाल सं० १८०० संभव हो सकता है । दूसरे प्रकार से भी इसका रचनाकाल उक्त संवत् के आस पास ठहरता है । मिश्रबन्धुओं ने वैष्णवदास के टिप्पण का समय सं० १७८२ माना है,किन्तु उसका कोई आधार नहीं दिया है[८८]। खोज रिपोर्ट के अनुसार गीत गोविन्दभाषा यदि इनकी रचना मान ली जाय और उसका रचनाकाल संवत् १८१४ ठीक हो तो इस प्रकार से भी टिप्पण की रचना संवत् १८०० के लगभग की मानी जा सकती है[८९]।

वर्ण्य विषय-

वैष्णवदास जी ने भक्तमाल के छप्पय तथा प्रियादास के कवित्त[९०] उद्धृत कर

८६- उदाहरण के लिए दे० उदयशंकर शास्त्री वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल भूमिका पृ० २० ।
८७- भक्तमाल रूपकला जी संपादित पृ० ८३ ।
८८- मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ८२६ ।
८९- खोज रिपोर्ट १९०९-११ सं० ३२४ ।
९०- डा० माताप्रसाद गुप्त की प्रति में प्रियादास की भक्तिरस बोधिनी टीका की मुद्रित प्रति के छंद १६,१७, १८, १९, ३७८ नहीं मिलता और छप्पय ९२ के बाद एक छप्पय, दो कवित्त, पुनः एक छप्पय और एक कवित्त इस प्रति में अतिरिक्त रूप में मिलते हैं । इसी प्रकार छप्पय १२६ के पूर्व एक छप्पय तथा दो कवित्त भी अतिरिक्त मिलते हैं ।

उनमें आई हुई विशिष्ट शब्दावली पर दृष्टान्त रूप में या तो उसी कवि की रचनाएं उद्धृत कर दी हैं जिसका कि मूल टीका में वर्णन चलता रहता है अथवा भावों के सम्यक् स्पष्टीकरण के लिए अन्य कवियों की रचनाएं तब भी उद्धृत की हैं । अनेक उद्धरण पुराणों तथा अन्य प्रसिद्ध संस्कृत काव्य ग्रंथों के मिलते हैं । उनकी इस शैली से अवगत होने के लिए कबीर तथा सूर के प्रसंग दिए हुए कुछ टिप्पण यहां उद्धृत किए जा रहे हैं ।

कबीरदास मूल छप्पय ६०: कबीर कानि राखी नहीं बर्णाश्रम षटदरसनी ।
आदि

"भक्ति विमुख जो धरम" पर टिप्पण-

गुरु वैष्णव गो विप्र ।। हरिके हेतु सबकौं "पूजै"परंतु गृह न वित्ति-पात देषै सोई अधर्म ।।

"भजन विन तुच्छ दिषायौ"

राम नाम तौ अंक है अरु सब साधन ● है मध्य एक रैदास कौ निहारियै ।
देषि भई आषै दीन भाषैं सिष्य भये लाषि स्वर्ण को जनेऊ काढयौ त्वच कीनी न्यारियै ।।

"पक्षपात नहिं बचन"

पाडे भली कथा कहि जानैं ।।
औरन परमारथ उपदेसैं अपु स्वारथ मैं सानैं ।
ज्यौं दीपक घर करत उजेरौ निज तरत मसन ठानैं ।।
महषी क्षीर श्रवै औरन कौं आप भुसह रुचि मानैं ।।
श्रोता गोता क्यौं न षाई आचारज फिरत भुलानैं ।।
यह कलि छलि सबकी मति नाठी समझत लाभ न हानैं ।
हित की कहत लगत अनहित की रज राजस मैं सानैं ।।
कहत कबीर बिना रघुबीरहिं या परिहरि को भानैं ।।१।।

यहां तक मूल छप्पय के केवल तीन स्थलों पर टिप्पण दिए गए हैं। आगे इसी प्रकार प्रियादास की टीका की भी कुछ विशिष्ट शब्दावलियों पर टिप्पण दिए गए हैं जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है। टीका की छंद संख्या मुद्रित प्रति के अनुसार है।

"सब मंत्रन में" इस विशिष्ट शब्दावली पर टिप्पणी-

श्री रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकं ।।
ब्रह्म हत्यादिकं पापघ्निदि वेद विदो विदुः ।।

कवित्त-

रहैगौ न राज राजधानी पै न पौन पानी कहै वाक बानी जिमी
आसमान जायगौ ।।
संपति पगल सात दीपकी भई मसाल एकदिन चंद सूर जो तिहू
नसायगौ ।।
जो कछू रची है सृष्टि करता की दृष्टि ही सौं एकदिन सृष्टि हू
कौ करता नसायगौ ।
कहै कवि कासीराम और कछू थिर नाहिं, रहिबे कै (एक राम नाम) ठहरायगौ।।१।।

छप्पै-

।।जत विन जोगी अफल अफल जोगी बिन माया ।।
जल बिन सरवर अफल अफल तरवर बिन छाया ।।
ससि विन रजनी अफल अफल दीपक बिन मंदिर ।।
नर बिन नारी अफल अफल गुन बिन सब सुंदर ।।
नरायन की भगति बिन राजा परजा सब अफल ।।
तत बेता तिहु लोक मैं राम रहै ते ना अफल ।।१।।

दोहरा।।

रामनाम इस मंत्र है, सब तंत्रन कौ सार ।।
याही ते कलिकाल के, रटि न होत उधार ।।१।।४।।

टीका-कवित्त-२७० में आई हुई शब्दावली "बुनै तानौ बानौ" पर टिप्पण-

दोऊ करसौं दोऊ कैसै बनै ।।

मनतौ एक मनकौं तो अभ्यास भजन कौं इन्द्रियन कौं अभ्यास क्रियाकौं।

जैसे जड भरथ सरीर त्यागतै वेर देवानां गुन लिंगानां नारायण परायण

हथ बाहरि आपही मडराए ।। श्री गुपाल गरीबन केतकिया ।।

टीका कवित्त २७२ में आई हुई शब्दावली "सुख सरसायैं" पर-

एक फकीर आवैं कही गुजर कैसे होहैं ।। साहब देता है जब षाते है संतोष सौं परे रहते हैं ।। दूसरे कही अैसे तो हमारे गली के कुत्ते वी करते हैं ।। आपु कैसे देता है तब बाति षाते ।। तौ आनंद मानै।।०।।०।।०।।०।।

टीका कवित्त २७४ "नए नए कौतिक" पर-

व्यास बड़ाई जगत की कूकर की पहिचानि ।

प्रीत किये मुष चाटई बैर किये तन हानि ।।१।।

हाथ कछू न लगैं जहां, भजन गाठिकौ जाय ।।

अैसौ बिषइन कौ मिलन देष्यौ ठोकि बजाइ ।।१।।

जैसे सेंवर कौ सूवा ताकौ हाथ न लग्यौ देषत मैं सुंदर

सौ तब निचारि बडाई कोई आपुही आवैगे ।।

टीकाकवित्त २७५ "वार मुषी लई संग" पर-

या कुसंग सौं कबीर परम साधु सो ताहू की महिमा घटी विषै इह कहन लगे ।। दो०।। संगति बोटी नीच की देष्यौं करिकै व्यास ।

महिमा घटी समुद्र की रूयौ सु रामन पास ।।१।।

टीका क० २७८ "भाजि जाई" पर-

भगवान सिंघरूप हाथी के आगर ठाढ़े भए हाथी चिघारि कै भाज्यौ।।

पातसाह कही पिलमान हाथी क्यौं न पेलैं ।। महाराज सनमुष सिंघ है मोहि क्यौं नहीं दीसैं सनमष आवै तब दीसै ।।

आयौ तब दरसन भयौ तब बहुत डरयौ ।। यह वहि नरसिंघ है प्रहलाद की रक्षा कौं प्रगट भयौ यातें संतन के सनमुष भए ते हरि दीख्यौ ।।

टीका क० २७८ (भगावहीं) शब्द पर -

बनिक बाज अरु दुष्टनर, इनकौ चीत्यौ होइ ।।
तुलसी या संसार मैं, साधू रहै न कोइ ।।१।।
कहा करै रसषानि कौ, कोऊ दुष्ट लवार ।
जौ पति राषन हार है, माषन चाषन हार ।।१।।

टीका क० २७९ "गहे पांव" पर -

कलि मै सांचौ भक्त कवीर ।।
जबते हरि चरणान रति उपजी तब ते बुन्यो न चीर ।।
दीनौ लेइ न कबहू जाचै ऐसौ मति कौ धीर ।
जोगी जती तपी सन्यासी इनकी मिटी न पीर ।।
पांच तत्व मैं जन्म न पायौ काल ग्रसौ न सरीर ।।
व्यास भगति कौं षेत जुलाहयौ हरि करुणा भय नीर ।।

टीका कं० २७९ की "चाहैं एक राम" शब्दावली पर टिप्पणी-

मेरो मन अनत कहा सचु पावैं ।
जैसो उड़ि जिहाज को पंक्षी उडि जिहाज पै आवैं ।।
जे नर कमल नयन कौं तजि करि आन देव कौं गावैं ।।
विद्यमान गंगा तट प्यासौ दुरमति कूप षनावै ।।
भमर मधुर अंबुज रस चाष्यौ ताहि करील न भावै ।।
सूरदास प्रभु काम धेन तजि अजिया कौन दुहावै ।।

टीका क० २७९ "हरि की प्रतीति" पर टिप्पणी-

सीता पति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दौर ।।
जैसे काग जिहाज कौं सूझत और न ठौर ।।१।।

।।तुक।। जिनके रछिपाल गुपाल धनी तिनकौ वलभद्र कहा डर हौं ।।
तुलसी नहचंत रहौ जगमैं जीवै राषि है राम तौ मारि है कोरे ।।

टीका क० २८० "पोषिकै रिझाये" शब्दावली पर टिप्पणी-

"कहा करै रसषानि कौ इत्यादि"

टीका क० २८१ " आई अपछरा" शब्दावली पर -
जाकौ देषिमोहित न भए जैसें नारद जी ।।पद।।

तुम घर जावौ मेरी बहना ।।
दूहंतिहारी लैना न दैना ।।
राम बिना गोविंद बिना विष लागैं ए वैना ।।
जगमगात पट भूषन सारी उर मोतिन के हारा ।।
इंद्र लोकते मोहन आई मोहि करण भरतारा ।।
इन बातन को छांड़ि देउरी गोविंद के गुन गावौं ।।
तुलसीमाला क्यौं नहिं पहरौ वेगि परम पद पाऔ ।।
इंद्र लोक मैं टोटपरी कहा हमरौ और न कोई ।
तुमतौ हमें डिगामन आई जानु दई की ~~क~~ षोई ।।
बहुते तपसी मारि जिगोए कंचे सूत के धागे ।
जौ तुम जतन करौ बहुतेरौ जल मैं आगि न लागै ।।
हौं तो केवल हरि की सरनै तुम हौ झूठी माया ।।
गुरू प्रताप साधु की संगति मैं जु परमपद पाया ।।
नाम कबीरा जाति जुलाहा गृहतन रहत उदासी ।।
तौ तुम मान महत करि आई तौ इक माई जी मासी ।।

कवित्त -

वह मति कहां गई भव मति और भई ऐसी मति कीजै मति अपनी भगारौगो ।।
सुधि कहूं सोइ गई बुधि कहूं भोइ गई अबलौं नभई सो तौ नई पाट पारैगो ।।
निपट निरंजन निहारिकै विचारि देषौ एक ही विचारि कहा दूसरी विचारैगो ।।
तो सौ न उध्यारौ प्रभु मो सौ न पतित भारौ मोहि जोवै तारैगो बैकुंठही निवारैगो

दोहा।।

राम भरोसे रामके मगहा तज्यौ शरीर ।।
अविनाशी की सेज पै बहरै दास कबीर ।।

सूरदास जी नाभादास छ० ७३

"सिर चालन करै" शव्दावली पर –

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काडेन धनिष्पत ।। परस्य हृदये लग्नं न घूनयति मच्छिर–

दोहा।। किधौं सूर कौ सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर ।। किधौ सूर कौ पद लग्यौ क्यौ सिर घुसत अधीर ।। कवित्त।। जासौं मन होत तासौं तन मन दीजियत जासौं मन भंग कछुन विसेषियै ।। बोलै तासौं बोलै अन बोलै तासौं अनबोलै प्रेम रस चाहै तासो प्रेम रस पोषियैं ।। नर कहा नारी कहा षूब महबूबा कहा आपकौ न चाहै ताकौं आपहू न देषियै ।। प्रीति रीति जानैं तासौं प्रीति रीति जानियति नातर अनेक रूप सबही अलेषियै ।।

पद।। कहावत ऐसे त्यागी दानि ।।

चारि पदारथ दिये सुदामैं गुरु के सुत दिए आनि ।।
विभीषन कौ लंका दीनी प्रेम प्रीति पहिचानि ।।
रामन के दस मस्तक छेदे हठ गहि सारंग पानि ।।
प्रहलाद की निज रक्षा कीनी सुरपति किये निदान ।।
सूरदास पै बहुत निठुरता नैनन हूंकी हानि ।।

"बचन प्रीति"आई हुई शव्दावली पर–

ऊधौ यह नहचै हम जानी ।
खोयौ गयौ नेह नग उनपै प्रीति कोथरी भई पुरानी ।।
पहिले अधर सुधारस सीचौं कियौ पोख बहु लाड़ लडानी ।।
बहुर्यौ कियौ खेल सिसु को सौ गृह रचना ज्यौं करत भुलानी ।।
ऐसेइ हित की रीति दिखाई उरग काचुरी ज्यौं लपटानी ।।
बहु रंगी जित जात लितै सुख इक रंगी दुख देह दधानी ।।

सूरदास प्रभु मनी चोर के पायौं बाहै दानौं पानी ।।
फिरिहू सुरति करी नहि अैसी स्यागतभमर लता कुम्हिलानी ।।

विवेचना-

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तों के जीवन वृत्त सम्बन्धी साक्ष्यों के संचय की ओर वैष्णवदास का उतना अधिक ध्यान नहीं है ~~जितना~~ जितना विशिष्ट भावों अथवा पद समूहों के समानार्थी उद्धरणों के संकलन की ओर । परिणामस्वरूप भक्तों के चरित्र संग्रह के साथ ही साथ यह रज्जब जी की "सर्बंगी" अथवा जगन्नाथ दास के "गुणगंजनामा" के सदृश एक आदर्श संकलन ग्रंथ भी हो जाता है । वार्ताएं अथवा परिचयियों से भिन्न होने के कारण उनसे इसकी तुलना करना व्यर्थ है । किन्तु दो विशेषताएं इसकी अक्षुण्ण हैं - एक तो यह कि इससे वैष्णवदास के व्यापक अध्ययन का पता लगता है और दूसरे यह कि इससे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कवियों की रचनाओं का परिचय प्राप्त होता है जिनकी चर्चा साहित्य के इतिहासों में या तो बिल्कुल नहीं है या थोड़ी है । ऐसे कवियों के काल निर्णय में भी इस दृष्टि से कुछ सहायता मिल सकती है कि वे सब रचनाकार के पूर्ववर्ती रहे होंगे ।

(५) जमाल की टिप्पणी-

जमाल कौन थे, इसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका है । आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में केवल इतना लिखा "भारतीय काव्य परम्परा से परिचित कोई सहृदय मुसलमान कवि थे"[९१]। इन्होंने यह भी बतलाया है कि राजपूताने की ओर इनके नीति और श्रृंगार के दोहे बड़े लोकप्रिय हैं । मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म सम्वत् १६०२ माना है ।[९२] किन्तु किस आधार पर, इसका उल्लेख नहीं किया है?

९१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०७ ।
९२- मिश्रबन्धु विनोद सं० १३२ पृ० ३६२ ।

आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास में इनकी कुछ स्फुट कविताओं की पंक्तियां उद्धृत की हैं जिनमें दोहे तथा पहेलियां मुख्य हैं । खोज रिपोर्ट में इनकी भक्त रचना" भक्तमाल की टिप्पणी का पता लगा है जो ५१ पृष्ठों की है तथा एक हजार आठ सौ चौबीस श्लोकों में पूर्ण हुई है[९३]। इस रचना में रचनाकाल तथा लिपिकार का उल्लेख नहीं है । मिश्रबन्धुओं ने तथा पंडित रामचन्द्रशुक्ल जी ने इनका रचनाकाल सं० १६२७ माना है[९४]। किन्तु उस समय तक भक्तमाल की रचना ही नहीं हुई थी अतः यह संदिग्ध तिथि है । जितना अंश खोज रिपोर्ट में उद्धृत है उससे यह वैष्णवदास की टिप्पणी के सदृश ज्ञात होती है ।

(६) भक्तमाल पर प्रियादास की टीका का लालचंद्रदास कृत उर्दू अनुवाद[९५]

"भक्त उर्वशी"

यह ग्रंथ यत्न करने पर भी नहीं प्राप्त हो सका । प्रस्तुत ग्रंथ तथा ग्रंथकार के विषय में हरिभक्ति प्रकाशिका (पृ० १२) में इस प्रकार का उल्लेख है:-

"स्वामी प्रियादास ने उसकी टीका भाषा कविता में बनाई । + + + + । उसके पीछे लाल दास ने वैष्णवदास प्रियादास के पोते से निश्चय करके उसकी टीका किया । उसका नाम भक्ति उर बसी रक्खा, यह लाल जी दास कांधले के रहने वाले थे और लक्ष्मणदास नाम से मथुरा के आस पास वकीलदारी में थे । जब इनको सत्संग हुआ तब हित हरिवंश जी की गद्दी के उरपास करता बल्लभ लाल जी के सेवक हुए और गुरु से लाल जी दास नाम पाया, यह उल्था बहुत शुद्ध समझ के योग्य उपासना की रीति पर है और

९३- दे० खोज रिपोर्ट (१२-१४) नं० ८२ ।बी ।

९४- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २०७ मिश्रबन्धु विनोद, सं० १३२, पृ० ३६९ ।

९५- नाभादास भक्तमाल के वार्तिककार रूपकला जी ने इसे "अनुवाद" ग्रंथ लिखा है । दे० भक्तमाल पृ०३५ टीकाओं की सूची -

अनुवाद की भक्ति भी उनके अक्षरों से पाई जाती है।"

(७) अन्य टीकाकार तथा टीकाएं

भक्तमाल पर बालकराम की टीका:-

बालकराम जी साधु मीठाराय के शिष्य थे। नाभादासकृत भक्तमाल पर इन्होंने एक वृहद् टीका लिखी है। यह बृजभाषा में लिखी गयी है, इसकी दो हस्तलिखित प्रतियों की सूचना है। एक उदयपुर के सरस्वती भंडार में है तथा दूसरी यहां के बड़े रामद्वारे में[९६]। मेनारियाजी ने लिखा है कि वास्तव में यह एक स्वतन्त्र रचना है। इसमें सभी संतों का विस्तार के साथ वर्णन है। इसमें दोहा, छप्पय, घनाक्षरी आदि छन्दों का प्रयोग है किन्तु अधिकता चौपाई छन्दों की है।

बालकराम जी-

टीका में अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार से दी है:-

नारायण अंग धरा ईंदराय यतिराज
ताकी पद्धति में रामानुज प्रतिकास है।
तास पद्धति मैं रामानन्द ता कौ पवित्र शिष्य,
श्री पैहारी की प्रनाली में भयो संतदास हैं।

ताही कौ बालकदास तास प्रेम जाकौ खेम
खेम कौ प्रहलाददास मिष्टराम तास है।
मिष्ट राम जू कौ शिष्य सौ बालकराम रची
टीका भक्त दास-गुण-चित्रनी विलास है[९७]।

९६- राजस्थान का पिंगल साहित्य डा० मेनारिया पृ० २२१।

९७- सरस्वती भंडार उदयपुर की हस्तलिखित प्रति पत्र ४६४
(राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० २११ से उद्धृत)

रचनाकाल-

मिश्रबन्धु विनोद(पृ० ८१३)में बालकराम का रचनाकाल १८३३ बताया जाता है जो अशुद्ध है। वास्तव में इनका रचनाकाल सं० १९३२ है जैसा कि उपरोक्त टीका से प्रकट है:-

"भक्त दाम चित्रनी सौं टीका अथ सिध होत,
संमत द्वि नव वर्ष त्रिंसबिताईयै[९८]"।
संमत उगणीसौं र बतीसा। चौदस भादू दीत को बासा[९९]।
(सरस्वती भण्डार उदयपुर ह०प्रति पत्र ४६६)

अतएव यह रचना बहुत बाद की है, इसलिए इस पर विचार नहीं किया गया है।

(ख) नाभादास के परवर्ती भक्तमालों की टीकाएं तथा टिप्पणियां-

(१) राघोदास के भक्तमाल पर चतुरदास की टीका -

चतुरदास दादू-पंथी थे। इन्होंने टीका में अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार से दी है:-

स्वामी दादू इष्ट देव जाको सर्व जानै भेव,
दूसर सुन्दर सेव जगत विख्यात है।
तिनके निरांनदास मजन हुलास प्यास,
उनहू के रामदास पंडित सान्ख्यात है।।
जिनके जूदयाराम कथा की रतन नाम लेत,
भए सुखराम और नहीं बात है।
त्रिष्ना अस लोभ त्यागि लयो है,
संतोष भाग अैसे जु संतोष गुरु चत्रदास तात है[१००]।

९८- सरस्वती भंडार उदयपुर की हस्तलिखित प्रति पत्र ४६६(राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० २११ से उद्धृत)।

९९- वही, पृ० ४६७।

१००- भक्तमाल राघोदास चतुरदास टीका छं० सं० २७५ (उत्तरार्ध)।

अर्थात् दादू जी के शिष्य छोटे सुन्दरदास जी, उनके नारायणदास जी, उनके दयाराम जी, उनके संतोषदास जी तथा उनके चतुरदास जी हुए । इस गुरु परम्परा के अतिरिक्त इन्होंने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है ।

टीका का रचनाकाल-

राघोदास के भक्तमाल की टीका के समय के विषय में पं० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि "छोटे सुन्दरदास की सातवीं पीढ़ी के चत्रदास ने भादों वदी १४ सम्वत् १८५१ को अपनी टीका लिखी थी[१०१]। किन्तु भक्तमाल की प्रस्तुत प्रति तथा नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति में टीका के रचनाकाल का समय इस प्रकार है:-

संवत् एक से आठ लिखे, शुभ पांच रु सातहि फेरि मिलावै ।
भाद्रव वदि है तिथि चौदसि मंगलवार सुवार सुहावै ।।
तादिन पूरण होत भयो यह टिप्पण चातुरदास सुनावै ।
बांचि विचारि सुनैरु सुनावत सो नरनारि भगत्ति को पावैं[१०२]।।

इस प्रकार से चतुरदास की टीका वस्तुतः सं० १८५७ भादों वदी १४ वार मंगलवार को पूर्ण हुई थी ।

छंद तथा परिमाण-

यह टीका इंदव और मनहर छन्दों में लिखी गयी है । पुष्पिका के अनुसार टीका के छन्दों का जोड़ ६५२ है । इनके किसी अन्य मौलिक ग्रंथ का पता नहीं चलता ।

टीका का मूल आधार-

जिस प्रकार राघोदास के भक्तमाल का मूल आधार नाभादास

१०१- उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ४३३ ।

१०२- भक्तमाल राघोदास चत्रदास की टीका छं० सं० २७८ (उत्तरार्ध) ।

का भक्तमाल है। उसी प्रकार चतुरदास की टीका का मूलाधार प्रियादास की टीका है। इन दोनों टीकाओं में घनिष्ट साम्य है। पहले दिखलाया जा चुका है कि जहां तक चतुःसम्प्रदाय के भक्तों के वर्णन का संबंध है, वहां तक नाभादास तथा राघोदास के वर्णनों मे कोई विशेष अन्तर नहीं है। उसी प्रकार प्रियादासजी ने जिन भक्तों के चरित्रों का विस्तार से वर्णन किया है केवल उन्हीं के संबंध मे टीकाकार चतुरदास ने लिखा है। वर्णन शैली तथा क्रम में चाहे कुछ अन्तर भले ही दृष्टिगत हो अन्यथा चतुरदास की कोई मौलिकता नहीं जान पड़ती। इनकी मौलिकता केवल चतुः पंथ के निर्गुण भक्तों के विषय में अवश्य है, किन्तु नाभादास के भक्तमाल अथवा प्रियादास की टीका में इनके नामों का उल्लेख ही नहीं है। चतुरदास जी ने प्रियादास की टीका के अनुकरण पर अपनी टीका की रचना की है, इसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है-

> प्रथमहिं कीन्हीं भक्तमाल सु निरांन दास परचा समेत संत नाम
> ग्राम गाइया।
> सोई देखि सुनि राघोदास आप कृत मधि मेल्हिया विवेक करि
> साधन सुनाइया।
> नुगुन भगत और आनिया विसेख करि उनहूं का नामं ग्रांम गुन
> समझाइया।
> प्रियादास टीका कीन्हीं मनहर छन्द करि वैसे ही चतुरदास
> इंदव बनाइया॥[१०३]

जिस प्रकार नाभादास की आज्ञा से प्रियादास जी ने भक्तमाल की टीका की थी उसी प्रकार राघोदास की आज्ञा से चतुरदास भी टीका की रचना में लगे, किन्तु नाभादास की आज्ञा परोक्ष रूप से सुनाई पड़ी थी[१०४], चतुरदास ने इसका उस रूप में उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि राघोदास तथा चतुरदास की रचना में लगभग ८८ वर्ष का अन्तर है, अतः प्रत्यक्ष आज्ञा मिली होगी, यह अनुमान कुछ असम्भव सा लगता है। चतुरदास ने फिर भी

१०३- भक्तमाल- राघोदास टीका छं० २७४ (उत्तरार्ध)।

१०४- भक्तमाल- नाभादास सटीक रूपकला, प्रि० टी० १।

लिखा है-

"राघवदास दयागुरु आयस इंदव छन्द सटीक बनाऊं"[१०५]

प्रियादास तथा चतुरदास की टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन-

पीछे संकेत किया जा चुका है कि चतुरदास की टीका प्रियादास की टीका के अनुकरण पर ही लिखी गई है । दोनों ग्रंथों में आए हुए केवल चतुः सम्प्रदाय क्र्र ह के भक्तों के चरित्रों में पर्याप्त साम्य के स्थल दृष्टिगत होते हैं । सभी चरित्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना असम्भव समझकर दोनों ग्रंथों में आए हुए केवल दो भक्त चरित्रों का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इन भक्तों के नाम तथा छंद संख्याएं क्रमशः निम्नांकित हैं-

कील्हदेव तथा आसकरण के नाम प्रियादास की टीका में क्रमशः कवित्त छंद सं० १२१-१२२ तथा ६०९-६०४ में और चतुरदास जी की टीका में छंद सं०३४१-४१ तथा ६१४-१६ में आए हैं । उपर्युक्त भक्तों के विषय मे आए हुए समान तुलनीय अंशों को समानार्थी टुकड़ों में विभाजित कर क्रमशः नीचे उद्धृत किया जा रहा है -

कील्हदेव-

प्रियादास की टीका-

श्री सुमेरदेव पिता सूबे गुजरात हुतें, भयो,
तनुपात सों विमान चढ़ि चले है ।
वैठे मथुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढिग,
देखे नभ तात, उठि कही "भले" भले हैं ।
पूछे नृप, "बोले कासों?" "कैसे कै प्रकासों,"
"कहौ, कह्यो हठ परे," सुनि अचरज रले हैं ।
मानुष पठाये, सुधि ल्याये सांच, आंच लागी,
करी साष्टांग बात मानी याग फले है ।।

१०५- भक्तमाल राघोदास टीका छं० सं० १ ।

चतुरदास की टीका-

सेव सुमेरहु ते गुजरातहि बैठि विमान सुधा माँहि चल्ले ।
कील्ह स मानहु ते मथुरामहि देखि अकास उठे कहि भल्ले ।।
भूप कहें अबु काहि सुनावत मोर पिता हरि माँहि सो मिल्ले ।
मानि अचंभ पठावत मानस आय कही सति पावहि कल्ले ।।

प्रियादास-

ऐसे प्रभु लीन, नहीं काल के अधीन,
बात सुनिये नवीन चाहै, राम सेवा कीजिये ।
करी ही पिटारी फूलमाला, हाथ डार्यो,
तहां व्याल कर काट्यो, कह्यो "फेरि काटिलीजिये" ।
ऐसो ही कटायो बार तीनि, हुलसायो हियो,
कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिये ।।
करिकै समाज साधु मध्य मों विराज,
प्रान तजे दशै द्वार योगीयके सुनि कीजिये ।।

चतुरदास-

यो हरि प्रीति लई भृतु जीति सनातन रीति सु पूजन कीजै ।
फूलन हार पिटारि मझारि उ सेज न व्याल सुफेरि कही जै ।
तीनहि बेर डसाय फिरे जन फेर चढयो तहि राम भजी जै ।
संत समामहि बैठि मिले प्रभु क जोग कला ब्रह्म रंध्र भनीजे ।।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित समान वार्ताओं का विकास हुआ हैः-

(क) कील्ह देव ने मथुरा में राजा मानसिंह के साथ बैठे हुए ही गुजरात में अपने पिता सुमेरदेव की मृत्यु के विषय में बतलाया । राजा के पता लगाने पर ठीक उसी समय की सूचना मिली ।

(ख) पूजा के लिए रखे हुए फूल की पिटारी से निकल कर एक सांप ने तीन बार काटा, किन्तु कील्हदेव पर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ, अंत में

सारे संतों के मध्य में बैठकर अपना प्राण छोड़ दिया ।

उपर्युक्त उद्धरणों में मिलने वाले कुछ वाक्य साम्य द्रष्टव्य हैः-

(क) "श्री सुमेरदेव पिता सूबे गुजरात हुबे भयो तनुपात सों विमान चढ़ि चले हैं।"
"देव सुमेरहु तो गुजरातहि बैठि विमान सुधामहि चल्ले।"

(ख) बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढिग देखे नम तात, उठि कहीं, "भले, भले हैं ।"
कील्ह स मानहुं ते मथुरामहि देखि अकास उठे कहि भल्ले ।

(ग) "मानुष पठाये सुधि आये"
"मानि अचंभ पठावत मानस"

(घ) "धरी ही पिटारी फूलमाला हाथ डारयो, तहां व्यालकर काटयो कह्यो फेरि काटि लीजिए।"
"फूल हार पिटार मंझारि सेजन व्याल सुफेर कटीजै ।"

(च) "ऐसे ही कटायो बार तीनि"
"तीनहि बेर डसाय फिरै"

(छ) "करिकै समाज साधु मध्य यों विराज"
"संत सभा मधि बैठि मिले"

वासकरण-

प्रियादास-

नरवरपुर ताको राजा नरवर जानौ,
मोहन जूधरि हिये सेवा नीके करी है ।
धरीदस मंदिर में रहै चौकी द्वार,
पावत न जान कोऊ ऐसी मति हरी है ।।
परयो कोऊ काम आय अबहीं लिवाय ल्यावौ,
कहैं पृथ्वीपति लोग कान कैं न धरी है ।
आई फौज भारी, सुधि दीजिये हमारी, सुनि,
बडू बात टारी, परी अति खरी है ।।६०२।।

चतुरदास में-

कीट नरवर को बड़ भूपति मोहन लालहि सेव करै हो ।
मंदिर मैं रहि पै हर्ष(?)नायक चोक स जानन पात नरै हों ।
काम भयो नृप बेगि बुलावत लोग कहै नहि कान धरै हों ।
फौज चढ़ी पतिस्या चलि आवत जाय कही तऊ ताहि डरै हो ।।४१४।।

प्रियादास में-

कहि कै पठाई, "कहौ कीजियै लराई" सुनि
    रूचि उपचाई चलि पृथ्वी पति आयो है ।
परयो सोच भारी, तब बात यों विचारि कही,
    आप एक जावौ, "गयौ अचिरज पायौ है"।
सेवा करि सिद्धि, सांष्टांग है कै भूमि परै,
    देखि बड़ी नेर, पांव खडग लगायो है ।
कटि गयी एड़ी, ऐपी टेढ़ीहू न भौंह करी,
    करी नित नेम रीति कीरज दिखायो है ।।६६०३।।

चतुरदास में-

फेरि पगवत रारि सुनावत चित्त न आवत स्याह जयो है ।
चिंत भई प्रतिहार कहीं, यक आप पधारहु जात भयो है ।
पूजन ह्वै परनाम करै नृप ढील लगी पग खडग दयो है ।
रोढि बढ़ी मुख सी न कढ़ी नित नेम साध्यो तब डार लयो है ।।४१५।।

प्रियादास में-

उठि चिक डारि जब पाछै सो निहारि, किमो,
    मुजरा विचारि, बादशाह अति रीझे हैं ।
हित की सचाई यहै नेकु न कचाई होत,
    बरचा चलाई भाव सुनि सुनि भीजे हैं ।।
बीते दिन कोऊ, नृप भक्त सों समायो,
    पृथ्वीपति दुःखपायो सुनीभोग हरि छीजे है ।।

करै विप्र सेवा तिन्है नांव लिखि न्यारे दिये,

वाके प्रान प्यारे लाड़ करौ कहि पीजै है ।।६०४।।

चतुरदास में-

नांधि दई चकि देखत पीछहि स्याह सलाम करी बहु रीफै ।

साच सनेह लख्यौ फिरि बूफत भाव कह्यौ सुनिकै नृप भीजै ।।

भक्त तज्यो तन भूप भयो दुःख आप सुनी प्रभु भोग न कीजै ।

सेव करै द्विज गांव दये तिन लाड करो उसके प्रभु पीजै ।।२१६।।

निष्कर्षः-

उपर्युक्त दोनों भक्तों के सम्बन्ध में जिस प्रकार का साम्य दोनों टीकाओं में मिलता है उसी प्रकार का साम्य प्रायः सभी भक्तों के वर्णनों में है । चतुरदास जी ने अपनी टीका की भूमिका में भक्ति पंचरस तथा भक्तमाल स्वरूप वर्णन आदि भी प्रियादास की टीका के अनुकरण पर लिखा है व तथा इसमें भी पर्याप्त समानता है । केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। यदि प्रियादास जी ने "नाभा" को मधुर भावना के उपासक होने के कारण "भाववती अलिनामा" लिखा है तो चतुरदास जी ने राघोदास को भी "राघव मालिनी" की संज्ञा से अभिहित किया है । इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित स्थल व तुलनीय हैं-

प्रियादास में -

वैबमती दाम, भाववती अलि "नाभा" नाम,

लाई अभिराम श्याम मनि ललचाई है[१०६]।

चतुरदास में -

राघव मालनि लैकरि साफनि सुन्दरि देखाही मनभाई[१०७]।

१०६- भक्तमाल सटीक, प्रियादास क० सं० ५ ।

१०७- भक्तमाल राघोदास, चतुरदास की टीका पृ० २ ।

अन्तर-

दोनों ग्रंथों में उल्लेखनीय अन्तर यह है कि कहीं कहीं पर प्रियादास जी ने कुछ भक्तों के विषय में केवल अलौकिक घटनाओं का संकेत किया है तो चतुरदास जी ने उनका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है[१०८]।

चतुरदास की मौलिकता-

इस टीकाकार की मौलिकता केवल उन्हीं भक्त चरित्रों के वर्णन में पाई जाती है जिनका वर्णन नाभादास के भक्तमाल में नहीं मिलता है विशेषकर चारों पंथों के वर्णनों में दादूपंथी होने के कारण सम्भवतः इस पंथ की इन्हें पर्याप्त जानकारी थी तथा इसका विस्तार से वर्णन करना इनकी विशेषता तथा मौलिकता है। भावों की मौलिकता इनमें नहीं दिखाई देती पर भाषा सरस और विषयानुकूल है।

१०८- भक्तमाल सटीक, प्रियादास क० ३०४-३०५ ।

अध्याय ५

बीतक तथा परवर्ती परिचयियां

अध्याय ५ (बीतक तथा परवर्ती परिचइया)

(क) बीतक [१]

"बीतक" शब्द "वृत्त" या"वृतान्त" के अर्थ में हल्लार-जनपद में आज भी प्रयुक्त होता है। "बीतक" साहित्य प्रणामी सम्प्रदाय का जीवनी साहित्य है, इसमें प्राणनाथ तथा उनके गुरु देवचन्द के जीवन का सांगोपांग वर्णन है। प्राणनाथ ही इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। यद्यपि उस युग के प्रमुख संत जैसे कबीर, नानक, दादू आदि ने हिन्दू, मुसलमानों के बढ़ते हुए धार्मिक विद्वेष को मिटाने के लिए अपनी वाणियों द्वारा शुभ संदेश दिया था, किन्तु संत प्राणनाथ (सं० १६७५-१७५१) ने जिस प्रकार से हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों तथा यहूदियों के मूलग्रंथों के आधार पर एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया था, वैसा किसी ने नहीं किया। लालदासकृत बीतक के अनुसार संवत् १७३५ में हरिद्वार कुंभ मेले के अवसर पर चतुः सम्प्रदाय (रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य) के धर्माचार्यों को हराकर इन्होंने "बुद्ध" की उपाधि धारण की और अपने गुरु देवचंद द्वारा प्रदत्त तारतम्य मूल मंत्र तथा निजानंद सिद्धान्त के आधार पर प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना की जो आगे चलकर प्रणामी, प्राणनाथी, धामी अथवा निजानंद सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ तथा इसका प्रधान धार्मिक केन्द्र पन्ना हुआ और महाराज छत्रसाल इनके प्रमुख शिष्य हुए। इस सम्प्रदाय के अनुयायी अल्पसंख्यक रूप में भारतवर्ष के प्रत्येक कोने कोने में, विशेषकर नेपाल में, पाये जाते हैं।

प्राणनाथ रचित "कुलजम स्वरूप" इस सम्प्रदाय का धर्म ग्रंथ है जिसका परिमाण लगभग एक हजार पृष्ठों का है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति प्रत्येक प्रणामी मंदिर में पूजा के लिए रक्खी जाती है।

१- प्रस्तुत प्रकरण की सारी सामग्री श्री मातावदल जायसवाल के इन तीन निबंधों पर आधारित है - (१) सम्मेलन पत्रिका भाग ४१ संख्या १ पौष सं० २०११, (२) हिंदी अनुशीलन वर्ष १०, अंक ४ अक्टूबर-दिसंबर १९५७ ई०, (३) वही वर्ष ११ अंक १ जनवरी-मार्च १९५८ ई०।

बीतक साहित्य-

प्रणामी सम्प्रदाय में प्राणनाथ के जीवनवृत्त लिखने की एक परम्परा सी दिखलाई पड़ती है जिसे सम्प्रदाय का बीतक-साहित्य कहा जा सकता है। इस सम्प्रदाय की १७ बीतकों में से निम्नलिखित बीतकें प्रसिद्ध हैं।

(१) स्वामी लालादासकृत बीतक।
(२) बृजभूषणाकृत बीतक या "वृतान्त मुक्तावली"[१]
(३) मुकुन्दस्वामी या नौरंगस्वामीकृत बीतक।
(४) हंसराजस्वामीकृत बीतक।
(५) स्वामी लल्लूमहाराजकृत बीतक।
(६) जयरामदासकृत बीतक।
(७) बहुरंग स्वामीकृत बीतक[२]।

लालदास द्वारा लिखित बीतक-

इस ग्रंथ के रचयिता लालदासजी स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में से थे। ये पोरबन्दर, काठियावाड़ के लोहाणा जाति के सम्मानित व्यक्तियों में से थे। शिष्यत्व ग्रहण के पश्चात् मृत्युपर्यन्त प्राणनाथ के साथ रहे तथा प्रत्येक बात में इनकी सम्मति मुख्य मानी जाती थी। ये सिन्धी, कच्छी, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी (खड़ी, ब्रज) संस्कृत, फ़ारसी, अरबी आदि कई भाषाओं के जानकार थे।

इनके द्वारा लिखित निम्नांकित रचनाएं प्रसिद्ध हैं-

(क) बीतक, (ख) बड़ी वृत्त (पद्य), (ग) छोटी वृत्त (खड़ी बोली गद्य), (घ) माजजा (खड़ी) श्री मद्भागवत टीका।

प्रणामी साहित्य में उसके धर्मग्रंथ "कुलजम स्वरूप" के पश्चात् बीतक

१- कानपुर निवासी काव्य तीर्थ पंडित कृष्णदत्त शर्मा- द्वारा सम्पादित तथा श्री प्रणामीधर्म सभा, नौतमपुरी जामनगर द्वाराप्रकाशित सं० १९८८।
२- वृतान्त मुक्तावली के अतिरिक्त सभी ग्रन्थ हस्तलिखित हैं।

का स्थान है । इसका रचनाकाल सं० १७५१ है ।

ग्रंथ में कुल ७१ प्रकरण एवं ४३०४ चौपाइयां हैं । ५९ प्रकरण तक पन्ना की बीतक कही गयी है और शेष बारह प्रकरणों में पद्मावतीपुरी या पन्ना में निवास करते समय श्री प्राणनाथ के आठों पहर की दिनचर्या वर्णित है ।

प्राणनाथ की भांति लालदास भी सर्वधर्म समन्वय में विश्वास रखने वाले बतलाए जाते हैं । अतएव प्रणामी धर्म के प्रवर्तक मूल पुरुष श्री देवचन्द तथा प्राणनाथ के जीवनवृत्त जब लिखने लगते हैं, उस समय भी वे महानधर्म रहस्य से दूर नहीं जाते । अतएव बीतक को तीन सरूपों (कृष्ण, मुहम्मद और देवचन्द-प्राणनाथ) की बीतक मानते हैं -

तीनों सरूपों की बीतक । जनम से लेकर ।
सो कहूं आगे सैयन के । ऐ चरचा सब ऊपर ।।

"बीतक" में देवचंद जी की जन्मतिथि इस प्रकार दी हुई है-

संवत् सौलासैं अडतीसे । आसों सुद चौदस कों ।।
जनम दिन श्री देवचन्द जी । आए प्रगट मारवाड़ कों ।।

- ला० बी० पृ० २-१६ ।

उनके माता पिता तथा निवासस्थान का उल्लेख इस प्रकार है-

तामें गांव अमर कोट । मतू मेहता घर अवतार ।
माता जो कुंवरबाई । ताको करो विचार ।।

- ला० बी० पृ० १७ ।

उनके गुरु हरदास राधावल्लभी थे, इसका उल्लेख बीतक की निम्नलिखित पंक्तियों में है-

फेर भोजनगर । आये तिन सहर में ।
तहां हरदास जी रहें । भई सोहोबत तिनसें ।

- ला० बी० पृ० ३-११ ।

वो थे राधा वल्लभी । सेवत कारज आतम ।
सेवा बांकेबिहारी की । करें सखी भाव होय धर ।।

- ला० बी० पृ० ३-१४ ।

उनकी मृत्यु सं० १७१२ में हुई बताई गई है-

संवत् सत्रह बारोतरे । भादों मास उजाला पष ।
चतुरदसी बुधवारी भई । हुए धनी अलष ।।

- ला० बी० पृ० ७-१६

देवचन्दजी के जीवनवृत्त में कई अलौकिक घटनाओं अथवा चमत्कारों का उल्लेख हुआ है, अतएव श्री मातावदल जायसवाल के विचार से ये वृत्त किसी से सुनकर लिखे गये होंगे[४]।

प्राणनाथजी का जीवनवृत्त -

बीतक लेखक ने प्राणनाथ का क्रमबद्ध जीवनवृत्त देने का प्रयत्न किया है। प्राणनाथ का जन्म हल्लार देश जामनगर या नौतनपुरी में वि० सं० १६७५ भाद्रपद, कृष्णपक्ष १४ रविवार को हुआ था -

संवत सोलेसै पंचहत्तरा । भादो वदी चौदस नाम ।
पोहोरे दिन वार रवी । प्रगटे धनी श्रीधाम ।

- ला० बी० पृ० ७-१७

इनके पिता का नाम केशव और माता का नाम धनबाई था । संवत् १६८७ में बारह वर्ष की अवस्था में देवचन्दजी ने तारतम्य मंत्र की दीक्षा दी । बाद में इन्होंने अपना सारा समय पर्यटन में व्यतीत किया ।

संवत् १७०३ में वे अरब गए और वहाँ चार बरस तक रहे । सं० १७१० में धोलराज्य के कलाजी राजा के यहाँ का कारबार करना प्रारम्भ किया । सं० १७१२ में वहाँ से अवकाश प्राप्त कर लिया । इसी समय देवचन्दजी स्वर्ग सिधारे । इसी संवत् के अश्विन शुक्ल अष्टमी के दिन बिहारी जी को देवचन्द जी की गद्दी पर बैठाकर स्वयं राज्य की "दिवानगी वजीरी" तथा धर्म-प्रचार का काम भी करने लगे । कुछ चुगलखोरों के कारण "जाम वजीर" ने इन्हें बन्दीगृह में डाल दिया । वहीं जेल में अनेक बानियों की रचनाएं

४- हिन्दी अनुशीलन वर्ष १० अंक ४ अक्टूबर-दिसम्बर १९५७ ई० ।

हुई । सं० १७१६ में जूनागढ़ गये । फिर दो वर्ष दीप बन्दर (डयू) में रहे । सं० १७२४ में लालदास ने भी दीक्षा ली । सं० १७२५ में अरब की सीमा पर पहुँचे । इस तरह पुटठानगर-सूरत आदि स्थानों का पर्यटन कर अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया और बहुत से लोगों को अपना शिष्य बनाया । सं० १७४३ में राजाराम सेठ से अतुल धन प्राप्त किया । मेड़ते में चार मास रहकर धर्म-प्रचार का कार्य किया । यहीं से राठौर जसवन्तसिंह को मिलाने के लिए गोवर्धन को पत्र देकर अटक पार भेजा, किन्तु सफलता न मिल सकी । अन्त में प्राणनाथजी ने धर्मयुद्ध करने के लिये गोकुल, मथुरा और आगरा होते हुए दिल्ली के लिए प्रयाण किया ।

दिल्ली में प्राणनाथ और लालदास ने "हिन्दवी" में एक पत्र औरंगजेब को लिखा । पत्र उनके पास पहुंचाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । फलस्वरूप अन्त तक सफलता न मिल सकी फिर आमेर, संगानेर, उदयपुर, मंदसौर, सीतामऊ, उज्जैन, नूनिर,औरंगाबाद, रामनगर होते हुए १७४० में पन्ना पहुंचे, वहां छत्रसाल को अपना शिष्य बनाया। नरेश ने उन्हीं की प्रेरणा से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर अपना राज्य स्थापित किया । सं० १७५१ आषाढ़ बदी ४ को प्राणनाथ जी परम धाम पधारे ।

ऐतिहासिक समीक्षा-

लालदास ने प्राणनाथ के जीवनवृत्त के वर्णन के साथ साथ उनकी रचनाओं के रचनाकाल तथा अन्य विवरणों का उल्लेख किया है [५]।

(क) प्राणनाथ की वाणी से सर्वप्रथम हवसा (प्रबोधपुरी) के बन्दी गृह में "रास के पद" सं० १७१२ में प्रस्फुटित हुए ।

(ख) दीव मंदिर में सं० १७२२ में "बेहद बानी" तथा १७२९ में सूरत में "कलस" नामकग्रंथ की रचना हुई ।

५- माता बदल जायसवाल, बीतक् ऐतिहासिक समीक्षा-हिन्दी अनुशीलन ४ वर्ष ११ अंक पृ० २७ ।

(ग) अनूपशहर में सं० १७३५-३६ मे "संनध" ग्रंथ समाप्त हुआ ।

(घ) पन्ना में सं० १७४०-४१ में खुलासा, खिलवतु मारफ़त सागर, छोटा तथा बड़ा कयामत नामा आदि अन्य फ़िरकों से संबंधित ग्रंथों की रचना हुई ।

बीतक के अनुसार श्री प्राणनाथ जी ने अपने एक शिष्य गोवरधन को सं० १७३१ में अटकपार भेजा था । इतिहास में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि औरंगज़ेब ने इसी समय क़ाबुल पर चढ़ाई की थी तथा जसवन्तसिंह भी साथ में गए थे[६] । इसी प्रकार उदयपुर पर औरंगजेब की चढ़ाई बीतक के अनुसार सं० १७३६-३७ में हुई थी जबकि प्राणनाथ उदयपुर में थे । इतिहाससिद्ध है कि औरंगज़ेब का यह आक्रमण ५ अक्टूबर सन् १६७९ ई० (सं० १७३६ वि०) को शुरू हुआ था । इस प्रकार बीतक में वर्णित अनेक घटनाएं आश्चर्यजनक रूपसे इतिहास की कसौटी पर खरी उतरती हैं । श्री जायसवाल जी ने "बीतकः ऐतिहासिक समीक्षा" (अनुशीलन वर्ष ११ अंक १) में इस प्रकार के अनके साक्ष्यो पर विस्तार से विचार किया है ।

(२) बृजभूषणाकृत बीतक- (वृतान्त मुक्तावली)

कहा जाता है कि सं० १७५५ में छत्रसाल की आज्ञा से इस ग्रंथ की रचना हुई । ये कदाचित् उन्हीं के शिष्य थे । इस ग्रंथ का परिमाण ५३६ पृष्ठों का है । प्रस्तुत ग्रंथ प्रधानतया ब्रज भाषा में लिखा गया है, किन्तु कहीं कहीं खड़ी बोली का पुट आया है । इसमें प्राणनाथ की चतुःसम्प्रदाय के धर्माचार्यों पर विजय दिखलायी गई है ।

(३) स्वामी हंसराजकृत बीतक

प्रस्तुत बीतक की भाषा ब्रजभाषा है, जो चौपाई छंदों में लगभग २५० पृष्ठों मे लिखा गया है । इसका रचनाकाल उपर्युक्त बीतक के बाद का है ।

६- यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ़् औरंगजेब, भाग ३ पृ० ४०-४२ ।

(४) मुकुन्ददास- नौरंग स्वामीकृत बीतक-

ये भी प्राणनाथ के शिष्य थे। यह ग्रंथ लालदास के कुछ बाद का या उसी समय का है। आकार इसका छोटा है और ब्रजभाषा में लिखा गया है। कहीं-कहीं खड़ी बोली के प्रयोग भी मिलते हैं।

(५) स्वामी लल्लू महाराज की बीतक-

यह बीतक गुजराती में है। इसकी हस्तलिखित प्रति नौतनपुरी (जामनगर) में है।

बीतकों का महत्व -

इन बीतकों में लालदासकृत बीतक ही प्रमुख है और उसी का अन्य बीतककारों ने अनुसरण किया है। इसका महत्व दो दृष्टियों से विशेष है-

जीवनी साहित्य में इसका अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। उसके पहले जितना भी जीवनी सम्बन्धी साहित्य लिखा गया है, किसी के लेखक ने किसी भी चरित्र का उतना सांगोपांग वर्णन नहीं किया है जितना कि लालदास ने। लालदास के बीतक में जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रायः जितनी घटनाएं हैं, किसी में भी अलौकिक चमत्कार का वर्णन नहीं है।

इस बीतक में प्रायः बहुत सी घटनाएं ऐतिहासिक कसौटी पर सत्य उतरती हैं, यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

"भाषा की दृष्टि से लालदास कृत बीतक में १७वीं सदी की खड़ी बोली का जीता जागता अन्तर्प्रान्तीय रूप सुरक्षित है। इस बोली के द्योतक हिन्दवी, हिन्दवीय तथा हिन्दुस्तानी नाम हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम किसी हिन्दू लेखक द्वारा इसी रचना में प्रयुक्त हुए हैं।"[७]

बीतक एक प्रकार से उत्तरी भारत की खड़ी बोली की प्रथम प्रामाणिक रचना होने के कारण अपना अद्वितीय स्थान रखता है।

७-हिंदी अनुशीलन वर्ष ११, अंक १।

(ख) परवर्ती परिचयियाँ

(१) श्री दादू जन्म लीला परची-जनगोपालकृत-

प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन श्री सुखदयाल दादू एडवोकेट के सम्पादन में स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर द्वारा हुआ है। इस परिचयी के रचयिता जनगोपालजी दादू दयाल के ५२ प्रधान शिष्यों में से एक थे। ये शिष्यत्व ग्रहण करने के पूर्व सीकरी में संन्यासी वेश में विचरते रहते थे[८]। जनगोपालजी आमेर, सांभर, दौसा, नैराणा आदि स्थानों पर जहां जहां दादूजी जाते रहे, सर्वदा उनके साथ रहे। इनकी प्रशंसा राघोदास जी ने अपने भक्तमाल में इस प्रकार की है-

दादूजी के पंथ में चतुर बुद्धि बातन को,
जानिए गोपाल जन सर्वही को भावतौ।
नीकी बानी निरमल मीठो तुक तानन मैं,
कानन में होत सुख अर्थ को सुनावतौ।।
मन वच कर्म हरि हारिल की लाकरी ज्यौं,
कहन सहित करुनानिधान गावतौ।।

माता-पिता तथा जन्म-काल- इनके माता पिता तथा जन्म-काल के विषय में कुछ भी मालूम नहीं है, केवल इतना उल्लेख अवश्य है कि ये वैश्य-कुल के संत थे[९]। राघवदास ने भी "वैश्यकुल निस्तर्यो" लिखा है। परची के अतिरिक्त "प्रहलाद चरित्र", "ध्रुवचरित्र" आदि इनकी बारह अन्य रचनाएं और मिलती हैं[१०]। "दादू जन्मलीला परची" सोलह विश्रामों में विभक्त है जिनका सारांश नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

प्रथम विश्राम-

ग्रंथ मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है। चरित्र नायक के जन्म तथा उत्पत्ति के विषय में वर्णन करने के पश्चात् कवि ने उनकी महिमा, जयमल

८- श्री दादू जन्मलीलापरची, पृ० ग (भूमिका)

९- सतगुरु दादू दीन दयालू। जाति महाजन जन गोपालू।।- परिचयी, षोडस विश्राम, छन्द ३३-३४।

१०- वही, पृष्ठ च।

चौहान की कथा, बुद्ध भगवान के दर्शन तथा घाड़ेतियों के उद्धार के विषय में लिखा है ।

द्वितीय विश्राम-

दादूजी महाराज के साँभर पधारने, अनभै वाणी ग्रन्थ लिखने, हिन्दू मुसलमानों में परस्पर असन्तोष होने, आदेश पत्र पलटने तथा अजमेर के काजी का मुस्टिका प्रहार करने आदि का वर्णन है ।

तृतीय विश्राम-

साँभर में काजी द्वारा धृष्ठता करने, संतों द्वारा वैर भाव से मस्त गयन्त भेजे जाने, एक साथ सात भक्तों के यहां निमंत्रण खाने तथा सिद्धों को ब्रह्मोदेश करने आदि की कथाएं हैं ।

चतुर्थ विश्राम-

आमेर में कुछ दिन तक धुनकरी कृत्य करने, जयमल द्वारा जगजीवनदास का संक्षिप्त प्रसंग, ठग द्वारा दादू के नाम का दुरुपयोग, माधवदास का मृतिका को दूध पिलाना, तुलसी ब्राह्मण द्वारा उकसाए जाने पर बादशाह अकबर द्वारा माधवदास के सिंह व पिंजरे में बन्द करने तथा दादूजी का अकबर के निमन्त्रण पर सीकरी पधारने आदि की कथाएं है ।

पंचम विश्राम-

महाराजा दादूदयाल का सीकरी पधारना, राजा भगवतसिंह से वार्तालाप करना, तुलसी ब्राह्मण का मानमर्दन, शेख़ अबदुल फजल तथा अकबर से संवाद आदि का उल्लेख है ।

षष्ठम विश्राम-

दादू जी का अकबर तथा बीरबल से वार्तालाप, जग्गा शिष्य का शरीर दीर्घ कर किला डाकने तथा राजप्रासाद देखकर स्वामीं जी के अप्रसन्न होने का वर्णन ।

सप्तम विश्राम-

अकबर के साथ गोष्ठी करना, अकबर को आशीर्वाद देना, जीवहत्या का राज्य से वहिष्कृत करना तथा तेजोमयी सिंहासन दिखलाना ।

अष्टम विश्राम-

राजा बीरबल को दीक्षा देना, भगवत सिंह द्वारा आतिथ्य सत्कार, स्वामीजी का दैवीशक्ति द्वारा गरम जलेबी मगाना, व्यापारियों के जलयान को उभारना, राजा बीरबल को हिम से बचाना तथा अनन्त ब्रह्माण्ड देखना आदि ।

नवम विश्राम -

गरीबदासजी, मस्कीनदास तथा दोनों बाइयों की उत्पत्ति, बनवारीदास तथा हरिदास के प्रसंग, टौंक महोत्सव, गोमण्डल की मुक्ति, आंधी ग्राम में वर्षा कराना आदि विषयों का उल्लेख है ।

दशम विश्राम-

इस विश्राम में स्वामी दादू दयालजी का अजमेर नरेश मानसिंह के समक्ष आमेर जनता द्वारा अपवाद किए जाने, राजा मानसिंह का उनसे संवाद करने, संतति विवाह, शिष्य रखने, निर्वाह की रीति, आदि विषयों पर शंका-समाधान करने आदि का वर्णन है ।

एकादश विश्राम -

इस विश्राम में दादू के विरुद्ध राजा मानसिंह को आमेर के ब्राह्मणों द्वारा उकसाए जाने तथा राजा द्वारा ब्राह्मणों का तिरस्कार किए जाने, स्वामीजी का अपमान करने, परमात्मा के कुपित होने तथा राजा के लज्जित होने, स्वामीजी के भ्रमरे प्रसंग आदि वार्ताओं का वर्णन है ।

द्वादश विश्राम-

इस विश्राम में दादूजी के बीकानेर के भुरटिया राजव द्वारा

निमन्त्रित किए जाने और उन पर मत्त-गयन्द छोड़ने, उनसे सम्वाद करने, उसके पुत्र सुन्दरदास का स्वामीजी के शिष्य बनने आदि का उल्लेख है ।

त्रयोदश विश्राम -

इस विश्राम में दादूजी के शिष्य तथा रामत प्रसंग, ख्वाजा-पीर को ज्ञान-दीक्षा देने, अल्हणद्वारा निमंत्रित करने पर उसकी दो मास की पैड़िया को दुहने, शिष्यों के प्रकार आदि का वर्णन है ।

चतुर्दश विश्राम-

इस विश्राम में दादू-दयालजी का उनके शिष्यों द्वारा महोत्सव मनाये जाने, मोहन दफ्तरी का सिरौज से स्वामीजी के पास आमेर में भेज के लिए पाटन भेजने, भोग लगाने के बाद स्वामीजी के काल लौटाने, शिष्य तथा रामत प्रसंग, दुर्बुद्धि पैराजी द्वारा स्वामीजी का बुरा विचारे जाना, तथा उसी को उसका दुष्परिणाम मिलने आदि प्रसंगों का वर्णन है ।

पंचदश विश्राम -

इस विश्राम में दादू दयालजी के शिष्यों का प्रसंग, वणजारे एवं बैलों का उद्धार करने, अपने अन्तकाल का ज्ञान होने, देवताओं तथा भक्तों के साथ ब्रह्म गोष्ठी करने, सबसे निर्ममता प्राप्त करने, स्वामी गरीबदास जी से संवाद करने, भैराणा पर्वत में पधारने की आज्ञा देने, नश्वर देह का त्याग करने, देवताओं द्वारा उन्हें अपने धाम में निमंत्रित किए जाने आदि प्रसंगों का उल्लेख है ।

षोडस विश्राम-

इस विश्राम में दादू दयालजी के नश्वर देह का त्याग कर देने तथा उनका महोत्सव मनाये जाने, स्वामी श्र गरीबदास जी का तिलकाभिषेक किए जाने, इस ग्रंथ का माहात्म्य, भगवान की भक्तों के प्रति वत्सलता, स्वामीजी के गुण वर्णन की क्षमता, ग्रंथ का सारांश, लेखक का परिचय आदि विषयों का वर्णन किया जाकर ग्रंथ की समाप्ति की गयी है ।

ग्रन्थ का रचनाकाल-

प्रस्तुत परिची के प्राक्कथन में स्वामी मंगलदास ने इसका रचना काल १७वीं शताब्दी निश्चित किया है ।

दादूदयाल का जन्मस्थान -

परिचयी में इनका जन्म-स्थान "अहमदाबाद" इस प्रकार से लिखा हुआ है ।

पच्छिम दिसा अहमदाबादू । तीहां साध परगटै दादू ।।

किन्तु आधुनिक विद्वान इसे नहीं मानते ।+ आचार्य क्षितिमोहन सेनन ने लिखा है कि अहमदाबाद में पूछ तांछ करने पर कहीं भी इनके जन्मस्थान का पता नहीं चलता है[११] । इसलिए निश्चयपूर्वक अन्तिम निर्णय नहीं दिया जा सकता कि इनका निवास स्थान कहां था[१२] ।

जन्म काल-

इनके जन्म के विषय में परिचयी में यह उल्लेख है-

संवत् सोलासौ-ईकोतर, संत एक उपज्यौ पुहुमी पर ।

-परची पृ० -२

इनका जन्म सं० १६०१ प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं । कुछ लोग सं० १६७१ मानते है किन्तु स्मरण रहे कि दादूजी के पुत्र गरीबदास का जन्म सं० १६३२ और देहान्त सं० १६९२ के आस पास हुआ था[१३]। स्वयं परिचयी मे भी उल्लेख है-

बारह बरस बालपन गयऊ । गुरु भेंटत संमुख तब भयऊ

सांभर आए समै पचीसा । गरीबदास जनमें बत्तीसा ।।

११- दादू उपक्रमणिका, पृ० ११:९ ।

१२- उत्तरी भारत का संत परंपरा- परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४१० ।

१३- गरीबदास की वाणी- स्वामी मंगलदास पृ० ६ भूमिका ।

माता-पिता-

परिचयी के अनुसार इनके पिता का नाम लोधीराम माता का नाम नानाबाई तथा भगिनी का नाम हव्वाबाई अथवा हीराबाई था । इस विषय में परिचयी का उल्लेख दृष्टव्य है:-

(१) "इहि विधि स्वामी जन्म जू लीया ।
लोधीराम पुत्र यौं कीया ।।"

(२) हव्वा बहिन बिरागन बाई ।
स्वामी दादू जाने भाई ।
नानी माता, दोनौ बाई ।
निसिदिन रहैं राम लव लाई ।।

जाति-

इनकी जाति के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता । डा० मोती लाल मेनारिया ने अपनी शोध तथा छानबीन के पश्चात् लिखा है, "वास्तव में दादूजी मुसलमान ही थे, दादूपंथी विद्वानों को यह सत्य स्वीकार करना चाहिए[१४]।

गुरु-

इनके गुरु का स्पष्ट उल्लेख परिचयी में भी नहीं है । एक स्थान पर इस प्रकार का वर्णन है:-

तीजे पहर निकट ही संझा । खेलत डोलत लड़कन मंझा ।
जब बीते एकादस बरसू । बुड्ढे रूप दियो हरि दरसू ।

इनके अनुसार वृद्ध भगवान ही इनके गुरु थे । परिचयी में दादू जी

१४- राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १८३ ।

की रचनाओं के विषय में कोई भी उल्लेख नहीं है जबकि उनकी वाणी का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने कुल मिलाकर लगभग ढ़ाई हज़ार साखियों तथा २७ राग रागिनियों में निबद्ध ४४५ पदों की रचना की है।

परम्परा:-

परिचयीकार ने अपनी परची के किसी स्रोत या परम्परा का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु प्रस्तुत ग्रंथ में आए हुए प्रसंगों में से एक प्रसंग अनन्तदासकृत "कबीर परिचयी" से तथा एक प्रसंग "पीपा परिचयी" से मिलता है। ये प्रसंग निम्नांकित है-

(१) किसी मतवाले हाथी का इनके सम्मुख आने पर स्वभाव परिवर्तन।
(२) सात महोत्सवों में दादूजी का एक ही दिनमें उपस्थित होना।

(अ) पहला प्रसंग परिचयी में इस प्रकार है:-

मातो हाथी सन्मुख आवै। भागै लोग दसौ दिसि धावै ।।
सोर सहर में भयो जु भारी। मैंमत छूट्यो गिरै अंटारी ।।
गज आवै माया मद छाक्यौ। स्वामी सदा राम रस चाख्यौ ।।
देख गुरु ठाडो हो रहियौ। दरसन पाय परमसुख लहियौ ।।
चरन छुए अरु माथो नायौ। स्वामी हाथ सीस तब लायौ ।।
लख सन्तन सब भये खिसानै। स्वामी दादू गुरु कर मानै ।।

कबीर-परिचयी का इससे मिलता जुलता प्रसंग दृष्टव्य है-

माता हाथी असुर भगाया। अपना छांह कूं देखता आया।

+ + +

सो कबीर वै आनि कै कायौ। पाछे भगै आगे नहिं आयौ।
काल रूप गज आइयौ, सबको चाल्यो भागि।
दास कबीरो ना डरै, रह्यो राम सूं लागि ।।
स्यंघ रूप कैसौ डरपावै। तावी हस्ती निकट न आवै ।।

+ + +

पाछै साहि सिकन्दर दौठै। कबीर आगे स्यंघ बईठै।

अन्तर केवल यही है कि कबीरदास के प्रसंग में मत्त गयंद सिकन्दर बादशाह द्वारा भेजा जाता है जबकि परिचयी में अन्य सन्तों द्वारा ।

(आ) एकही साथ कई स्थानों पर निमंत्रण का प्रसंग भी दोनों ग्रंथों के अनुसार नीचे दिया जाता है:-

दादू परची-

सबही नगर सुनी ये बाता । आन महोच्छै ठाटै साता ।।
स्वामी पोढ़ रहे घर माहीं । भक्त महोच्छै जानै नाहीं ।।
करनहार ऐसी कुछ कीनी । काहू पै गति जाय न चीनी ।।
जोई भक्त बुलावन आवै । स्वामी रूप तहां उठि धावै ।।
भक्त महोच्छै अति रस राख्यो । बाढ़ी प्रीति प्रेम रस चाख्यौ ।।
सबकौ कहै कथा यह आदू । सात महोच्छै स्वामी दादू ।।

पीपा परची-

एकहि बेर दल दीने । पांच गांवते पीपै लीने ।।
एकहि दिना जाइ जौ नाही । तौ सगरे दूषै मन माहीं ।।
चल्यौ महोछौ पीपै जबही । आए भगत पाहुना तबही ।।
तिन गहि राष्यौ देहि न जाना । जब लाग्यो मन महि पछताना ।।
तहां तहां परमेश्वर जाई । पीपै कैसो भेष धराई ।।
उपजी प्रीत महोछौ करिया । - - - - - - - ।।

यदि नाभादास के भक्तमाल से दादू परिचयी के प्रसंगों को मिलाते हैं तो केवल एक मतंग हाथी का प्रसंग रसिक मुरारि से मिलता है और यही प्रसंग हरिदास परिचयी (रघुनाथदासकृत) से भी मिलता है जिसपर विचार किया जा चुका है । किन्तु हाथी को दीक्षा देने का प्रसंग हरिदास तथा नाभादास के वर्णनों में नहीं है । अतएव जितना निकट का संबंध उक्त दोनों परिचयियों में है उतना नाभादास के भक्तमाल अथवा हरिदास की परिचयी से नहीं है ।

प्रियादास ने अपनी टीका (क० ९७८) में कबीर के विषय में मत्त गयंद का प्रसंग उद्धृत किया है तथा उक्त प्रसंग से मिलता जुलता प्रसंग रसिक मुरारि विषय टीका (क० ३९०-३९३) में भी उद्धृत किया है ।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त ग्रंथों में प्रियादास की टीका की रचना की तिथि सं० १७६९ है शेष परिचयियों तथा भक्तमाल के समान प्रसंगों पर विचार करना है ।

इनके प्रसंगों में जो इतनी समानताएं हैं, वही प्रश्न विचारणीय हैं । इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के विचार प्रस्तुत किए जा सकते है - या तो इन सभी ग्रंथकारों ने इस प्रसंगों को एकही स्थान से लिया हो- या एक दूसरे से लेकर अपने ग्रंथ में मिला दिया हो अथवा किसी अन्य ने इन लोगों के नाम से इन्हीं प्रसंगों को उद्धृत कर दिया हो ।

(२) षेमदासकृत "गोपीचन्द बैरागबोध"-

वैसे संत साहित्य में दो षेमदास अधिक प्रसिद्ध है । दोनों का सम्बन्ध दो भिन्न पंथों से था-एक दादूपंथी और दूसरे निरंजनी । दादूपंथी षेमदास "रज्जब" जी के शिष्य थे[१५]। राघवदास जी ने इन्हें मेवाड़ निवासी बताया है[१६]। डा० मोतीलाल मेनारिया ने इनकी समस्त रचनाओं की सूचना दी है[१७] जिनमें से 'गोपीचंद बैरागबोध' भी एक है ।

रचनाकाल-

जिस प्रकार इस ग्रंथ में इसका लिपिकाल नहीं दिया हुआ है, उसी प्रकार रचनाकाल का भी उल्लेख नहीं है । किन्तु ग्रंथकार ने रज्जबजी (अपने गुरु) का उल्लेख इस प्रकार किया है जिससे यह मालूम होता है कि उनके जीवन-काल ही में यह रचना समाप्त हो गयी थी । रज्जबजी का जन्म संवत् १६२४ के लगभग तथा मृत्यु सं० १७४६ में हुई[१८]। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कदाचित् उनके जीवन के अंतिमकाल १७४०-४१ के आसपास इसकी रचना

१५- स्वामी मंगलदास, पंचामृत (भूमिका) ।

१६- राघौदासकृत भक्तमाल, छ० ६७ उत्तरार्ध ।

१७- राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १९५ ।

१८- पुरोहित हरिनारायण शर्मा, "महात्मा रज्जब जी" शीर्षक निबंध, संतवाणी वर्ष १, अंक १, १९४८ ई० ।

संभव हो सकी होगी । गोपीचंद बैरागबोध की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है -

पहले कवि निरजंन देव की प्रार्थना हर प्रकार से करता है । फिर बतलाता है कि गोपीचंद अपने पिता गंगाराम के बाद किस प्रकार शासक होता है । वह १६०० रानियों का पति १९०० कन्याओं का पिता है । माता "मैनावती" पुत्र के कमनीय रूप को सुरक्षित रखने के लिए गोपीचंद को योगी होने का उपदेश देती है । जालंधर के १४०० शिष्यों का अतिरंजित वर्णन होता है । अन्त में १६०० रानियों को विलपती छोड़कर जालंधर के साथ कठिन तपस्या का व्रत धारण करता है । इस प्रकार से गोपीचंद अजर अमर हो जाता है फिर ग्रंथ की समाप्ति में उसका महत्व-वर्णन करके कवि विश्राम लेता है ।

बैरागबोध में इनकी माता का नाम मैनावती तथा पिता का नाम गंगाराम लिखा हुआ है[१९]। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके पिता का नाम "मानिकचन्द" माना है[२०]। कहा नहीं जा सकता कि खेमदास के कथन में कहाँ तक सत्यता है ।

(३) "हरिदास की परिचयी" रघुनाथदासकृत

परिचय-

"हरिदास जी की परिचयी" के रचयिता रघुनाथ के संबंध में स्वामी मंगलदास जी से केवल इतनी जानकारी प्राप्त हो सकी है कि वे अमरदास निरंजनी कुल के प्रधान बावन शिष्यों में से एक थे । अमरदास या अमरपुरुष जी का जन्म सं० १७५५, दीक्षाकाल सं० १७७५ तथा स्वर्गवास सं० १८४२ माना जाता

१९- गंगाराम नृपति को नाऊं । गोपीचंद पुत्र ताहि काऊं ।
माता मैणावती बिसूरी । ऐसा मह तन हुई धूरी ।।

२०- नाथ सम्प्रदाय, पृ० १६८ ।

है । इस आधार पर रघुनाथदास जी का रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी वि० का पूर्वार्ध माना जा सकता है । मंगलदास जी ने यह भी सूचित किया है कि उनकी हस्तलिखित प्रतियां सं० १८२५-३० के आस पास की मिलती है । इससे भी उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। परिचयी के अतिरिक्त उनके स्फुट पद भी मिलते है । उनके निधन काल का पता नहीं है ।

इस परिचयी की प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय से प्राप्त हुई थी। इसकी हस्तलिखित संख्या ८७३ है । यह परिचयी लगभग ३१८ दोहा, चौपाई तथा छन्दों में लिखी गई है, जो १५ विश्रामो मे विभाजित हैं । इस परिचयी में "हरिदास" के विषय मे प्रचलित प्रायः सभी अलौकिक चमत्कारों का संग्रह है ।

मंगलाचरण हेतु कबीर, सुखदेव, गुरु अमरदास आदि का स्मरण किया गया है । हरिदास के लिए बतलाया गया है कि इनका जन्म जीवों के उद्धार के लिए हुआ था । हरिदास और निरंजन में कोई भेद नहीं है । गोरखनाथ की साधना ही हरिदास के लिए सर्वश्रेष्ठ है । ये निरंजन के अवतार हैं ।

ब्रह्म की प्रेरणा से हरिदास गोरख के पास दीक्षा के लिए जाते हैं और पुनः उनकी आज्ञानुसार स्त्री पुत्र से आज्ञा लेने के लिए जाते हैं । वापस आने पर गोरखनाथ अदृश्य हो जाते हैं । साधनार्थ गुहा में बैठते हैं फिर डूंगरी पर आकर देवी को दीक्षा देते है । इसके पश्चात् अजमेर, नागौर, टोडा, बम्बैर (आमेर) सिचौरा और जयपुर आदि स्थानों की यात्रा करते हैं। इनके विषय में अनेक अलौकिक चमत्कारों का वर्णन है यथा -

(१) ब्राह्मण के मरे हुए लड़के को जिलाना ।
(२) सर्प तथा मतवाले हाथी को उपदेश देना ।
(३) भूत को उपदेश देकर उसका निस्तार करना ।
(४) विष खिलाने वाले पर विष का प्रभाव होना ।

ग्रंथ का रचनाकाल-

परिचयी में रचनाकाल नहीं दिया हुआ है, किन्तु अपने गुरु का नाम

उसने अमरदास दिया है जो हरिदास की तीसरी पीढ़ी में पड़ते हैं । हरिदास की मृत्यु सं० १७०० में मानी जाती है अतः इसका ~~स्वनका~~ रचनाकाल अनुमानतः विक्रम की अंतिम चरण या उन्नीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण निश्चित होता है ।

परिचयी के आधार पर हरिदास का संक्षिप्त जीवन चरित्र-

परिचयी के अनुसार ये "डीडपुर" के निवासी थे । "प्रथम डीडपुर प्रकटे आई । वृष चंमाल माझ रहाई ।। मेनारिया ने लिखा है कि ये "कापडोद" गांव में पैदा हुए थे ।

जन्म तथा मृत्यु-

इनके जन्मकाल के विषय में परिचयीकार मौन है । किन्तु मृत्यु का उल्लेख इस प्रकार है-

संवत सौल सै जु सई का । रूप बसंत आनंद लई का ।।
फागुन सुदी अष्टमी जाना । जब हरिदास हरिमांहि समाना ।।
मिले निरंजन मांही दासू । काल जाल सब काही पासू ।

निरंजनी सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार भी इनका गोलोकवास सम्वत् १७०० की फाल्गुन सुदी ६ को माना जाता है[२१]।

दीक्षा गुरु-

परिचयी के अनुसार हरिदास के गुरु गोरखनाथ थे, जिसका पता निम्नपंक्तियों से चलता है-

"एक दिनां प्रभु की गति भई । अन्तरजामी आग्या दई ।।
गोरख गुमान देसां कू आए । अपणी जाणी कृपा करिय्याये ।।

+ + +

२१- श्री हरिपुरुष जी की वाणी, भू०पृ० (त) ।

गोरष बुद्धि फेरी विदि काला । बचन एकतब कह्यौ दयाला ।

+ + +

तातैं हूं हरि सरणौ आयौ । गोरख ग्यान मन भायौ ।।

किन्तु वे गोरखनाथ के समकालीन नहीं हो सकते और न प्रत्यक्षरूप से उनसे दीक्षित ही हो सकते हैं । इतना अवश्य है कि वे गोरखनाथ के हठयोग से प्रभावित हैं । राघौदास ने अपने भक्तमाल में इनके संबंध में कहा है -

"सिर पर करि प्रागदास को गोरखनाथ को मत लयौ ।
जन हरिदास निरंजनी ठौर ठौर परचौ दियौ ।।"

इससे ज्ञात होता है कि वे पहले दादू-शिष्य प्रागदास के शिष्य थे किन्तु बाद में गोरखनाथ की साधना-पद्धति से प्रभावित होकर उन्होंने अपना अलग मार्ग चलाया ।

रचनाएं-

परिचयी में इनकी रचनाओं के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं हुआ है ।

परम्परा-

परिचयी में इस कवि ने लिखा है - परचा करने की मनि भई । देव निरंजन आग्या दई ।।- पुनि सब संत कहैं विधि ऐसी । बुधि तेरी अनुसार है तैसी ।। अर्थात् इस ग्रंथ की प्रेरणा उसे ब्रह्म से मिली । किन्तु देखना यह है कि उक्त परिचयी में जो प्रसंग उद्धृत है उन का अन्य परिचयियों तथा भक्तमाल के प्रसंगों से कुछ साम्य है अथवा नहीं । परिचयी की मुख्य घटनाएं पीछे दी जा चुकी हैं। पहली घटना मरे हुए ब्राह्मण के लड़के को जिलाने की है । यह घटना इसके पहले की परिचयियों में इस प्रकार से नहीं आयी है । नाभादास के भक्तमाल छ० ५१ में केवल इतना लिखा हुआ है कि -

सुतबध हरिजन देखिकै, दै कन्या आदर दियो ।"

इसकी टीका प्रियादास ने २९-३० दो कवित्तों में लिखी है । उसकी घटना है - साधु भेष में आए हुए सन्त ने एक भक्त के लड़के को मारकर आभूषण ले लिया। बाद में वह सन्त के प्रभाव से जी गया । यद्यपि मृत लड़के की कथा समान है, किंतु

शेष कथा के वर्णन में अन्तर है ।

दूसरी घटना सर्प तथा मतवाले हाथी को उपदेश देने की है और यद्यपि वह अनन्तदासलिखित कबीर परिचयी में मिलती है, किन्तु उसमें उपदेश देने की बात नहीं है । यह प्रसंग भक्तमाल छन्द ९५ में रसिक मुरारि के विषय में इस प्रकार लिखा है, "श्री रसिक मुरारि उदार अति, मत्त गजहिं उपदेश दियो।" प्रियादास ने इसी प्रसंग को छं० सं० (३९०-९३) में लिखा है, जिसमें कुछ विस्तार अवश्य है, किन्तु वह प्रायः परिचयी के समान है ।

तीसरी घटना भूत को उपदेश देने की है । भक्तमालकार ने इसका वर्णन नहीं किया है, किन्तु टीकाकार ने क० सं० ११७-१८ में श्रीरंग के विषय में भूत के उद्धार की घटना लिखी है । वर्णनों में अवश्य अन्तर है, किन्तु प्रसंग समान हैं ।

चौथी घटना विष पान के संबंध में है जिसका उल्लेख अन्यत्र नहीं है ।

निष्कर्ष-

केवल नाभादास के भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका से इनके तीन प्रसंग कुछ विभिन्नता के साथ साम्य रखते हैं । अतएव या तो तीनों ग्रंथकारों ने एक ही स्रोत से उक्त प्रसंग लेकर अपने ग्रंथ में कुछ हेर फेर के साथ लिख दिया है अथवा यह भी सम्भव है कि परिचयीकार ने भक्तमाल अथवा टीका से इन प्रसंगों को लेकर अपनी रचना में जोड़ दिया हो, क्योंकि परिचयी की रचना भक्तमाल तथा उसकी टीका से बहुत बाद की है ।

(४) स्वामी सेवादास की परिचयीः रूपदासकृत-

सेवादास की परिचयी की एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी में सुरक्षित है । इस प्रति का क्रमांक १४३३।८७३ है । यह २१ विश्रामों तथा ५५६ छन्दों में लिखी गई है । इस प्रति के अतिरिक्त सेवादास की कोई अन्य परिचयी उपलब्ध नही है[२२]।

२२- त्रिलोकी नारायण दीक्षित-परिचयी साहित्य- पृ० ६२ ।

रूपदास ने इस परिचयी के अन्त में आत्म परिचय इस प्रकार दिया है-

"मैं परचा कैसे कहूं, यह गुर का उपगार ।
जन रूपदास वरणै कछू, परचा अनन्त अपार ।।
श्री अमरदास गुरुदेवजी, मेरे सिर का ताज ।
इनके सतगुरु सेवाजी, सकल सुधारण काज ।।
घटती बढ़ती मातरा, अक्षर तुक अनुसार ।
हरिजन सकल सुधारि ज्यो, जन रूपदास बलिहार ।।

इससे केवल इतना जाना जा सकता है कि इनके गुरु अमरदास थे और अमरदास के गुरु सेवादास थे । इनका और कुछ पता नहीं चलता है । परशुराम चतुर्वेदी ने निरंजनी सम्प्रदाय से संबंधित एक रूपदास का उल्लेख किया है । उन्होंने " श्रीहरिपुरुष जी की वाणी" के आधार पर एक शिष्य परंपरा का उल्लेख इस प्रकार किया है[२३]-

(१) स्वामी हरिपुरुष (२) नारायणदास सं० १७०० में जोधपुर आये (३) हरीराम (४) रूपदास (५) सीतलदास (६) लक्ष्मणदास ।

इनके और किसी ग्रंथ का पता नहीं है । हो सकता है, उक्त रूपदास यही रहे हों ।

परिचयी का सारांश -

पहले गुरुगोविन्द आदि की वन्दना से ग्रंथारम्भ होता है, फिर भक्त की महत्ता बतलाते हुए कवि ने बतलाया है कि संत लोगों का अवतार ही कलिकाल में पड़े हुए मानव को सचेत करने के लिए होता है । चरितनायक १६ वर्ष की अवस्था में ही एक अलौकिक घटना के परिणाम स्वरूप आठों पहर भक्ति में लीन रहने लगता है । कुछ दिनों के पश्चात् कबीर, गोरख, रैदास, पीपा, ध्रुव, प्रहलाद की भांति इनको भी ब्रह्म का ज्ञान हुआ । अनेक अलौकिक घटनाएं

२३- उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४६६ ।

इनके जीवन में घटीं ।

द्वारका धाम, अजमेर, पुष्कर, उदयपुर, शेरपुर, बीकानेर, सांगानेर, जयपुर, फतेहपुर, डीडवाना आदि का इन्होंने भ्रमण किया ।

परिचयी में उल्लिखित घटनाएं ये हैं:-

(१) सांप के काटने पर विष का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ ।

(२) सिंह ने भी अपनी हिंसक प्रवृत्ति को त्याग दिया ।

(३) स्वामी जी का वस्त्र चोरों द्वारा अपहरण किया गया किन्तु पुनः उन्हीं द्वारा वापस लाया गया ।

(४) मतवाला हाथी भी इनके दर्शन मात्र से शान्त हो गया ।

(५) द्वारिका जाते समय नाव द्वारा समुद्र के मध्य पहुंचने पर नाव में लगी आग को अपने प्रभाव से बुझा दिया ।

(६) अजमेर में ध्यानावस्थित होने पर कोई सुन्दरी रंभा आई, जिसने अपने को ब्रह्मा, विष्णु, महेश द्वारा सेवित रंभा बतलाया, किन्तु स्वामी जी ने उसका अनादर किया ।

ग्रंथ का रचनाकाल-

इस परिचयी की रचना वैशाख वदी १२ संवत् १८३२ में हुई थी । इसका उल्लेख ग्रंथ में इस प्रकार है:-

अठारा से बत्तीसै समै वदि वैसाखा जोय ।

बारसि तिथि गुरुवार दिन परचा पूरण होय ।।

परिचयी के आधार पर सेवकजी की जीवनी:- इस परिचयी में सेवादास के जन्मकाल तथा जन्मस्थान के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं है । इसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि परिचयी का वर्णन चरितनायक के सोलहवें वर्ष से प्रारम्भ होता है - इसीलिए जन्म आदि के बारे में कोई उल्लेख नहीं हुआ ।

गुरु-

"रूपादास" के अनुसार सेवादास के दीक्षा-गुरु कबीरदास थे । किन्तु

यह अनर्गल कथन केवल श्रद्धावश ही किया हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि सेवादास की मृत्यु तिथि स्वयं परिचयीकार ने सं० १७९८ मानी है । कबीर की मृत्यु सं० १५७५ में प्रसिद्ध है अतः दोनों में कम से कम दो सौ वर्षों का अन्तर अवश्य रहा होगा ।

मृत्यु-

परिचयीकार के अनुसार इनकी मृत्यु सं० १७९८ में ज्येष्ठ कृष्ण परिवा को हुई थी -

संवत् सतरासै अठाणवै बदी परवा ज्येष्ठ मासा ।
जनसेवा सुलभि सिधाइया किया ब्रह्म मैं बास ।।

ग्रंथ की परंपरा-

यह परिचयी संवत् १८३१ की है । इसके पहले अनेकों परिचयियों की रचना हो चुकी थी । अनन्तदास की सभी परिचयियां संवत् १६४५ से १६५७ की हैं । सेवादास परची के बहुत से प्रसंग इन परिचयियों से प्रभावित हैं -

(१) हिंसक सिंह द्वारा सेवादास के सम्मुख अपनी प्रवृत्ति छोड़ने की घटना का वर्णन पीपाजी के विषय में अनन्तदास तथा नाभादास दोनों ने अपने अपने ग्रंथों में किया है ।

(२) सेवादास के विषय में लिखा गया है - मतवाला हाथी भी लखन इनके सामने शान्त हो गया । ठीक यही घटना "कबीर परिचयी" तथा प्रिया-दास की परिचयी में उल्लिखित है । वर्णन अपने अपने ढंग के अलग अलग हैं । इसी प्रकार का साम्य रंभा के प्रकट होने वाली घटना में भी है ।

अतएव यह परिचयी अनन्तदास लिखित पीपी-कबीर परिचयी तथा नाभादासकृत भक्तमाल और प्रियादास की टीका से भली-भांति प्रभावित ज्ञात होती है ।

(५) "चरनदास की परिचयी"[२४] रामरूपकृत

उक्त परिचयी की तीन प्रतियां उपलब्ध हैं। पहली चरनदास की गद्दी, दिल्ली में, दूसरी दिल्ली निवासी गणेशदत्त मिश्र के पास तथा तीसरी कड़ा निवासी श्यामसुन्दर के पास है। गणेशदत्त मिश्र की प्रति सबसे पुरानी सं० १८४२ की है। यह परिचयी १३२५ छन्दों और २५० पृष्ठों में वर्णित है।

रामरूप का परिचय-

इस परिचयी में कवि ने ३१ छन्दों मे अपना परिचय दिया है। इनका जन्मस्थान दिल्ली के निकट जैसिंहपुर में था। इनके पिता का नाम महाराज गौड़ था। ये संवत् १८११ में चरनदास से दीक्षित हुए थे।

अठारह से अरु ग्यारवें संवत् की यह बात।
रामरूप भये वैष्णव छाड़ि मोह जग जाल।।

चरणदास का समय सं० १७८१ से १८३९ तक माना जाता है। अतएव इनका जन्मकाल सम्वत् १८०० के लगभग ठहरता है। इसकी अन्य किसी रचना का पता नहीं है।

वर्ण्य विषयः-

इस पुस्तक की रचना ३४ प्रसंगों में हुई है, जो इस प्रकार है-

मंगलाचरण और गुरु प्रणाली, जन्म चरित्र, बालचरित्र, अवधूत का दर्शन होना, पांडे के पास शिक्षा ग्रहण करना, पिता का ~~अन्त~~ अन्तर्ध्यान होना, माता का दिल्ली गमन और चरनदास का कोट कासिम में निवास, चरनदास का दिल्ली गमन, मुल्ला के यहाँ चरनदास की शिक्षा, माता पुत्र का संवाद, श्रीकृष्णजी से प्रेम बढ़ना, शुकदेव के दर्शन होना, भक्तराज का शिष्य होना,

---

२४- यह परिचयी प्रयत्न करने पर भी मिल न सकी, अतः यह परिचय मुख्यतया डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित लिखित "परिचयी साहित्य" पर आधारित है।

श्री शुकदेव के दर्शन और दिल्ली गमन, चरनदास का गुफा बनाकर १४ वर्ष तक योग साधन करना, दिल्ली में राजविधि से निवास करना, खत्री को परचा देना, सिंह को दीक्षा देना, नादिरशाह को परचा देना, परीक्षितपुरी में निवास, पानीपत गमन, शुकदेवपुरी में निवास, शिष्यों को अंतिम उपदेश, साकेत वास आदि का विस्तृत * वर्णन है ।

इसकी रचना संभवतः चरनदास की मृत्यु स० १८३९ के दो चार वर्ष पश्चात् हुई होगी

परिचयी का सारांश-

परिचयी के अनुसार चरनदास का जन्म स्थान मेवात प्रदेशातंर्गत अलवर नगर से तीन कोस दूर डेहरा नामक गांव में है * जो परिचयी की पंक्तियों से स्पष्ट है -

"डेहरे मेरो जन्म नाम रणजीत बखाना"

इनका जन्म मंगलवार भादौ सुदी तीन, सम्वत् १७६० वि० को हुआ था । इनके पिता का नाम मुरलीधर तथा माता का नाम श्रीमती कुंजीदेवी था ।

(६) "जगजीवनसाहब की परिचयी" बोधेदासकृत-

"बोधेदास" के विषय में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है । इस ग्रंथ के अनुसार इनके जन्मस्थान के विषय में इतना ज्ञात है कि इनका जन्म स्थान अवध के बाराबंकी के "बरैठा" गांव मेंथा । बाद में उस गांव को छोड़कर कोटवा में रहने लगे[२५]।

कीन्ह परावन कोटवा, छाड़ि बरैठा गांउ ।।

ये जगजीवन साहब के समय में उपस्थित रहे, क्योंकि जगजीवन साहब की मृत्यु सं० १८१७ और उपर्युक्त परिचयी ग्रंथ का रचनाकाल इसी प्रति में १८४८ दिया

२५- परिचयी साहित्य डा० दीक्षित, पृ० ११८ ।

हुआ है ।

जाति तथा दीक्षा गुरु-

"कायथ कर्म जाति कर हीना" पद से स्पष्ट है कि ये कायस्थ परिवार के थे । इन्होंने अपने दीक्षागुरु का नाम रामेश्वर लिखा है -

"रामेश्वर को चेला, बौधा भए तेहि नाऊ ।।"

इन रामेश्वर का नाम सतनामी सम्प्रदाय में कहीं नहीं आया है, अतएव स्पष्ट है कि इनका सम्बन्ध इस सम्प्रदाय से नहीं था । इनकी किसी अन्य रचना का उल्लेख भी नहीं मिलता ।

यह परिचयी "भक्ति विनोद" नाम से प्रकाशित है । इसका प्रकाशन माघ शुक्ल ७ संवत् १९९९ वि० को मुन्शी नौरतनलाल प्रेस, लखीमपुर से हुआ है । इस ग्रंथ की भूमिका में कोटवा में प्राप्त इसकी अनेक प्रतियों का उल्लेख है जिनमें इसका नाम "संत परिचयी" दिया गया है[२६]।

संत पर्चइ नाम तेहि राखा । भक्तन की महिमा कहि भाखा ।।
परबस परे स्वबस नहिं पावा। तेहि ते बहुरि न कथा चलावा ।।

किन्तु प्रकाशित प्रति में इसका नाम "भक्ति विनोद" बताया गया है -

भक्ति विनोद नाम तेहि राखा । भक्तन की महिमा तेहि भाखा ।।
परबस परे सबस नहीं पावा । तेहिते बहुरिन कथा चलावा ।।

अतएव प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतियों में केवल शीर्षक का भेद है[२७]।

परिचयी का संक्षिप्त परिचय-

ग्रंथ का वर्णित अनेक देवताओं ~~जैसे सतगुरु की वन्दना~~, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु

२६- परिचयी साहित्य डा० दीक्षित, पृ० ७० ।

२७- वही, पृ० ७१ ।

की वन्दना से प्रारम्भ किया गया है। फिर ग्रंथ के रचनाकाल तथा जगजीवन साहब के जन्म आदि के विषय में प्रकाश डाला गया है। जगजीवन साहब जब बालक थे उसी समय एक अभ्यागत आया और इस बालक को उठाकर आदि शक्ति के पास ले गया। बालक फिर अपने घर पहुंचा दिया गया। तभी से आत्म-विभोर अवस्था में रहने लगा।

उनके बालपन ही में अनेक चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटनाएं घटने लगीं। दूलनदास ने प्रभावित होकर इनसे दीक्षा ली। फिर सरदहा रहने लगे वहां गोसाईंदास ने दीक्षा ली। इसके बाद कवि ने खेमदास, बलादास, नेवलदास, उदैराय, रामदास, बदलीदास, भवानीदास, तोवर, सुजन दिलवर, नंदू, छोटे आदि के चरित्रों का उल्लेख किया है। सम्वत् १८५७ में जगजीवन साहब की मृत्यु हो जाती है।

ग्रंथ के उत्तरार्ध में सतनामी आदर्शों की महत्ता का वर्णन किया गया है तथा यह बतलाया गया है कि जगजीवन के पुत्र जलाजी का भक्तों और संतों के प्रतिपालन का उल्लेख है। अन्त में सम्प्रदाय के श्रेष्ठ साधकों जैसे बालदास, माधोदास, कायमदास, पठान, प्यारेधुनिया, अखलासी, मिहन आदि का उल्लेख कर जगजीवन साहब की महत्ता बताई गई है तथा अन्त में ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख है।

परिचयी के अनुसार इस ग्रंथ की रचना संवत् १८४८ में सम्पन्न हुई -

"वैशाख महीना सत्तिमी, व्रत निरजला मानि।
सुकुल पक्ष औ भौम दिन तब संपूरन जानि।।

छन्द संख्या-

चारि सौ अरसठि चौपाई, दोहा सरसठि जानि।
छन्द लिखे यहिं ग्रंथ षट, सोरठ आठै मानि।।

संक्षिप्त जीवनी-

परिचयी के अनुसार जगजीवन साहब का जन्म स्थान सरदहा था, इस विषय में परिचयीकार का कथन है -

जगजीवन जग विदित भें, किए सरहद्दा बास ।।दो० २७।।
डा० बड़थ्वाल[२८] तथा बाद के लेखकों ने इसी स्थान का उल्लेख किया है ।

जन्मकाल-

बोधेदास ने इनके जन्म का उल्लेख इस प्रकार किया हैः-

माघ महीना पक्ष सित, सत्रह सत्ताईस ।

प्रगट भौम तिथि सप्तमी, जगजीवन जगदीस ।।

डा० बड़थ्वाल ने इस तिथि को प्रामाणिक माना है[२९] । डब्ल्यू क्रुक्स[३०] के अनुसार जन्मकाल १७३९ तथा डा० रामकुमार वर्मा[३१] के अनुसार संवत् १७२९ है । डा० दीक्षित ने इन तिथियों का उल्लेख करके अपना कोई निश्चित् मत नहीं दिया है, किन्तु परिचयीकार का संवत् इसलिए सत्य माना जायगा, क्योंकि वह उनका समकालीन था ।

माता-पिताः-

धनि गंगा धनि केवला माई जिन सुत ये जगजीवन साईं ।।
इस कथन के अनुसार गंगा पिता का नाम तथा माता का नाम केवला था । इनकीजाति का कोई उल्लेख नहीं है । पं० परशुराम चतुर्वेदी ने इन्हें क्षत्रिय कुल का बतलाया है[३२] ।

अन्य प्रसंग-

इस परिचयी के अनुसार यह जाना जाता है कि इनके अनेकों

२८- निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयेट्री पृ० ४६४ ।

२९- निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयेट्री पृ० २६४ ।

३०- ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेस एण्ड अवध, भाग ७ पृ० २९९-३०१ ।

३१- आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४१० ।

३२- उत्तर भारत की संत परम्परा पृ० ५४३ ।

शिष्य तथा सम्मान करने वाले व्यक्ति थे । इनके जीवन संबंधी अनेक घटनाओं का उल्लेख है । उनमें मुख्य चार ये हैं -

(१) बाल्यावस्था में किसी साधु द्वारा अपहृत होना तथा आदि शक्ति का चन्दन लगाना ।

(२) आक्रमणकारी फ़ौज को परास्त करना ।

(३) मरी गाय को जिला देना ।

(४) अनेक मनुष्यों को आशीर्वाद द्वारा पुत्र-प्राप्ति कराना ।

(५) कंगालियों को धनवान बना देना ।

गुरु- परिचयी में इनके गुरु का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, कुछ लोग इन्हें बूलला अथवा गोविंद साहब को इनका गुरु मानते हैं । किन्तु जगजीवन साहब के अनुयायियों का कथन है कि वे किन्हीं विश्वेसर पुरी के शिष्य थे ।

मृत्यु: परिचयी में इनकी मृत्यु का उल्लेख इस प्रकार है-

संवत् अठारह सै सतरह, करि आसन भे मौन ।

उनकी मृत्यु की यही तिथि प्रायः सभी विद्वानों को मान्य है ।

परम्परा-

यों तो परिचयीकार ने लिखा है कि सतगुरु जगजीवन साहब के उज्ज्वल चरित्र और साधना को देखकर तथा उनके चरित्र को वर्णन योग्य समझकर रचना की ओर स्वतः प्रवृत्ति हुई, किन्तु चरित्रों का स्रोत नाभादास का भक्तमाल ही ज्ञात होता है । कवि ने इसे इस प्रकार स्वीकार भी किया है-

भक्त भये हैं जक्त घनेरे । एहि गरंथा मह सब नहिं टेरे ।।
जग आए जगजीवन चरना । तौने समय के भक्तन वरना ।।
भक्तिमाल नाभै कहि भाखा । तेहिमा भक्तन्ह महिमा राखा ।।
चारिउ जुग के भक्त कहाए । नाभै तिनकी विरति बनाए ।।
रामेश्वर सत करि दाया। तबहिं बोध यहि ग्रंथ बनाया ।।
सतगुरु न दाया जेहि पर कीन्हा। तिन्हके हृदय गयान कइ दीन्हा।।

अंतिम पंक्ति में कवि ने केवल इतना स्वीकार किया है कि गुरु की दया से उसके हृदय में परिचयी लिखने का ज्ञान हुआ ।

यदि भक्तमाल तथा परिचयी के प्रसंगों की तुलना करें तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि भक्तमाल के कुछ प्रसंगों से प्रभावित होकर परिचयीकार ने उन प्रसंगों को यत्किंचित् परिवर्तनों के साथ अपना बना कर जगजीवन के लिए जोड़ दिया है। इस प्रकार के दो प्रसंग निम्नलिखित हैं, जिनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है -

(१) आक्रमणकारी फ़ौज को मार भगाने का।

(२) मरी हुई गऊ जिला देने का।

पहली घटना से मिलती जुलती एक घटना का वर्णन भक्तमाल छ०५२ में जयमल के प्रसंग में है - "जैमल के युधि मांहि अश्व चढ़ि आपुन धाये।" इसकी टीका प्रियादास ने दो कवित्तों (२३१-३२) में की है। घटना इस प्रकार है - मेरता के राजा जयमल को हराने के लिए किसी शत्रु ने आक्रमण किया। प्रभु ने जयमल के घोड़े पर सवार होकर युद्ध में परास्त किया बाद में जयमल ने घुड़साल में बंधे अपने घोड़े को प्रस्वेद से भीगा पाया। यद्यपि प्रसंगों के वर्णन में अन्तर है, किन्तु घटना एक ही है।

दूसरी घटना "मरी हुई गाय" को जिलाने की है। भक्तमाल में भी नामदेव तथा नन्ददास के प्रसंगों में इस घटना का वर्णन है। केवल दोनों के वर्णनों में अन्तर है। भक्तमाल तथा टीका की रचना इस परिचयी से बहुत पहले हुई है और परिचयीकार ने भक्तमाल का ऋण स्वीकार भी किया है इसलिए उक्त प्रसंगों का मूलस्रोत भक्तमाल ही जान पड़ता है।

(७) श्री रामदासजी की परिचयी[१३] "वक्ता थालबाल"

लेखक- परसराम

प्रस्तुत परिचयी रामसनेही सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त रामदास के विषय में उनके शिष्य द्वारा लिखी गयी है। यह आनन्दाश्रम बीकानेर द्वारा सं० १९९३ में प्रकाशित हो चुकी है। यह प्रति १९२ पृष्ठों की है जो ४२ विश्रामों में लिखी गयी है। परिचयी प्रारम्भ होने के पहले रामस्नेह सम्प्रदायाचार्य श्री हरिमानन्द जी महाराज का प्रताप-वैभव-वर्णन लगभग १० पृष्ठों में लिखा गया है। उसके पश्चात् खेड़ापा शाखा के रामसनेही सम्प्रदायाचार्य श्री रामदास जी की परिचयी

१३- "स्वामी रामदास तथा उनके भक्तमाल" शीर्षक अध्याय के आधार पर।

मिलती है । संक्षेप में परिचयी का वर्ण्य विषय निम्नांकित है:-

पहले गुरु की वन्दना, रामदासजी महाराज का जन्म, बाल्यावस्था बीतने पर भक्ति की ओर प्रवृत्ति, श्री सिंहथल गुरुधाम दर्शन वर्णन, गुरु हरिराम द्वारा परीक्षा, रामदास की गुरु द्वारा दीक्षा, सिंहथल यात्रा वर्णन, हरियानन्द महाराज को बैड़ापे बुलाना, रामदास की भक्ति का प्रभाव, भूत का उद्धार, इनके उत्तरों से राजा का प्रसन्न होना, पुनः सिंहस्थल गुरु-धाम वर्णन, अकाल पड़ने पर पानी बरसाना, कनीराम, हृदयराम आदि का प्रसंग, अनेकों चमत्कार दिखलाना, वृद्धावस्था आने पर इहलीला समाप्त करना, षोडश पार्षदों द्वारा लाए गए दिव्य विमान पर स्वर्ग सिधारना ।

कुछ महत्वपूर्ण तिथियों का उल्लेख इस प्रकार है -

(क) सं० १७८३ फाल्गुन त्रयोदशी के दिन रामदास जी का जन्म हुआ ।

(ख) सं० १८०९ वैशाख शुक्ल ११ को हरिरामदास जी से इन्होंने राम मंत्रोपदेश लिया ।

(ग) संवत् १८५५ में इनकी मृत्यु हुई[३४]।

<u>परिचयी का रचनाकाल-</u>

परिचयीकार ने इस ग्रंथ में स्वयं रचनाकाल का इस प्रकार उल्लेख किया है-

समत अठारौ जान, तामें वर्ष पिचावनों ।
भादव मास प्रमान, वदि एकादशि वार गुरु ।।१।।
वक्ता घाल सु बाल जो, परसराम लिख तास ।
भरतखण्ड मुरधर मुलक, राम महोलै बास ।।

इनकी अंतिम पंक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके वक्ता घालवाल जी तथा लिखने वाले उनके शिष्य परशुराम हैं । इनकी जीवनी के सम्बन्ध में

३४- समत अठारै तास मध, पंच वर्ष जुग जोय ।
तिथि सातम आषाढ़ वदि, भौमवार दिन सोयै ।। विश्राम ३९ ।।

अन्य कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

उपर्युक्त तिथि के अनुसार इस ग्रंथ की प्रामाणिकता असंदिग्ध है, क्योंकि स्वामी रामदास की मृत्यु के दो महीने चार दिन पश्चात् यह परिचयी समाप्त होती है ।

परम्परा-

प्रस्तुत परिचयीकार ने किसी भी परम्परा का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इस परिचयी में भी कई प्रसंग ऐसे आए हैं जो अन्य भक्तमालों तथा परिचयियों में भी मिलते हैं । परिचयी में केवल एक प्रसंग (प्रेत का उद्धार करना) ऐसा है जो प्रियादास के कवित्त ११८ में लगभग उसी रूप में मिलता है । यह प्रियादास के बाद की रचना है, इसलिए बहुत संभव है कि उनका कुछ प्रभाव इस रचना पर हो ।

(८) मलूकदास की परिचई - सुथरादासकृत-

प्रस्तुत परिचयी की प्रति मलूकदास के कई ग्रंथों के साथ नत्थी है[३५]। सम्पूर्ण ग्रंथ २०१ पृष्ठों का है । इसी के अन्त में परिचयी पृ० २१७ से २२३ तक है । ग्रंथ की पुष्पिका इस प्रकार है:-

"इति श्री मलूक परिचयी गाई सुथरादास संपूरनम शुभमस्तु संवत् १७८४ समय कार्तिक वदी अमावस जयन्तीवार मंगल वाको सिद्ध लिखा मलूकदास के दास दयालदास ।।

सुथरादास का संक्षिप्त परिचयः-

परिचयी में सुथरादास ने अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है । क्षिति मोहन सेन ने इन्हें कायस्थ कुल का बतलाया है[३६]। किन्तु इस ग्रंथ के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये मलूकदास के भानजे थे ।

३५- यह परिचयी प्रयाग के श्री हरिमोहन मालवीय द्वारा प्राप्त हुई थी, और उन्हें यह कड़े के महन्त ने दी थी ।

३६- "   ", पृ० १५१ ।

मलूक के भगिनी सुत जोई । मलूक को पुनि सिष्य है सोई ।
तिन हित सहित परिचयी भाषी । बसै प्रयाग जगत सब साषी ।।
श्री मलूक को सिष्य है सोई । मथुरादास प्रगट जग सोई ।

एक कायस्थ का किसी खत्री का भगिनीसुत होना असंभव है । फलतः यह निर्विवाद है कि सुथरादास जी खत्री ही थे । इनके वंशज इलाहाबाद(सिराथू) में आज भी पाए जाते हैं ।

गुरु की वन्दना से यह ग्रंथ प्रारम्भ होता है । इसके पश्चात् के प्रसंग इस प्रकार हैं – संत मलूकदास का जीवों के उद्धार के लिए पैदा होना, बालपन से ही साधु प्रवृत्ति, कम्बल का व्यापार करना, अनाज निकालने पर फिर भी उतना ही जाना, पिता सुन्दरदास का स्वर्गवास, रामानुज सम्प्रदायी किसी देवनाथ के पुत्र पुरुषोत्तम नामक व्यक्ति से दीक्षा लेना, तथा संतों में भ्रमण करना । इनके अनेक शिष्य होना, नाला बंधवाने का चमत्कार, मुरार स्वामी का मलूक से मिलने ९०० संतों के साथ कड़े आना, मुरार स्वामी का सत्कार करना तथा ९०० सन्तों को १० सेर खिचड़ी में भोजन कराना, मुरार का मकर संक्रान्ति के समय प्रयाग आना, वहाँ मलूक का अपने योगबल द्वारा ७०० अशर्फियाँ गंगा भेजने का चमत्कार, वनखण्डी का मलूक की शरण आना, मलूकदास का जगन्नाथ जाना, अनेक संतों तथा भक्तों का इनकी ओर आकर्षित होना, पुनः कड़ा आना, प्रयाग के किसी कायथ का शरणागत होना, रामदास, उदयराम, गरीबदास, हाथीराम, केशौदास, हृदयराम, मोहनदास, पूरनदास तथा बिहारीदास आदि के वर्णन, अकबर,जहांगीर,शाहजहां तथा औरंगजेब की नीतियों का संक्षिप्त विवरण । औरंगजेब का तीन अहदियों द्वारा बुलवाना, मलूकदास का योगबल से औरंगजेब के पास पहुंचना, भोजन को चमेली का फूल बनाना आदि चमत्कार, संसार से विरक्ति, भाई सुत रामसनेही को गद्दी का अधिकारी बनाना, हरिदास और लालदास की संक्षिप्त कथा, मलूक का इहलीला समाप्त करना, विमान की विचित्र कथा, जगन्नाथपुरी में प्रवेश, मन्दिर का तीन दिन बन्द रहना, भंडारा आदि।

परिचयी के आधार पर मलूकदास का संक्षिप्त परिचयः-

सुथरादासजी मलूकदास जी के ~~समकालीन~~ परवर्ती थे । अतएव नीचे इस परिचयी के आधार पर इनके जीवन चरित्र के विषय में प्रकाश डाला गया है ।

जन्म-स्थान-

सुथरादास ने इनके जन्मस्थान कड़ा था, तथा खत्री कुल में उत्पन्न होने का स्पष्ट उल्लेख किया है:-

"कड़े माहि खत्री के गेहा । प्रगटे भक्त आइ धरि देहा ।"

कड़ा ही इनका जन्मस्थान था, इसे सभी विद्वान मानते हैं । यहां पर एक सूफी साधक की तथा मलूकदास, रामसनेहीदास, और माधव आदि की समाधियां हैं । यह स्थान सांस्कृतिक समन्वय का केन्द्र रहा है । कन्नौज नरेश जयचन्दजी इसके संस्थापक थे ।

माता-पिता-

सुन्दरदास पिता को नामा । कालहि पाइ गये हरिधामा ।।

इस पंक्ति के आधार पर इनके पिता का नाम सुन्दरदास था । कदाचित् ये कम्बल आदि का व्यापार करते थे ।

जन्म - तिथि -

सुथरादास ने इनकी जन्मतिथि वैशाख कृष्ण पंचमी संवत् १६३१ लिखा है ।

वैशाख बदी तिथि पंचमी, संवत् सोरह सै इकतीस ।

जगत गुरू प्रगट भये, मलूक पुरूष जगदीश ।।

इस तिथि के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं मिलता ।

गुरु-

सुथरादासजी ने इनके गुरू के विषय में लिखा है:-

"दक्षिण देश द्राविण गाऊं । श्री बल्लभ प्रगटे तेहिं ठाऊं ।।

ताको हरिही आज्ञा दीन्हीं । गोकुल आय थापना कीन्हीं ।।

ताके विट्ठलनाथ महंता । जिनकी साख प्रगट भगवन्ता ।।

तेनके भावनाथ अधिकारी । देवनाथ तिनते सुखकारी ।।

ताके परषोत्तम सब जानैं । रामानुज सम्प्रदाय मानैं ।।

ठाकुर की आज्ञा ते चले । कड़े माहिं मलूक से मिले ।।

तब मलूक अपने घर लाए । दिक्षा लै उत्साह कराये ।।

यद्यपि इस परिचयी के आधार पर देवनाथ के पुत्र पुरुषोत्तम ही इनके दीक्षा गुरु थे, किन्तु कदाचित् इन्होंने पहले नाममात्र का शिष्यत्व ग्रहण किया था, बाद में जैसा कि अपने ग्रंथ सुखसागर में मुरारिदास का वर्णन किया है उससे यही प्रगट होता है कि इनको आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कराने वाले गुरु वस्तुतः मुरारिदास ही थे ।

सतगुर मिले मुरारजी, प्रगट छाप विस्वास[३७]।

रचनाएं-

बेलवेडियर प्रेस से "मलूकदास की बानी" नामक ग्रंथ प्रकाशित है । अप्रकाशित ग्रंथों की सूची इस प्रकार है-

(१) ज्ञानबोध (२) ज्ञान पयोधि (३) सुखसागर (४) रतनखान (५) भक्त बच्छावली (६) भक्ति विवेक (७) बारहखड़ी (८) राम अवतारलीला (९) ब्रजलीला (१०) ध्रुव चरित (११) विभव विभूति (१२) पद तथा शब्द संग्रह[३८]।

मिलान करने पर ज्ञात होता है कि "भक्त बच्छावली" में प्रायः उन्हीं भक्तों के नाम तथा प्रसंग हैं, जिनका उल्लेख "ज्ञान बोध" में है, अतएव इस ग्रंथ को ज्ञानबोध से लेकर कदाचित् किसी ने अलग कर दिया है ।

रचनाकाल-

परिचयीकार ने ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है किन्तु इसमें औरंगज़ेब (मृ०सं० १७६४) के शासनकाल का उल्लेख है इसलिए यह रचना उसके बाद अथवा उसकी समसामयिक होगी ।

विशेषताः-

प्रस्तुत परिचयी में अकबर, जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगज़ेब के शासनकाल

३७- सुखसागर, पृ० १९२ ।

३८- हरिमोहन मालवीय-संत मलूकदास और उनका साधना पथ, आज, साप्ताहिक, विशेषांक, सौर ९ वैशाख सं० २०१९ ।

का जो वर्णन है, उससे ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। अतएव प्रस्तुत परिचयी मलूकदास की जीवनी के लिए प्रामाणिक आधार मानी जा सकती है। इस ग्रंथ में उस समय का सामाजिक वर्णन दृष्टव्य है:-

राजहिं बहुत अनीति सुहाई,
बढ़ि वेद चहुं दिशा कराई।
परजा दया कर्म से हीना,
भाई बहिन को नाता छीना।
एक दिना ऐसी मन आई,
सब लोगन ते कहा सुनाई।

परम्परा:-

परिचयीकार ने इस ग्रंथ में इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। किन्तु इसमें जो प्रसंग उद्धृत है उनके आधार पर यह पता लगाने का प्रयत्न किया जायगा कि इस ग्रंथ में उनसे तथा अन्य भक्तमालों तथा परिचयियों से वर्णित प्रसंगों में किस प्रकार का साम्य है:-

इस परिचयी में कुछ अन्य भक्तों का उल्लेख इस प्रकार है:-
कबीर के घर बरा ही ढायो। रैदासहु के परिभम लायो।।
नामदेव हित जहं तहं धायो। धना भक्त को खेत जमायो।।
सेन रूप नृप मर्दन कर्यो। मीराबाई को विष हर्यो।।
तिल चन के कीर्ति कमाई। माधोदास के भये सहाई।।

इसमें कबीर, रैदास, नामदेव, धना तथा तिलोचन आदि के विषय में जो संक्षिप्त उल्लेख है उसका विस्तृत वर्णन अनन्तदास की परिचयियों में है।

निष्कर्ष-

अनन्तदास की परिचयी भक्तमाल के समान प्रसंगों के सम्बन्ध में यही निर्णय निकाला जा सकता है कि या तो तीनों रचयिताओं ने एक स्रोत से सामग्री ली हो अथवा एक दूसरे से लेकर अपने ग्रंथ में मिलाया हो किन्तु सुथरादास की परिचई की रचना सं० १७४१ या उसके बाद की है, अतएव परवर्ती है। अतः

यह सम्भव हो सकता है कि इन प्रसंगों को उक्त दोनों रचनाओं से लेकर इन्होंने अपने ग्रंथ मे मिला दिया हो ।

निष्कर्षः-

समस्त परिचयियों के अध्ययन के पश्चात् हम निम्नांकित परिणाम पर पहुंचते हैं ।-

(१) अनन्तदास की परिचयियों में पीपा, धना, नामदेव तथा रैदास के बहुत से प्रसंग नाभादास के भक्तमाल में वर्णित उन्हीं भक्तों के प्रसंगों से पर्याप्त साम्य रखते हैं । शेष भक्त,जैसे त्रिलोचन, कबीर, रांका-बांका के प्रसंगों में कोई विशेष समान प्रसंग नहीं पाए जाते ।

(२) शेष परिचयियों के कुछ प्रसंग कबीर परिचयी तथा भक्तमाल और उसकी टीका से मिलते हैं ।

(३) अन्य किसी परिचयीकार ने किसी भी पूर्व ग्रंथ की परम्परा का वर्णन नहीं किया है । केवल जगजीवनसाहब के परिचयीकार ने नाभादास की परम्परा का स्वतः उल्लेख किया है ।

(४) गोपीचन्द की परिचयी की परम्परा अज्ञात है ।

(५) प्रायः सभी परिचयीकारों का उद्देश्य अपने चरित-नायकों के विषय में अलौकिक तथा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णनकर अन्य सम्प्रदायवालों पर प्रभाव बतलाना ही ज्ञात होता है । अतः बीतक के अतिरिक्त इन परिचयियों में प्रायः ऐतिहासिकता का अभाव है । बीतक में यद्यपि देवनाथ के विषय में अलौकिक घटनाओं का समावेश किया है- किन्तु संत प्राणनाथ के विषय में इस प्रकार की किसी भी अलौकिक घटना का वर्णन नहीं है । इसमें जो तिथियां दी गयी हैं, सभी इतिहास की कसौटी पर खरी उतरती हैं ।

(६) प्रायः सभी परिचयियों में प्रमुख रूप से दोहा, चौपाई एवं सवैया छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

अध्याय ६

पुष्टिमार्ग की भक्त वार्ताएं तथा उनकी टीकाएं

अध्याय ६

पुष्टिमार्ग की भक्तवार्ताएं तथा उनकी टीकाएं

(१)चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताएं -

पुष्टिमार्गीय साहित्य में चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ताओं का बहुत महत्व है । जैसा नाम से स्पष्ट है, एक में चौरासी वैष्णवों तथा दूसरे में दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ताएं लिखी गई हैं । कहा जाता है कि आचार्यजी के मुख्य ८४ शिष्य थे तथा गुसांईं जी के दो सौ बावन । गद्य में लिखे होने के कारण उसका साहित्यिक तथा भाषा-परक मूल्य है । साथ ही अनेक भक्तों की जीवनियां गुम्फित होने के कारण उनका धार्मिक महत्व है । इनमें बहुत से भक्त कवि भी हैं जिनका हमारे हिन्दी साहित्य से सीधा संबंध है । उनमें मुख्य अष्टछाप के कवि हैं ।

जिस प्रकार भक्तमाल की वर्णनशैली का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि नाभादास के भक्तमाल पर नाथों तथा सिद्धों की वार्ताओं का प्रभाव पड़ा है, ठीक वही प्रवृत्ति वार्ताओं की भी है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि भक्तमाल का पूरा प्रभाव इन वार्ताओं पर भी पड़ा है । यह साम्प्रदायिक ग्रंथ हैं अतएव पहले सम्प्रदाय के प्रवर्तक को ही अलौकिक रूप दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप वल्लभाचार्य जी तथा गुसांईं जी वार्ताओं में "पूर्ण पुरुषोत्तम" के रूप में ही चित्रित किए गये हैं । श्रीनाजी में तथा इनमें कोई अन्तर नहीं माना गया है । उनका ऐसा रूतबा है कि उनका सेवक रात को वृन्दावन से प्रस्थान कर दूसरे ही दिन गुजरात से लौट आता है । कहने का तात्पर्य यह कि अपने सम्प्रदाय की महत्ता के लिए वार्ताकार हर प्रयत्न करता दृष्टिगोचर होता है । हम आगे देखेंगे कि इन जीवनियों में कहां कहां से प्रसंग लाकर जोड़े गये हैं तथा कहां कहां से किन अन्य सम्प्रदायों के प्रमुख भक्तों तथा राजघरानों से संबंध जोड़कर वल्लभ सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि की गई है ।

जैसा ऊपर बतला आये हैं, इन ग्रंथों का महत्व धार्मिक होने के साथ साथ साहित्यिक भी है । इस दृष्टि से इनका अध्ययन करना आवश्यक है, किन्तु

इन पर ऐसा साम्प्रदायिक पर्दा पड़ा हुआ है कि इनके असली रूप का पता ही नहीं ग्रं चलता । तरह तरह की वार्ताएं नित्य प्रति नवीन /तिथियों के साथ प्रकाशित होती जा रही है । साम्प्रदायिक लोग इन्हें गोकुलनाथकृत कहते हैं तो कुछ लोग इन्हें "कथित" कहते हैं, "रचित" नहीं । हमारा ऐसा विचार है कि भारतीय साहित्य में इस प्रकार की साम्प्रदायिक क्तरव्योंत अन्यत्र कठिनाई से मिलेगी । इनका मूल रचयिता कौन था तथा इनकी रचना कबहुई, इन सब बातों का पता लगाना एक तटस्थ शोधक के लिए कठिन समस्या हो गई है । यदि किसी प्रति में कहीं किसी तिथि का उल्लेख मिल भी जाता है तो उसकी प्रमाणिकता के संबंध में अनेक आपत्तियां उठ खड़ी होती हैं ।

कुछ लोग गोकुलनाथ जी को वार्ताओं का मूल रचयिता मानते हैं । आगे पृथक् पृथक् वार्ताओं को लेकर इस मान्यता की यथार्थता पर विचार किया जा रहा है ।

(क) चौरासी वैष्णवन की वार्ता-

इसके कई संस्करण निकल चुके हैं, किन्तु उनमें किसी ऐसी तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है जिसके आधार पर कुछ परिणाम निकाला जा सके । केवल एक आधार मैहै, जिसके बूते पर कहा जा सकता है कि यह रचना गोकुलनाथ की नहीं हो सकती ।

इस वार्ता में दो स्थल ऐसे आए हैं जिनमें गोकुलनाथ जी का नाम इस ढंग से मिलता है कि इसका मूल लेखक उनके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति जान पड़ता है । वे स्थल इस प्रकार हैं-

(क) "और एक दिन क श्री गोकुलनाथजी और श्री बालकृष्णजी ये दोऊ भाई मिलिके श्री गुसाईं जी सों कहे जो कुंभनदास जी कबहू श्री गोकुल नाहीं गये हैं ।"[१]

(ख) "पाछे कछुक दिन में श्री गुसाईं जी आप भी गोकुल पधारे हते और श्री बालकृष्णजी और श्री गोकुलनाथ जी द्वार में हते ।"[२]

इन्हीं कुंभनदास की वार्ता में आगे चलकर पृ० ४७९-८० तथा ८५ पर भी इनका नाम इसी प्रकार उल्लिखित है ।

१-चौरासी ~~वैष्णव~~ वैष्णव की वार्ता (कुंभनदास की वार्ता) अग्रवाल प्रेस मथुरा पृ० ४७८ ।

कुछ लोग कहते हैं कि यह हरिराय जी का स्वतंत्र प्रसंग है, किन्तु यह ज्ञातव्य है कि हरिराम जी मूल वार्ता के लेखक नहीं थे, क्योंकि ग्रंथ के प्रारम्भ में ही लिखा है "अथ चौरासी वैष्णावन की वार्ता श्री गोकुलनाथ जी प्रगट किये ताको भाव श्री हरिराम जी कहते हैं, सो लिख्यते ।"

इसी प्रकार का एक उल्लेख "कृष्णादासी रुक्मनी बहू जी की दासी हुती तिनकी वार्ता" शीर्षक में हुआ है[३]।

"कृष्णादासी ने बहूजी महाराज के पेट पै हाथ फेर्यो औ कह्यो जो महाराज अब पधारियै तब श्री गुसाईंजी श्रीनाथ जी द्वार पधारे हुते तब पेट में व्यथा भई और बालक को जन्म भयौ तब ता समय कृष्णादासी ने श्री गोकुलनाथ जी नाम धर्यौ । ता पाछें श्री गुसाईं जी को बधैया पठायौ । तब गुसाईं जी महाराज अडेल को पधारे । तब नामकरण कीयो । तब श्री बल्लभ नाम धर्यो । परि कृष्णादासी की कानि ते श्री गोकुलनाथ जी नाम राख्यौ । + + + पाछें श्री घनश्याम जी कौ जन्म भयौ तब नामकरण विचारण लागे । तब बल्लभ जी ने कह्यो जो श्री गोकुलनाथ जी नाम धर्यौ तब गुसांईं जी ने कह्यो जो यह नाम तौ तिहारौ है तब दोऊ नाम प्रमाण की यै सो श्री बल्लभकुल के विषै सब कोऊ श्री बल्लभ नाम कहते हैं और सब जगत में श्री गोकुल जी नाथ जी नाम प्रसिद्ध भये । और जन्म पत्र में श्री कृष्ण है सो गोप्य राख्यौ श्री गुसांईं जी ने कह्यो जो यह नाम गोप्य रहै ।"

इस प्रसंग के विषय में डा० हरिहरनाथ टंडन जी ने लिखा है कि (क) चौरासी वैष्णावन की वार्ता की किसी भी प्राचीन प्रति में उनके बचनों को आदर सहित नहीं लिखा गया है, तथा (ख) इस ग्रंथ के प्रणेता श्री गोकुलनाथ और इसके आदि लेखक हैं श्री कृष्णभट्ट इनका नाम और श्री हरिराय जी इसके भावनात्मक रूप के रचयिता है । इसलिए इनका नाम आदर के साथ कहीं कहीं आ गया है, जो उचित है । इस प्रकार का उल्लेख भी केवल कृष्ण-

---

३- चौ० वै० ५२वीं वार्ता, वें० प्रे०, पृ० २०४ ।

दास की वार्ता में है, और अन्यत्र नहीं ।

टंडन जी ने जो तर्क उपस्थित किए हैं वे कहां तक उनके मत की पुष्टि करने में सहायक हैं, इसपर नीचे विचार किया गया है:-

(१) उनका कथन कि किसी अन्य प्रति में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है, निरर्थक है, क्योंकि ऊपर मथुरा से प्रकाशित सं० १७५२ की प्रति का उद्धरण देकर इस बात की पुष्टि की गई है कि उसमें गोकुलनाथ का नाम आया है ।

(२) टंडन जी के कथनानुसार इसके आदि लेखक श्री कृष्णभट्ट जी तथा भावात्मक रूप के रचयिता श्री हरिराय जी हैं, अतएव गोकुलनाथ जी का नाम आदर के साथ आया है । किन्तु कृष्णभट्ट की मूल पोथी की कल्पना निराधार है । हरिराय जी को भी अधिक से अधिक टिप्पणीकार माना जा सकता है (यद्यपि इसमें भी संदेह है), मूल वार्ताकार तो कदापि नहीं माना जा सकता । इस प्रकार इन तर्कों के आधार पर चौरासी वैष्णवन की वार्ता को गोकुलनाथकृत नहीं माना जा सकता ।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता:-

यह वार्ता भी गोकुलनाथकृत कही जाती है । डा० धीरेन्द्र वर्मा ने डाकौर संस्करण से कुछ ऐसे प्रसंगों का उद्धरण देकर यह दिखलाया है कि एक लेखक स्वयं अपना नाम इस प्रकार से नहीं लिख सकता[४]। किन्तु कुछ लोग दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं को, जो क तीन जन्म लीला भावना वाली शुद्धाद्वैत एकेडमी कांकरौली से प्रकाशित है प्रामाणिक मानते हैं । उस ग्रंथ में भी इस प्रकार के उल्लेखों की भरमार है जिनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं-

(१) "सो श्री गुसाई जी के पास आ विराजे । तिनके नाम श्री गोविन्द-राम जी ।। श्री बालकृष्ण जी।। श्री गोकुलनाथ जी ।। ए तीनों भाई पदिक एक ही से पाइ अति प्रसन्न भए ।।"

४- विचारधारा, पृ० ११३ ।

(२) "एक समै श्री गोकुलनाथ जी श्री गिरिधर जी सौं कहे जो दादा ‡ आज्ञा देउ तो मैं यज्ञ करूं । + + + + + अब श्री गोकुलनाथ जी उहां ते फिरि आए ।"[५]

इस प्रकार के अनेक प्रसंग इस प्रति में भी मिलते हैं जिनसे यह भलीभांति सिद्धि हो जाता है कि गोकुलनाथ जी इसके लेखक नहीं थे ।

प्रथम उद्धरण के विषय में टिप्पणी दी गयी है कि यह प्रसंग कृष्णभट्ट की पोथी का है, किन्तु कृष्णभट्ट की पोथी है कहां?

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में एक ऐसी तिथि का उल्लेख हुआ है जो गोकुलनाथ के समय से मेल नहीं खाती, यथा "गंगा बाई ऐसी लीला के पद बनाय के श्रीनाथ जी के आगे गावती और गंगाबाई ने जितने पद बनाए श्री विट्ठल गिरिधरनौं ऐसी छाप धरी है और सोलह सौ अट्ठाइस में तिनको जन्म हतो और सत्रह सौ छत्तीस वर्ष सूधी रही हती एकसौ आठ वर्ष सूधी रही हती ।"[६]

गोकुल नाथ का समय सं० १६०८ के आसपास माना जाता है अतएव यह इनकी कृति नहीं हो सकती । इसी प्रकार लाड़बाई धारबाई वार्ता सं० १९९ द्वारा, जिसमें "औरंग बादशाह की जुलमी के समय" के उल्लेख हैं, यह भलीभांति सिद्ध है कि यह वार्ता गोकुलनाथकृत नहीं है तथा दोनों रचनाएं भिन्न भिन्न समय की हैं तथा दो व्यक्तियों की है ।[७]

एक अन्य ग्रंथ "भाव सिन्धु" की वार्ता है जिसमें आचार्य जी तथा गुसाईं जी के शिष्यों का उल्लेख है उससे भी इसी विचार की पुष्टि होती है कि ये दोनों वार्ताएं गोकुलनाथकृत न होकर अन्य किसी की हैं ।

(२) भाव सिन्धु वार्ता-

संक्षिप्त परिचय-

इस ग्रंथ में कुल इक्कीस वैष्णव भक्तों की वार्ताएं लिखी गई हैं ।

५- दो सौ वैष्णवन की वार्ता, शुद्धाद्वैत कांकरौली संस्करण, प्रथम ख०पृ० ११६ तथा तृतीय खण्ड, पृ० ६ ।

६- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, वै० गंगाबाई क्षत्राणी की वार्ता ।

७- डा० धीरेन्द्र वर्मा: विचारधारा, पृ० ११५ ।

इनमें से निम्नांकित तेरह वार्ताएं आचार्य महाप्रभु से संबंधित हैं,

(१) दामोदर दास हरसानी (२) कृष्णदास मेघन
(३) कृष्णदेव राजा (४) दामोदरदास संभलवारे
(५) पद्मनाभदास (६) तुलसा बाई
(७) रुक्मिनी बाई (८) रजोबाई (९) नारायणदास ब्रह्म०
(१०) संतदास चोपड़ा (११) गज्जन धावन (१२) कृष्णदास जी
(१३) श्यामदास ।

इनमें से राजा कृष्णदेव की वार्ता चौरासी वैष्णवन की वार्ता में नहीं आई है । विट्ठल गुसांई जी के छः शिष्य ये हैं:-

(१४) बाघाजी रजपूत, (१५) चंदाबाई, (१६) दोय भाई कुम्हार (१७) दुर्गावती रानी (१८) रूप मुरारीदास
(१९) निजवार्ता प्रसंग एक[८] (२०) निजवार्ता प्रसंग दो[८]
(२१) ताजबीबी की वार्ता ।

इनमें से १७वीं तथा २१वीं वार्ताएं २५२ में नहीं आई हैं । यह ग्रंथ तीन स्थानों से प्रकाशित है -

(१) सं० १९६५ में वैष्णव आणंद जी वेल जी प्रमार ने "धीराज सिंग स्टार प्रिंटिंग प्रेस (सौराष्ट्र) से प्रकाशित करवाया था । इसमें उन्होंने वार्ताओं को गोकुलनाथकृत माना है ।

(२,३) लल्लूभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद द्वारा इसकी दूसरी और तीसरी आवृत्तियां प्रकाशित हुई जिनका समय क्रमशः सं० १९७८ तथा १९९३ है । इन प्रतियों में वार्ताओं को गोकुलनाथ द्वारा लिखवाया हुआ माना गया है । भावसिन्धु का दूसरा भाग राजकोट के मंदिर में है, यह विशेष सूचना दी गई है ।

८- "निज वार्ता प्रसंग १, तथा २," आचार्य जी से सम्बन्धित हैं ।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या भावसिन्धु की वार्ता के आधार पर कह सकते हैं कि चौरासी वैष्णवन की वार्ता के रचयिता गोकुलनाथ जी हैं?

भावसिन्धु की वार्ता सं० २ कृष्णदास मेघन के सम्बन्ध में है जिन्हें आचार्य जी का शिष्य माना गया है। वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा उनकी सं० १७५२ की प्रति में भी, जो अग्रवाल प्रेस मथुरा से प्रकाशित है, कृष्णदास मेघन की वार्ता दूसरी संख्या पर है। भावसिन्धु वार्ता में उसके तथाकथित रचयिता श्री गोकुलनाथ जी का इस प्रकार उल्लेख है -

"सो श्री गोकुलनाथ जी श्री वल्लभाष्टक टीका में पूर्ण पुरुषोत्तम को साक्षात अनुभव कृष्णदास जी ने कीयो है ऐसे लिखे हैं।"(पृ० ३८)

इसी प्रकार संतदास की वार्ता सं० १० में एक प्रसंग आया है "सो या अभिप्राय सों श्री गोकुलनाथ जी ने वचनामृत में बहुत ही हर्ष युक्त प्रशंसा कीनी है।"[१] (पृ० १६८)। अतएव इस वार्ता के आधार पर स्पष्ट कह सकते हैं कि भावसिन्धु तथा चौरासी वैष्णवन की वार्ता के कर्ता गोकुलनाथ नहीं हो सकते, क्योंकि अपनी रचना में अपना ही नाम वे इस प्रकार से न लिखते।

कुछ लोगों का कहना है कि ये प्रसंग बाद में किसी ने जोड़ दिए होंगे, किन्तु यह मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि ये मूल वार्ताएं हैं और जब तक इनके प्रक्षिप्त होने के विषय में कोई पुष्ट प्रमाण न मिल जाय तब तक इन्हें मूल का ही मानना चाहिए। स्वयं इसके संपादक श्री द्वारिकादास जी पारीख ने एक ऐतिहासिक असंगति का संकेत इस प्रकार किया है -

इस ग्रंथ में गुसाईं जी के सेवक "ताजबीबी की वार्ता" शीर्षक २१वीं वार्ता लिखी गई है उसमें आचार्य जी के चित्र के विषय में लिखा गया है। "सो चित्र श्री महाप्रभु जी को ताज के माथे विराजे हैं। ता पीछे जहांगीर शाह तथा शाह-जहां ने नियम पूर्वक दर्शन करें पाते केतेक दिन पीछे कृष्णागढ़ के राजा ने शाहजहां की लड़ाई में सहायता करी जो पुरष्कार में वह चित्र कृष्णागढ़ के राजा को मिल्यो सो आप पधराय ले गए। सो कृष्णागढ़ के राजा के महल में आजहू आपको स्वरूप

१- संतदास चोपड़ा दे० चौ० वा० अग्रवाल प्रेस, मथुरा, ७६वें वैष्णव।

बिराजे है ।" (पृ०३०७)

उपर्युक्त प्रसंग कृष्णगढ़ के स्थापक रूपसिंह का है जिसका साम्प्रदायिक शरणकाल १७०४ वि०सं० है जबकि गोकुलनाथ जी विद्यमान नहीं थे[१०]। ताजबीबी ने गुसांई जी से दीक्षा ली थी । इनकी वार्ता "दो सौ बावन वैष्णवन" में क्यों नहीं लिखी गई यह भी प्रश्न विचारणीय है और इसके आधार पर इतना कह सकते हैं कि ये ~~वस्त~~ वार्ताएं गोकुलनाथ के समय के बहुत बाद की हैं ।

अन्य असंगतियां-

ऐसे ही दो और ऐतिहासिक प्रसंगों का उल्लेख इस ग्रंथमें हुआ है जो इस ग्रंथ को अप्रामाणिक सिद्ध करता है । निज वार्ता में "यंत्रबाधा" के प्रसंग का उल्लेख है जिसका सम्बन्ध हुमायूं से बतलाया गया है किन्तु वस्तुतः उसका संबंध सिकन्दर लोदी से है, उसी प्रकार "महाप्रभु" के चित्र का प्रसंग सिकन्दर लोदी से सम्बन्धित होना चाहिए जबकि उसे सम्राट् अकबर से सम्बन्धित दिखाया गया है ।

अतएव यह निर्विवाद है कि यह ग्रंथ गोकुलनाथकृत नहीं है तथा इस वार्ता के कुछ प्रसंग इतिहास के विरुद्ध लिखे गए हैं अतएव इसकी प्रमाणिकता भी संदिग्ध है । अब प्रश्न यह उठता है वार्ताएं यदि गोकुलनाथ की नहीं है तो इनका वास्तविक रचयिता कौन है, तथा इनका रचनाकाल क्या है ? उक्त ग्रंथों के आधार पर इसके मूल लेखक का पता लगाना बड़ा कठिन है । अतएव अनुमान का सहारा लेना पड़ता है । अनुमान से इतना कह सकते हैं कि कुछ वार्ताएं पहले से मौखिक रूप में चली आती रही होंगी फिर जैसे जैसे समय बीतता गया, नए नए प्रसंग तथा नई नई वार्ताएं जुड़ती गईं । उसके साथ साथ शिष्यों की संख्याओं में भी वृद्धि हुई होगी, बहुत बाद में कुछ साम्प्रदायिक व्यक्तियों द्वारा इनकी रचनाएं अन्य ग्रंथों के प्रसंगों को जोड़कर कुछ नाम-परिवर्तन के साथ

१०- "भाव सिन्धु" की भूमिका, पृ० २ ।

लिपि-बद्ध हुई होगी । ये वार्ता ग्रंथ अनुमानतः १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिपिबद्ध हुए जिसके लिए हमारे पास प्रमाण भी है । उनका उल्लेख आगे यथा-स्थान किया जायगा ।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में आचार्य जी के शिष्य-

जितनी ही विकट समस्या दोनों वार्ताओं के लेखकों और आख्यानों के विषय में हैं, उससे भी अधिक उलझन आचार्य जी के शिष्यों के सम्बन्ध में है । "श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक चौरासी वैष्णवन की वार्ता" से तो यही प्रतीत होता है कि वार्ता के सभी वैष्णव श्री आचार्य जी के शिष्य थे, परन्तु इस ग्रंथ में बानबे शिष्यों के विषय में लिखा गया होता तो यह कदाचित् चौरासी वैष्णवन की वार्ता न होकर आचार्य जी महाप्रभून के बानबे वैष्णवन की वार्ता हुई होती । अतः ज्ञात होता है कि कुछ वैष्णवन की वार्ताएं कदाचित् बाद में मिला दी गई हैं । सुविधानुसार इन वैष्णवों को हम तीन भागों में रख सकते हैं ।

(क) इस ग्रंथ में केवल छिहत्तर सेवकों के नाम ऐसे मिलते हैं जो आचार्य जी द्वारा दीक्षित हुए थे, अथवा उनके सेवक थे । इसका स्पष्ट उल्लेख चौरासी वार्ता के भीतर मिलता है । इन सेवकों की वार्ताओं में कुछ ही प्रसंग ऐसे हैं जो श्री गुसाँई जी से संबद्ध हैं । इनकी वार्ता संख्याएं निम्नांकित हैं-

१ २ ३ ४ ८ ९ ११ १३ १४ १५ १६ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २८ २९ ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५८ ५९ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७५ ७७ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८७ ८८ ८९ ९० ९२

(ख) लगभग दस सेवक ऐसे हैं जिनकी वार्ताएं केवल श्री गुसांई जी से संबद्ध हैं, अथवा उनके साथ की हैं । आचार्य जी से सम्बन्धित उनमें प्रसंग नहीं आए हैं । अन्त में केवल आचार्य जी के कृपापात्र अथवा भगवदीय लिखा हुआ है । उनकी वार्ता संख्याएं १०. १७. २७, ३०, ४३, ४४, ५७, ६०, ६१ औ ७८ हैं । इनमें

वार्ता १० तथा ६० के वैष्ण्वव आचार्य जी से सम्बंधित नहीं ज्ञात होते हैं ।

(ग) शेष छः सेवकों की वार्ताएं गुसाईं जी से ही संबद्ध हैं । ये वार्ताएं या तो किसी परिवार की होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से सम्मिलित की गई प्रतीत होती है । इसमें आचार्यजी से सम्बंध रखने वाले न तो प्रसंग ही हैं, न संबधित वैष्णाव उनके कृपा पात्र अथवा भगवदीय ही उल्लिखित है । इनकी वार्ता संख्याएं ५,६,७,११,८६,९१ है ।

भाग ख की वार्ताएं १० और ६० जो कदाचित् सम्बन्धित् वैष्णावों के, केवल महाप्रभून के कृपापात्र होने के कारण उसमें रख दी गई है और (ग) की वार्ताएं ५,६,७,११,८६,९१, इन आठ वार्ताओं के वैष्णाव आचार्य जी के शिष्य नहीं ज्ञात होते, अतः इन्हीं वार्ताओं पर क्रमशः नीचे विचार किया जायगा ।

वार्ता सं० ५ पद्मनाभ दास की बेटी तुलसा-

पद्मनाभ दास चौरासी वार्ता के चौथे वैष्णाव हैं, इन्होनें आचार्य जी से दीक्षा ली थी " सो पद्नाभ दास श्री आचार्य जी महाप्रभून के मुखते भगवत् प्रसंग सुन्यौ तब ते जानो जौए साक्षात पूरन पुरुषोत्तम ~~जननि के वचन~~ है सो पूरन पुरुषोत्तम जानिके पद्मनाभ दास श्री आचार्य जी महाप्रभून की शरण आए नाम पायौ पाछि समर्पण करवायौ" पद्मनाभदास के विषय में सात प्रसंग वार्ता के अन्दर आये हैं । उनमें प्रसंग ४ और ५ में तुलसा विषयक वार्तायें है । इन दोनों प्रसंगों में इसका कोई भी उल्लेख नहीं है कि तुलसा ने किससे दीक्षा ली थी ।

वार्ता ५ में तुलसा के विषय में दो प्रसंग आये हैं, इन दोनों प्रसंगों में आचार्य जी से संबद्ध कोई भी घटना नही हैं, दूसरा प्रसंग केवल श्री गुसाईं जी से सम्बद्ध है । घटना इस प्रकार है- श्री गुसांईं जी "तुलसा" के घर पधारते हैं, तुलसा भली-भांति सेवा करती है, और श्री गुसांईं जी पद्मनाभदास कीसंतति की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं । वार्ता की अंतिम पंक्ति में भी गुसांईं जी से संबंधित बातें है । "तब श्री गुसांईं जी बहुत प्रसन्न भये वह तुलसा ऐसी भगवदीय हुती ताते श्रीठाकुर जी अति सहि न सके ताते वा तुलसा के ऊपर श्री गुसांईं जी बहुत प्रसन्न

रहते ताते इनकी वार्ता कहां ताईं लिखिये ।। प्रसंग ।।२।। वैष्णव ।।५।।

अधिकतर चौरासी वार्ता के भीतर यह देखा गया है कि वार्ताएँ चाहे श्री गुसांईं जी से संबद्ध हो, फिर भी आचार्य जी के कृपा पात्र अथवा उनके भगवदीय अवश्य लिखा रहता है । परन्तु इस वार्ता में ये दोनों बातें भी नहीं हैं । यह संभव हो सकता है कि पद्मनाभ दास के परिवार की होने के कारण ही तुलसा की भी वार्ता चौरासी वैष्णवन की वार्ता में सम्मिलित कर ली गई है ।

वार्ता सं० ६ पद्मनाभदास कौ बेटा ताकी बहू पार्वती -

पार्वती की घटना इस प्रकार है । उसका हाथ पांव किसी विशेष रोग के कारण सफेद हो गया था। श्री गुसांईं जी की आज्ञानुसार पार्वती सेवा में संलग्न रही और "बहुर गुसांईं जी को पत्र लिख्यौ भेट पठाई और कह्यौ जो महाराज के प्रताप ते नीकी भई हों सो पत्र बांच के श्री गुसांईं जी बहुत प्रसन्न भये सो वह पार्वती बड़ी कृपापात्र भगवदीय हुती प्रभून के पर-मान चलती तातें श्री गुसांईं जी इनके ऊपर सदा प्रसन्न रहते यह वार्ता पद्मनाभदास के कुटुम्ब की ताते पद्मनाभदास जी बड़े भगवदीय हैं ताते इनकी वार्ता कहां ताईं लिखिये ।।प्रसंग।। १।। वैष्णव।।६।।

हो सकता है कि पार्वती ने श्री गुसांईं जी से दीक्षा ली हो, फिर भी इसलिए उसकी वार्ता इस ग्रंथ में आई हो कि उसके श्वसुर "पद्मनाभदास जी" महाप्रभून के सेवक थे । इस वार्ता में आचार्य जी का कहीं नाम भी नहीं आया है, केवल एक स्थल पर "प्रभून के पर मान चलती" लिखा हुआ मिलता है, परन्तु यह तो प्रत्येक पुष्टि मार्गीय के विषय में कहा जा सकता है ।

वार्ता सं० ७ पद्मनाभदास कौ नाती पार्वती का बेटा रघुनाथ-दास-

उनकी कथा इस प्रकार है । रघुनाथदास जी बनारस में रहकर शास्त्रों का अध्ययन करके गोकुल आते हैं । गोकुल में श्री गुसांईं जी द्वारा कही गई कथा को सुनते हैं, परन्तु समझ में कुछ भी नहीं आता है । परमानन्द सोनी की प्रार्थना पर "श्री गुसांईं जी ने रघुनाथदास को ग्रंथ दोयचार पढाय और मार्ग की प्रनालिका कही पाछें रघुनाथदास समझन लाग्यौ बड़ौ पंडित भयौ सो कही जो हतो निवारो होवगो श्री ठाकर जी की सेवा करूंगौं तबमाता ने कही जो

भले ई तू सेवा करि पाछें न्यारी भयौ + + + +।।

इस वार्ता में श्री रघुनाथ के विषय में यह कहीं नहीं आया है कि उन्होंने आचार्य जी से दीक्षा ली थी। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि श्री गुसांई जी ने रघुनाथदास के ग्रंथों का अध्ययन करवाया और साथ ही साथ मार्ग की प्रणालिका भी बतलाई थी। अतः यह माना जा सकता है कि इन्होंने श्री गुसाई जी से दीक्षा ली होगी। फिर भी इनकी वार्ता इस ग्रंथ में कदाचित इसलिए रख ली गई है कि ये महाप्रभून के सेवक पद्मनाभदास के पौत्र थे।

वार्ता सं० १०- पुरुषोत्तमदास की बेटी रुक्मनी-

पुरुषोत्तमदास जी वार्ता के नवें वैष्णव हैं। इन्होंने आचार्य जी से दीक्षा ली थी, प्रारम्भ की कुछ पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि "सो सेठ पुरुषोत्तमदास को श्री आचार्य जी महाप्रभून की आज्ञा हुती जो तुम पास कोई नाम लेन आवै ताको तुम नाम दीजियौ तातें सेठ पुरुषोत्तमदास नाम देते और अपने घर श्री मदनमोहन जी की सेवा करते।" आचार्य जी ने दीक्षा दी होगी उसके पश्चात् दूसरे व्यक्तियों को दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान की होगी। पुरुषोत्तमदास से संबद्ध पांच प्रसंग इस वार्ता के भीतर आये हैं। किसी में रुक्मिनी के विषय में कुछ भी नहीं मिलता है। "रुक्मिनी" विषयक तीन प्रसंग वार्ता सं० १० में आये हैं, और तीनों में आचार्य जी से संबंध रखने वाली कोई भी घटना नही है। केवल अंतिम पंक्ति में "श्री आचार्य जी महाप्रभून की ऐसी कृपापात्र भगवदीय ही ताते इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है सो कहां ताई लिखिये ।।प्रसंग ।।३।। वैष्णव ।।१०।। केवल कृपापात्र लिखकर, उन्हें आचार्य जी के सेवकों की गणना में रखने के लिये ऐसा किया गया प्रतीत होता है। वास्तव में पुरुषोत्तमदास जी ने आचार्य जी से दीक्षा ली थी, और रुक्मिनी उनकी कन्या थीं। हो सकता है कि महाप्रभून के एक सेवक के परिवार की होने के कारण ही इन्हें भी इस ग्रंथ में स्थान मिला हो।

वार्ता सं० ११ पुरुषोत्तम को बेटा गोपालदास-

इस वार्ता में कहा गया है कि ये आचार्य जी के ग्रंथ श्री सुबोधिनी जी" "श्री भगवत निबंध" और रहस्यग्रंथ" का पाठ करते थे। आचार्य जी से संबद्ध

कोई भी प्रसंग वार्ता के अन्दर नहीं आया है । श्री गुसांई जी के, सम्बन्ध में अवश्य यह कहा गया है कि उनके देहान्त पर उन्होंने इनकी सराहना की । इनकी वार्ता भी इस ग्रंथ में कदाचित् इसीलिए आई है कि ये पुरुषोत्तमदास के बेटे थे, जो महाप्रभु के सेवक थे । इस बात की पुष्टि वार्ता की समाप्ति के इस वाक्य से भी होती है "सो यह वार्ता सब सेठ पुरुषोत्तमदास के परिवार की भई ताते इनकी वार्ता को पार नाहीं सो अब कहां ताई लिखियै ।।प्रसंग।। १।।वैष्णव।।११।।

वार्ता सं० ६०- वैष्णव भगवानदास श्रीनाथ जी के भीतरिया-

वार्ता के अनुसार इन्हें श्री आचार्य जी ने श्रीनाथ जी की सेवा प्रदान की थी । इस वार्ता के प्रथम प्रसंग की अंतिम पंक्ति में स्पष्ट लिखा है कि "भगवानदास" श्री आचार्य जी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं सो इनकी वार्ता अब कहां ताई लिखिये।।प्रसंग।।१।।वैष्णव।।६०।। परन्तु उसी वार्ता में भगवानदास ने गुसांई जी के लिए "श्री विट्ठलेशचरण कमल" कहा है । आचार्य जी के विषय में इस प्रकार का कोई भी वर्णन नहीं पाया जाता है ।

दूसरी बात जो विशेष महत्व की है, दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता में वैष्णव १७२, श्री गुसांई जी के सेवक भगवानदास "भीतरिया" का नाम आया है । इन्होंने श्री गुसांई जी से दीक्षा ली थी - उसमें स्पष्ट कहा गया है कि "गुजरात में आपके श्रीगोकुल में श्री गुसांई जी के सेवक भये और श्रीगुसांई जी ने कृपा करके श्रीनाथ जी की सेवा में राखे तब भगवानदास श्रीनाथ जी की सेवा नीकी भांति सों करन लगे ।"

किंतु यह असम्भव प्रतीत होता है कि भगवानदास एक बार श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के शिष्य हुये हों, और दूसरी बार श्री गुसांई जी के ।

वार्ता सं० ८६- मानबी पटेल तथा इनकी स्त्री विरजो-

इस वार्ता में तीन प्रसंग आए हैं, तीनों प्रसंग श्री गुसांई जी से संबद्ध हैं, आचार्य जी महाप्रभुन का कहीं नाम भी नहीं है । पहले प्रसंग की कुछ पंक्तियां

"सो वे मावजी पटेल तथा इनकी स्त्री बिरजौ बरसदिन में दोय बेर श्री गोकुल आवते श्रीनाथ जी के दर्शन कौ तथा श्री गुसांई जी के दर्शन को आवते सो श्री गुसांई जी इनके ऊपर बहुत प्रसन्न रहते बहुत कृपा करते पाछे उनको कृष्णभट्ट को संग भयौ तब बिरजौ ने कृष्णभट्ट सों कह्यौ जो तुम हमारे माथे सेवा पधरावौ तौ भलौ है तब कृष्णभट्ट ने महाराज श्री गुसांई जी से बीनती करके कह्यौ और उनके माथे सेवा पधराई सो गुसांई जी ने श्री ठाकुर जी को पाट बैठायौ सो स्नेह पूर्वक सेवा करते सामग्री भांति सौं करते + + + + प्रसंग।।१।।

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों स्त्री पुरुष प्रतिवर्ष दो बार गोकुल में श्रीनाथ जी तथा श्री गुसांई जी के दर्शन के लिए आते थे। अंत में कृष्ण भट्ट की प्रार्थना पर श्री गुसाई जी ने "उनके माथे सेवा पधराई" अतः उन्होंने दीक्षा भी दी होगी।

दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि बहुधा वार्ताएं जो श्री गुसांई जी से संबद्ध हैं, उन वार्ताओं की अंतिम पंक्ति में भी श्री आचार्य जी महाप्रभून के कृपापात्र अथवा भगवदीय अवश्य लिखा रहता है, किन्तु इस वार्ता की अंतिम पंक्ति देखिये "सो वह बिरजौ ऐसी भगवदीय ही सो पद्मरावल के संगत ताते संग करनौ भगवदीय कौ करनों सो इनकी वार्ता को पार नाहीं ताते अब कहां ताईं लिखिए" ।।प्रसंग।।३।।वैष्णव।।८६।। इस सम्पूर्ण वार्ता में आचार्य जी का नाम भी नहीं आया है। हो सकता है कि इन लोगों ने दीक्षा तो श्री गुसांई जी से ली हो, और इनकी वार्ता इस ग्रंथ में मिला दी गई हो।

वार्ता सं० ९१-कृष्णदास-

चौरासी वार्ता में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि इनको श्री गुसांई जी ने गायों की सेवा दी थी। उन्होंने किससे दीक्षा ली थी अथवा किसके सेवक थे इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। प्रत्युत इनकी वार्ता के अन्त में केवल "सो वे कुम्भन दास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं ताते इनकी वार्ता को पार नाही ताते इनकी वार्ता कहां ताई लिखिये।।प्रसंग।।१।। वैष्णव।।९१।।" यही मिलता है। कुम्भनदास की वार्ता के ९०वें वैष्णव है।

बहुत भये और कुंभनदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून की शरण आये ।" परन्तु उनके पुत्र कृष्णदास के विषय में उस वार्ता में भी कोई उल्लेख योग्य बात नहीं आई है ।

इन्हीं कृष्णदास के विषय में दो०वा०वै० की वार्ता में "श्री गुसाईं जी के सेवक कुम्भनदास के बेटा कृष्णदास" शीर्षक आया है । ये उस वार्ता के १६४वे वैष्णव है । कृष्णदास विषयक वार्ताएं दोनों वार्ताओं (चौ० और दो० वा०) में लगभग एक ही हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि चौरासी वैष्णवन की वार्ता में वार्ता ९० "कुम्भनदास गोर्खा" की है और ९१वीं कृष्णदास के विषय की । कृष्णदास के साथ कुम्भन दास की कुछ घटनाएं आई हैं । दो० वा० में केवल कृष्णदास का नाम है । कृष्णदास की वार्ता चौरासी में जो आई है, उसमें आचार्य जी का कोई भी उल्लेख नहीं है । अतः यह असम्भव सा प्रतीत होता है कि पिता और पुत्र दोनों ने एक ही कृष्णदास को दीक्षा दी हो । यदि केवल कृपापात्र लिखने से ही, कृष्णदास आचार्य जी के सेवक नहीं ठहरते है, तो इसी प्रकार उपर्युक्त भाग (ख) के समस्त वैष्णव श्री गुसाईं जी के सेवक हो सकते हैं ।

कृष्णदास के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि कुंभनदास जी ने आचार्यजी महाप्रभून से दीक्षा ली थी, यद्यपि कृष्णदास को श्री गुसाईं जी ने दीक्षा दी थी और केवल इसी कारण कृष्णदास की वार्ता, इस ग्रंथ में आई है कि इनके पिता कुम्भनदास महाप्रभून के सेवक थे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त (ग) के आठ वैष्णवों में जिनकी वार्ता संख्याएं ५,६, और ७ है, एक पुत्री, दूसरी बहू और तीसरा पौत्र है, और ये पद्मनाभदास के परिवार के है । वार्ता १० और ११ के वैष्णव रुक्मिणी और गोपालदास दोनों पुरुषोत्तम दास के परिवार के हैं । एक पुत्री है तो दूसरा पुत्र । पद्मनाभदास और पुरुषोत्तम दास ने आचार्य से क दीक्षा ग्रहण की थी। तथा ये लोग उन्हीं के शिष्य थे । उन्हीं के परिवार के होने के कारण वार्ता संख्याएं ५, ६, ७, १० और ११ भी उन्हीं के साथ ग्रंथ में आई हैं, यद्यपि इन लोगों ने श्री गुसाईं जी से दीक्षा ग्रहण की थी ।

इसी प्रकार वार्ता ९१ के वैष्णव कृष्णदास जी भी कुंभनदास के पुत्र थे ।

कुंभनदास जी ने आचार्य जी से दीक्षा ग्रहण की थी । अतः पुत्र होने के कारण कृष्णदास की वार्ता चौरासी वार्ता मे आ गई । इन्होंने श्री गुसाईं जी से दीक्षा ग्रहण की थी, जिसकी पुष्टि दो० वा० वार्ता से हो जाती है । अतः उपर्युक्त ग्रंथ में आ गये हैं ।

शेष वार्ताओ ६० और ८६ के वैष्णव क्रमशः भगवानदास और भावजी पटेल तथा उनकी स्त्री विरजौ रह जाती हैं । भगवानदास ने निश्चयपूर्वक ही श्री गुसाईं जी से दीक्षा ली होगी, क्योंकि "विट्ठलेश चरण कमल" चौ०वा० में लिखा हुआ है । पुष्टि मार्गीय वैष्णव गुरु ही में ईश्वर भावना करते हैं । साथ ही साथ दो० वा० वार्ता १७२ में वही भगवानदास श्री गुसाईं जी के शिष्य लिखे हुए हैं । प्रश्न यह उठता है कि क्या जिनको एक बार श्री आचार्य जी ने दीक्षा दी होगी, उन्ही को श्री गुसाईं जी ने भी ? कम से कम अभी तक तो वैष्णव भक्तों में ऐसा नहीं देखा गया है कि एक गुरु का शिष्य उन्हीं के पुत्र से भी दीक्षा ले । अतः भगवानदास की वार्ता चौरासी वार्ता में कैसे लिखी गई-इ कारण अज्ञात है ।

वार्ता ८६ में भावजी पटेल तथा उनकी स्त्री विरजौ का नाम आता है । इस सम्पूर्ण वार्ता में आचार्य जी महाप्रभू का नाम तक नहीं आता है । सम्पूर्ण वार्ता श्री गुसाईं जी से संबद्ध हैं । और जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, "सेवा" उन्हें श्री गुसाईं जी ने पधराई ।

इस प्रकार इस वार्ता का भी उल्लेख चौ०वा० में कैसे हुआ यह विचारणीय है । अतः क्या हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त आठ वार्ताएं (५, ६, ७, १०, ११, ६०, ८६ और ९१) जिनके वैष्णवों के नाम क्रमशः तुलसा, पार्वती, रघुनाथ, रुक्मिनी, गोपालदास, भगवानदास, भावजी पटेल, उनकी स्त्री विरजौ और कृष्णदास हैं, बाद में ग्रंथ में किसी प्रकार आ गई हैं यदि बानबे सेवकों में से यही आठ निकाल दिए जायं तो शेष ८४ वार्ताएं महाप्रभु के ८४ सेवकों की रह जाती हैं ?

निष्कर्ष

पुष्टिमार्गीय वार्ता ग्रंथों में परस्परक तथा प्रत्येक में अलग अलग भी ऐसी बाते मिलती हैं जो उनके प्रामाणिक होने अथवा उनके प्रामाणिक रूप के संबंध में सन्देह उत्पन्न करती हैं । शास्त्रीय संपादन के अनंतर ही जब इन वार्ताओं

का अधिक प्रामाणिक पाठ निर्धारित हो जायगा, तभी इन वार्ताओं का ऐतिहासिक मूल्यांकन करना संभव होगा ।

(४) "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" का तुलनात्मक अध्ययन

कृष्णभक्त वैष्णव कवियों के इतिहास तथा परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित ब्रजभाषा गद्य की दृष्टि से इन दोनों वार्ताओं का विशेष महत्व है । परन्तु इन दोनों के रचनाकाल तथा लेखकों के सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सका है । यहां इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है, जिससे इन दोनों में रोचक साम्य दिखलाई पड़ेगा । इससे प्रायः यही धारणा होती है कि दोनों रचनाओं की वार्ताएं एक दूसरे से ली गई हैं । इन ग्रंथों मे शब्द-साम्य के साथ साथ वाक्य-साम्य भी पाया जाता है ।

दोनों रचनाओं का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

१- दोनों वार्ताओं में वही नाम और वही घटनाएं ।
२- दोनों वार्ताओं में दूसरे नाम किन्तु वही घटनाएं ।
३- दोनों वार्ताओं में वही नाम किन्तु दूसरी घटनाएं ।

१- दोनों वार्ताओं में वही नाम और वही घटनाएं-

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वार्ताएं तुलनीय हैं-

(१) कृष्णदास की वार्ता- यह चौ० वा० ९०, ९१ तथा दो० वा० १६४ में पाई जाती है । आगे परिशिष्ट १ के खंड (क), (ख), (ग) में क्रमशः तीनों वार्ताओं के आवश्यक अंश दिए गए हैं । घटनाएं इस प्रकार हैं- गोसाईं जी के पूछने पर कुंभनदास जी द्वारा "डेढ़ बेटा" का अर्थ बतलाना, कृष्णदास का गायों की सेवा करना, सिंह द्वारा मारा जाना और खिरक में चौ० वा० के अनुसार कुंभनदास तथा दो० वा० के अनुसार गोपीनाथ दास का कृष्णदास को बछड़ा पकड़े हुए देखना ।

दोनों ग्रंथों की वार्ताओं में साम्य इतना अधिक है कि कई स्थलों में शब्द साम्य के साथ साथ वाक्य-साम्य भी पाया जाता है । नीचे लिखे साम्य के स्थल ध्यान देने योग्य है-

चौ० वा०- श्री गुसांईं जी ने कह्यौं जो कुंभनदास डेढ कौ कारन कहा" ।

दो० वा०- "तब आपने आज्ञा करी दोढ़ कैसे होवै" ।

चौ० वा०- "कृष्णदास हैं सो श्रीनाथ जी की गायन की सेवा करत हैं तासों आधो हैं" ।

दो० वा०- "और कृष्णदास एक सेवा करे हैं जासुं आधो बेटा हैं" ।

चौ० वा०- सो वे कृष्णदास श्रीनाथ जी के गायन के ग्वाल हुते " ।

दो० वा०- "सो वे कृष्णदास श्रीनाथ जी की गायन की सेवाकरते " ।

इसी प्रकार का साम्य और स्थलों पर भी पाया जाता है । अंतर केवल इतना है कि एक तो चौ० वा० में दोनों वार्ताएं दो स्थलों पर अलग-अलग दी गई हैं- ९० कुंभनदास जी तथा ९१ कृष्णदास की वार्ता है, जब कि दो० वा० में एक ही ववार्ता (१६४, कृष्णदास की वार्ता) में इनका उल्लेख है । दूसरे, चौ० वा० के अनुसार कृष्णदास को बछड़ा पकड़े हुए कुंभनदास जी देखते हैं और दो० वा० के अनुसार उन्हें इस प्रकार गोपीनाथ देखते हैं ।

इन वार्ताओं में मुख्य और महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों ग्रंथों में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि एक ने दूसरे से प्रसंग लेकर अपने में मिलाया है जो निम्नांकित उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है-

चौ० वा० में यह उल्लेख है- "बहुत भये तो कौन काम के यह चत्रभुजदास की वार्ता में लिखे गये है।" इन चत्रभुजदास की वार्ता चौ० वा० में कहीं नहीं आई है, बल्कि ये दो० वा० के तीसरे वैष्णव हैं । इसी प्रकार दो वा० में (वार्ता १६४) अंतिक पंक्ति में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "ये बात कुंभनदास जी की वार्ता में लिखी है यातें इहां लिखे नहीं है" । यह कुंभनदास जी चौ० वा० के नब्बे संख्यक वैष्णव है । इनकी वार्ता दो० वा० में नहीं ह आई है ।

(२) इसी प्रकार का साम्य चौ० वा० की वार्ता ३८ (नरहर जोसी और जगन्नाथ जोसी की वार्ता) में आई हुई महीधर और फूलबाई की वार्ता, तथा दो वा० की वार्ता २१० में लिखी महीधर और फूलबाई की वार्ता में है। ये दोनों वार्ताएं परिशिष्ट १ के खंड (घ) तथा (ङ०) में क्रमशः दी गई हैं। इनका विषय "खिरालू" में बैठकर अलियान की आग बुझाना है। इन वार्ताओं में भी वाक्यों तथा शब्दों का साम्य पाया जाता है। उदाहरण स्वरूप-

चौ० वा०- "श्री गुसाईं जी कु अपने गृह में पधराये।"

दो० वा०- "श्री गुसाईं० जी कूं पधराय लाये।"

चौ० वा०- "जो अलियान गांव में आग लागी।"

दो० वा०- "सो एक दिन अलियाणा में आग लागी।"

दो० वा० के लेखक ने महीधर जी और फूलबाई की वार्ता में लिखा है-"सो ये बात जगन्नाथ जोसी की वार्ता में लिखी है।" ये जगन्नाथ जोसी चौ० वा० के अड़तीसवें वैष्णव हैं। इनकी वार्ता दो० वा० में कहीं भी नहीं आई है। अतः या तो उपर्युक्त दोनों वार्ताएं एक ने दूसरे से ली हैं अथवा दोनों ने अन्यत्र से पृथक्-पृथक् या किसी एक ही सूत्र से।

अंतर केवल इतना है कि चौ० वा० की अड़तीसवीं वार्ता में नरहर जोसी और जगन्नाथ जोसी के साथ महीधर और फूलबाई की वार्ता कुछ विस्तारपूर्वक है, और दो० वा० की वार्ता २१० में महीधर और फूलबाई की वार्ता अलग से आने के कारण संक्षेप में है।

२- दोनों वार्ताओं में दूसरे नाम किंतु वही घटनाएं

इस प्रकार की पांच वैष्णवों की वार्ताएं पाई जाती हैं। उनपर यहां अलग-अलग विचार किया जाता है - (१) सद्दू पांडे, मानिकचंद पांडे और इनकी स्त्री की वार्ता तथा कल्याण भट्ट की वार्ता- ये दोनों वार्ताएं क्रमशः चौ० वा० की वार्ता ८० और दो० वा० की वार्ता २२३ में पाई जाती हैं। परिशिष्ट २ के खंड (क) और (ख) में आगे क्रमशः दोनों वार्ताओं के आवश्यक अंश दिए गए हैं। दोनों वार्ताओं में एक ही घटना-अर्थात श्रीनाथजी

का स्वर्ण कटोरा दूध लेने वाले के घर छोड़ आना- का विकास हुआ है । दोनों वार्ताओं में साम्य निम्नांकित प्रकार का है-

चौ० वा०- "तब सवारे भये पाछें मंगल आरती के समय भीतरिया ने देखौ तौ मंदिर में कटोरा नाहीं।"

दो० वा०- "फेर सवारे श्री गुसांई जी श्रृंगार करत हते जब देखे तौ कटोरा नाहीं है ।"

चौ० वा०- "सोने को कटोरा ले आए ।"

दो० वा०- सोना को कटोरा ले के आन्योर में गए ।"

चौ० वा० -"नरो कटोरा ले आई और कह्यो जो यह कटोरा लेऊ रात्रि को लरिका भूलि आयौ है।"

दो० वा०- "तब देवका ने कही एक छोरा ले गयो है, और कटोरा घर गयो है।"

चौ० वा०- "तब सब जने बहुत प्रसन्न भए ।"

दो० वा०- "तब कल्याण भट्ट सुनके बहुत प्रसन्न भए ।"

अंतर केवल इन बातों में है कि चौ० वा० (वार्ता ८०) में श्रीनाथ जी दूध नरो के यहां पान करने गए थे, दो० वा० (वार्ता २२३) में कल्याण भट्ट की कन्या देवका के गृह, चौ० वा० में कटोरा भूलकर रखा गया है, और दो० वा० में दूध के बदले, इसके अतिरिक्त चौ० वा० में वार्ता किंचित् संक्षिप्त है और दो० वा० में कुछ विस्तृत ।

(९) अच्युतदास सारस्वत ब्राह्मण की वार्ता तथा छीत स्वामी की वार्ता - दोनों क्रमशः चौ० वा० में वार्ता ६३ और दो० वा० में वार्ता २ में पाई जाती हैं । परिशिष्ट २ के खंड (ग) और (घ) में आगे क्रमशः इन दोनों वार्ताओं के आवश्यक अंश दिए गए हैं । इन वार्ताओं की रचना कदाचित् आचार्य जी तथा श्री गुसांई जी को ईश्वर सिद्ध करने के अभिप्राय से हुई है । साथ ही श्री गुसांई जी तथा श्रीनाथ जी का अभेद सिद्ध करना भी इनका उद्देश्य है । दोनों वार्ताओं में घटना केवल यही है कि आचार्य जी तथा गुसांई जी मंदिर के भीतर भी दिखाई पड़ते हैं और फाटक खुलने पर बाहर भी।

इन दोनों वार्ताओं में थोड़े अंतर के साथ एक ही प्रसंग का विकास हुआ है, जैसा कि निम्नांकित वाक्यों से ज्ञात होता है-

चौ॰ वा॰- तब अच्युतदास ने मंदिर के किवाड़ खोलि के वा वैष्णव को श्री आचार्य जी महाप्रभून के दर्शन करवाये, तब देखे तो श्री आचार्य जी महाप्रभू विराजे हैं और पोथी देखते है ।

दो॰ वा॰- "पाछे श्री नवनीत प्रियाजी के दर्शन करवे कुं गयो भीतर देखे तो श्री गुसाई जी विराजे हैं और बाहर देखे तो विराजे हैं ।"

(३) परमानंददास कनौजिया ब्राह्मण की वार्ता तथा राजा लाखा की वार्तायें क्रमशः चौ॰ वा॰ ८९ और दो॰ वा॰ २४ में पाई जाती हैं । आगे परिशिष्ट २ के खंड (ङ॰) और (च) में क्रमशः इन वार्ताओं के आवश्यक अंश दिए गए हैं । दोनों वार्ताओं में एक ही घटना पाई जाती है, अर्थात् किसी रानी के हठात् पर्दे के भीतर दर्शन करने के लिये एकाकी आने पर श्रीनाथ जी का फाटक खोल देना । चौ॰(वार्ता ९) में इस विषय के तीन भिन्न-भिन्न प्रसंग आए हैं और दो॰ वा॰ (वार्ता २४) में इनमें से केवल तीसरा प्रसंग आया है । दोनो वार्ताओं में वाक्य साम्य के साथ साथ शब्द-साम्य भी है-

चौ॰ वा॰ -तब रानी ने कही जैसे हमारी रीति है सो होय तो दर्शन करें तब राजा ने कही जो श्री गोवर्धन दास जी के दर्शन में काहे को परदा है ।"

दो वा॰ - "एक दिन वाकी स्त्री ने कही जो उहां परदा की बंदोबस्ती होय तो मैं दर्शन करूं । तब राजा ने कही श्रीनाथ जी के यहां पडदा कैसो ।"

चौ॰ वा॰ - "श्री गोबर्धनदास जी ने सिंहपौर के किवाड़ खोल दीए सो सब भीर दौर के रानी के ऊपरि परी ।"

दो॰ वा॰-"श्री नाथ जी ने क्वांड़ खोल डारे सो अचानक रानी के ऊपर भीड़ पड़ी ।"

केवल नाम-परिवर्तन का कारण यही हो सकता है कि या तो परमानंद दास जी के प्रसंगों में से यही तीसरा प्रसंग निकालकर राजा लाखा के नाम के साथ जोड़ दिया गया हो, अथवा राजा लाखा वाला प्रसंग परमानंद दास जी की वार्ता में मिला दिया गया हो, या फिर यह भी संभव है

कि दोनों वार्ताओं मे यह प्रसंग अन्यत्र से लाया गया हो ।

परिशिष्ट २ के शेष खंडो में घटनाओं का यह तारतम्य नहीं मिलता जो उपर्युक्त घटनाओं में पाया जाता है । घटनाएं कुछ शब्दों के उलट-फेर तथा कहने के ढंग की भिन्नता के कारण नवीन सी मालूम होती है, किन्तु हैं एक ही ।

(४) दामोदरदास कायस्थ की वार्ता तथा मेहा धीमर की वार्ता-ये चौ० वा० की वार्ता ६८ तथा दो० वा० की वार्ता १५४ में पाई जाती हैं । इनके आवश्यक अंश आगे क्रमशः परिशिष्ट २ के (छ) और (ज) खंड में दिए गए हैं । दोनों वार्ताओं में निम्नलिखित प्रकार का वाक्य-साम्य पाया जाता है -

चौ०वा०- "तब श्री ठाकुर जी महराज ने बीरबाई सौं कह्यो जो मोको तौ सेवा में बिलम्ब होय है मो को इतनी अबार भई है और कोऊ न्हात नाहीं ताते तू ही न्हाउ तब वह बीरबाई श्री ठाकुर जी के आग्रह से उठि के प्रसूतका में से न्हाय के कछू दे के श्री ठाकुर जी की सेवा करके पाछे भोग समर्प्यों ।"

दो० वा०- "तब श्री ठाकुर जी ने आज्ञा करी जो रो मति न्हायकर मेरी सेवा कर तब वे स्त्री रीति प्रमाणें न्हाय के भगवत सेवा करी ।"

(५) प्रभूदास भाट की वार्ता एक तथा एक खंडन ब्राह्मण की वार्ता- ये क्रमशः चौ०वा० की वार्ता २६ और दो० वा० की वार्ता ९१ में पाई जाती हैं । आगे परिशिष्ट २ के खंड (झ) और (न) में क्रमशः दोनों वार्ताओं से आवश्यक अंश दिए गए हैं । इन दोनों वार्ताओं में एक ही घटना का विकास हुआ है । इनका विषय है -वैष्णवों की निंदा करने वालों का रात्रि के समय चार आदमियों द्वारा पीटा जाना । इन वार्ताओं में भी उसी प्रकार का साम्य है जैसा उपर्युक्त वार्ताओं में है-

चौ० वा० - "सो एक दिन रात्रि को सोयो हुतो तहां कोउ चारि जने हाथ में मुगदर लेके आये सो कीरति चौधरी को कुत मार्यो ।"

दो० वा० - "जब वो खंडन ब्राह्मण घर में सूतो तब चार जने वाकूं मुग्दर लैके मारन लागे ।"

इस प्रकार के बहुत से उदाहरण दोनों वार्ताओं में मिल सकते हैं जिनको एक दूसरे ने अपने इच्छानुसार घटाया-बढ़ाया है ।

३- दोनों वार्ताओं मे वही नाम किन्तु दूसरी घटनाएं

चौ० वा० और दो० वा० में आए हुए नामों की एक किंचित् लंबी तालिका परिशिष्ट ३ में दी गई है । किंतु उनकी घटनाएं एक दूसरे से नहीं मिलती । केवल नाम ही मिलने पर किसी निश्चित परिणाम पर पहुंचना असंभव समझकर यहां केवल उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाता है, जिनमें कुछ घटनाओं अथवा किन्हीं वातों में समझना पाई जाती है । नीचे दोनों ग्रंथों से एक एक नाम लेकर प्रत्येक पर विचार किया जायगा ।

(१) दोनों वार्ताओं में दो नारायणदास के नाम आए हैं, जिनकी वार्ताएं क्रमशः चौ० वा० ६५ तथा दो० वा० ९ में आती हैं । चौ० वा० ६५ के नारायणदास चौहान "ठट्ठे" के रहनेवाले थे और दो० वा० ९ के नारायणदास गौड़ देश के । इन दोनों नारायणदासों की कथाएं भिन्न हैं । समानता केवल इस बात में है कि दोनों किसी बादशाह के दीवान थे । चौ०वा० के नारायणदास "ठट्ठे" के बादशाह के "दीवान कुलकुल्ला हते" और दो०वा० के नारायणदास भी "बादशाह के दीवान हते", परन्तु ये कहां के बादशाह थे इसका उल्लेख नहीं है । कदाचित् दोनों नारायणदास एक ही रहे हों, क्योंकि किसी बादशाह के दीवान दोनों थे ।

(२) चौ० वा० ६० तथा दो० वा० १७९ में एक भगवानदास का नाम आता है । चौ० वा० में भगवान दास श्रीनाथ जी के भीतरिया हैं और दो० वा० मे श्री गुसांईं जी के सेवक भगवानदास भीतरिया हैं । उनकी घटनाओं में भी किंचित् साम्य है । हो सकता है कि ये दोनों भगवानदास एक ही रहे हों ।

(३) दोनों ग्रंथों में एक और भगवानदास का नाम आता है जिनकी वार्ता चौ० वा० ५९ और दो० वा० २४३ में पाई जाती है । चौ० वा० ५९ के भगवानदास को सारस्वत ब्राह्मण कहा गया है, और दो० वा० २४३ के विषय में यह लिखा हुआ मिलता है कि "सो वे भगवानदास जी सारस्वत रामराय जी श्री महाप्रभु जी के सेवक हते" । दोनों वार्ताओं में भगवानदास सारस्वत लिखा हुआ मिलता है, कदाचित् दोनों एक ही रहे हों ।

(४) दोनों ग्रंथों में रामदास तो कई आए हैं, परंतु उन रामदासों के विषय की कोई भी वार्ताएं समान नहीं हैं । केवल दो रामदासों में कुछ समानता है । चौ० वा० ४५ में रामदास चौहान तथा दो० वा० ७५ में रामदास खंभातवाले का नाम आता है । चौ० वा० के रामदास को श्रीनाथ जी की सेवा समर्पित की जाती है, और दो० वा० के रामदास खंभातवाले को श्रीनाथ जी के शाकघर की । हो सकता है ये दोनों रामदास वस्तुतः एक ही रहे हों ।

(५) इसी प्रकार चौ० वा० ९ में "पुरुषोत्तमदास क्षत्री बनारस में रहते" और दो० वा० १७९ में "पुरुषोत्तमदास काशीवाला" का नाम आता है। दोनों काशी या बनारस के रहनेवाले हैं । हो सकता है कि एक ही पुरुषोत्तमदास दोनों वार्ताओं में आए हों ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त पांच नाम दोनों वार्ताओं में इस ढंग से आए हैं कि वे किंचित् भिन्नता के साथ भी समान प्रतीत होते हैं । इनके विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही व्यक्ति को लेकर ये वार्ताएं चल पड़ीं, और समय बीतने पर वे ही वार्ताएं भिन्न - भिन्न व्यक्तियों की समझी जाकर दोनों ग्रंथों में अपने- अपने ढंग पर लिखी गईं ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों वार्ता-ग्रंथों मे परस्पर यथेष्ट आदान-प्रदान हुआ है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, स्वयं उक्त दोनों ग्रंथों में ही इस आदान-प्रदान विषयक उल्लेखों मे पाया जाता है -

(१) दो० वा० में जिस प्रकार वार्ता १६४ में लिखा गया है कि यह बात कुंभनदास जी की वार्ता में लिखी गई है, और कुंभनदास जी की वार्ता केवल चौ० वा० में आती है, उसी प्रकार चौ०वा० में वार्ता ९० में यह उल्लेख मिलता है कि "यह चतुर्भुजदास की वार्ता में लिखे हैं" और चतुर्भुजदास की वार्ता केवल दो० वा० में आती है ।

(२) दो० वा० में वार्ता २१० में लिखा गया है कि "ये बात जगन्नाथ जोसी की वार्ता में लिखा है" और जगन्नाथ जोसी की वार्ता केवल चौ० वा० की वार्ता ३८ में आती है ।

परिशिष्ट

दोनों वार्ताओं में वही नाम और वही घटनाएं

(क) चौ० वा० ९०, कुंभनदास गोरवा की वार्ता में कृष्णदास की वार्ता-

और एक समय कुंभनदास जी श्रीगुसाई जी के पास बैठे हुते तब कुंभनदास ने श्रीगुसाई जी सों कह्यौ जो महाराज बेटा डेढ़ है और हैंतौ साथ तब श्रीगुसाई जी ने कह्यौ जो कुंभनदास डेढ़ कौ कारन कहा तब फेरि कुंभनदास जी कहैं जो महाराज आखौ बेटा तो चत्रभुजदास है और आधौ बेटा कृष्णदास है सो श्रीनाथ जी की गायन की सेवा करत है तासौं आधौ है कुंभनदास जी कृष्णदास सों आधौ क्यों कहैं ताको हेत यह जो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने पुष्टिमार्ग प्रगट कीयो है सो पुष्टिमार्ग कहा है जो बृजभक्तन को हेंत यह मार्ग प्रगट कीयो है सो भगवदीय गाये हैं "जोसेवा रीति प्रीत बृजजन की जन हित जग प्रगटाई" सो बृजभक्तन की कहा रीति है जो श्रीठाकुर जी के सन्निधान तौ सेवा करे और श्री ठाकुर जी बन में पधारें तब गुणगान करें जो ये वस्तु होय तौ आखौ और इनमें ते एक होय तौ आधौ ताते चत्रभुजदास सेवा और गुणगान है ताते आखौ और कृष्णदास में एक सेवा है सो आधौ तब श्रीगुसाई जी श्रीमुख ते कहैं जो भगवदीय हैं तेई बेटा हैं और बहुत भये तौ कौन काम के यह चत्रभुजदास की वार्ता में लिखैं हैं।। प्रसंग।।६।।वैष्णव।।९०।।

(ख) चौ०वा० ९१, कृष्णदास की वार्ता-

सो वे कृष्णदास श्रीनाथ जी को गायन के ग्वाल हुते श्री गुसाई जी ने इनको गायन की सेवा दीनी हुती सो कृष्णदास श्रीनाथ जी की गायन की सेवा करते सवारे खिरक सेवा सौं पहुंच के फेर गायन चरायबे को जाते + + + सो एक दिन गाय चराय कैं पूछरी के पोर कृष्णदास गायन के संग आवत हुते सो सगरी गाय तौ खिरक में आई और गाय बड़ी हुती ताकौं औन बहुत भारती हुतौ सो वह गाय बहुत हरवे चलती सो वा गाय कौं आवत अँधियारौं परि गयौ सो तहां पर्वत के नीचे अँधियारे में एक नाहर निकस्यो सो गाय पै दोर्यो तब कृष्णदास कहैं जो अरे अधर्मी यह श्रीनाथ जी की गाय है तू भूखौ होय तौ मेरे ऊपर आऊ

तब इतने में गाय तौ भाजि खिरक मे गई और नाहर ने कृष्णदास को अपराध कियौ और ऊपर कहि आये हैं जो गाय सब खिरक में आई तब श्रीनाथ जी आप गाय दुहिवे को आये सो सब गाय ग्वाल दुहत हैं और वह बड़ी गाय खिरक में आई सो वह गाय कौं श्री दुहिवे को बैठे और कृष्णदास बछरा थामें हैं और वह गाय बछरा को चाटत है सो ऐसे दर्शन कुंभनदास जी कौं भये + + + ।।प्रसंग।।१।।वै० ९१।।

(ग) दो० वा० १६४, कुंभनदास के बेटा कृष्णदास-

सो वे कृष्णदास श्रीनाथ जी की गायन की सेवा करते और एक दिन कुंभनदास जी कु श्री गोसाई जी ने पूंछी तुमारे कितने बेटा हैं। तब बिन ने कही हमारे दोढ बेटा। तब आपनें आज्ञा करी दोढ कैसे होवै? आधे बेटा की समजण पाडौ तब कुंभनदास जी ने कहीं पुष्टि मार्ग मे भगवत्सेवा और भगवद्गुणगान ये दोनों मुख्य है तब दो काम करे सो बेटा आखौ और एक करे सो आधो। सो चतुर्भुजदास दो काम करे हैं सेवा और गुणगान और कृष्णदास एक सेवा करे हैं आसुं आधो बेटा है ये सुन के श्री गुसाई जी मुसकाये और आज्ञा करी वैष्णव कुं ऐसे ही चाहिये सो वे कृष्णदास दिवस रात गायन की सेवा करते और गाय चरावते हते। एक दिन गायन में सिंघ आयो जब गाय बचावे के लीयें कृष्णदास ने अपने प्राण दिये और सिंघ की झपाट रहे गये और जब कृष्णदास के प्राण छूटे वाही समय श्रीनाथ जी खिरक में गोपीनाथदास ग्वाल के पास गाय दोहते हते और कृष्णदास बछरा पकड़ रह्ये हते सो गोपीनाथदास देखते हते सो ये बात कुंभनदास जी की वार्ता में लिखी है यातें इहां लिखे नहीं है तो कृष्णदास जी ऐसे कृपापात्र भये ।।वै०१६४।।

(घ) चौ० वा० ३८, नरहर जोसी जगन्नाथ जोसी की वार्ता में महीधर और फूलबाई की वार्ता-

और एक समय नरहर जोसी को जिजिमान अलियान गांव में रहतौ ताकौ नाम महीधर जी हुतौ तथा वाकी बहन कौ नाम फूलबाई हुतौ तिनसौं नरहर जन जोसी ने कह्यौ जो तुम श्री गुसाई जी के पास नाम पावौ वैष्णव होउ तब

उन कह्यौ जो भले अवश्य तुम श्री गुसांई जी को पधरावो तब नरहर जोसी आपके श्री गुसाई जी को पधराय के अलियान में गये तब महीधर जी तथा फूलबाई सो कह्यौ जो श्री गोसाई जी पधारे हैं तब दोउ भाई बहन अत्यन्त प्रसन्न भये तब महीधर जी ने नरहर जोसी सों कह्यौ जो में श्री गुसाई जी कौ खाली हाथन कैसें पधराऊं तब महीधर जी नें नरहर जोसी सों रुपैया मोहरन की खीचरी करवाय कें न्यौछावर करिकें श्री गुसाईजी को अपनेघर मे पधराय - - - - - -
तब नरहर जोसी खिरालू अपने घर आये ता पाछें कितनेक दिन में वा अलियान गांव में आग लगी ता समय नरहर जोसी खिरालू के तालाब के ऊपर ते नित्य कर्म करिके तुलसी फूल की डारि तथा झारि हाथ में लैके घर आवत हुते ता समय नरहर जोसी के मन में आई जो अलियान गांव मै आग लागी तब नरहर जोसी पैंडे ठाड़े होय के तुलसी दल बीच में धरिकें झारी मे ते जल लैके अंजुली सो तुलसीदल के पास पानी की ~~धरा~~ धारा करिकें कुंडलिया कीनी इतने ही में आग बुझी और महीधर जी की हवेली घर सब बच्यौ + + + +। ।।प्रसंग २।।

(ङ०) <u>दो० वा० २१०, श्री गुसाई जी के सेवक महीधर जी और फूलवाई</u>

सो वे महीधर जी क्षत्री अलियाणा माम में रहते और फूलबाई बिनकी बेहेन हती और नरहरजोसी के यजमान हते और नरहरजोसी के सत्संग तें वैष्णव भये हते सो एक दिन अलियाणा में आग लागी हती सो नरहरजोसी ने खिरालू गाम में बैठे बैठे बुझाई हती सो ये बात जगन्नाथ जोसी की वार्ता में लिखी है। फेर महीधर जब सरकार के कामदार भये और श्री गुसाई जी कु पधराय लाये और श्री गुसाई जी बिनके घर बहुत दिन बिराजे जब श्री गुसाई जी भाईला कोठरी के इहां पधारते तब महीधर जी के उहां पधारते सो महीधर जी को चित्त श्री गुसाई जी बिना कहुं लगतो नहीं अ अब सूधी श्री गुसाई जी की बैठक अलि-याणा में प्रसिद्ध + + + ।।वैष्णव।।२१०।।

<u>परिशिष्ट २</u>

<u>दोनों वार्ताओं में दूसरे नाम किन्तु वही घटनाएं</u>

(क) <u>चौ० वा० ८०, सद्दू पांडे मानिकचंद पांडे और इनकी स्त्री</u>

और एक दिन श्रीनाथ जी उनके घर दूध पीवे को सोने को कटोरा ले आये

तब श्रीनाथ जी नें नरो सों कह्यौ जो दूध लाऊ तब नरो तौ वा कटोरा में दूध डारत जाय और श्रीनाथ जी आप आरोगत जाय सो दूध पीके श्रीनाथ जी आप तौ पधारे और कटोरा वहां ही भूलि आये तब सवारे भये पाछें मंगल आरती के समय भीतरिया नें देखो तौ मंदिर में कटोरा नाहीं तब इतने में नरौ कटोरा ले आई और कह्यो जो यह कटोरा लेऊ रात्रि को लरिका भूलि आयौ है तब सब जने बहुत प्रसन्न भये वह नरो ऐसी भगवदीय ही ।। प्रसंग।।२।।

(ख) दो॰ बा॰ २३३, कल्याण भट्ट -

सो एक समय श्री गोवर्धनाथ जी के दूध धरिया नें दोय कसेडी दूध कमती लियो जब रात कुं श्री गोवर्धननाथ जी उठे और सोना को कटोरा लेके आन्योर में गये सो दश पंद्रह वर्ष को छोरा को रूप धरके गये सो कल्याण भट्ट जी की बेटी देवका हती सो घर में दूध बहुत होतो हतो सो बेच देती हती तब श्री गोवर्धन नाथ जी ने पूछी तेरे पास दूध है तब वा देवका ने कही जो है साडा चार पैसा शेर के लेऊंगी तब श्रीनाथ जी ने साडा चार पैसा कबूल करे और कटोरा में वे देवका सों दूध लियो + -। + चार सेर दूध लियो और खांड डार के पान कियो तब वा देवका ने पैसा मांगे तब श्रीनाथ जी ने कही मेरो कटोरो घर में धर राख काल्ह कटोरा ले जाऊंगो और पैसा देजाऊंगो तब श्री गोवर्धन नाथ जी पौढ़े फेर सवारे श्री गुसांई जी श्रृंगार करत हते जब देखे तो कटोरा नाहीं है तब सब भीतरिया ढूढ़वे लगे तब श्री गोवर्धन नाथ जी ने श्रीगुसांई जी सु कही जो दूध धरिया ने दूध ओछो राख्यो हतो तब मैं देवका के पास दूध और खांड बेचाती लेके पी आयो हुं और कटोरा गहने राख आयो हु तब ये बात श्री गुसांई जी ने श्री कल्याण भट्ट सु कही तबकल्याण भट्ट सुनके बहुत प्रसन्न भये तब घर जायके देवका सु पूंछी जो काल्ह तेरे पास कोई कटोरा धर के दूध ले गयो है? तब देवका ने कही एक छोरा ले गयो है, और कटोरा धर गयो है तब कल्याण भट्ट जी ने कही ये तो श्रीनाथ जी हते, तब कटोरा देखे तो सोना को है तब कल्याण भट्ट जी लेके श्री गुसांई जी कुं दियो तब श्री गुसांई जी देवका की सराहना करन लगे और कही जो याके भाग्य की कहा बड़ाई करनी । + + + ।। प्रसंग ।।२।।

(ग) चौ० वा० ६३, अच्युतदास सारस्वत ब्राह्मण ।

सो एक समय श्री आचार्य जी महाप्रभून के संग अच्युतदास ने पृथ्वी परिक्रमा दीनी हुती सो आचार्य जी महाप्रभून ने अच्युतदास को अपनी पादुका जी की सेवा दीनी ताते आचार्य जी महाप्रभू अच्युतदास को नित्य दर्शन देते जो आचार्य जी महाप्रभून ने संन्यास ग्रहण कियौ सो केवल उनके भावार्थ कीयौ तब एक वैष्णव सो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यौ जो एक डौंगी काशी को भाडे कर लाउ तब वह वैष्णव डौंगी भाडे कर लाये ताके ऊपर श्री आचार्य जी महाप्रभू चढ़ि के बनारस पधारे तहां संन्यास डेढ़ महीना ताई राख्यौ, तब वह वैष्णव जो काशी में गयो हौ सो काशी तें कड़ा में आयौ तब अच्युतदास तथा सब वेष्णावन सों कह्यो जो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने संन्यास ग्रहण कियौ फेरि काशी पधारे सो उहां देढ़ महीना ताई रहे पाछे आसुर व्यामोह लीला दिखाई तब अच्युतदास ने वा वैष्णाव सौं कह्यौ जो तों को भ्रम भयो होयगो तब वा वैष्णव ने कह्यो जो मैं आचार्य जी महाप्रभून के साथ हुतौ सो काशी ते देखिकें अबही हौं आयो हौं तब अच्युतदास ने कह्यौ जो ऐसी प्रभू कबहूं न करे जो जीवन को आसु व्यामोह लीला दिखावत हैं तब अच्युतदास ने मंदिर के किवाड खोलि के वा वैष्णाव को श्रीआचार्य जी महाप्रभून के दर्शन करवाये तब देखे तो श्री आचार्य जी महाप्रभू विराजे हैं और पोथी देखत हैं तब वा वैष्णाव ने दंडौत कीनी तब आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यौ तुम कछू संदेह मति करौ यह प्रागट्य लौकिक रीति सों देह धरे की लीला है और सिंहासन बैठकें अलौकिक लीला नित्य है + + + ।। प्रसंग ।।१।। वै० ।।६३।।

(घ) दो० वा० २, छीत स्वामी ।

छीत स्वामी मथुरा में रहते हते + + + छीत स्वामी देखि के मन में विचारी जो ये तो साक्षात् ईश्वर हैं जब छीत स्वामी ने कही जो महाराज मोकुं शरण लेओ जब श्री गुसांई जी ने छीत स्वामी कुं नाम सुनायो पाछे श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करवे कुं गये भीतर देखे तो श्री गुसांई जी बिराजे हैं और बाहेर आय के देखे तो विराजे हैं जब छीत स्वामी ने विचारी + + + दूसरे दिन छीत

स्वामी कुं० साक्षात् कोटि कंदर्प लावण्य पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भये और भगवल्लीला को अनुभव भयो और श्री गुसांई जी तथा श्री ठाकुर जी के स्वरूप में अभेद निश्चय भयो दोनो स्वरूप एक है ऐसे जानन लगे तब छीत स्वामी गोपालपुर श्रीनाथ जी के दर्शन कुं गये उहां श्रीनाथ जी के पास श्री गुसांई जी कुं देखे जब बाहेर निकसि के पूंछी जो श्री गुसांई कब पधारे हैं तब उहां के लोगन नें कही श्री गुसांई जी तो गोकुल विराजे हैं जब छीत स्वामी उहां ते श्री गोकुल में आय के श्री गुसांई जी के दर्शन किये जब छीत स्वामी ने ये निश्चय कियो जो श्रीनाथ जी तथा श्री गुसांई जी एक ही स्वरूप है + + + ।। प्रसंग ।।१।।

(ङ०) चौ० वा० ८९, परमानंददास कनौजिया ब्राह्मण –

+ + + ऐसे पद परमानंददास नें गायौ ता पाछें श्री गोवर्धननाथ जी के मंगला के दर्शन खुले तब परमानंददास ने श्री गावर्धननाथ जी सो पूछौ जो आप तातौ दूध क्यों आरोगत है तब श्रीनाथ जी ने कह्यो जो ये हमको समर्पत है सो आरोगत हैं ता पाछे परमानंद दास जी नित्य कीर्तन करिकें सुनावते तब ता समय एक राजा दर्शन को आयों सो श्री गोवर्धन नाथ जी के दर्शन करे तब फेरि आयकें रानी सों कही जो गोवर्धननाथ जी ठाकुर बहुत सुंदर हैं ताते तू जाय के दर्शन करि आउ तब रानी ने कही जो जैसे हमारी रीति है सो होय तो दर्शन करें तब राजा ने कही जो गावर्धननाथ जी के दर्शन में काहे को परदा है तब रानी ने मानी नहीं तब राजा ने भी आचार्य जी महाप्रभून सों बीनती कीनी जो महाराज में तो रानी सों बहुत कहत हों परि वह आवत नाहीं ताते आप कृपा करिकें दर्शन करवावौ तब वह करै तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कही जो यहां ले आवो जो प्रथम वाकों एकांत में दर्शन करवावेंगे ता पाछें और लोग दर्शन करेगे तब राजा अपनी रानी को लिवाय के श्री गोवर्धननाथ जी के दर्शन करवाये सो सब लोग सरकि गये तब रानी दर्शन करिवे लगी तब इतने में श्री गोवर्धननाथ जी ने सिंहपौर के क किवाड़ खोल दिये सो सब भीर दौर के रानी के ऊपरि परी सो रानी के सब वस्त्र निकस परे और बहुत लज्जित भई तब राजा ने रानी सों कही जो मैंने तोसों पहिले ही कह्यौ हुतौ जो श्री ठाकुर जी के दर्शन में काहे को परदा है ये व्रज के ठाकुर हैं इनने काहू को परदा राख्यौ नाहीं तब वा समय परमानंददास जी ने पद गायौ । + + + प्रसंग ।।२।।

(च) दो॰ वा॰ २४, राजा लाखा -

वह राजा ब्रज में तीरथ करवे कों आयौ और श्रीनाथ जी के दर्शन करिके श्रीगुसाईं जी के शरण गयौ और श्रीनाथ जी के स्वरूप में ऐसे आसक्त भयो जो श्रीनाथ जी बिना वाकूं कछू भावे नहीं श्रीनाथ जी को रटन तिनकूं अष्ट प्रहर रहेतो हतो एक दिन वाकी स्त्री ने कही जो उहां पडदा की बंदोबस्ती होय तो मैं दर्शन करूं तब राजा ने कही श्रीनाथ जी के पडदा कैसो जब राणी ने श्री गुसाईं जी सं परबारी बीनती करवाय के पडदा को बन्दोबस्त करवायो और दर्शन को आई जब एक राजा भीतर हतो और कोई मनुष्य नहीं हतो सो श्रीनाथ जी ने कवांड खोल डारे सो अचानक रानी के ऊपर भीड़ पड़ी सो राजा ने कही मैंने कह्यो हतो जो इहां पडदा नहीं चले और श्रीनाथ जी ने कवांड खोले वा राजा की बात सत्य करवे के लिये खोले सो ऐसे श्रीनाथ जी में आसक्त हते श्री गुसाईं जी की कृपातें बिनकों भाव सदैव ऐसो रहतो ।।वार्ता संपूर्ण ।। वैष्णव।।२४।।

निम्नलिखित वार्ताओं में आई हुई घटनाओं में वह समानता नहीं पाई जाती जो उपर्युक्त वार्ताओं में है, परंतु घटनाएं एक ही हैं ।

(छ) चौ॰ वा॰ ६८, दामोदरदास कायस्थ -

सो तिनकी सेव्य ठाकुर श्री कपूर राय जी सो बहुत गौर स्वरूप हुतौ तिनके पास श्रीनवनीत प्रिया जी बैठिते सो एक समय दामोदरदास की स्त्री बीरबाई ताके गर्भ रह्यौ पाछें प्रसूत भई सो पुत्र जन्म भयौ सो घर की बहू बेटी सब प्रसूत के कामकाज करन लागी सो श्री ठाकुर जी की सेवा में विलंब भयौ बीरबाई प्रसूतक में ते बहुत कहै जो कोऊ सेवा में न्हाय श्री ठाकुर जी की सेवा में अबेर होत है परि कोई नाही न्हाय तब श्री ठाकुर जी ने बीरबाई सो कह्यौ जो तू स्नान करिके सेवा क्यों नाहीं करत है तब बीरबाई प्रसूतक में ते उठिके श्री ठाकुर जी सों कह्यौ जो महाराज मेरी तो यह व्यस्था है मोमों तो सेवा में आवनो नाहीं प्रसूतिका में हूं अपरस छूइ जायगो तब श्री ठाकुर जी महाराज ने बीरबाई सौ कह्यौ जो मोकों तौ सेवा में विलंब होय है मोको इतनी अबार भई है और कोऊ

न्हात नाहीं ताते तू ही न्हाउ तब यह बीरबाई श्री ठाकुर जी के आग्रह ते उठिके प्रसूतका मे ते न्हाय के कछू दे के श्रीठाकुर जी की सेवा करिके पाछै भोग समर्प्यौ + + + प्रसंग ।।१।। वैष्णाव ।।६८।।

(ज) दो० वा० १५४, मेहा धीमर -

+ + + मेहा गोपालपुर में आय के सेवा करन लग्यो फेर मेहा की स्त्री को गर्भ भयो और प्रसव को समय भयो मेहा गाम में नहीं हतो तब मेहा कुं बेटा भयो तब मेहा की स्त्री कुं बड़ा पश्चाताप भयो ये दुष्ट बेटा क्युं भयो मेरी भगवत् सेवा छूटी ऐसे विचार के रुदन करवे लगी तब श्री ठाकुर जी ने आज्ञा करी जो रो मति न्हाय के मेरी सेवा कर तब वे स्त्री ने रीती प्रमाणे न्हाय के भगवत्सेवा करी फेर जब मेहा आयो तब मेहा ने कही तैंने ऐसी अवस्था में सेवा क्यूं करी वा स्त्री ने कही मोकुं श्री ठाकुर जी ने आज्ञा करी है तब मेहा सुनि के बहुत प्रसन्न भयो और मेहा ने बहुत नवे पद करके भगवल्लीला अनेक प्रकार सुं गाई है सो वे मेहा श्री गुसाईं जी के ऐसे भगवदीय कृपा पात्र हते ।। वैष्णाव ।।१५४।।

(झ) चौ० वा० २६, प्रभूदास भाट सीहनंद के वासी-

सो वे प्रभूदास भाट श्री ठाकुरदास जी की सेवा नीकी भांति सों करते सो बहुत दिन सेवा करत बीते पाछैं वृद्ध भयौ तब बहुत आशक्ति भये तबजानि यह देह दिन चार मैं छूटेगी तब सावधानता छूटी असावधान भये तब सगरे मिलके प्रभूदास को प्रथीदकतीर्थ है वहां ले गये जब प्रथीदक आयौ तब सावधान भये + + + सब प्रसाद ले चुके तब सबन सों प्रभूदास ने जै श्रीकृष्णा कह्यौ और प्रभूदास ने तत्काल देह छोडी पाछैं सीहनंद में एक कीरत चौधरी हुतो सो प्रभूदास की निन्दा करन लागौ और कह्यौ जो प्रभूदास प्रथीदिक ते उलटौ फिर आयौ और सीहनंद में देह छोडी ऐसी निन्दा करतो सो एक दिन रात्रि को सोयो हुतो तहां कोऊ चारि जने हाथ में मुगदर ले के आए सो कीरत चौधरी को बहुत माज्यौ तब चौधरी ने कह्यो जो तुम मोकों क्यों मारत हौ तब उनने कह्यौ जो प्रभूदास की निन्दा तू क्यों करत है तब कीरत चौधरी ने कह्यौ जो अब मैं निन्दा न करूंगो और बहुत मनुहार करी तब उन कह्यो जो तू फेरि निन्दा करेगो तो तोको याही

भांति सो मारगे तब कीरत चौधरी ने कह्यो जो ब अब तें निन्दा न करुंगो भक्ति करुंगो + + + तब सबन को कीरत चौधरी ने अपने देह की व्यवस्था दिखाई और कह्यौ जो रात्रि को कोऊ चारि जने आयके मार मार हाड चूरन कियौ ताते भगवदीय की निन्दा सर्वथा न करनी + + + ।। प्रसंग १ ।।वै० ।।२६।।

(न) दो० वा० ९१, एक खंडन ब्राह्मण -

+ + + सो वह खंडन ब्राह्मण शास्त्र पढ्यो हतो सो जितने पृथ्वी पर मत है सबको खंडन करतो ऐसो वाको नेम हतो याही ते सब लोगो ने वाको नाम खंडन पाड्यो हतो सो एक दिन श्री महाप्रभु जी के सेवक वैष्णावन की मंडली में आयो सो खंडन करन लग्यो वैष्णावन ने कही जो तेरे शास्त्रार्थ करनो होवै तो पंड्ति के पास जा हमारी मंडली में तेरे आयवे को काम नहीं इहां खंडन मंडन नही है भगवद्वार्ता को काम है भगवद्यश सुननो होवै अथवा गावनो होवे तो इहां आवो तो हु वाने मानी नाहीं नित्य आयके खंडन करे ऐसे वाको प्रकृति हती फेर एक दिन वैष्णावन को चित्त बहुत उदास भयो जब वो खंडन ब्राह्मण घर में सूतो तब चार जने वाकुं मुग्दर लैके मारन लगे जब वाने कही तुम मोकुं क्यों मारो हो जब चार जनेन ने कही तुम भगवद्धर्म खंडन करो हो और भगवद्धर्म सर्वोपर है सर्व धर्मन ते श्रेष्ठ है + + + ऐसे धर्मन कुं खंडन करे है जासुं तोकुं मार देवे हैं + + + वैष्णावन सुं वीनती करी के मोकुं कृपा करके वैष्णाव करो और वैष्णावन कुं संग लैके श्री गोकुल आयके श्री गुसाईं जी को सेवक भयो + + + ।। वार्ता संपूर्ण ।। वैष्णाव ।। ९१।।

परिशिष्ट ३

दोनों वार्ताओं में वही नाम किंतु दूसरी घटनाएं

चौ० वा०		दो० वा०	
वार्ता सं०	४८ आनन्ददास विशंभरदास	वार्ता सं०	१५३ आनन्ददास साचौरा ब्राह्मण
"	४९ एक ब्राह्मणी	"	७१ एक ब्राह्मणी
		"	११९ एक ब्राह्मणी अडेल में रहती

चौ० वा०		दो० वा०	
वार्ता सं०	५० एक क्षत्राणी	वार्ता सं०	१४२ एक क्षत्राणी
"	६७ एक क्षत्राणी सीहनंन में रहती	"	१२२ एक क्षत्राणी
"	२० एक क्षत्राणी महावन में रहती		
"	५८ जीवनदास क्षत्री कपूर सीहनंद के वासी	"	१८६ जीवनदास ब्राह्मण
"	१ दामोदरदास हरसानी	"	१२४ दामोदरदास बिनकी दोय स्त्री
"	३ दामोदरदास सम्बलवारे खत्री	"	
"	६८ दामोदरदास कायस्थ		
"	२२ देवा क्षत्री कपूर	"	३० देवा ब्राह्मण बंगाली
		"	८२ देवा भाई पटेल
"	६४ नारायणदास अंबाले के वासी	"	१२५ नारायणदास ब्राह्मण
"	६५ नारायणदास चौहान ठट्ठे के वासी	"	९ गौड़ देश के वासी नारायणदास, बादशाह के दीवान
"	१९ नारायणदास ब्रह्मचारी सारस्वत ब्राह्मण	"	
"	१४ बेणीदास माधोदास	"	१८० बेणीदास
		"	२०७ बेणीदास छीपा
		"	१०७ बेणीदास दामोदरदास
"	६० भगवानदास श्रीनाथ जी के भीतरिया	"	१७२ भगवानदास भीतरिया
			२४३ भगवानदास
"	५९ भगवानदास सारस्वत	"	
"	३२ माधोदास भट्ट काश्मीर के वासी	"	१९७ माधोदास बडनगर वाला
		"	१९ माधोदास क्षत्री
		"	२० माधोदास भटनागर

चौ०वा०			दो० वा०
वार्ता सं०		"	१२३ माधोदास कपूर
"	३० यादवेंद्रदास कुम्हार	"	१६६ यादवेंद्रदास
"	५४ रामदास मीराबाई के पुरोहित	"	७५ रामदास खंभातवाला
"	१२ रामदास सारस्वत ब्राह्मण		
"	४० रामदास सारस्वत ब्राह्मण राज-नगर में रहते		
"	५५ रामदास चौहान		
"	९१ कृष्णदास	"	१६४ कृष्णदास
"	८३ कृष्णदास ब्राह्मण	"	१३ कृष्णदास
"	२ कृष्णदास मेघन क्षत्री	"	६२ कृष्णदास ईश्वरदास
"	९२ कृष्णदास अधिकारी	"	२०४ कृष्णदास स्वामी
		"	२५२ जाडा कृष्णदास
"	९ पुरुषोत्तमदास क्षत्री बनारस में रहते	"	१७९ पुरुषोत्तमदास काशी वाला
"	११ पुरुषोत्तमदास के बेटा गोपालदास	"	१४ गोपालदास सेगल क्षत्री
"	३३ गोपालदास	"	२८ गोपालदास
"	७४ गोपालदास ठोरा के बासी	"	३९गोपालदास
"	८२ गोपालदास जटाधारी श्रीनाथ की खवासी करते	"	१७५ गोपालदास
		"	२४० गोपालदास
"	८७ गोपालदास नरोडा में रहते	"	
"	८९ परमानंददास कनौजिया ब्राह्मण	"	९० परमानंददास सोनी

अनन्तदास की परिचयियां तथा ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताएं

अनन्तदास की परिचयियों के पूर्ण विवरण पीछे दिये जा चुके हैं[११]

११- दे० इसी ग्रंथ में, अन्यत्र ।

इन परिचयियों में से पीपा जी की परिचयी के दो प्रसंग क्रमशः चौरासी वैष्णवन की वार्ता सं० ८३ (कृष्णदास) तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता सं० ८८ "श्री गुसाईं जी के सेवक एक स्त्री पुरुष हते तिनकी वार्ता" के कुछ परिवर्तनों के साथ बहुत निकट का साम्य रखते हैं । नीचे इन प्रसंगों में एक दूसरे से कितना साम्य है इसे दृष्टिगत रखते हुए इन प्रसंगों को क्रमशः समानार्थी टुकड़ों में विभाजित कर लिख रहे हैं, जो इस प्रकार है:-

पीपा परिचयी तथा चौरासी वैष्णवन की वार्ता सं० ८२(कृष्णदास) में निम्नांकित घटनाओं का विकास हुआ है:-

घर पर संतों के आ जाने पर पीपा की पत्नी ने किसी विषयी बणिक के घर से सामान इस शर्त पर लायी कि दूसरे दिन उसकी वासना की तृप्ति के लिए वह स्वयं निश्चित समय पर उपस्थित होगी । वारिश के दिन में भी पति, कंधे पर बैठाकर पत्नी को उक्त स्थान पर ले गया । बनिये को यह देखकर ज्ञान हो गया तथा वह उनका शिष्य हो गया ।

अन्तर-

इस प्रसंग में निम्नांकित अन्तर के विस्तार द्रष्टव्य हैं:-

(क) परिचयी मे पीपाजी तथा उनकी पत्नी सीता के विषय में यह प्रसंग लिखा गया है, जबकि वार्ता में किसी कृष्णदास तथा उनकी पत्नी के विषय में ।

(ख) परिचयीकार ने लिखा है कि पीपाजी ने उसे "रामतारक" मन्त्र सुनाकर दीक्षा दिया तथा वार्ता में आचार्य जी महाप्रभु ने उसे दीक्षा दी, तब उसका नाम ज्ञानचन्द रक्खा ।

(ग) वार्ता में यह ~~वर्णन~~ प्रसंग कुछ विस्तार के साथ लिखा गया है, जबकि परिचयी में संक्षेप में ।

दोनों ग्रंथों में निम्नांकित शब्द एवं वाक्य साम्य के स्थल पाए जाते हैं-

परिचयी- "बंदी सहस दृष्ट तब बोली ।।
बनिया कै प्रतीति बढ़ाई ।।"

वार्ता-"सो बनिया कै दृष्ट पै गई, तब वा बनिया ने टोकी तब वा बनिया सो स्त्री ने कही जो मैं तोसों कालि मिलूंगी ।।"

परिचयी- "जो चाह्यो सो दियो तुरन्त ।"

वार्ता- "स्त्री को सीधो सामग्री चहियत हुतों सो दीनों ।"

परिचयी- "करी रसोई भगत बुलाये ।"

वार्ता - "घर आयके रसोई करि भी ठाकुर जी को भोग समर्प्यो ।"

परिचयी- "बासर गत रजनी पैसारू ।

सीता सती कियो सिंगारू ।।

निसि अँधियारी बरसै मेहा ।

सीता चली साह के गेहा ।।

+ + +

"काच भरे पग साह न रीझै ।"

वार्ता- " तब वह स्त्री उबटनो करि न्हाय के स्मीजन के सिंगार होत हैं सो सब करिके स्त्री चली सो वरषा के दिन हुए सो मेह बरस गयौ हुतौ सो मार्ग मैं कीच भई हुती"

परिचयी- "पीपै लीन्हीं कंध चढ़ाई ।"

वार्ता- "तब वा स्त्री को अपने कांधे पर चढ़ायके ले चले ।"

परिचयी- "खोलि कपाट भीतरि पैसी"

वार्ता- " कही जो किवाड़ खोल तब वा बनिया ने किवाड खोल दीने।"

परिचयी में श्रीधर भक्त की और २५२ वार्ताओं में "एक स्त्री पुरुष की " वार्ता लगभग समान है ।

दोनों में भक्तों के भोजन के लिए स्त्री का वस्त्र बेचा गया है । यहांतक कि दोनों प्रसंगों में नग्न होने के कारण कोटरी में छिपकर भोजन तैयार करने का वर्णन है ।

अन्तर यह है कि परिचयी में इस प्रसंग का सम्बन्ध पीपा तथा उनकी पत्नी और श्रीधर भक्त से है जबकि वार्ता में आठ वैष्णव भक्तों के पहुंच जाने पर बेचा गया है । परिचयी में पीपा जी की पत्नी द्वारा धन संग्रह करके दिया गया है तथा वार्ता में ठाकुरजी तथा स्वामिनी जी ने ऐसा अलौकिक वस्त्र प्रदान

किया है जो जल में भींग जाय किन्तु बाहर निकालते ही सूख जाय ।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त साम्यों को देखकर यह प्रश्न उठता है कि किसने किससे इस प्रसंग को लिया होगा । हो सकता है कि दोनों ने एक ही स्थल से लेकर इस प्रसंग को अपने अपने ग्रंथों में जोड़ दिया है । किन्तु यह विचारणीय है कि पीपा के परिचयी की रचनाकाल सम्वत् १६४५-५५ है तथा वार्ताओं की रचना सम्वत् १८२० के पश्चात् हुई । अतएव बहुत संभव है कि वार्ताकार ने पीपा का प्रसंग कृष्णदास के साथ जोड़ दिया होगा ।

रसिक अनन्यमाल तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताएं-

रसिक अनन्यमाल में पैंतीस भक्तों के चरित्रों का वर्णन किया गया है । इसमें चतुर्भुजदास की कथा पृ० ३५ से ४२ में आई है । इनके विषय के तीन प्रसंग (क) कथा सुनने से नया जन्म होता है । (ख) प्रेत का चरणोदक से उद्धार हो जाता है (ग) देवी भी अपनी अहिंसात्मक प्रवृत्ति छोड़ देती हैं । क्रमशः वार्ता के "मगन भाई खंभात वाला" वैष्णव सं० २१२, "गुसांई जी के सेवक एक पटेल" वैष्णव सं० ९२ तथा "गुसाई के सेवक गणेश व्यास" वैष्णव सं० ३१ में एक ही समान आये हैं ।

इसी प्रकार जसवन्तसिंह के प्रसंग रणछोड़दास के प्रसंग से मिलते हैं जो क्रमशः अनन्यमाल के वीसवें तथा वार्ता के १७६वें भक्त हैं । विस्तारभय के कारण केवल दो प्रसंगों के समानार्थी टुकड़ों में विस्तार पूर्वक साम्य दिखला कर प्रसंगों का संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है -

"चतुर्भुजदास" तथा मगनभाई खंभाता वाले का प्रसंग-

अनन्यमाल का यह प्रसंग "हरिगुरु शरनै पलटत अंग" वार्ता का "इनके सेवक भय तें नयो जन्म होत हैं" और "याही देह सूं जन्म पलट जाय हैं" इसी को आधार मानकर अनन्यमालकार ने लिखा है कि "चोरी करने वाला एक व्यक्ति चतुर्भुजदास की कथा में यही उक्त प्रसंग सुनता है, उसको विश्वास हो जाता है कि कथा सुनने से नया जन्म होता है । राजा के सिपाहियों

द्वारा पकड़े जाने पर "फारी" जलता हुआ लोह लेता है किन्तु वह जलता नहीं है, उसी प्रकार वार्ता का "मगनभाई" नये जन्म की परीक्षा लेने के लिए गुसाईं जी का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् जब किसी व्यक्ति का लिया हुआ पांच हजार रूपया नहीं देना चाहता है तो तत्कालीन राजा "पांच शेरी लोहे की मंगाय के अगनी में तप्ती कराई और मगनभाई के हाथ में धराई" किन्तु मगनभाई का हाथ नहीं जलता है। दोनों ग्रंथों में परीक्षा होती है, हाथ नहीं जलता है। यही समान प्रसंग है। अन्तर केवल यह है कि अनन्यमाल में चतुर्भुजदास की कथा सुनकर चोर परीक्षा लेता है। वार्ता में गुसाईं जी ठीक से दीक्षित होने पर "मगनभाई" नये जन्म की परीक्षा लेते हैं। दोनों ग्रंथों में किसी राजा द्वारा न्याय करने का प्रसंग तथा रूपया पाने वालों को अन्त से सजा देने की धमकी तथा क्षमा करने के प्रसंग समान हैं।

चतुर्भुजदास तथा गुसाईं के सेवक एक पटेल (प्रेत उद्धार का प्रसंग):-

दोनों ग्रंथों में प्रेतों के उद्धार का समान प्रसंग है। यही कथा दोनों ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार से कही गई है। अनन्यमाल के चतुर्भुजदास जिस बाग में ठहरते हैं, उसी में बहुत से भूत हैं। किसी तालाब में संतों के पद प्रक्षालन वाला जल छिड़कने से उनका उद्धार हो जाता है तथा वार्ता में पटेल द्वारा एक प्रेत को तालाब में से जल लेकर छिड़कने से प्रेत योनि से मुक्ति पा जाते हैं। अनन्यमाल में यह प्रसंग कुछ विस्तार से लिखा गया है जबकि वार्ता में संक्षेप में वर्णन है।

चतुर्भुजदास तथा गणेशदास व्यास (देवी द्वारा अहिंसात्मक प्रवृत्ति त्यागना)-

दोनों ग्रंथों में देवी को अष्टाक्षर मंत्र सुनाने, राजा को स्वप्न में बलि न देने की आज्ञा तथा उस नृप का कुटुम्ब सहित शिष्य होने के प्रसंग समान हैं। अन्तर केवल यह है कि अनन्यमाल में यह घटना विस्तार से दी गई है तथा वार्ता में संक्षिप्त है। यदि एक ग्रंथ में चतुर्भुजदास देवी को अष्टाक्षर मंत्र सुनाते हैं तो दूसरे में गणेश व्यास।

जसवन्तसिंह तथा रणछोड़दास-

दोनों ग्रंथों में वैष्णव वेष में आए हुए किसी ठग द्वारा लड़के को मारकर

उनके आभूषण ले लेने, उस लड़के को पुनः संत प्रभाव से जिला देने तथा उस वेषधारी ठग को क्षमा कर देने के समान प्रसंगों का विकास हुआ है। अन्तर केवल यह है कि अनन्यमाल में उस ठग के इस दुष्कर्म को एक अन्य वैष्णव बतलाता है तथा वार्ता में स्वयं किसी बगीचे में एक मिट्टी के ठगले के नीचे वह मरा हुआ पाया जाता है। अनन्यमाल का सम्बन्ध जसवन्तसिंह तथा उनके पुत्र से है तथा वार्ता का सम्बन्ध रणछोड़दास तथा उनके पुत्र से है। जसवन्त सिंह अन्त में अपनी कन्या का विवाह उससे कर देते हैं, किन्तु वार्ता में इसका वर्णन नहीं है। अनन्यमाल में यह कथा विस्तार से लिखी गई है तथा वार्ताकार ने संक्षेप में वर्णन किया है।

निष्कर्ष-

जैसा पहले सिद्ध किया गया है, "रसिक अनन्यमाल" और नाभादास के भक्तमाल की रचना लगभग एक ही समय में हुई और "रसिक अनन्यमाल" संभवतः कुछ प्राचीनतर भी है। वार्ताएँ भक्तमाल के बहुत बाद लिपिबद्ध हुई अतः संभव यही दीख पड़ता है कि अनन्यमालकार सेउपर्युक्त प्रसंगों को लेकर वार्ताकार ने नाम-परिवर्तन के साथ अपने ग्रंथ में जोड़ दिया होगा।

(७) नाभादास के भक्तमाल और चौरासी वार्ताओं की तुलना

चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा नाभादास के भक्तमाल की तुलनाः-

वार्ता में तीन दामोदरदास (वै० सं० १, ३, ६८) की वार्ताएँ आई है जिनमें एक "हरसानी", दूसरे कन्नौज निवासी "सम्बल वाले खत्री" तथा तीसरे शेरगढ़ निवासी दामोदरदास कायस्थ हैं। भक्तमाल में दामोदर नाम के पांच भक्त (छ० सं० १००, १०५, १४७, १५८ तथा छ० १८१ में) आए हैं, किंतु किसी के प्रसंग वार्ताओं से नहीं मिलते।

कृष्णदास ब्राह्मण, कृष्णदास मेघन क्षत्री तथा कृष्णदास अधिकारी की वार्ताएं क्रमशः वैष्णव सं० २, ८३, तथा ९२ में मिलती हैं और उसी कृष्णदास नाम के सात भक्तों के परिचय भक्तमाल में क्रमशः छ० ९६, १४६, १२, २४, ९४, १८० और १८५ तथा ८१ में मिलते हैं। किन्तु किसी का प्रसंग समान नहीं है। इनमें से केवल कृष्णदास अधिकारी तथा भक्तमाल के छ० ८१ भक्त बालकृष्ण (कृष्णदास) एक ही हैं । किन्तु प्रसंग भिन्न भिन्न है। वार्ता में वैष्णव सं० ४ के स्थान पर पद्मनाभ जी कन्नौजीय ब्राह्मण की वार्ता है। भक्तमाल में छ० ६० तथा ३९वें छ० में पद्मनाभ जी के नाम मिलते है, जो पयहारी श्री कृष्णदास ~~श्री कृष्णदास~~ के शिष्य हैं, अतएव इनमें केवल नाम साम्य है। इन्हीं पद्मनाभ दास "के बेटा ताकी बहू पार्वती" की वार्ता वै० सं० ६ में लिखी गयी है जबकि भक्तमाल के पृ० ८७२ में केवल पार्वती नाम आया है । अतएव इसमें भी केवल नाम-साम्य है।

वार्ता में चार रामदास के नाम आए हैं - जिनकी वैष्णव संख्याएं वार्ता में क्रमशः १२, ४०, ५४ और ५५ हैं। भक्तमाल में पांच रामदास क्रमशः भक्तमाल छ० सं० ५३, ९६, १४५, १६९ और १९६ में आए हैं। किन्तु दोनों में नाम छोड़कर कोई भी घटना समान नहीं मिलती। केवल वार्ता के ५४वें वैष्णव "मीराबाई के पुरोहित रामदास" और भक्तमाल छ० १९६ के भक्त रामदास एक जान पड़ते हैं, यद्यपि दोनों ग्रंथों में प्रसंग भिन्न भिन्न आए हैं।

वैष्णव सं० १३ की वार्ता में "गदाधरदास सारस्वत ब्राह्मण" कंडा में रहते तिनकी वार्ता, शीर्षक से प्रसंग आए हैं। भक्तमाल छ० १०५ तथा १४६ में केवल गदाधर का नाम आया है। भक्तमाल छ० १३८ में गदाधर भट्ट का नाम आया है, किन्तु इनका भी प्रसंग वार्ता के "गदाधर" से नहीं मिलता है। भक्तमाल छ० १८६ में "गदाधरदास जी" बुरहानपुर के रहने वाले भक्त का वर्णन आता है। वार्ता के गदाधरदास जी जो कुछ सामग्री आती थी सब ठाकुर को समर्पित कर देते थे तथा भक्तमाल के गदाधर दास के पास ठाकुर के भोग लगाने का सामान नहीं था, उसी दिन किसी भक्त ने आकर दिया। यद्यपि दोनों भिन्न भिन्न स्थानों के निवासी हैं किन्तु ठाकुर के भोग लगाने के समान प्रसंग से एक ही मालूम पड़ते हैं।

वार्ता में सातवें वैष्णव "पद्मनाभदास कौ नाती पार्वती कौ बेटा रघुनाथदास" की वार्ता आयी है। भक्तमाल छ० ८० में विट्ठलेशसुत रघुनाथ तथा छ० १०३ में "मथुरा मंडल में रहने वाले रघुनाथ" के नाम आए है किन्तु किसी में प्रसंगों की समानता नहीं है।

वार्ता में वै० सं० ९, २७ तथा ३५ में "पुरुषोत्तमदास" की वार्ताएं आई हैं किन्तु भक्तमाल छ० ९७ में केवल नाम आया है।

"गोपालदास" नाम के पांच वैष्णवों की वार्ताएं क्रमशः वै० सं० ११, ३३, ७४, ८२ तथा ८७ में आई हैं। भक्तमाल में भी कई गोपालदास आए हैं किन्तु प्रसंगों में समानता नहीं है[13]।

वैष्णव सं० ५९ तथा ६० में "भगवानदास सारस्वत्व ब्राह्मण" तथा "भगवानदास भीतरिया श्री नाथ जी के" की वार्ताएं आई हैं। भक्तमाल में आठ भगवानदास आए है किन्तु दोनों ग्रंथों के किसी भी भगवानदास के प्रसंग नहीं मिलते[14]।

वार्ता में तीन अच्युतदास जिनकी वैष्णव संख्याएं क्रमशः ६१, ६२ तथा ६३ हैं। भक्तमाल छ० १०१ तथा १४७ में केवल नाम आया है।

वार्ता के वै० सं० ७५ में "जनार्दनदास चोपड़ा क्षत्री" की वार्ता आयी है भक्तमाल छ० १०५ में केवल उनका नाम मिलता है। अन्य कोई साम्य नहीं।

वार्ता के वैष्णव सं० ७८ तथा ८१ में "नरहरदास गोड़िया" तथा "नरहर-दास सन्यासी" के नाम आये हैं। इनके प्रसंग नहीं मिलते, हो सकता है दोनों एक ही हों।

वार्ता में ८४ वें वैष्णव "संतदास चौपड़ा क्षत्री" की वार्ता आई है। भक्तमाल छ० १२५ में सन्तदास का नाम आया है। इनका कृतित्व सूरदास से मिलता था। निमाई गांव के रहने वाले थे। तथा जगन्नाथ जी की सेवा करते थे। इनका सब धन ठाकुर भोग में समाप्त हो गया। चौरासी वैष्णवों के संतदास भी पहले सम्पत्ति वाले थे, अतः हो सकता है दोनों ग्रंथों के संतदास

१३- दे० भ० पृ० ३०८, ६६५, ६८५, ८४४ तथा छ० १०६।

१४- दे० नाभादास भ० छ० सं० १००, १०३, १०६, १४६, १५०, १५४ तथा

एक ही हों ।

वार्ता में काश्मीरी माधोदास का ३२वें वैष्णव के रूप में उल्लेख है । इस नाम के कई भक्तों का उल्लेख भक्तमाल में है[१५]। किन्तु किसी माधवदास के प्रसंग वार्ता के "माधवदास" से नहीं मिलते हैं, केवल भक्तमाल छ० ७० में "माधवदास जगन्नाथी" का नाम आया है । वार्ता के माधवदास के सम्बन्ध में बताया गया है कि आचार्य जी महाप्रभु श्री भगवत की टीका श्री सुबोधिनीजी करी, सो माधवभट्ट लिखत जायं तथा भक्तमाल के माधवदास ने "भारत आदि भागौत मथित उद्धार्यो हरिजस", इस प्रकार दोनों ही भक्तों का सम्बन्ध भागवत से था । इसलिए दोनों के माधवदास एक ही हो सकते हैं ।"गोविन्ददास भल्ला" तथा "गोविन्द दुबे साचौरा ब्राह्मण" क्रमशः वार्ता के १६वें तथा ४१वें वैष्णव भक्त हैं । नाभादास के भक्तमाल के किसी भी गोविन्द के प्रसंग वार्ता के गोविन्द से नहीं मिलते ।

वार्ता में ४६वें वैष्णव के रूप में"ईश्वर दुबे"का वर्णन है । भक्तमाल छ० १०५ में ईश्वर नाम के एक भक्त का नाम आया है । किन्तु केवल नाम साम्य है । इसी प्रकार वार्ता के ४७वें भक्त जगदानन्द "सारस्वत ब्राह्मण" हैं । भक्तमाल छ० ८७ में केवल "जगदानन्द" का नाम आया है ।

वार्ता ५७वें में "विष्णुदास छीबी" की कथा आई है । भक्तमाल में "विष्णुदास" नाम के कई भक्तों का उल्लेख है किन्तु दोनों ग्रंथों के प्रसंग भिन्न हैं ।

वार्ता में चार नारायणदास की वार्ताएं आयी हैं जिनकी वै०सं० क्रमशः १९, ६४, ६५, और ६६ हैं । भक्तमाल में भी कई नारायणदास का उल्लेख है किन्तु दोनों में प्रसंग भिन्न भिन्न हैं ।

वार्ता में "देवा क्षत्री कपूर" का प्रसंग आया है । भक्तमाल छ० ३९ और ५२ में "देवा" के नामों का उल्लेख है किन्तु दोनों ग्रंथों के प्रसंग भिन्न हैं ।

भक्तमालकार ने केवल सूरदासजी के भक्ति पदों की प्रशंसा निम्नलिखित ढंग

१५- दे० नाभादास का भक्तमाल पृ० ७०, १००, ११२, १३९, १६५, १८१ तथा १९० ।

से की हैः-

(१) सूरदास के कवित्त को सुनकर ऐसा कौन होगा जो अपना सिर न हिला दे।

(२) इनकी कविता में सुन्दर उक्तियां, ओज, अनूठे अनुप्रास और सुन्दर शब्दों का चयन किया गया है।

(३) कविता मे आदि से अन्त तक प्रेम के भाव का निर्वाह है तथा अर्थ गाम्भीर्य और मुग्ध करने वाले तुक हैं।

(४) ईश्वर प्रदत्त दिव्य दृष्टि से हरिलीला प्रतिभासित होती है - कृष्ण के जन्म गुण रूप आदि को दिव्य दृष्टि से देखा गया है, रसना से व्यक्त किया है।

(५) सूर के भगवत्गुणों को सुनने वाले की बुद्धि निर्मल हो जाती है।

चौरासी वैष्णवनकी वार्ता में सूर सम्बन्धी निम्नांकित प्रसंगों का विकास हुआ हैः-

(१) गऊघाट पर आचार्य महाप्रभु जी से मिलाप।

(२) सूरदास के पदों की प्रशंसा सुनकर देशाधिपति का सूर का पद सुनना।

(३) चौपड़ खेलते समय पद गाना।

(४) श्रीनाथ जी सेवा तथा पद रचना करना।

(५) रामदास, कुंभनदास, गोविन्द स्वामी तथा गुसांई जी के सामने तन त्याग देना।

दोनों ग्रंथों के प्रसंगों की तुलना करने पर केवल निम्नांकित समान बातें मिलती हैः-

(१) पद रचना सुन्दर करते थे। तथा (२) जंन्मांध थे।

शेष बातें दोनों में असमान हैं।

"परमानन्द दास कन्नौजिया ब्राह्मण" वार्ता के ८९वें वैष्णव हैं। भक्तमाल छ० १५१, १६९, १७४ तथा ७४ में परमानन्द जी का नाम आया है। सभी विद्वानों ने भक्तमाल छ० ७४ के भक्त श्री कृष्ण के सखा, उनकी बाल-लीला तथा पौगंडलीला आदि का गान करने वाले तथा अपनी कविता में

"सारंग छाप" रखने वाले परमानंद को चौरासी वैष्णवन के "परमानंद" से अधिक मानी है , जिनकी अष्टछाप मे गणना है - यद्यपि इनके भी प्रसंग वार्ता के प्रसंगों से नहीं मिलते और न तो "सारंग" छाप वाली किसी कविता के उद्धरण ही वार्ता में मिलते हैं ।

वार्ता में "मुकुन्ददास कायस्थ" की वार्ता मिलती है । ये उसके २४वें वैष्णव हैं । भक्तमाल मे कई मुकुन्ददास आए हैं किन्तु इनका अन्य भक्तों के साथ केवल नामोल्लेख कर दिया गया है[१६]।

"जगन्नाथ जोशी" वार्ता के ३६वें वैष्णव हैं । भक्तमाल में किसी में वार्ता को प्रसंग समान रूप से नहीं मिलते[१७]।

वार्ता के ८८वें वैष्णव सूरदास जी है । भक्तमाल छ० ७३ में सूर के विषय में उल्लेख हुआ है किन्तु दोनों के प्रसंग में बहुत अन्तर है ।

वार्ता के ९०वें वैष्णव "कुम्भनदास गोरवा" हैं, इनके विषय में वार्ताकार ने कई प्रश्न लिखे है । इनकी भी गणना अष्टछाप के कवियो में है, किन्तु नाभादास जी के भक्तमाल छ० ९८ में "कुम्भनदास" जी का केवल अन्य भक्तों के साथ नाम लिखा गया है ।

उपर्युक्त सूची के अतिरिक्त चौरासी वैष्णवन का वार्ता में कुछ वैष्णवों को छोड़कर प्रायः सभी भक्तों का सम्बन्ध महाप्रभु वल्लभाचार्य से बतलाया गया है । इसी वार्ता मे कई भक्त ऐसे हैं जिन्होंने गुसांई जी से दीक्षा ली थी । उसी प्रकार से विट्ठलनाथ जी गुसांई का भी नाम आया है । गोकुलनाथ जी का नाम भी वै० सं० ५९ (कृष्णादासी रुक्मिनी की बहू) की वार्ता में तथा कुंभनदास जी की वार्ता सं० ८३ में आया है[१८]। इन नामों के प्रसंग भक्तमाल में क्रमशः

१६- दे० भक्तमाल छ० सं० ९९, १००, १०१ तथा १०३ ।

१७- दे० वही, छ० सं० ९४, १४३ और १५० ।

१८- कृष्णादासी बहू की वार्ता वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित प्रति में है तथा कुंभनदास की वार्ता सं० ८३ में गोकुलनाथ का नाम आया है ।

छं० सं० ८८, ७९ तथा १३२ में मिलते है तथा इनके विषय में अलग अलग एक छप्पय रचा गया है । चौरासी वैष्णवन की वार्ता में प्रसंगवश आए हुए वही नाम जो भक्तमाल में भी पाए जाते हैं, नीचे दिए जा रहे हैं -

वै० सं० २२ "जीयदास क्षत्री" की वार्ता में "पुरुषोत्तमदास" का नाम आया है । नाभादास के भक्तमाल छं० ९७ में इनका केवल नाम आया है।

वै० सं० २५ की "प्रभूदास जटोला क्षत्री" की वार्ता मे कृष्ण चैतन्य तथा उनके शिष्य रूप सनातन के विषय में उल्लेख है । भक्तमाल छं० ७२ में क्रमशः कृष्णचैतन्य तथा छं० ८९ में रूप सनातन का के नाम आए हैं किन्तु प्रसंग नहीं मिलते है । वार्ता सं० ३२ में माधोदास भट्ट की वार्ता में भट्ट के विषय का प्रसंग उल्लीखित है । भक्तमाल छं० ७५ केशवभट्ट कश्मीरी का नाम आया है ।

वार्ता सं० ४१, ५४ तथा ९२ में क्रमशः "गोविन्ददुबे सचौरा ब्राह्मण" मीराबाई के पुरोहित रामदास तथा कृष्णदास अधिकारी की वार्ताएं आई हैं । भक्तमाल छं० ११५ में मीरा के विषय में एक पूरा छप्पय उद्धृत है, किन्तु दोनों ग्रंथों के प्रसंग भिन्न भिन्न हैं ।

वार्ता सं० ९० कुम्भनदास की वार्ता मे वृन्दावन के महन्त "हरिवंश भृत्य" का प्रसंग आया है । भक्तमाल छं० ९० में हित हरिवंश का नाम आया है ।

वै० सं० ३२ में "माधोदास भट्ट" की वार्ता में "केशवभट्ट" के भी प्रसंग आए है । भक्तमाल में भी केशवभट्ट का उल्लेख हुआ है, किन्तु प्रसंग एक दूसरे से भिन्न हैं ।

(८) नाभादास कृत भक्तमाल और २५२ वार्ताओं की तुलना ~~तथा प्रसंगः-~~

वार्ता सं० १ में "गोविन्द स्वामी" के विषय की वार्ता लिखी गई है । भक्तमाल छं० १०२ में हरि सुजस प्रचार करने वाले भक्तों मे केल "गोविन्द"नाम आया है । प्रियादास की टीका तथा वार्ता के "गोविन्द दास" के कई प्रसंग समान हैं अतएव उसी आधार पर कहा जा सकता है कि वे इन "गोविन्दस्वामी" से अभिन्न हैं । भक्तमालकार ने किसी भी प्रसंग का उल्लेख नहीं किया है ।

वार्ता सं० २ में "छीत स्वामी चौबे" का उल्लेख है । इनके विषय में कई प्रसंग लिखे गए है । किन्तु भक्तमाल के छ० १४६ में "छीतस्वामी" के केवल नाम का उल्लेख है ।

वार्ता सं० ३ में चतुर्भुजदास का उल्लेख है । इनको कुंभनदास का बेटा लिखा गया है तथा एक अन्य चतुर्भुजदास ब्राह्मण की वार्ता सं० १५६ में मिलती है । नाभादास जी ने अपने भक्तमाल छ० सं० १२३ में एक चतुर्भुजदास का उल्लेख किया है जो हरिवंश जी के शिष्य थे । दूसरे चतुर्भुज राजा थे, जिन्होंने वैष्णवो के सत्कार के लिए चार कोस के पहले चौकियां बनवा दी थीं । दोनों ग्रंथों में वर्णित चतुर्भुजदास के प्रसंग एक दूसरे से भिन्न हैं ।

वार्ता सं० ४ में नन्दनदास के विषय में प्रसंग लिखे गए हैं । भक्तमालकार "नन्ददास" का उल्लेख छ० ११० में पूरे एक छप्पय में किया है जो इस प्रकार है -

"श्री" नंददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रमुदित रंगमगे ।।
लीलापद इस रीति ग्रंथ रचना में नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ।।
प्रचुर पयध लौं सुजस "रामपुर" ग्राम निवासी ।
सकल सुकल संवलित भक्त पद रेनु उपासी ।।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मै पगे ।
"श्री" नन्ददास आनंद निधि रसिक सु प्रभु हित रंग मगे ।।११४।।

उपर्युक्त छन्द से निम्नांकित बातें ज्ञात होती है-

(क) श्री नंददास जी आनन्दनिधि रसिक प्रभु के प्रेम में अनुरक्त रहते थे। "भक्तरसरीति" ग्रंथ की कौशलपूर्ण रचना की थी ।

(ख) उनका यश समुद्र पर्यन्त व्याप्त था । वे रामपुर के निवासी थे तथा शुक्ल वंश में उत्पन्न हुए थे । उनके छोटे भाई का नाम चन्द्रदास था ।

वार्ता में इनके विषय में निम्नलिखित सूचनाएं मिलती हैः-

(क) नन्ददास जी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे । एक बार श्री रणछोड़ जी के दर्शन करने के लिए गए । नंदगांव में पहुंचने पर किसी "साहूकार क्षत्री" की स्त्री पर मोहित हो गए । बिना उसका मुख देखे कोई कार्य न करते थे । लोक लज्जा से बचने के लिए साहूकार अपना गांव छोड़कर गोकुल

चला गया किन्तु नंददास भी उन्हीं के साथ हो लिए। वहीं गुसांई विट्ठलनाथ के शिष्य हो गए।

(ख) नंददास जी व्रज छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। इनके बड़े भाई तुलसीदास जी काशी मे रहते थे। नन्ददास जी को पत्र भेजा जिसमें पूछा था कि राम की उपासना छोड़कर नंददास ने कृष्ण की उपासना क्यों की ? नन्ददास ने इसका उत्तर दिया।

(ग) नन्ददास जी ने सोचा "श्री मद्भागवत भाषा करें" किन्तु गुसांई जी ने उन्हें आज्ञा नहीं दी।

(घ) तुलसीदास नन्ददास जी को वापस लाने केलिए गए। वहीं नन्ददास की प्रार्थनापर गोवर्धन नाथ ने भी रामरूप में अपना वेश परिवर्तन कर तुलसीदास को दर्शन दिया। उसी प्रसंग में यह भी लिखा हुआ है कि गुसांई जी के पांचवें पुत्र रघुनाथ लाल जी थे। उनके पुत्र तथा पुत्र वधू ने गोसांई जी की आज्ञा से "श्री रामचन्द्र जी तथा जानकी जी " का स्वरूप धारणकर तुलसीदास को दर्शन दिया।

भावना वाली प्रति में वही प्रसंग कुछ बढ़ाकर लिखा गया है तथा कुछ अति-रिक्त बातें भी लिखी गई है, जो इस प्रकार हैः-

(क) "सो वे तुलसीदास के भाई सनौढिया ब्राह्मण हते।"

(ख) "तुलसीदास जी तो रामानंदीन के सेवक हते। सो नंददासहू को रामा-नंददीन के सेवक करवायो।"

(ग) अकबर के सामने तानसेन ने नन्ददास का पद गाया। सम्राट अकबर उस पद को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। अन्त में बीरबल की प्रेरणा से नंददास को दरबार में उपस्थित होने, तथा रूपमंजरी तथा नन्ददास के शरीर छोड़ने की घटना का विस्तृत वर्णन है।

यदि उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में आए हुए नन्ददास विषयक प्रसंगों की तुलना करें, तो दोनों प्रसंगों में केवल निम्नांकित साम्य के स्थल दृष्टिगत होते हैः-

(क) यदि भक्तमालकार ने"रामपुर ग्राम निवासी" बतलाया है तो वार्ताकार ने भी "रामपुर में रहते" लिखा है।

(ख) नाभादास ने "सकल सुकल संवलित"लिखा है जिससे यह ज्ञात होता है कि

वे शुक्ल वंशीय थे । वार्ताकार ने सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है । इसमें इतनी तो समानता अवश्य है कि वे कनौजिया ब्राह्मण थे ।

(ग) दोनों ग्रंथों में उनके पदों की सराहना की गई है ।

अन्तर:-

वार्ता के अन्य प्रसंग जैसे नन्ददास का तुलसीदास का भाई होना, रणछोड़ जी का राममूर्ति में परिवर्तित होना, गुसांई जी के पांचवें पुत्र रघुनाथदास उनकी बहू का राम तथा जानकी का रूप धारण करना, रूपमंजरी, अकबर बादशाह, तानसेन आदि सम्बन्धी प्रसंग भक्तमाल में नही मिलते हैं ।

निष्कर्ष-

दोनो ग्रंथो के प्रसंगों मे जो अन्तर है वह विचारणीय है । जिन नाभादास ने अपनी भक्तमाल में लगभग दो सौ भक्तों के चरित्रों का वर्णन किया है, तथा सभी भक्तों के मुख्य मुख्य प्रसंगों का यथा स्थान उल्लेख किया, उन्होंने अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास के विषय में उक्त प्रसंगों का उल्लेख क्यों नहीं किया यह विचारणीय है । इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि नन्ददास के विषय में भक्तमाल की रचना तक इस प्रकार की वार्ताएं या प्रसंग प्रचलित नहीं थे । अन्यथा भक्तमालकार उनका प्रयोग अवश्य करता ।

वार्ता सं० ५ और १२५ में क्रमशः "नारायणदास गौड़" तथा "नारायण दास" की वार्ताएं आई है । भक्तमाल में कई नारायणदास हैं किन्तु इनके प्रसंगों में परस्पर कोई समानता नही है[१९]।

मुरारिदास वार्ता के ८वें वैष्णव हैं । भक्तमाल छं० १२८ में मुरारिदास का नाम आया है । किन्तु दोनों के प्रसंगों में साम्य नहीं है ।

वार्ता सं० १० में "बीठलदास कायस्थ" तथा सं० २२७ में "बीठलदास" की वार्ताएं आई है । भक्तमाल में कई "बीठल" अथवा "बीठलदास" आए हैं किन्तु

१९- दे० ना० भ० ८७, १३४, १३९, १४५ और १४७ ।

सबके प्रसंग भिन्न भिन्न हैं[२०]।

वार्ता सं० १३, ६२, १६४, २०४, २५२ में कृष्णदास के नाम आए हैं[२१]। नाभादास जी के भक्तमाल छ० ८१, ९४, ९६, १२४, १८० तथा १८५ में कृष्णदास नाम के भक्तों का उल्लेख है, किंतु दोनों ग्रंथों के भक्तों के प्रसंग भिन्न भिन्न हैं। उक्त नामों में से केवल दो की वार्ता सं० २५२ जाड़ा कृष्णदास तथा नाभादास भक्तमाल छ० ८१ के कृष्णदास चालक के निम्नांकित प्रसंगों से यह कहा जा सकता है कि कदाचित् दोनों एक ही हैं। वार्ताकार ने लिखा है कि "जाड़ा कृष्णदास" ने "इन्द्र धनुष", "रासपंचाध्यायी", "इन्द्रकोष", "राधा-रुक्मिणी केलि" की रचनाएं की तथा भक्तमालकार का भी उल्लेख है कि उन्होंने "शब्दकोश, रासपंचाध्यायी, कृष्ण रुक्मिणी केलि" की रचनाएं की। शेष प्रसंग इन दोनों के भी भिन्न हैं।

वार्ता सं० १४, २८, ३९, १७५ तथा २४० में "गोपालदास" नाम से भिन्न भिन्न वार्ताएं लिखी गई हैं। नाभादास जी के भक्तमाल में गोपालदास नामधारी कई वैष्णव भक्तों का उल्लेख है किन्तु दोनों ग्रंथों में उल्लिखित जितने भी गोपाल हैं सबके प्रसंग भिन्न भिन्न हैं[२२]।

वार्ता सं० १५, ७८ और ६४ में क्रमशः "हरिदास बनिया" "हरिदास मोहनदास" तथा "हरिदास खवास सनौढिया" की वार्ताएं आई हैं। भक्तमाल में इसी नाम के छः भक्तों का वर्णन हुआ है। किन्तु वार्ता के किसी भी हरिदास से इनके प्रसंग नहीं मिलते[२३]। केवल भक्तमाल छ० १५६ के हरिदास को "तोलने वाला" कहा गया है। वार्ता सं० १५ के "हरिदास बनिया" कदाचित् इनसे अभिन्न हों, किन्तु शेष प्रसंग भिन्न भिन्न हैं।

२०- दे० ना० भ० छ० सं० ९४, ९९, १०३, १२९, तथा १७७।

२१- वार्ता सं० २०४ तथा २५२ के वैष्णव कृष्णस्वामी तथा जाड़ा कृष्णदास नाम से आए हैं।

२२- ना० भ० छ० सं० ९९, १००, १०७, तथा १५७ में गोपालदास नाम आया है।

२३- दे० ना० भ० छ० सं० ९१, ९८, ९९, १५१, १५६ तथा १७९।

वार्ता सं० १९, २०, १९३ तथा १९७ में क्रमशः "माधोदास क्षत्री", "माधोदास भटनागर कायस्थ", माधोदास कपूर तथा माधोदास की वार्ताएं लिखी गयी हैं । भक्तमाल छ० ७०, १००, ११२, १३९, १६५ और १९० में "माधव" अथवा माधवदास के विषय में उल्लेख अवश्य किया गया है किन्तु दोनों में केवल नाम साम्य है ।

वार्ता सं० २१ में "कटहरिया" के विषय में प्रसंग उद्धृत किए गए हैं । भक्तमाल छ० ९६ में "कटहरिया" का केवल नाम आया है ।

वार्ता सं० २३ में यदुनाथदास की वार्ता लिखी गई है । भक्तमाल छ०८० में "यदुनाथ" विट्ठलनाथ के पुत्र का केवल नामोल्लेख मिलता है ।

"राजा लाखा" वार्ता सं० २४ में आए हैं । भक्तमाल छ० १०७ में भी एक लाखा भक्त का उल्लेख हुआ है । किन्तु दोनों के प्रसंग भिन्न भिन्न हैं ।

वार्ता सं० ३१ में गणेशव्यास का नाम आया है । भक्तमाल सं० ९९ में भी "गणेश" नाम मिलता है, किन्तु इनके विषय का प्रसंग नहीं मिलता ।

वार्ता सं० ३३ में "ब्रह्मनदास" के प्रसंग लिखे गए हैं । भक्तमाल छ० १०२ तथा १४७ में अन्य भक्तों के साथ केवल ब्रह्मनदास के नाम का उल्लेख है ।

वार्ता सं० ३७ में "गोपीनाथदास ग्वाल" की वार्ता लिखी गई है । भक्तमाल छ० १०३ में "गोपीनाथ" का केवल नाम लिखा गया है ।

वार्ता सं० ५१ में "गंगाबाई क्षत्राणी" का प्रसंग लिखा गया है, किन्तु भक्तमाल छ० १७० में केवल "गंगा" नाम का उल्लेख है ।

"प्रेमनिधि" वार्ता के ६५वें वैष्णव भक्त हैं तथा नाभादास ने अपने भक्त-माल में छ० १६७ में इनका वर्णन किया है । दोनों ग्रंथों के "प्रेमनिधि" एक ही ज्ञात होते है । वार्ताकार ने लिखा है कि "सो प्रेमनिधि मिश्र" आगरा में श्री गुसाईं जी के सेवक भये ।" उसी प्रकार से भक्तमालकार ने भी लिखा है "भैया-दृष्टि बसि आगरैं कथा लोग पावन कर्यो" । इनका आगरा-निवासी होना दोनों ग्रंथकारों ने माना है । नाभादास जी ने लिखा है कि प्रेमनिधि आगरे में रहकर कथा सुनाकर वहाँ के लोगों को पावन करते थे, उसी बात की पुष्टि इससे भी होती है "और प्रेमनिधि कथा ऐसी बाँचते जो कोई सुनवे आवते, वाको मन हरण होय जातो ।" शेष भक्तमालकार ने उनके भक्ति औ उनकी

वाणी की प्रशंसा ही उक्त छप्पय में की है । वार्ता में इनके विषय में दो प्रसंग और उद्धृत हैं जिनका संकेत भक्तमालकार ने नहीं किया है । इन दोनों प्रसंगों का उल्लेख प्रियादास जी ने अपनी टीका में किया है । इन पर आगे विचार किया गया है ।

वार्ता सं० ७३ में आसकरण की वार्ता आई है[२४]। भक्तमाल छ० १७४ में नाभादास जी ने एक पूरे छप्पय में इनका वर्णन इसप्रकार किया है-

मोहन मिश्रित पद कमल "आसकरन" जस बिस्तर्यो ।।"
धर्मशील गुनसींव महाभागौत राजरिषि ।
पृथ्वीराज कुलदीप भीमसुत बिदित कील्ह सिषि ।।
सदाचार अति चतुर, बिमल बानी, रचना पद ।
सूर धरि उद्दार बिनै भलपन भक्तनि हद ।।
सीतापति राधा सु वर, भजन नेम कूरम धर्यौ ।।
मोहन मिश्रित पद कमल, "आसकरन" जस बिस्तर्यो ।।१७४।।

उपर्युक्त छप्पय से इनके विषय में निम्नांकित बातों पर प्रकाश पड़ता है:-

(क) आशकरण जी "मोहन मिश्रित पद कमल" के अनुरागी थे ।

(ख) वे पृथ्वीराज कुल के दीपक राजा भीम के सुत तथा कील्हदेव के शिष्य थे ।

(ग) सदाचार में प्रवीण, सूर, धीर, उदार, विनय-वाणी में प्रभु के यशों का गान करने वाले, सीतापति तथा राधावर के पूजन के नियम का श्रद्धापूर्वक निर्वाह करने वाले थे ।

वार्ता में इनके विषय में जो प्रसंग उद्धृत हैं वे संक्षेप में इसप्रकार हैं:-

(क) आशकरण जी नरवरगढ़ के रहने वाले थे । गान विद्या के शौकीन थे । एक बार तानसेन इनके दरबार में आया । उसने गोविन्दस्वामीरचित एक पद गाया । उक्त महाराजा प्रसन्न होकर विट्ठलनाथ गुसाईं के सन्निकट रहने वाले गोविन्दस्वामी से मिलने के लिए गए । वहीं गोसाईं जी से दीक्षा ग्रहण कर ली ।

२४- यही वार्ता तीन जन्म की लीला भावना वाली प्रति सं० १२३ में लिखी गई है ।

गुसांई जी ने श्री मदन मोहन जी का स्वरूप "पधराया" तथा आशकरण उनकी स सेवा करने लगे ।

(ख) मदन मोहन जी को पधराकर तानसेन के साथ अपने घर चले आए ।

(ग) एक समय किसी राजा ने चढ़ाई की । बरसात के दिन थे । शत्रु की सेना पर पत्थर की शिला की वर्षा हुई और इनकी सेना पर जल की । महाराजा ने अपना राज्य अपने भतीजे को देकर गोकुल निवास का निश्चय किया ।

(घ) राजा आशकरण को ठाकुर जी का दर्शन हुआ । इस प्रकार से आठ प्रसंग उनके विषय में लिखे गए है[२५]।

दोनों ग्रंथों में केवल निम्न बातें समान पाई जाती है ।

(१) आशकरण जी राजा थे । पद रचना करते थे, सूरबीर तथा गान विद्या में प्रवीण थे, भक्त थे तथा भक्तों का आदर करते थे । शेष अन्य प्रसंग भक्तमाल में नहीं मिलते ।

अन्तर-

भक्तमालकार एक ही छप्पय छन्द में इनका पूर्ण परिचय दे देता है- "पृथ्वीराज कुलदीप भीमसुत विदित कील्ह सिख ।" वार्ताकार ने यह परिचय न देकर पहले उनके दीक्षा-प्रसंग को ही प्रधानता दी है । प्रथम प्रसंग में ही "संगीत के प्रेमी" तानसेन के मुंह से गोविन्द रचित पद सुनकर राजा प्रभावित होते हैं तथा ऐसे पद सीखने की इच्छा प्रकट करते हैं । तानसेन कहता है- "श्री गुसाईंजी कैसे है विनके सेवक गोविन्द स्वामी हैं, विनके सेवक हैं, विनके ऐसे सहस्त्रावधि पद किए हैं परन्तु गुसांई जी के सेवक बिना, वे और कू सिखावते नाहीं है, मैं हू कोई सिखावत नाहीं हूं ।" इस पर आसकरण ने भी कील्ह का शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की ।

गोकुल आने पर गुसांई जी आशकरण जी को "साक्षात् पूर्ण परषोत्तम" दृष्टिगत होते हैं । फिर गुसांई जी की आज्ञा से स्नान करने के पश्चात् "आशकरन जी कुं नाम निवेदन करवायो ।" इस प्रकार से वार्ताकार यह बतलाने की

२५- सब प्रसंगों के लिए दे० दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ।

चेष्टा करता है कि संगीत का प्रेम ही राजा आशकरण को गुसांई जी का शिष्यत्व ग्रहण कराने में मूल कारण था और अन्य प्रसंगों में इस बात का भी उल्लेख है कि वे राज्य अपने भतीजे को सौंपकर गोकुल चले आए तथा उनको वहां ठाकुर जी का साक्षात्कार भी हुआ ।

इसके विपरीत भक्तमालकार के अनुसार राजा आशकरण के दादा पृथ्वीराज शैव थे । पृथ्वीराज की पत्नी "बालादेवी" ने स्वयं वैष्णव धर्म स्वीकार किया । कृष्णदास पयहारी ने शैव गुरुनाथ को हटाकर गलता की गद्दी पर अपना अधिकार जमाया तथा वहां इनके दो शिष्य हुए:अग्रदास तथा कील्ह स्वामी । कदाचित् उसी समय से वैष्णव धर्म राजधर्म बना । इन्हीं पृथ्वीराज के पुत्र भीम तथा उनके पुत्र आशकरण हुए । पीछे दिखलाया जा चुका है कि कृष्णदास के दो शिष्य अग्रदास तथा कील्ह स्वामी थे । इन्हीं कील्ह स्वामी के शिष्य आशकरण जी थे तथा अग्रदास के शिष्य नाभादास थे । इस प्रकार नाभादास की जानकारी इन्हें अधिक रही होगी क्योंकि ये उनके गुरुभाई के शिष्य थे ।

नाभादास ने छ० १५८ में कील्हदेव के शिष्यों में सर्वप्रथम आशकरन रिषिराज का नाम दिया है । अतएव नाभादास के कथन पर अधिक विश्वास किया जा सकता है । तथा यह निर्विवाद रूप से माना जा सकता है कि "राजा आशकरण" जी ने कील्हदेव से ही दीक्षा ग्रहण की थी ।

"नाभादास" ने छन्द की प्रथम पंक्ति में इन्हें "मोहन मिश्रित पद कमल" का अनुरागी लिखा है । इसका अर्थ है कि उक्त महाराजा राम और कृष्ण दोनों का भजन करते थे । आजकल की तरह उस समय संकीर्णता नहीं थी, क्योंकि कील्हस्वामी के गुरुभाई अग्रदास जी ने भी कृष्ण सम्बन्धी कुंडलियां रची हैं । तथा उन्होंने अहल्या का उद्धार करने वाले राम और गोप लीला करने वाले कृष्ण को एकही मानकर प्रार्थना की है:-

राग विलावल

मोहनलाल के चरणारविंद, त्रिविध ताप हारी ।
कहि न जात कौन पुराय, कर जू सिर धारी ।।

निगम जाकी साख बोलै, सेवक अधिकारी ।
धीवर कुल अभय कीनी, अहिल्या उद्धारी ।।
ब्रह्मा जाके पार न पावे, गोप लीला बसुधारी ।
आसकरन प्रभु पराग, परम मंगल कारी ।।

आशकरण के प्रसंग से एक महत्वपूर्ण बात यह ह सिद्ध होती है कि उन्हें राम और कृष्ण का मिश्रित उपासक बताकर जहां भक्तमालकार ने अपनी निष्पक्षता का परिचय दिया वहीं वार्ताकार ने उनकी रामभावना का गोपन कर अपनी साम्प्रदायिक प्रवृत्ति का परिचय दिया । कहने की आवश्यकता नहीं कि नाभादास का साक्ष्य इस संबंध से अधिक मान्य होगा: क्योंकि वे आसकरण के गुरु कील्ह के गुरु-भाई थे और उन्हे निकट से जानते थे ।

एक अन्य बात और विचारणीय है - वह यह है कि वार्ता के अन्य प्रसंग नाभादास के भक्तमाल की रचनातक कहीं प्रसिद्ध अथवा लिपिबद्ध नहीं थे, नहीं तो उन प्रसंगों का भी वर्णन नाभादास जी अवश्य करते । अतएव इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके अधिकाश प्रसंग बाद में इन भक्तों के साथ जोड़े गए हैं ।

वार्ता सं० ७५ में "रामदास" खंभात वाले" का प्रसंग आया है । भक्तमाल छ० ५३, ९६, १५६, १६९ तथा १९६ में रामदास का नाम आया है किन्तु किसी भी प्रसंग में समानता नहीं पाई जाती । वार्ता सं० ८५ और ९३ में क्रमशः "निश्चिंतन स्त्री पुरुष" तथा "निश्चिंतन वैष्णव" की वार्ता आई है । भक्तमाल छ० ४५ में केवल "निश्चिंतन" नाम आया है ।

वार्ता सं० ९० में "परमानन्ददास सोनी" की वार्ता लिखी गई है । भक्तमाल में पांच परमानंददासों का उल्लेख है किन्तु किसी में वार्ता के प्रसंग का साम्य नहीं मिलता है ।

वार्ता सं० १२१ में "चतुर बिहारी" की वार्ता आयी है । भक्तमाल छ० ९७ तथा १५८ में "चतुर" अथवा "चतुरदास" का केवल नाम आया है ।

वार्ता सं० १३७ में "द्वारिकादास" की वार्ता लिखी गई है । भक्तमाल छ० १०० में "द्वारिकादास" का उल्लेख भक्तमाल के दिग्गजों के रूप में आया है तथा छ० १८९ में "द्वारिकादास" को अष्टांग योग के ज्ञाता "कील्हदेव" का शिष्य

लिखा गया है । दोनों ग्रंथों के उद्धृत प्रसंगों में किसी प्रकार की भी समानता नहीं पाई जाती ।

वार्ता सं० १५५ में वैष्णव मोहनदास की वार्ता लिखी गयी है किन्तु भक्तमाल छ० १४७ में संसार से निवृत होने वाले भक्तों की नामावली में "मोहन" का केवल नाम गिना दिया गया है ।

वार्ता सं० १६५ मे "गोविन्द भट्ट" के विषय मे लिखा गया है । भक्तमाल छ० ८०, १०२, १०३, १०५ तथा १९२ में "गोविन्द" अथवा "गोविन्द-दास" का नाम आया है किन्तु दोनों ग्रंथों में इनके नाम से उल्लिखित प्रसंगों में कोई साम्य नहीं है ।

वार्ता सं० १७२ में भगवानदास भीतरिया की वार्ता का उल्लेख हुआ है। भक्तमाल "भगवानदास" नाम के कई भक्तों का उल्लेख हुआ है किन्तु दोनों ग्रंथों में वर्णित प्रसंग एक दूसरे से भिन्न है[२६]।

वार्ता सं० १८० तथा भक्तमाल छ० ५१ में "हंस भक्तों" के विषय में लिखा गया है । वार्ताकार ने इस प्रसंग को बहुत विस्तार के साथ लिखा है कि गुसांई जी के दो भक्त हंसों का जोड़ा किसी राजा के कोढ़ की दवा के लिए वैष्णव वेश धारण करने पर बधिकों द्वारा पकड़ लिया गया । ठाकुर जी ने उनकी रक्षा के लिए स्वयं राजा के यहां जाकर दवा देकर उन्हें छुड़ा दिया । यही प्रसंग संक्षेप में नाभादास ने इस प्रकार लिखा है:-

"हंस पकरने काज बधिक बानौ धरि आये ।
तिलकदाम की सकुच जानि तिनि आप बंधाए ।।"

वार्ताकार ने गुसाँई द्वारा नाम सुनाने तथा राजा के कोढ़ दूर करने के लिए ठाकुर जी के जाने का प्रसंग वार्ता में अतिरिक्त रूप से दिया है । शेष विवरण समान हैं ।

वार्ता सं० २२४ में "दामोदर दास उनकी दोय स्त्री" की वार्ताएं आई हैं।

२६- दे० भक्तमाल छ० १००, १०३, १०६, ११७, १२६, १५०, १५४, १५८ तथा १८८ ।

भक्तमाल छ० १००, १०५, १४७, १५८, तथा १८१ में दामोदरदास, नाम के भक्तों का उल्लेख है, किन्तु किसी भी दामोदरदास से वार्ता के दामोदरदास के प्रसंग नहीं मिलते हैं।

वार्ता सं० २२७ तथा भक्तमाल छ० १४२ में "रानी रत्नावली" की वार्ता या प्रसंग आए हैं। दोनों ग्रंथों के परिचय समान हैं, तथा दोनों ग्रंथकारों ने लिखा है कि रानी हरिभक्तों से प्रेम करने वाली तथा कथा, कीर्तन आदि में रुचि रखने वाली थीं। भक्तमालकार ने लिखा है कि "पतिपर लोभ न कियौ, टेक अपनी नहिं हारी"। कदाचित् इसी प्रसंग का विस्तार वार्ता में इस प्रकार मिलता है कि वैष्णवों के प्रति उसकी श्रद्धा की परीक्षा लेने के लिए उनके पति के ज्येष्ठ भ्राता ने सिंह छोड़ा था, शेष प्रसंग अर्थात् खवासिन के सत्संग से वैष्णव भक्ति का, गुसांई जी से दीक्षा लेने का तथा महाराजा का क्षमा मांगकर दस हजार महीने ठाकुर के खर्च के लिए देने आदि का उल्लेख भक्तमाल में नहीं है।

वार्ता सं० २४१ में भी गुसांई जी के सेवक "पृथ्वीसिंह जी बीकानेर के राजा कल्याणसिंह जी के बेटा तिनकी वार्ता" आई है। भक्तमाल में नाभादास ने छ० १४० में इनका वर्णन किया है। दोनों ग्रंथों मे पर्याप्त साम्य है। वार्ता में यह प्रसंग इन शब्दों में वर्णित है -

"सो वे पृथ्वीसिंह जी" कविता बहुत करते और कवित्त सवैया, छन्द, दोहा, चौपाई ऐसे अनेक प्रकार की कविता रची हती और रुक्मिणीबेल और श्यामलता इत्यादिक भाषा के बहुत ग्रंथ जिनने बनाये।" भक्त माल में वर्णन इस प्रकार है:-

"नरदेव उभै भाषा निपुन, "पृथ्वीराज" कविराज हुव ।।
सवैया, गीत, श्लोक, बेलि, दोहा, गुन नवरस ।
पिंगल, काव्य प्रमान विविध विधि गायौ हरि जस ।।
पर दुख विदुख, श्लाघ्य बचन, रचना जु विचारै ।
अर्थ वित्त निर्मोल सबै सारंग उर धारै ।।
रुक्मिनी लता बरनन अनूप, बागीश बदन कल्यान सुव ।
नरदेव उभै भाषा निपुन, "पृथ्वीराज- कविराज हुव ।।१४०।।

उपर्युक्त दोनों प्रसंगों में पर्याप्त साम्य है। दोनों ग्रंथकारों ने उन्हें कल्याणसिंह का पुत्र बतलाया है तथा विविध प्रकार से पद रचना करने वाला और "रुक्मिणी बेलि" या "रुक्मिनीलता" नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का रचयिता बताया है।

उपर्युक्त प्रसंगों में शब्द साम्य तथा वाक्य साम्य भी है ।

अन्तर यह है कि "वार्ता के दो प्रसंगों":-

(क) ठाकुरजी का "पृथ्वीसिंह" की जगह युद्ध करने तथा (ख) व्रजभूमि में शरीर त्यागने का संकेत भक्तमालकार ने नहीं किया है । अतएव इससे भी यही परिणाम निकलता है कि संभवतः ये प्रसंग बाद के हैं ।

वार्ता सं० २४३ में भगवानदास की वार्ता आई है । पहले रामरायजी के सेवक थे फिर वार्ता के अनुसार गुसांईं जीकेसेवक हुए । अपने पदों में "कहि भगवान हित रामराय प्रभु प्रकटे रामसनेही" का उल्लेख करते थे । नाभादास भ० छ० १९८ में "भगवन्त" अथवा "भगवत मुदित" का नाम आया है ।भक्तमालकार ने इनके पिता का नाम "माधो" लिखा है किन्तु वार्ताकार ने पिता का नाम नहीं लिया है । उक्त छप्पय के "अनति भजन रस रीति पुष्टि मारग करि देखी" इस कथन से इनका पुष्टि-मार्गी होना प्रमाणित होता है ।

इस वार्ता की विवेचना करते हुए डा० हरिहर नाथ टंडन लिखते हैं "भक्तमाल के आधार पर यदि वार्ता का विवरण लिखा गया होता तो इनके बाप के नाम को छोड़ने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि वार्ताकार को जहां बाप का नाम मिल गया है वहां उसने उसका अवश्य उल्लेख किया है ।" किन्तु डा० टण्डन कदाचित् यह देखने में भूल कर गए हैं, कि दो सौ बावन वैष्णवन की किसी भी वार्ता में "आशकरण" जी के पिता का नाम का उल्लेख नहीं है जबकि भक्तमालकार ने स्पष्ट उन्हें"भीमसुत विदित कील्ह शिष" लिखा है[२७]।

वार्ता सं० २४५ तथा भक्तमाल छ० ११७ में मधुकर शाह का नाम आया है । वार्ताकार ने एक प्रसंग मालाकंठी पहनाकर भेजे गए गधे के चरण -प्रक्षालन करने के सम्बन्ध में लिखा है किन्तु भक्तमाल मे केवल इनके नाम का उल्लेख है ।

वार्ता सं० २४६ में "तुलसीदास सारस्वत" की वार्ता का उल्लेख है । भक्तमाल छ० १०५, १६९ मे अन्य संतों के साथ केवल "तुलसीदास" का नाम है तथा छ० १२९ में "गोस्वामी तुलसीदास" का उल्लेख है किन्तु वार्ता के उक्त तुलसीदास का प्रसंग इससे भिन्न है ।

२७- दे० भक्तमाल छ० १७४ ।

दो० वार्ता के इतर प्रसंगों की भक्तमाल से समानता:-

इस शीर्षक के अन्तर्गत दो० वार्ता की मूल वार्ताओं का वर्णन करते समय ऐसे भक्तों के नाम तथा प्रसंग दिए गए हैं जो भक्तमालमें भी मिलते हैं।

वार्ता सं० १ में गोविन्दस्वामी, बालकृष्णगोपीनाथ, रघुनाथ तथा "गोपीनाथदास ग्वाल"के नाम आए हैं। इनमें अंतिम अर्थात् "गोपीनाथ ग्वाल" का उल्लेख भक्तमाल छ० सं० १०३ में हुआ है। किन्तु प्रसंग नहीं मिलता। प्रथम तीनों व्यक्ति गुसांईं विट्ठलनाथ जी के पुत्र हैं। इनके सभी पुत्रों का उल्लेख वार्ताओंमेंहुआ है। सं० २ की "कान्हबाई" की वार्ता में गोकुलनाथ गिरिधरजी तथा वार्ता सं० ६ में रघुनाथ, जदुनाथ, घनश्याम का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार से गुसांईं जी के सातों पुत्रों का उल्लेख वार्ताओं में कई स्थलों पर जगह जगह हुआ है। नाभादास जी ने इन सभी पुत्रों का उल्लेख एक साथ छप्पय ८० में कर दिया है[२८]।

वार्ता सं० ३ में राघोदास का उल्लेख है। भक्तमाल में कई राघोदास हैं। अतः यह ठीक नहीं ज्ञात होता कि वार्ता में राघोदास से किसी समानता है[२९]।

वार्ता सं० १६ में हरिदास की मूल वार्ता में "जैमल" का भी प्रसंग आया है। भक्तमाल छ० सं० ११७ तथा १५५ में इनके नाम का उल्लेख है। वार्ता के प्रसंग इनमें नहीं उद्धृत है। प्रियादास की टीका द्वारा मालूम होता है कि यही "जयमलजी" दोनों ग्रंथों में आए हैं। किन्तु इनके विषय में भी यही कहा जा सकता है कि वार्ता के प्रसंग उस समय तक कदाचित् लिपिबद्ध नहीं थे।

वार्ता सं० ३३ की "ब्रह्मनदास" की वार्ता में कृष्णचैतन्य का उल्लेख है। ना भादास के छ० ७२ में कृष्ण चैतन्य का वर्णन है।

वार्ता सं० ६१ "स्त्री पुरुष देवी के उपासी" की वार्ता में संतदासजी की बात आई है। नाभा भ० छ० ९८ तथा १९० में क्रमशः "सन्त" तथा संतदास

२८- गिरिधर तथा गोकुलनाथ का वर्णन भक्तमालकार ने अलग से क्रमशः १३१ तथा १३२ में किया है।

२९- दे० भ०मा०छ० ९९, १३५,१४७ तथा १६८ प्रथम दो में राघो या राघोदास नाम है।

का वर्णन हुआ है । पहले छप्पय में केवल "संत" नाम आया है तथा दूसरे में संतदास सम्बन्धी पूर्ण छप्पय दोनों में केवल नाम का ही साम्य है ।

वार्ता सं० ६७ में "दयालदास" की वार्ता आयी है । नाभा छ० १४७ में संसार से विरक्त संतों के प्रसंग में एकनाम "दयाल" का भी मिलता है ।

वार्ता सं० २४३ भगवानदास की वार्ता में "रामराय" का भी प्रसंग आया है । भक्तमाल में रामराय के विषय में एक पूरा छप्पय मिलता है । (छ० १९७) दोनों ग्रंथों में वर्णित रामराय एक ही हैं-क्योंकि दोनों में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण बताया गया है[३०]।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा भक्तमाल में दूसरे नामों के साथ एक ही प्रकार के प्रसंग जोड़े गए मिलते हैं ऐसे समान प्रसंगों का तुलनात्मक अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

(१) वार्ता सं० ७८ में गुसांई जी के सेवक हरिदास तथा मोहनदास की वार्ता भक्तमाल छ० ५० के "भक्तराजा" से मिलती है । वार्ताकार ने विस्तार के साथ लिखा है कि उक्त हरिदास के घर मोहनदास नाम के वैष्णव आए । हरिदास जी उन्हें अपने घर से नहीं जाने देना चाहते थे । एक दिन मोहनदास जी जाने लगे तो हरीदास की पत्नी ने उन्हें रोकने के लिए अपने प्रिय पुत्र को उसी रात्रि विष दे दिया । मोहनदास को जब मालूम हुआ तो उन्होंने लड़के के मुख में चरणामृत डाला तथा अष्टाक्षर मंत्र द्वारा उसे जिला दिया और फिर जीवन पर्यन्त वहीं निवास किया ।

यही प्रसंग भक्तमालकार ने एक पंक्ति में दिया है जो इस प्रकार है: "भक्तन हित सुत विष दियौ, भूपनारि, प्रभु राखि पति।" संतों को रोकने के लिए दोनो प्रसंगों में स्त्री द्वारा अपने पुत्र को विष दिए जाने का वर्णन है । अन्तर यही है कि एक में हरिदास तथा उनकी स्त्री है, दूरे में राजा तथा उनकी रानी हैं।

वार्ता सं० ५२ तथा भक्तमाल छप्पय ५६ में क्रमशः "श्रीगुसांई जी के सेवक राजा तिनकी वार्ता" तथा एक "भेंव निष्ट" राजा के प्रसंग समान हैं, जो क्रमशः नीचे दिये जा रहे हैं:-

दोनों ग्रंथों में वर्णित भक्त राजा वैष्णव वेश धारण करने वाले थे तथा

३०- वार्ता संख्या ५३ में राजा के सामने उपस्थित होने वाले का नाम "दया भवैया" दिया हुआ है ।

अभ्यागतों का बड़ा सत्कार करते थे । एकबार वेश बदलकर आए हुए "भवैया" तथा "भांड" का उचित सत्कार किया ।

अन्तर- वार्ता के स राजा के सामने एक बार "भवैया" अनेक प्रकार के खेल दिखलाता है, किन्तु राजा उसकी ओर देखता तक नहीं । तब वह विष्णु वेश में आता है । इस प्रसंग का वर्णन भक्तमालकार ने नहीं किया । इसी प्रकार वार्ता के "भवैया" को राजा द्वारा पंखा झले जाने की बात लिखी गयी है, जबकि भक्तमाल के "भाड़" का राजा द्वारा पद प्रक्षालन करना वर्णित है ।

वार्ता सं० ५३ में उस भवैया का नाम- "दया भवैया" बताकर लिखा गया है कि उसके शरीर से चार हत्याएं निकल कर उसके साथ रहने लगी थीं । जब वह चलता तब वे भी चलतीं और उसके रुकने पर स्वयं रुक जातीं थीं । राजा के पास जाने पर ही हत्याओं ने उसका पीछा छोड़ा । अन्त में अडेल आकर गुसांई का शिष्य हुआ तथा उसी राजा के पास जीवन भर रहकर ठाकुर की सेवा करने लगा ।

भक्तमालकार ने उपर्युक्त छप्पय की एक पंक्ति में "भांड भेष गाढ़ो गह्यो, दरस परस उपजी भगति ।" लिख दिया है । घटना के अन्य विवरणों का अभाव है ।

वार्ता सं० १७६ तथा भक्तमाल छ० ५१ में एक वैष्णव भक्त का प्रसंग समान रूप से मिलता है । भक्तमाल मे उसका नाम नहीं दिया गया है[३१] किन्तु वार्ता मे रणछोड़दास नाम मिलता है ।

वार्ता से "रणछोड़दास" के यहां साधुवेषधारी जो ठहरता है वही उनके बेटे को मारकर उसका आभूषण ले लेता है । गठरी बांधकर जब चलने लगता है तो रास्ते में "रणछोड़दास" मिलते हैं और उसको वापस लाते हैं । मरे हुए बच्चे को "अष्टाक्षर मंत्र" द्वारा जिला देते हैं । तब वह ठग उनके पैरों पर गिर कर क्षमा मांगता है और अन्त में गुसांई जी का शिष्य हो जाता है ।

भक्तमाल में "सुत बधू हरिजन देखि कै, दै कन्या आदर दियौ ।" द्वारा उक्त घटना का केवल संकेत है । दोनों ग्रंथों मे हरिजन वेशधारी धूर्त द्वारा बालक-बध का उल्लेख है । कन्या देने की बात भक्तमाल में विशेष है । भक्तमाल का प्रसंग संक्षिप्त है, किन्तु वार्ता का प्रसंग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है । वार्ताकार का यह उल्लेख कि वह वेषधारी ठग गुसाई जी का शिष्य हो गया, भक्तमाल में नहीं लिखा गया है ।

३१- प्रियादास ने टी०छ० सं० २१८ में उस भक्त का नाम "सदाबती महाजन" दिया है।

वार्ता संख्या १०४ में गुसांईं के सेवक एक बनिया का प्रसंग भक्तमाल छ० ६७ के नरहरियानन्द के प्रसंग से मिलता है। घटना यह है कि कुछ संतों के आजाने पर दोनों ग्रंथों में बरसात के कारण लकड़ी न मिलने पर उक्त दोनों वैष्णव लकड़ी के लिए किसी देवी के मंदिर के केवाड़ उठा लाते हैं। पड़ोसी भी वैसा करना चाहता है, किन्तु देवी की आज्ञा से उसको उल्टे उक्त वैष्णव के घर नित्य लकड़ी पहुंचानी पड़ती है। अंतर केवल यह है कि वार्ता में वैष्णव को गुजरात निवासी बताया गया है, भक्तमाल में किसी स्थान का उल्लेख नहीं। इसके अतिरिक्त वार्ता में पड़ोसी का हाथ फंस जाने की घटना का वर्णन अतिरिक्त रूप में मिलता है।

निष्कर्ष-

(१) ऊपर केवल समान नामों तथा समान प्रसंगों का संकेत किया गया है। जहां तक "चौरासी वैष्णावन की वार्ता" का सम्बन्ध है, उससे और भक्तमाल के भक्तों और प्रसंगों से तुलना करते हैं तो बहुत ही कम प्रसंग एक दूसरे से मिलते हैं, यहां तक कि अष्टछाप के प्रमुख भक्त तथा कवि सूरदास, परमानन्द दास, कुंभनदास तथा कृष्णादास अधिकारी के प्रसंग भक्तमाल के उक्त भक्तों के प्रसंगों से भिन्न पड़ते हैं। जहां तक वल्लभाचार्य जी के वर्णन का सम्बन्ध है, भक्तमाल कार ने उनके चौरासी शिष्यों का संकेत भी कहीं नहीं किया है।

(२) दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता और भक्तमाल से तुलना करने पर यद्यपि दोनों में हमें समान प्रसंग कम मिलते हैं, किंतु चौरासी वार्ताओं की अपेक्षा वह भक्तमाल के अधिक निकट की सिद्ध होती है। समान नाम तथा प्रसंग वाले वैष्णवों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है +

वार्ता संख्या २५२ तथा भक्तमाल छ० ८१ में कृष्णादास, वार्ता संख्या ६५ तथा भ० छ० १६७ मे प्रेम निधि मिश्र, वार्ता संख्या १८० तथा भ० छ० ५१ में "हंस भक्तों का प्रसंग", वार्ता संख्या ७२ तथा भ० छ० १७४ में आशकरण, वार्ता संख्या २४१ तथा भ० छ० १५० में पृथ्वी सिंह, वार्ता सं० २२७ तथा भक्तमाल छ० १४२ में रानी रत्नावती के वर्णन हैं। इनके अतिरिक्त प्रमुख समान नाम गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीत स्वामी, मधुकरशाह विटठनाथ गुसांईं तथा गोकुलनाथ आदि के हैं।

भिन्न नाम तथा समान प्रसंग वाले उल्लेखों का पहले तुलनात्मक अध्ययन किया जा चुका है।

भक्तमाल तथा वार्ताओं की तुलना से तीन बातें ज्ञात होती हैं-

(क) दोनों ग्रंथों में केवल नाम साम्य है ।

(ख) समान नामों के साथ थोड़े प्रसंग भी समान मिलते है ।

(ग) नाम बदल कर एक ही प्रसंग दोनों ग्रंथों में म मिलते हैं ।

परिणाम-

किसी निश्चित परिणाम पर पहुंचने के पूर्व यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जो प्रसंग समान हैं उन्हें किसने किससे लिया होगा । अथवा जो प्रसंग का वार्ता में उल्लिखित है उनका भक्तमालकार ने क्यों नहीं उल्लेख किया? इसका समाधान यही हो सकता है कि जिस समय भक्तमाल की रचना समाप्त हुई उस समय तक वार्ता के प्रसंग प्रचलित नहीं थे ? यदि वार्ता के प्रसंग लिपिबद्ध होते अथवा भक्तों में प्रचलित होते तो भक्तमालकार इन प्रसंगों का उल्लेख अवश्य करता क्योंकि भक्तमाल में लगभग दो सौ वैष्णव भक्तों का वर्णन है और उनसे संबंधित प्रमुख प्रसंगों का वर्णन करने से नाभादास जी चूके नहीं हैं । किंतु उन्होंने गोकुलनाथ के प्रसंगों में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि वे ८४ तथा २५२ वार्ताओं के रचयिता थे और न इसी बात का उल्लेख किया है कि गुसांई विट्ठलनाथ के २५२ शिष्य थे ।

वार्ता के इन प्रसंगों की तुलना करने पर भक्तमालकार के वर्णनों पर अधिक विश्वास इसलिए भी किया जाएथा कि भक्तमाल का वर्तमान रूपांतर अधिक से अधिक सं० १७१५ तक तैयार हो चुका था । इस पर हमने पहले विस्तार से विचार किया है । जहां तक वार्ताओं का सम्बन्ध है, वार्ताकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि नाभादास के भक्तमाल की रचना वार्ता से पहले हो चुकी थी - " सो वह चूहड़ो गोकुल की गल्ली फाड़तो और मन में ऐसे जानतो श्री गुसाईं जी ठकुरानी घाट पर पधारे हैं, इनके चरणारविन्द में कुरो कचरो न लगे तो आच्छी बात है और वैष्णव जूठन की पातर डारते सो वह लेतो वैष्णावन की जूठन जो खाई तब वाकुं ~~विवव~~ दिव्य दृष्टि भयी सब मारग की रीति वाकुं समझ पड़गई और वेद शास्त्र को ज्ञान होय गयो जैसे नाभाजी कूं भयो हतो सो विनने भक्तमाल करी है, ऐसे या चूहड़ा कू ज्ञान भयो ।"[३२]

३२- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता सं० १४७

डा० हरिहरनाथ टण्डन ने भक्तमाल तथा भक्तमालकार के विषय में लिखा है-

"भक्तमाल मे परमानन्ददास जैसे अच्छी कोटि के भक्त के विषय में जो वृत्त दिया है, उससे केवल यह निष्कर्ष निकलता है या तो भक्तमालकार की जानकारी अल्प थी या साम्प्रदायिक महत्व के कारण कृष्ण भक्त कवियों का इसमें उनकी गरिम्मा के योग्य उल्लेख नहीं हुआ है ।[३३]

टण्डन जी ने ऐसा इसलिए लिखा है कि भक्तमालकार ने परमानंददास के पदों में "सारंग" छाप का उल्लेख किया है जो टण्डन जी को उपलब्ध नहीं होते । किंतु डा० दीनदयाल गुप्त ने "अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय" के पृ० ११४ पर अपने निजी संग्रह से परमानंददास के कुछ ऐसे पद उद्धृत किए हैं जिनमें "सारंग" छाप मिलती है ।

नाभादास क और उनके भक्तमाल के विषय में भी डा० टंडन की जानकारी भ्रमपूर्ण ज्ञात होती है, जैसाकि भक्तमाल के रचना-काल के संबंध में उनके निम्न उल्लेखों से स्पष्ट है । उनका कहना है कि -

(अ) नाभादास का भक्तमाल, जिसका रचनाकाल सम्वत् १६८० के पूर्व है[३४] ।

(ब) नाभादास को गोस्वामी की पदवी सम्वत् १६५२ के कान्हरदास के भण्डारे पर मिली थी, इसलिए इस ग्रंथ की रचना उन्होंने इसके पूर्व अवश्य कर ली होगी ।[३५]

किंतु उनके कथन पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं हैं । डा० हरिहरनाथ ने भक्तमालकार पर पक्षपात का आरोप लगाया है, किंतु वह आरोप भी असंगत ही है । पहले हमने नाभादास के भक्तमाल के प्रसंग मे इस आरोप की सत्यता पर वस्तुः वार्ताकार की ही दृष्टि पक्षपातपूर्ण थी ।

मीराबाई का उल्लेख चौरासी वैष्णव की वार्ता सं० ४६,५५,९२ में क्रमशः "गोविन्द दुबे साचौरा की वार्ता", "मीराबाई के पुरोहित रामदास" तथा "कृष्णादास अधिकारी" की वार्ताओं में आया है । मीरा के विषय में उपर्युक्त वार्ताओं में क्या लिखा गया है, इससे परिचित हो जाने पर निष्पक्ष निर्णय

३३- वार्ता साहित्य, पृ० ४७१ ।

३४- वार्ता साहित्य का एक वृहत् अध्ययन, पृ० १९३, ४७६ तथा ४७८ ।

३५- रचनाकाल १६४० के लगभग सम्वत १६३१ के पीछे -१६८० के पहिले ।

में सुविधा होती । वार्ता सं० ४१ में लिखा है कि गोविन्द दुबे "मीरा बाई के घर भगवद् वार्ता करते हुए अटक जाते हैं । गुसांई जी एक श्लोक लिख कर किसी ब्रजवासी से भेजते हैं । वह श्लोक दर कर चल देते हैं, "मीराबाई ने बहुत समाधान कियो पर गोविन्द दुबे ने फिर पाछे न देख्यो" ।

वार्ता सं० ५४ (मीराबाई) के पुरोहित "रामदास" की वार्ता) में मीराबाई के विषय में लिखा हुआ है कि एक बार मीराबाई के ठाकुर के सामने रामदास जी आचार्य जी महाप्रभु के पद गा रहे थे । मीराबाई ने कहा- दूसरो पद भी ठाकुर जी के गावो" । इस पर रामदास जी ने उत्तर दिया "अरे दारी रांड यह कौन को पद है, यह कहा तेरे खसम को मूंड है, जो जा आजते तेरो मुंहडौ कबहूं न देखूंगो ।" फिर मीरा बाई के बहुत समझाने के बावजूद भी रामदास जी अपने कुटुम्बियों सहित वहां से चले गए । "तब घर बैठे भेंट पढ़ाई सोई फेरि दी और कह्यो जो रांड तेरो, आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है ।"

वार्ता सं० ९२(कृष्णदास अधिकारी की वार्ता) में मीराबाई का प्रसंग द्रष्टव्य है-

"सोवे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गए हुते सो भी रणछोड़ जी के दर्शन करि के तहां से चले सो आपन मीराबाई के गाव आयौ, सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गए तहां हरिवंश व्यास आदि विशेष सह वैष्णव हुते सो काहू को आए आठ दिन काहू को आय दस दिन काहू को आये पन्द्रह दिन भये हुते तिनकी विदा न भई हुती ।"

कृष्णदास जी ने आते ही अपने चलने के लिए कहाँ, मीरा ने उन्हे मोहरें श्रीनाथ जी की भेंट के लिए देना चाहा, किन्तु कृष्णदास ने इसलिए वापस कर दिया क्योंकि वह पुष्टि मार्ग में दीक्षित न थी । जब कृष्णदास जाने लगे तो "वैष्णवन ने कही, तुमने श्रीनाथ जी की भेंट नाही लीनी । तब कृष्णदास ने कह्यो जो भेंट की कहा है । परि मीराबाई के यहां जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे करिके भेंटि फेरी है, उतने इक ठौरे कहा मिलते ।"

"चौरासी वैष्णवन की वार्ता में कृष्णदास अधिकारी की वार्ता के अन्तर्गत हरिवंश जी का उल्लेख आता है । ये हरिवंश जी कौन थे इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ है । घटना में मीरा बाई के घर मेड़ता में हरिवंश जी की उपस्थिति का संकेत है । सारी घटना को पढ़कर यही प्रतीत होता है कि यह कृष्णदास

का गौरव प्रदर्शित करने के लिए कल्पित वार्ता है, जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है । यदि हरिवंश और व्यास नाम से राधावल्लभीय दोनों महानुभावों का ही ग्रहण अभीष्ट है तो निस्सन्देह यह प्रसंग कल्पित है, क्योंकि हरिवंश जी के वृन्दावन आने के बाद ब्रजमण्डल से बाहर जाने का कोई उल्लेख किसी वाणी में नहीं मिलता । यदि यह घटना सम्वत् १५९१ से पहिले की है तो हरिवंश जी की इतनी ख्याति नहीं हुई थी और न व्यास जी ही सम्वत् १५९१ से पहले वृन्दावन से जाकर हरिवंश जी के शिष्य हुए थे ।[३६]"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह घटना राधावल्लभीय महानुभावों के विषय में ही लिखी गई है, जिसकी पुष्टि इस प्रकार से भी हो जाती है कि हरिवंश जी के साथ "व्यास जी" का नाम आया है । अतएव वार्ताकार को कदाचित् हरिवंश तथा व्यास जी को नीचा दिखला कर कृष्णदास की महत्ता बढ़ाना ही अभीष्ट ज्ञात होता है ।

ठीक यही प्रवृत्ति वार्ताकार की नन्ददास की वार्ता में है जिसमें तुलसीदास को उनका भाई बनाकर जान बूझकर प्रसंग को बिगाड़ा है, और राम भक्त तुलसी को नीचा दिखाया है । यही नहीं बल्कि राम भक्त कील्ह के शिष्य आशकरण जी को भी गुसांईं जी का सेवक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । रामभक्तों तक ही बात नहीं रहती -राम तक को भी वार्ताकार ने आचार्य जी महाप्रभु के सामने तुच्छ समझा है । इसकी पुष्टि में केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। यह उद्धरण आचार्य जी के निज वार्ता तथा घरू वार्ता से दिया जा रहा है-

"जब श्री आचार्य जी महाप्रभू एक समैं अजुध्या को पधारे, श्री राम जी के मन्दिर में सो, श्री राम जी, श्री लक्ष्मण जी, श्री सीता जी और हनूमान जी ए ब्धारौ हुतौ ता समैं श्री आचार्य जी महाप्रभु आप भी मुखते कहे जो मर्यादा पुरुषात्तमायनमः तब श्री रामचन्द्र जी, श्री आचार्य जी महाप्रभून को आते सनमान भली भांति सो किये सो आचार्य जी महाप्रभु जाने और कोऊ नहीं समुझ्यो । ताहीते हनुमान जी को बुरा लाग्यो जो श्री आचार्य क जी महाप्रभू श्री रामचन्द्र को मर्यादा पुरुषोत्तमायनमः ऐसे क्यो कहे डंडौत नहीं प्रणाम

३६- डा० विजयेंद्र स्नातक, राधावल्लभ संप्रदाय, पृ० ५९ ।

नहीं ।" इस पर रामचन्द्र जी ने हनुमान जी के अन्तःकरण की बात जानकर उनका कलुष दूर करने के लिए उन्हें सरयू के किनारे बैठे हुए आचार्य जी के पास भेजा । हनुमान जी को आचार्य जी कैसे दिखलाई पड़े मानो "साक्षात् श्री रामचन्द्र जी के स्वरूप धरिके बैठे हैं, तब हनूमान जी को सन्देह भयो जो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने श्री रामचन्द्र जी को स्वरूप कैसे धार्यो ।" उसके पश्चात् जब हनूमान जी ने रामचन्द्र जी से इस घटना का वर्णन किया । "तब श्री रामचन्द्र जी हनूमान जीसों कहे जो उनमें इतनी सामर्थ्य है, जो मेरो स्वरूप धरि लेई और हममे इतनी सामर्थ्य नाहीं, जो उनको स्वरूप धरें[३७]।"

इसी प्रकार कांकरौली से प्रकाशित प्रति में अजब कुंवरबाई का जो परिचय दिया गया है वह विचारणीय है:"सो मीराबाई अजब कुंवरिबाई के गाम सिंहाड में रहती । और मीराबाई के दूसरी सिंहाड हुती परि अजब, कुंवरिबाई और मीराबाई एक गाम घर में रहती ।"

गुसाईं जी के वहां जाने पर "पीछे भेंट धरि कै दरसन करिकै तुरत ही मीराबाई फिरी । तब श्री गुसांई जी ने कही जो यह भेंट तो हम नाही राखे । हमारे काम की नाहीं" -----पाछे भेंट फेर दीनी तब अजब कुंवरिबाई ने कही मीराबाई सों जो तुम कहो तो हों इनकी सेवकिनी होऊं । तब मीराबाई ने नाहीं करी[३८]।"

अजब कुंवरबाई को साक्षात्"पूर्ण पुरुषोत्तम" दिखलाई पड़े । गुसाईं जी जब जाने लगे तो उसे मूर्छा आयी । अन्त मे गुसाईं जी ने नाम देकर "पादुका पधरायो" अजब कुंवर बाई पर श्रीनाथ जी प्रसन्न हुए तथा उसके वचन मानकर अब तक वे मेवाड़ में बिराजे हैं ।

इससे जो परिणाम निकलता है वह यह है कि मीराबाई के परिवार से संबंध जोड़ना, बल्लभ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठा के लिए, मीराबाई की भेंट को अस्वीकार करना तथा अजब कुंवर बाई को गुसांईजी का साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम रूप

३७- आचार्य जी की घरू वार्ता, सम्पादक द्वारिका दास पारीख, पृ० ५-६ ।

३८- दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता, तीन जन्म की लीला भावनावाली, द्वि० खण्ड, पृ० ७९-८० ।

दिखलाई पड़ता है । सहे तुक हैं ।

इस प्रकार से वार्ताकार की दो मूल प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं । एक तो वल्लभीय सम्प्रदायी वैष्णव भक्तों का महत्व बढ़ाना । दूसरे अन्य संप्रदाय के भक्तों के महत्व को कम करना तथा बड़े-बड़े प्रतापी राजाओं महाराजाओं के घराने से अपना सम्पर्क बतलाकर अपने संप्रदाय को लोकप्रिय बनाना । मीरां बाई एक राज घराने की महिला थीं, उनके श्वसुर राणा सांगा का प्रभुत्व सम्पूर्ण राजपूताने पर था । मीराबाई के घर से सम्पर्क जोड़ने के लिए अजब कुंवर बाई को, जो मीरा की देवरानी थी, गुसाई जी की शिष्या बताया गया है[३९] ।

ठीक इसी प्रकार नरवरगढ़ के महाराजा आशकरण को भी उनके राज घराने से सम्पर्क जोड़कर सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा क बढ़ाने के लिए स्वामी कील्हदास के शिष्त्व को तिलाञ्जलि दिलवाकर गुसांईं जी ने ही दीक्षा लेने के लिए घसीटा है ।

इन वार्ताओं के आधार पर यह निस्संदिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि वार्ताकार ने कृष्णभक्ति को प्राधान्य देने के लिए अनेक असंगत कल्पनाओं का आश्रय लिया है अतः इसकी दृष्टि पक्षपातपूर्ण है ।

राघोदास का "भक्तमाल" तथा वार्ताएं -

राघोदास दादूपंथी थे, इनका भक्तमाल अभी अप्रकाशित है । इनका तथा ग्रंथ का पूर्ण परिचय पीछे दिया जा चुका है । इस स्थल पर केवल वार्ता के कुछ प्रमुख भक्तों को लेकर यह दिखलाने की चेष्टा की गई है कि वार्ता के प्रसंगों तथा भक्तमालकार के वर्णनों में कहांतक साम्य है । जिन भक्तों के प्रसंगों की तुलना की गई है, वे इस प्रकार हैं-

(१) सूरदास जी (२) परमानंददास जी (३) नन्ददास जी (४) गोविन्दस्वामी तथा (५) राजा आशकरण जी ।

३९- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता सं० ४७ ।

(१) सूरदास- राघोदास के भक्तमाल में सूरदास की प्रशंसा करते हुए बतलाया गया है कि "करुणा","प्रेम", "वियोग" संबंधी पदों की रचना करने में वे प्रवीण थे। इसमें इनके काव्य की समता बाल्मीकि तथा व्यास से की गई है।

वार्ताकार ने इनके विषय में कई प्रसंगों का उल्लेख करके बतलाया है कि किस प्रकार वे गऊघाट पर रहते थे तथा किस प्रकार से वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए और पुनः श्रीनाथ का कीर्तन किस प्रकार करने लगे आदि। इन प्रसंगों का भक्तमाल में कहीं भी उल्लेख नहीं है।

(२) परमानन्द दास- परमानन्ददास के विषय में राघोदास ने लिखा है कि वे कृष्ण के प्रेम छके रहते थे और उनके नेत्रों में सदा प्रेम के आंसू आते रहते थे। "सारंग" छाप से कविता करते थे।

यदि वार्ताओं से तुलना करते हैं तो ज्ञात होता है कि भक्तमाल में उल्लिखित तीनों विशेषताओं में से किसी की चर्चा वार्ताओं में नहीं है।

(३) नन्ददास- इनके विषय में केवल इतनी समानता है कि दोनों ग्रंथकारों ने इन्हें"रामपुर निवासी" और चन्द्रदास का बड़ा भाई लिखा है। एक ने उन्हें "सुकल" वंशीय और दूसरे ने "सारस्वत" लिखा है।

अन्तर यह है कि राघोदास जी ने केवल इनके काव्य की प्रशंसा की है, जबकि वार्ताकार ने इनको तुलसीदास का भाई कहा है तथा अन्य जो भी प्रसंग वार्ता में इनके विषय में आए हैं उनमें से किसी का भी संकेत "भक्तमाल" में नहीं मिलता।

(४) गोविन्दस्वामी- प्रभु के "सुजस" के प्रचारकों में भक्तमालकार ने इनका केवल नाम गिना दिया है।

(५) राजा आशकरणजी- इनके विषय में परिचय दोनों में समान है, केवल भक्तमालकार ने उनके पिता "भीम" का भी उल्लेख किया है जबकि वार्ताकार ने इस संबंध में कुछ नहीं लिखा है।

अन्तर- भक्तमालकार ने लिखा है कि वे मनमें "मोहललाल" "हरि हरि" का भजन करते थे। घर में जो कुछ धन रहता था साधु सेवा तथा रास में खर्च करते थे। इन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इनके गुरु कील्ह थे।

वार्ताकार ने इनके विषय में कई प्रसंगों का उल्लेख किया है तथा लिखा है कि तानसेन के समय गोविन्दस्वामी के संगीत के पद सुनकर वे प्रभावित हुए तथा गुसांई जी के शिष्य हो गये। इस प्रकार के किसी भी प्रसंग का उल्लेख भक्तमाल में नहीं है।

निष्कर्ष-

तुलना से यही परिणाम निकलता है कि भक्तमाल तथा वार्ता के प्रसंगों में मौलिक अन्तर है। यहां तक कि वार्ता के किसी भी प्रसंग का मेल नहीं खाता। यह विरोध स्पष्ट दिखलाई देता है कि भक्तमालकार ने आशकरण को कील्हस्वामी का शिष्य लिखा है तो वार्ताकार ने गुसांई विट्ठलनाथ का। पुनः वार्ताकार ने नन्ददास को तुलसीदास का भाई लिखा है किंतु भक्तमालकार ने इसका उल्लेख ही नहीं किया है। प्रश्न यह उठता है कि जो भक्तमाल नाभादास के भक्तमाल से भी विस्तृत है और जिसमें नाभादास द्वारा वर्णित भक्तों के अतिरिक्त कबीर पंथियों, निरंजनियों तथा दादूपंथियों आदि का वर्णन किया, उसने वार्ता में वर्णित इन चरित्रों के प्रसंगों का कहीं भी उल्लेख क्यों नहीं किया? यही नहीं भक्तमाल में वल्लभाचार्य गुसाई विटठलनाथ जी तथा वार्ता के मूल रचयिता "गोकुलनाथजी"[४०] का वर्णन करते समय इनके शिष्यों तथा प्रसंगों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। इससे यही परिणाम निकलता है कि राघोदास के समय तक इन वार्ताओं का कहीं प्रचलन नहीं था, और कदाचित् ये वार्तायें उस समय तक लिपिबद्ध नहीं हुई थी अन्यथा इनका मत्किंचित संकेत अवश्य हुआ होता।

४०- श्री गोकुलनाथ अनाथ पैं दया करत, अति गुन गंभीर।
क्रोध रहित मतिधीर, मनौ रतनाकर नाईं।।
सुजस सकल संसार प्रभुतपति सम गरवाई।
भजन प्रबल जस बिठलनाथ कौ जासी वेला।।
प्रभु प्रसाद तन तेज चरन चरचत नृप चेला।
श्री वल्लभ कुल मैं प्रेम पुंज न बिलोक ऐसो धमीर।।
श्रीगोकुलनाथ अनाथ पै दया करत अति गुन गंभीर।।४९१।।

प्रियादास की टीका और चौरासी वैष्णवन की वार्ता की तुलना-

प्रियादास की टीका से ८४ वार्ता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रायः यही धारणा होती है कि दोनों रचनाओं की वार्ताएं एक दूसरे से ली गई हैं। इन वार्ताओं में यहां तक समानता है कि शब्द साम्य के साथ-साथ वाक्य-साम्य भी पाया जाता है।

दोनों रचनाओं का सविस्तार तुलनात्मक अध्ययन तीन प्रकार से किया जा सकता है:-

(१) दोनों रचनाओं में समान नाम और समान वार्ताएं।

(२) दोनों रचनाओं में दूसरे नाम किन्तु वही वार्ताएं।

(३) दोनों रचनाओं में वही नाम किन्तु दूसरी वार्ताएं।

उपर्युक्त क्रम से अलग-अलग विचार विस्तृत रूप से नीचे किया गया है।

(१) <u>दोनों रचनाओं में समान नाम और समान वार्ताएं</u>।

इस दृष्टि से निम्नलिखित वार्ताएं तुलनीय हैं-

त्रिपुरदास कायस्थ की वार्ता प्रि० टी० छंद ३४०-४३ तथा चौ० वार्ता २८ के प्रसंग ३ में पाई जाती है। दोनों ग्रंथों में जो वार्ताएं दी गई है सुविधा के लिए उन्हें हम क्रमशः समानार्थी टुकड़ों में विभक्त कर के नीचे दे रहे हैं-

कायथ त्रिपुरदास भक्ति सुख राशि भर्यौ
　　कर्यो ऐसो पन सीत दगला पठाइयै।
निपट अमोल पट हियें हित जटि आवै
　　तातें अति भावै, नाथ अंग पहिराइयै।
आयो कोऊ काल नरपति नै बिहाल कियौ,
　　भयो ईश ख्याल नेकु घर में न खाइयै।
वही ऋतु आई, सुधि आई आंखि पानी भरि आई,
　　एक द्राति दीठि आई बेंचि ल्याइयै ।।३४०।।

"बहुरि कितनेक दिन में त्रिपुरदास की चाकरी छूटी सो सीत काल के दिन आये तब श्रीनाथ जी को कबाय पठावै तौ कहां ते पठावै इतनों समों घर

में नाहीं त्रिपुरदास की कवाय हर वर्ष जाती सो श्रीनाथ जी आप अंगीकार करते तब त्रिपुरदास ने कह्यौ जो अब कहा करियै तब एक ढाति पीतर की हुती सो बेची ।"

बेचि के बजारयों, रुपैया एक पायो ताको,
ल्यायो मोटी थान मात्र रंग लाल गाइये ।
भीज्यों अनुराग, पुनि नैन जलधार भीज्यो,
भीज्यो दीनताई, धरि राख्यो और आइये ।।
कोऊ प्रभुजन आय, सहज दिखाई दई,
भई मन दियो लै "भंडारी" पकराइये ।
काहू दास दासी के न काम कौ, पै,
जाउ लैके बिनती हमारी जू गुसाँई न सुनाइये ।।" ३४१।।

"ताके दामन की गजी मंगाई सो रंगाई, ताकी कवाय बनवाय के श्रीनाथजी को पठाई ।"

दियौ लै भंडारी कर राखे धरि पट,
वापै निपट सनेही नाथ बोले अकुलाय कै ।
"भये हैं जड़ाये, कोऊ बेग ही उपाय करौ",
विविध उठाये अंग बसन सुहाय कै ।।
आज्ञा पुनिदई, अंगीठी बारि दई,
फेरि वही भई, सुनि रहे अति ही लजाय कै ।
सेवक बुलाय कही "कौन की कवाय आई ?"
सबै सु सुनाई, एक वही ली बचाय कै ।।१४२।।

"सो रंगी देखिके भंडारी ने भंडार में डार दीनी, तब कितनेक दिन में श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी द्वार पधारे सो जब श्रीनाथ जी को श्रृंगार करन लगौ तब श्री गुसाईं जी सो श्रीनाथ जी ने कह्यौ जो मोको शीत बहुत लागत है तब श्रीगुसाईं जी ने कह्यो जो दूसरी अंगीठी लावौ तब दूसरी अंगीठी लाये तोहू कही जो मोको शीत बहुत लागत है तब श्री गुसाईं जी ने गद्दल उढ़ायो तबहू श्रीनाथ जी ने कह्यो जो मोको शीत लागत है तब श्री गुसाईं जी ने तीसरी अंगीठी मंगाई तबहू कही जो

मोको शीत लागत है तब श्री गुसाईं जी ने भंडारी को बुलायौ और वासौं पूछौ जो कौन कौन वैष्णव की कवाय आई हुती तब जा जा वैष्णव की आई हुती ता ता वैष्णव को नाम लियौ ।"

सुनी न "त्रिपुरदास" । बोल्यो "मन नास भयौ",
मोटौ एक थान आयौ राख्यो है बिछाय कै ।
"ल्यावौ वेगि याही छिन," मन की प्रवीन जानि,
ल्यायो दुख मानि, ज्योंति लई सो सिंवाय कै ।।
अंग पहिराई सुखदाई, कापै गाई जाति,
कही तब बात" जाड़ौ गयौ भरि भाय कै ।"
नेह सरसाई, लै दिखाई, उर छाई सबै,
ऐसी रसिकाई हूदै राखिहै बसाय कै ।।२४३।।

"तब श्री गुसांई जी ने कही जो त्रिपुरदास की क्वाय नाहीं आई तब भंडारी ने कह्यो जो त्रिपुरदास की एक रंगीन कवाय आई है सो भंडार में पड़ी है तब श्री गुसाईं जी ने कह्यो जा रंगीन क्वाय ले आवो तब भंडारी वह रंगीन कवाय ले आयो तब श्री गुसांई जी देखे तो मेली मरगजी सी हो रही है तब वाको फार पोंछ के तत्काल दरजी बुलाय के फरगुल सिद्ध करवाई तब वह फरगुल श्रीनाथ जी कौ उढ़ाई तब श्रीनाथ जी ने कह्यौ जो अब मेरी शीत निवर्त भयो ऐसे श्रीनाथ जी भक्ति के पक्षपात जो भक्ति भाव की वस्तु को या भांति अंगीकार करै सो वे त्रिपुरदास श्रीआचार्य जी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय है ताते इनकी वार्ता कहा ताई लिखियै ।। प्रसंग ।।३।। वैष्णव ।।२८।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त आख्यानों में न निम्नांकित वार्ताओं का विकास हुआ है-

त्रिपुरदास कायस्थ का सम्बन्ध किसी नरपति से होना, उनका शीतकाल में श्रीनाथ जी के लिये प्रति वर्ष "कवाय" या "दगला" भेजना, कुछ दिनों के पश्चात् उस नरपति से संबंध विच्छेद हो जाना, अन्न के अभाव से एक बार पीतल की "द्राति बेंच कर गजी का रंगीन "दगला" भेजना, उसका वैसी ही रख दिया जाना, अंगीठियां जलाने से भी उस शीत का दूर न होना केवल सिला कर क्वाय के पहिनाने पर शीत का जाना ।

दोनो वार्ताओं में शब्द-साम्य के साथ-साथ वाक्य-साम्य भी पाया जाता है-

प्रि० टी० "एक द्राति दीठि आई बेचि ल्याइयै"

चौ० वा० "तब एक द्राति पीतरि की हुती सो बेची"

प्रि० टी० "कौन कौन की कवाय आई"

चौ० वा० " कौन कौन वैष्णवन की कवाय आई हुती"

इनसे भी अधिक ध्यान देने योग्य साम्य अंगीठी जला कर शीत दूर करने के उपचार तथा दरजी बुला कर कवाय सिलवाने के विषय में है, इतने छोटे छोटे विस्तारों का एक सा होना, दोनों में दी हुई वार्ता के स्रोत-सम्बन्ध की ओर निर्देश करता है। दोनो वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर पाये जाते हैं:-

(क) प्रि० टी० में ८४ वार्ता के तीसरे ही प्रसंग का वर्णन है, जब कि ८४ वार्ता में दो प्रसंग और भी हैं।

(ख) चौ० वा० के आख्यान के अंत में "आचार्य जी के कृपापात्र" अथवा "भगवदीय" उल्लिखित है, जो प्रि० टी० में नहीं है।

इस प्रकार के साम्य का समाधान निम्नलिखित तीन प्रकार से हो सकता है-

(क) प्रियादास जी ने वार्ता के इसी तीसरे प्रसंग को जो केवल श्री गुसांई जी से संबंधित है अपनी टीका में लिख दिया हो।

(ख) वार्ताकार ने टीका के इस आख्यान को अपनी वार्ता में जोड़ दिया हो।

(ग) दोनों ग्रन्थों में यह सामग्री कहीं अन्यत्र से प्राप्त की गई हो।

इसी प्रकार का साम्य प्रि० टी० छन्द ३४४-४७ तथा चौ० वा० ९२ (प्रसंग, ५, ४,८,९) में क्रमशः कृष्णदास और कृष्णदास अधिकारी की वार्ताओं में भी पाया जाता है। इन वार्ताओं के तुलनीय अंशों को भी सुविधा के लिये समानार्थी टुकड़ों में विभाजित करके नीचे दिया जा रहा है-

प्रेम रस रास कृष्णदास जू प्रकास कियो,
लियो नाथ मानि सौं प्रमान जग गाइये।
दिल्ली के बजार मैं जलेबी सो निहारिन नैन
भोग लै लगाई, लगी विद्यमान पाइये।
राग सुनि भक्तिनी को, भये अनुराग वश
शशि मुख लाल जू कों जाय कै सुनाइये।

देखि रिझवार रीझि निकट बुलाय लई,

लई संग चले, जग लाज को बहाइये ।।३४४।।

"और एक समय श्रीनाथ जी के भंडार में कछू सामग्री चाहियत हुती सो कृष्णदास गाडा लेकें आगरे को आये सो आगरे के बाजार में एक वेश्या नृत्य करत हुती ख्याल टप्पा गावत हुती और भीर हुती सब लोग तमासो देखत हुते सो कृष्णदास बाजार में तमासे में जाय ठाढे भये तब भीर सरक गई तब वह वेश्या कृष्णदास के आगे नृत्य करन लागी सो वह वेश्या बहुत सुन्दर और गावै बुहुत आछौ नृत्य ते सोई करे सो कृष्णदास वा वेश्या के ऊपर रीझे और मन में कहे जो यह तौ श्रीनाथ जी के लायक है, ता पाछें वा वेश्या को दश मुद्रा तौ उहां ही दीये और कही जो रात्रि को समाज सहित आइयौ ता पाछें कृष्णदास उहां हवेली में उतरे सो सामग्री चाहियत हुती सो लेकें गाड़ा लदाय सिद्ध करवायौ ता पाछें रात्रि पहर गई तब वेश्या समाज सहित आई ता पाछें नृत्य भयौ गान भयौ वापे कृष्णदास बहुत रीझे सत एक दिये तब वा वेश्या सों कह्यो जो तेरौ गानहू आछौ और नृत्य हू आछौ परि हमारो सेठ है सो तेरे ख्याल टप्पा ऊपर रीझेगो नाही ताते हो कहों सो गाइयो ता पाछें दूसरे दिन वा वेश्या को साथ लेके चले सो आगरे ते आये ।"

नीके अन्हवाय, पट आभरन पहिराय,

सोधौ हूं लगाय, हरि मंदिर में ल्याये हैं ।

देखि भई मतवारी, कीनी लै अलाप चारी,

कह्यौ "लाल देखे?" बोली "देखे में ही लाये हैं" ।

नृत्य गान, तान भाव भरि मुसिक्यान,

दृग रूप लपटान, नाथ निपट रिझाये हैं ।

ह्वैके तदाकार, तन छूट्यो अंगीकार करी,

धरी उर प्रीति, मन सबके भिजाये हैं ।।३४५।।

"पाछें तीसरे दिन श्रीनाथ जी द्वार आये सामग्री सब भंडार में धराई ता पाछे जब उत्थापन को समय भयौ तब कीर्तनिया काहू को आगे न दीये तब वा वेश्या को समाज सहित ले गये श्री गुसांई जी मंदिर में ठाडे श्रीनाथ जी को मूंडा करत है और मणि कोठा में वेश्या नृत्य करन लागी और यह पद गायौ ।।

सो पद-

राग पूरबी-"मो मन गिरिधर छबि पर अटक्यौ" ।।

यह पद वा वेश्या ने गायौ सो जब गावत २ पिछली तुक आई जो "कृष्णदास कियौ प्राण न्यौछावर यह तन जग सिर पटक्यौ" इतनौ कहत मात्र वा वेश्या के प्रान ततकाल निकसि गये और दिव्य स्वरूप धरि के श्रीनाथ जी की लीला में प्राप्त भई और वा वेश्या के समाजी हते सो मरन लागे जो हमारी तौ यातें जीविका हुती अब हम कहा खायेंगे तब कृष्णदास ने कह्यो जो तुम क्यों रोवत है चलौ नीचे खायवे को देऊं तब उन समाजीन को नीचे लायकें कृष्णदास ने सहस्त्र रूपया दे बिदा किये कृष्णदास ने अपने मन ते समर्पी ताते श्रीनाथ जी ने वा वेश्या को अंगीकार करी ताते श्री आचार्य जी महाप्रभून की कानि तें सेवक की समर्पी वस्तु या भांति सो अंगीकार करत हैं ।। प्रसंग ।।५।।"

आये सूरसागर सों कही, बड़े नागर हौ,
कोऊ पद गावौ, मेरी छाया न मिलाइये ।
गाये पांच सात, सुनि जान मुसिकात
कही भलें जू प्रभात आनि करिकै सुनाइये ।
पर्यो शोच भारी, गिरिधारी उर धरी बात,
सुन्दर बनाय सेज धर्यों यो लखाइये ।
आयकै सुनायो, सुख पायो, पच्छपात लै बतायो
हूं मनायो रंग छायो अभूं गाइये ।।३४६।।

"और कृष्णदास ने बहुत पद कीये तब एक समय सूरदास जी नें कृष्णदास सों पूछी जो तुम पद करत हौ तामें मेरी छाया है तब कृष्णदास ने सूरदास सों कह्यौ जो अबक ऐसो पद करूं जा जाय तुम्हारी छाया न आवे तब कृष्णदास एकान्त में बैठिके एकाग्र चित्त करिकें नयो पद करन लगे जो जामें तीन तुमको कीयौ और चौथी तुक बन नाही तब घड़ी दोयलो विचारे जो आगे तुक चलत नाहीं तो भलौ फेरी प्रसाद लेकें विचारेगे सो जा पत्र में लिखत हुते सो पत्र तथा द्वाति लेखनी उठाई धरिकें प्रसाद लेवे को उठे जब कृष्णदास प्रसाद लेवे को बैठे तब श्रीनाथ जी ने आध तीन तुक वा पत्र में अपने श्री हस्त सों लिखि दीये कृष्णदास

नें आधौ पद कीयौ हुतौ ताकों आप श्रीनाथ जी पूरौ करिकें आप तौ पधारे ता पाछें कृष्णदास प्रसाद लेकें आये तब देखौ तो श्रीनाथ जी पूरौ पद करिकें श्री हस्त सों लिखि गये हैं सो देख कें कृष्णदास बहुत प्रसन्न भयौ और कहे जो सूरदास जी आवे तौ पद सुनावें तब उत्थापन के समय सूरदास जी दर्शन कों आये तब कृष्णदास ने कह्यौ जो सूरदास जी नयौ पद एक मेनें कीये है तामें तुम्हारी छाया नाहीं धरी तब सूरदास जी ने कह्यौ जो कहौ सुनों तो जानों तबच पद कह्यौ सो पद

राग गौरी- आवत बने कान्ह गोप बालक संग नैचुकी खुर रेणु छुरतु अलकावली

+ + + +

यह पद कृष्णदास ने सूरदास जी के आगे कह्यौ सो सूरदास जी तीन तुक ताईं तौ बोले नाहीं और तीन तुक के आगे कहन लागे तबसू सूरदास जी कृष्णदास सों कह्यौ जो कृष्णदास मेरे तुमसो बाद है और प्रभून सो बाद नाही में प्रभून की बानी पहिचानत हों तबकृष्णदास चुप कर रहे ताते कृष्णदास ऐसे भगवदीय है || प्रसंग ||४||"

कुवां में खिसिल, देह छूटि गई, नई भई,
भई यो असंका कछु औरै उर आई है ।
रसिकन मन दुख जानि, सो सुजान नाथ
दिया दरसाय, तन ग्वाल सुखदाई है ।।
गोवर्धन तीर कही, "आगे बलवीर गये,
श्री गुसाईं धीर सो प्रनाम", यों जनाई है ।
धनहू बतायो, खोदि पायो विसवास आयो,
हियें सुख छायो, सेक पंक लै वहाई है ।।३४७।।

"सो बहुती बरस लों भली-भांति सों अधिकार कियौ पाछें वैष्णव ने कृष्णदास सों कहीं जो मोंको एक कूआ बनबावनो है और मोकों अपने देश को जानों है ताते द्रव्य तुमकों दे जात हौं सो तुम बनवाय दीजो तब कृष्णदास ने कही जो आछौ तब वह वैष्णव तीन सौ रुपैया देकें अपने देश कों गयौ तब कृष्णदास ने उन रुपैयान में ते एक सौं रुपैया एक कूल्हरा में धरि कें आम के वृक्ष के नीचे गाढ दीये कह्यो जो दोय से रुपैया ला चुकेंगे तब इनको काढेंगे सो आछौ मुहर्त

देखिकें रुद्र कुण्ड ऊपर कूआ खुदायौ तब कितनेक दिन में वह कूआ मोडताई बनके तैयार भयौ और दोय से रुपैया लगै मठोठा बाकी रह्यौ तब उत्थापन के दर्शन करिकें कृष्णदास कूआ देखन को गये सो म हाथ में आसा हुतौ सो आसा टेक के कूआ के ऊपर ठाडे भये सो वह आस सरक्यौ और तब कृष्णदास कूआ में जाय परे तब तो मनुष्य दोय कूआं में उतरे सो बहुतेरे ढूंढे परि कृष्णदास को शरीर हू न पायौ तब सब मनुष्य उहां ते फिर आये सो ता समय श्री गुसांईं जी श्रीनाथ जी को सेन भोग धरिकें मंजूष बिराजै हुते और रामदास श्रीगुसांईं जी के पास बैठे हुते ता समय काहू ने आयकें कह्यौ जो महाराज कृष्णदास ने कहू कूआं बनवायौ है सो कृष्णदास देखन गये हुते सो आसा टेकि कें कूआं के मौहडे ऊपर ठाडे हुते सो आसा सरक्यौ सो कूआ में गिर परे और मनुष्य दोय कृष्णदास को ढूढवे को उतरे सो बहुतेरो ढूंढे परि शरीरहू न पायौ कहा जानिये कहाय भौ तब रामदास जी कहैं ।। जो "अधो गच्छंति तामसाः"।।

तब श्रीगुसांईं जी कहै जो रामदास ऐसें न कहि अब जो कृष्णदास कूओं में गिरे सो शरीर न मिल्यौ ताको कारन कहा सो ताको कारन यह जो कृष्णदास में कोई अलौकिक जीव हुतौ सो तो श्रीनाथ जी की सेवा में प्राप्त भयौ और कृष्णदास ने या सरीर सों गुसांईं जी की अवीज्ञा करी है + + जो प्रेत होयके पूछरी की ओर पीपर के वृक्ष ऊपर बैठे रहत है ।। प्रसंग ।।८।। और एक समय श्रीनाथ जी की भैंसि खोय गई हुती हो गोपीनाथ ग्वाल और चार पांच ग्वाल पूछरी की ओर ढूढवे कों गये हुते सो गोपीनाथ देखें तौ पूछरी की ओर श्रीनाथ जी खेलत हैं और पीपर ऊपर कृष्णदास प्रेत व्है के बैठे हैं तब कृष्णदास ने गोपीनाथ ग्वाल सो कही जो अरे भैया मेरी बीनती श्रीगुसांईं जी सौं करियौ और कहियो जो कृष्णदास ने कह्यो है जो हूं तुम्हारौ अपराधी हौ तौ ताते मेरी अवस्था है, हूं श्रीनाथ जी के पास हूं तौ मेरी गति होत नाहीं ताते मेरौ अपराध क्षमा करौ तो मेरी गति होय और बाग में एक आम के वृक्ष के नीचे कूलहरा में एक सौ रुपैया गडे हैं सो कढि कें वा कूआ को मठोठा बाकी रह्यौ है सो बनवाओ तो मेरी गति होय सो गोपीनाथ ग्वाल ने यह बात श्रीगुसांईं जी के आगें कही जो महाराज कृष्णदास अधिकारी ने यह बीनती करी है तब श्री गुसांईं जी ने आम के नीचे ते रुपैया लायकें मठोठा कूवा को बनवायौ तब कृष्णदास की गति भई + + + ताते वे कृष्णदास श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं ताते इनकी वार्ता को पार नाहीं ताते इनकी वार्ता कहा ताईं लिखिये ।। प्रसंग ।।९।।

वैष्णव ।।९२।।

~~इन~~ उपर्युक्त आख्यानों में तीन निम्नांकित वार्ताओं या घटनाओं का विकास हुआ है-

(क) कृष्णदास का श्रीनाथ जी की सामग्री के लिये दिल्ली या आगरे के बाज़ार में जाना, वहां की किसी गाने वाली वेश्या पर रीझ कर उसे लाना ~~इन~~ तथा श्रीनाथ जी के सम्मुख गाते हुए उस वेश्या का उन्हीं में तदाकार हो जाना । (यह वार्ता टी० छंद ३४४-४५ तथा चौ० वा० ९२ प्रसंग ५ में आई है) ।

(ख) सूरदास जी की आज्ञा पर कृष्णदास का वह पद गाना, जिसमें उनकी छाया न हो तथा कृष्णदास के गाने पर सूरदास जी द्वारा उस पद को प्रभु की रचना बतलाना । (यह वार्ता टी० छंद ३४५ तथा चौ० वार्ता- प्रसंग ४ की है ।)

(ग) कुएं में गिरने से कृष्णदास की मृत्यु होना, प्रेत योनि में होने पर गड़े हुए द्रव्य को बतलाना तथा गुसांई जी से क्षमा याचना करने पर उन्हीं द्वारा कृष्णदास का उद्धार होना (यह वार्ता- टी० छंद ३४७ चौ० वार्ता- प्रसंग ८,९ की है) ।

इन वार्ताओं के शब्दों और वाक्यों में भी साम्य पाया जाता है, जो निम्नांकित है-

प्रा० टी० "कोऊ पद गावौ, मेरी छाया न मिलाइयै "

चौ० वा० " तुम पद करत हौ तामें मेरी छाया है तब कृष्णदास ने सूरदास जी सों कह्यौ जो अबक ऐसे पद करूं जा जाय तु म्हारी छाया न आवै"

प्रा० टी० "दिल्ली कै बजार मैं"

चौ० वा० " आगरे के बाजार मैं"

प्रा० टी० " कुवां मैं खिसिल, देह छूट गई"

चौ० वा० " तब कृष्णदास कूआ में जाय परे"

प्रा० टी० " लइ संग चले"

चौ० वा० " साथ लेके चले"

प्रा० टी० "तन छूट्यो अंगीकार करी"

चौ० वा० " श्रीनाथ जी ने वा वेश्या को अंगीकार करी "

दोनों वार्ताओं में निम्नांकित अन्तर दृष्टिगोचर होता है-

(क) चौ० ९२ में कृष्णदास अधिकारी विषयक ९ प्रसंग आए हैं, जब कि प्रि० टी० में चार कवित्तों में, जिनकी संख्याएं ३४४-४७ है, केवल क्रमशः चौ० के प्रसंग ५,४,८,९ आए हैं ।

(ख) कृष्णदास अधिकारी की वार्ता के अन्त में "आचार्य जी महाप्रभून के कृपापात्र" अथवा "भगवदीय" उल्लिखित है, जब कि टीकाकार इस संबंध में मौन है ।

(ग) वार्ता के सब प्रसंग विस्तारपूर्वक हैं किन्तु टीका में इनका वर्णन संक्षेप में है ।

(घ) वार्ता प्रसंग ९ में कृष्णदास अधिकारी को मृत्यु के पश्चात गोपीनाथ ग्वाल ने अपने चार पांच ग्वालों के साथ देखा, किन्तु टीका में ग्वाल का नाम नहीं आया है ।

(ङ०) टीका के कृष्णदास दिल्ली के बाज़ार में श्रीनाथ जी के लिये सामग्री लेने जाते हैं, जब कि वार्ता के कृष्णदास अधिकारी आगरे के बाज़ार में ।

दोनो ग्रंथों में कृष्णदास अधिकारी की वार्ता के आख्यान से भी निष्कर्ष निकलता है कि या तो दोनों ग्रन्थकारों में से किसी एक ने उपर्युक्त प्रसंग दूसरे से लिए अथवा दोनों ने एक ही स्रोत से लेकर एन्हें अपने-अपने ग्रंथों में स्थान दिया ।

(१) <u>दोनों रचनाओं में दूसरे नाम किन्तु वही वार्ता</u>

इस प्रकार की एक ही वार्ता है जो चौ० (वार्ता ८३) में कृष्णदास ब्राह्मण तथा प्रि० टी० (छंद ९८-९९) में पीपा के विषय की है । इसके तुलनीय अंशों को भी समानार्थी टुकड़ो में विभाजित करके दिया जा रहा है-

गये हे बुलाये आप, पाछे घर संत आये,
अन्न कछू नाहिं, कहूं जाय करि ल्याइये ।
विषयी बनिक एक देखिकै बुलाइ लई,
दई सब सौंज कही, "सही निशि आइये" ।।
भोज करत मांझ पीपा जू पधारे,
पूछी वारे तन प्रान जब कहि कै सुनाइये ।
करिकै सिंगार सीता चली झुकि मेह आयौ,
कांधे पै चढ़ायो बपु बनिया रिझाइये ।।९८।।

"सो वह कृष्णदास वा गाम में रहते परि अकिंचन रहते सो एक समय वैष्णव दस पन्द्रह मिलकें श्री आचार्य जी महाप्रभून के दर्शन को अडैल को जात हुते सो जा गाम में कृष्णदास रहते ता गांव में आये सो कृष्णदास के घर आये तब कृष्णदास तो घर हुते नाहीं कछू कार्यार्थ के लियै कोस तीन ऊपर गयै हुते और कृष्णदास की स्त्री घर हुती तब वा स्त्री नें उन वैष्णवन कौ साष्टांग दंडवत कीनी श्रीकृष्ण स्मरण करि बहुत आदर सनमान करिकें अपने घर में बैठारे पाछें मन में विचारें जो अब कहा करियै तब सुधि आई जो वह बनिया नित्य टोक्यो करत है जो तू मासों मिलि तू मांगिगी सो देउंगौ सो आज वासों सीधो सामग्री लाऊं ऐसे विचारि के स्त्री चली सो वा बनिया की हाट पै गई तबवा बनिया ने टोकी तब वा बनिया सो स्त्री ने कही जो मैं तोसों कालि मिलूंगी + + + तब वा वैष्णव ने महा प्रसाद भली भांति सो लीनों पाछे कृष्णदास घर आये तब वैष्णवन सों मिले दंडवत करि के भीतर गये तब स्त्री सो कह्यौ जो कहा खबरि है वैष्णवन को महाप्रसाद लिवाइयै तब स्त्री ने कह्यौ जो प्रसाद तौ लिवायौ है तब कृष्णदास ने कह्यौ जो सीधो सामग्री कहां ते लाई कहा प्रकार कीयौ हुतौ तब कह्यौ + + तब कृष्णदास ने अपनी स्त्री सो कही जो तुमने कालि वा बनिया सों कौल कीयौ हुतौ सो वह बनिया पेड़ो देखत होयगौ ताते वाको कौल पूरो करिये तौ भली है तब वह स्त्री उपटनो करि न्हाय के स्त्री जन के शृंगार होत हैं सो बह करिकें वह स्त्री चली सो वरषा के दिन हुते सो ह मेह बरष गयौ हुतौ सो मार्ग में कीच भई हुती ताके लिये कृष्णदास ने अपनी स्त्री सों कही जो तूं मेरे कांधे पै बैठ ले मैं ह पहुंचाय आऊं मार्ग में कीचि बहुत भई है तेरे पाय कीच में भींग जायगें सो वह बनिया देखि के तेरो अनादर करैगो तब वा स्त्री को अपने कांधे पर चढ़ाय कें ले चले।"

हाट पै उतारि दई, द्वार आप बैठे रहे,
चहे सूके पग माता कैसे करि आई हौ?
स्वामी जू लिवाय ल्याये, कहां है ? निहारो जाय,
आय पाय पर्यो डर्यो, राखो सुखदाई है।
मानो बिनि शंक, काज कीजिये निशंक,
धन दिये बिनु अंक, जापै लरै मरै भाई हौ।

मार्यो लाज भार, चाहै धंसो भूमि फार,

दृग वहै नीर धार, देखि, दई दीक्षा पाई हौ ।।२९९।।

"सो वह बनिया हाट के आगे उतार दीनी तब वा स्त्री ने वा बनियां को हैला पार के किवाड खोलि दीने और वा स्त्री को भीतर लीनी तब वह बनिया पाय धोयवे कौ पानी ले आयो और कह्यौ जो पाय धोय तब स्त्री ने कह्यो जो मेरे पाय कींच सो भरे नाहीं तब वा बनिया ने कह्यो जो पार्ग में कींच तो बहुत भई है और तेरे पाय कोरे कैसे रहे तब वह स्त्री ने कह्यौ जो तू पूछि के कहा करेगौ तू तेरौ काम करि तब वा बनिया ने कह्यौ जो यह तौ बात कही चाहिये तब वा स्त्री ने कह्यौ जो मेरे भर्तार मोको कांधे ऊपर चढ़ायकें लायौ हौ तब यह बात सुनि के वा बनिया को बडो आश्चर्य भयौ और सब वृतान्त हो सो पूछौ जो यह कहा कारन है सो सब मेरे आगे कहि तब वा स्त्री ने जो प्रकार भयौ हौ सो सब कह्यौ सो वह सुनिके बनिया अपने मन में धिकार करन लग्यो और कहौ जा धन्य जन्म तुमारौ जो जिनको ऐसो मन राख्यो है और धिकार जन्म मेरो है तब दोऊ हाथ जोरि के दंडौत कीनी और कह्यौ जो मेरो अपराध क्षमा करियै और मेरे ऊपर कृपा राखियै मेरी तुम बहन हौ ऐसे कहि वा बनिया ने बहुत दुख मान्यौ पाछें वा बनिया ने स्त्री को कपड़ा पहराय के वाके घर पहुँचाय दीनी और कृष्णादास सौं वा बनिया ने बहुत बीनती कीनी जा तुम मेरो अपराध क्षमा करौ यह मेरी बहन है और तुम मेरे पूज्य हौ तब कृष्णादास नें कही जो तेरो कहा अपराध है तू संकोच मति कर फेरि वह बनिया कितनेक दिन पाछें श्री आचार्य जी महाप्रभून को सेवक भयो नाम समरपणा कीयौ तब वा बनिया को नाम श्री आचार्य जी महाप्रभून ने ज्ञानचंद धर्यो पाछैं वह बनिया बडौ भगवदीय भयौ सो कृष्णादास के संगते भयौ ताते संग करनौं तो भगवदीय कौ करनौ जासौं भगवद्भक्ती उत्पन्न होय पाछें वह बनिया सदा कृष्णादास सौं नगत रहतौ उनकी स्त्री सौं बहन कहतौ सो ऐसे सम्बन्ध राखतौ सो वे श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय है ताते इनकी वार्त्ता कहां ताईं लिखियै ।। प्रसंग १ ।। वैष्णव ८३ ।।"

उपर्युक्त आख्यान में निम्नांकित प्रसंग का विकास हुआ है-

कुछ संतों का उपर्युक्त वैष्णव (पीपा अथवा कृष्णादास) के घर आना, पति की अनुपस्थिति में स्त्री द्वारा किसी "विषयी बनिक" के गृह से निश्चित समय पर उपस्थित होने का वचन देने पर सामग्री पाना, संतों को खिलाना, पति द्वारा स्त्री को कंधे पर बिठा कर निश्चित स्थान और निश्चित समय पर ले जाया जाना तथा बणिक द्वारा क्षमा-याचना करने पर दीक्षा पाना । दोनों आख्यानों में वार्त्ताओं का ही साम्य नहीं है, बल्कि शब्द साम्य के साथ -साथ वाक्य साम्य भी है ।

निम्नांकित साम्य दर्शनीय है-

प्रि०टी० "करिकै सिंगार सीता चली झुकि मेह आयो,
काँधे पै चढ़ायौ बपु बनिया रिझाइयै ।।"

चौ०वा० "तब वह स्त्री उबटनो करि न्हाय कै स्त्री जन के श्रृंगार हौत है सो सब करि के वह स्त्री चली सो बरषा के दिन हुते सो मेह बरष गयौ हुतौ सो मार्ग में कीच भई हुती ताके लिये कृष्णादास ने अपनी स्त्री सों कही जो तू मेरे काँधे पै बैठ ले मैं पहुचाय आऊं + + + + + स्त्री को अपने काँधे पर चढ़ाय के ले चले ।"

प्रि० टी० "हाट पै उतार दई"

चौ०वा० "सो वा बनिया की हाट कै आगे उतार दीनी"

प्रि० टी० "चहे सूके पग माता कैसे करि आई हो"

चौ० वा० "मार्ग में तो कीच बहुत भई और तेरे पाय कोरे कैसे रहे"

दोनों वार्त्ताओं में निम्नांकित अन्तर हैः-

(क) चौ० वा० ८३ में कृष्णादास कीस्त्री जिस बणिक के गृह मे सामग्री लाई थी उसको श्री आचार्य जी ने दीक्षा भी दी और उसका नाम ज्ञानचंद रखा तथा इस वार्ता के अन्त में कृष्णादास विषयक यह कथन कि "कृष्णादास जी आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय है ताते इनकी वार्ता कहा ताई लिखीयै" प्रियादास की टीका में नहीं हैं ।

(ख) प्रियादास ने अपनी टीका में पीपा के विषय में कई प्रसंग उल्लिखित किए हैं जब कि चौ० वा० ८३ प्रसंग १ में प्रि० टी० का केवल एक प्रसंग आया है । टीका का शेष प्रसंग चौ० में नहीं है ।

(ग) चौ० में प्रसंग कुछ बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया है, जबकि प्रि०टी० में संक्षेप में है । चौ० में लिखा गया है कि उक्त बनिया महाप्रभु का सेवक हुआ, उसे

महाप्रभु ने नाम समर्पण कराया और फिर उसका नाम भी ज्ञानचन्द रखा किन्तु ज्ञानचन्द के नाम की स्वतंत्र वार्ता चौ० में नहीं दी गई है। इसलिए ऐसा ज्ञात होता है कि पीपा सम्बन्धी यह प्रसंग टीका के आधार पर ले कर कृष्णचन्द्र ब्राह्मण की वार्ता में रख लिया गया, कदाचित् इसलिए कि कोई चमत्कार-पूर्ण वार्ता उसके सम्बन्ध में पहले से प्रचलित नहीं थी, और महाप्रभु के प्रत्येक सेवक के सम्बन्ध में कोई न कोई चमत्कारपूर्ण प्रसंग देना आवश्यक समझा गया था।

(३) दोनों रचनाओं में वही नाम किन्तु दूसरी वार्ताएं

प्रि०टी० और चौ०वा० में नामों की एक बहुत बड़ी सूची दी जा सकती है, जो दोनों ग्रंथों में उपलब्ध है, किन्तु उनकी वार्ताएं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। अतः केवल नाम मिलने से किसी उचित परिणाम पर पहुंचना असंभव समझ कर, इस स्थल पर उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाता है, जो किसी छोटी-मोटी अथवा घटना किसी बात से एक ही ज्ञात होते हैं। इस प्रकार से उपर्युक्त नामों (त्रिपुरदास और कृष्णदास) को छोड़ कर केवल दो नाम ऐसे मिलते हैं। उन्हीं पर यहां विचार किया गया है -

(१) दोनों ग्रंथों में कई नारायणदासों के नाम आते हैं, किन्तु उनकी वार्ताओं में कोई भी समानता नहीं पाई जाती। केवल दो नारायणदासों में जो "भट्ट" हैं कुछ समानता है, जिनकी वार्ताएं प्रि०टी० छंद ३५६ तथा चौ० वा० ३ में पाई जाती हैं। दोनों ग्रंथों में इसका सम्बन्ध मथुरा वृन्दावन से बतलाया जाता है। चौ० के नारायणदास ने "मदन मोहन" की आज्ञा से मथुरा वृन्दावन में निर्धारित स्थान को खोद कर उनकी मूर्ति दिखलाई। इसी प्रकार टीका के नारायणदास ने भी "मथुरा ते कही "चलौ बेनी", पूछे बेनी कहां? "ऊंचे गांव" आप खोदि सोत लै दिखाये हैं।" दूसरी बात जो इस सम्बन्ध की है वह यह है कि टीकाकार ने भी इनका कार्य ब्रज तथा मथुरा के लीला स्थलों को खुदवा कर दिखलाना बतलाया है। साथ ही साथ दोनों ग्रंथों के नारायणदास "भट्ट" थे। हो सकता है कि दोनों ग्रंथों के नारायणदास भट्ट एक ही हों।

(२) दोनों ग्रंथों में एक गदाधरदास का नाम आया है, जिनकी वार्ताएं प्रि०टी० छंद ६१४-१७ तथा चौ० वार्ता १३ में मिलती है। किन्तु दोनों में केवल

एक ही प्रसंग की समानता है । कहा गया है कि जो कुछ भी सामग्री यजमानों के घर से प्राप्त होती थी, सब की सब ठाकुर जी को भोग लगा दी जाती थी । दूसरे दिन के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता था, टीका के गदाधरदास ने अपनी सामग्री माँगी तथा संतों को दे दी । एक दिन भोग में विलम्ब हुआ, किन्तु प्रातःकाल ही किसी ने सामग्री दी और तत्काल ठाकुरजी को भोग लगा । इसी प्रकार चौ० के गदाधरदास ने सामग्री के अभाव में जल छान कर भोग लगाया । इससे उन को कष्ट अवश्य हुआ, किन्तु किसी यजमान ने उसी दिन रात्रि को सामग्री प्रदान कर दी । शेष कोई भी बात नहीं मिलती । हो सकता है कि दोनों ग्रंथों के गदाधरदास एक ही हों ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त दो नाम दोनों ग्रंथों में इस प्रकार आये हैं, जो किंचित् भिन्नता के साथ समान प्रतीत होते हैं । इनके विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय पहले एक ही व्यक्ति को लेकर वार्ताएं चल पड़ी और ~~काला~~ कालान्तर में स्वतंत्र रूप से उनका संकलन दोनों ग्रंथों में अपने-अपने ढंग पर हुआ ।

(११) प्रियादास की टीका तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता का तुलनात्मक अध्ययन

दोनों ग्रंथों के प्रसंगों को देखने से ऐसा मालूम होता है कि इनमें बड़ा निकट का साम्य है । कई प्रसंग ऐसे हैं जिनके शब्द, वाक्य तथा भाव सभी एक से मालूम पड़ते हैं । सुविधा के लिए इस तुलना को दो भागों में रख सकते हैं:-

(१) ऐसे भक्त जिनका नाम तथा प्रसंग दोनों समान हैं ।

(२) ऐसे नाम वाले प्रसंग जिनके नाम दूसरे हों किन्तु प्रसंग वही हों ।

उपर्युक्त दोनों खण्डों के भक्तों की सूची टीका तथा वार्ताओं के तुलनात्मक कोष्ठक के रूप में इस प्रकार दी जा सकती है-

खण्ड (१) नाम वही, प्रसंग वही,

	टीका क०सं०	वार्ता सं०
(१) प्रेमनिधि	५९५-६००	६५
(२) मधुकरशाह	४८८	२४५

		टीका क० सं०		वार्ता सं०
(३) गोविन्द स्वामी	--	४१०-१४	--	वार्ता १
(४) भगवन्त या भगवानदास	--	६२७-६२९	--	२४३
(५) पृथ्वीराज	--	५३८-४०	--	२४१
(६) रानी रत्नावली	--	५४२-५८	--	२२७
(७) हंस हंसिनी	--	२१६-१८	--	१८१
(८) भक्त राजा	--	२५५	--	१७६

खण्ड (२) नाम दूसरे, प्रसंग वही -

टीका		टीका सं०		वार्ता		वार्ता सं०
गोस्वामी तुलसीदास		५११		लाहौर के पण्डित		१८७
		५०८		यदुनाथ दास		२३
कान्हा हलालखोर	-	५२०	-	चूहड़ा	-	२४४
भक्त भूप	-	२०४	-	हरिदास मोहनदास	-	७८
चीथड़ भक्त	-	२९१	-	स्त्री पुरुष गुसाई जी के सेवक		८८
हरिव्यास जी	-	२३८	-	ब्रह्मदास	-	३३
सदाव्रती महाजन	-	२१९	-	रणछोड़दास	-	१७६

प्रेमनिधि-

इनके सम्बन्ध में निम्नांकित समान प्रसंगों का विकास हुआ है:-

(क) प्रेमनिधि आगरे में रहते थे। यवनों से छू न जाएं इसलिए ठाकुर जी के लिए राशि शेष रहने पर ही जमुना जी से जल लाते थे। बरसात होने पर एकदिन दस-बारह वर्ष के लड़के का रूप धारण कर प्रभु ने इन्हें मशाल दिखाकर रास्ता बतलाया।

(ख) इनकी कथा इतनी आकर्षित होती थी कि उसे सुनने के लिए नर नारियों का समूह उमड़ पड़ता था। एक बार किसी चुगलखोर ने पृथ्वीपति से शिकायत कर दी, परिणाम स्वरूप इन्हें जेल जाना पड़ा, किन्तु रात्रि के समय स्वप्न में भगवान ने उस पृथ्वीपति को लात से मारा तथा प्रेमनिधि को जेल से छोड़ देने की आज्ञा दी। पृथ्वीपति ने क्षमा याचना की।

दोनों ग्रंथों में शब्द वाक्य तथा भाव साम्य के स्थल निम्नांकित हैं:-

टीका-

प्रेमनिधिनाम, करै सेवा अभिराम श्याम,
आगरो शहर निशि शेष जल लाइये ।
बरषा सुरितु, जित तित अति कीच भई,
भई चित चिन्ता "कैसे अपरस आइये ।।"
जो पै अन्धकार ही मैं चलौं तौ विगार होत,
चले यौं विचारि "नीच छुवै न सुहाइये ।"
निकसत द्वार जब देख्यो सुकुवार एक
हाथ में मशाल "याके पाछे चले जाइये ।।" ५९५।।

वार्ता-

"सो प्रेमनिधि आगरा में श्री गुसांई जी के सेवक भये और श्री ठाकुरजी पधराय के सेवा करन लगे और प्रेमनिधि मिश्र विशेष करके अपरस में रहते यवन की वस्ति जानि के बाहर नहिं निकसते और प्रेमनिधि को ऐसो नेम हतो सवा पहर रात रहै गागर कंतान में बांध राखते सो गागर लैके जमुना जी मैं जाय और नहाय के फेर गागर भर लावते सो एक दिन वरसात बहुत भई जहां तहां कीच भई तब प्रेमनिधी के चिन्ता भई जो अंधेरा में जहां तहां पांव पड़ जायगो और दिनकुं मलेच्छ छी जायगे या चिन्ता के लीये आखी रात नींद न आई सो वाकी चिन्ता को देख श्री गोवर्धन नाथ जी सहि न सके जब सवा पहेर रात रहि तब प्रेमनिधि यमुना जी पैं चले घर सूं बाहेर निकसे तो एक दश वरस को छोरा मसाल लेके आवे हैं तब प्रेमनिधि ने जानिये कोई को पांचाय के जाय है याके पाछें पाछें जाऊं तो ठीक ।"

गोविन्द स्वामी-

इनके विषय में निम्नलिखित समान प्रसंगों के स्थल दृष्टव्य हैं:-

(क) श्रीनाथ जी के साथ खेलते समय एक बार अपना दाव लेने के लिए "गिल्ली" मारी । मंदिर के पुजारियों ने धक्का देकर निकाल दिया । श्रीनाथ की आज्ञा से गुसांई जी ने गोविन्दस्वामी को मनाया ।

(ख) एक दिन भोग के लिए,जाते समय, थाल से भोग की सामग्री निकाल लेने पर थाल ले जाने वाले ने क्रोध में आकर थाल नीचे फेंक दिया किन्तु श्रीनाथ जी का सखा समझ कर उन्हें पहले ही भोग की सामग्री मिलने लगी ।

इनके सम्बन्ध में वार्ता में कई प्रसंग आए हैं किन्तु प्रसंग १९ और १८ ही टीका के प्रसंग से मिलते हैं । आगे चलकर "पद प्रसंग माला" और "गोविन्द परिचयी" की तुलना करते समय इन साम्यों पर विस्तृत विचार किया गया है ।

इन प्रसंगों में शब्द, तथा वाक्य साम्य के कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं:-

टीका- "मारी खैंचि गिल्ली देखि मंदिर मैं श्याम है"

वार्ता- "तब श्रीनाथ जी मंदिर में घुस गए, तब मंदिर में भीतर जायकें श्रीनाथ जी कुं गीलि मारी।"

टीका- "आवत हो भोग महासुन्दर, सुमंदिर को रह्यो मग बैठि कही,"
आगे मोहि दीजिये भयो कोप भार, थार डारि, जा पुकार करी,

वार्ता- "और एक दिन श्रीनाथ जी के राज भोग आवते हते तब भीतरिया सौं गोविन्दस्वामी कही जो राज भोग धरे पहिले मोकूं प्रसाद लेवाव तब भीतरिया ने थार पटकि दिया + + + पुकार करि ।"

इस प्रकार इनके प्रसंगों में सभी प्रकार की समानताएं हैं - अन्तर केवल यह है कि वार्ताकार ने इन्हें गुसाई जी का शिष्य लिखा है, जबकि टीकाकार इस विषय में मौन है ।

मधुकरशाह

इनके विषय में कंठीमाला धारण करने वाले गधे का चरणामृत लेने का प्रसंग समान है ।

दोनों वर्णनों में कितनी समानता है, यह निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा-

टीका-

मधुकरशाह, नाम कियो लै सफल जातें,
भेष गुन सार ग्रहै, तजत असार है ।

"औडछे" को भूप, भक्त भूप, सुख रूप भयो,

लयो मन भारी जाके और न विचार है ।।

कराठी धरि आवै कोय, धोय पग पीवै,

सदा भाई दूखि, खर गर डारयो माल भार है ।

पाय पर छाल, कही "आजजू निहाल किये,

हिये द्रवे दुष्ट पाव गहे दृगधार है ।।४८८।।

वार्ता-

"सो वह मधुकरसाह ओडछा नगर को राजा हतो सो श्री गुसांई जी कोइ एक समय ओडछा पधारे, हते सो वह राजा सेवक भयो और श्री ठाकुर जी सेवा करन लगे और जे कोई वैष्णव आवतो वाको बहुत सत्कार करते और जो कोई कंठी बंधवावबो वाके चरणस्पर्श करते और पाव धोवते ये बात देखके वाके भाई बन्धु मस्करी करते, फेर एक दिन वा राजा के काका ने एक गधा मंगाय के वाकुं दसबीस कंठी पहराय के और तिलक करके वा राजा के पास पठायो तब वा राजा ने वा गर्दभ के चरणस्पर्श करे और पग धोय के चरणामृत लियो वा राजा को शुद्ध भाव देखके वाई समय श्रीठाकुर जी प्रगट होयके और राजा कुं दर्शन दिये और आज्ञा करी जो कछु मांगों तब मधुकरशाह ने मांग्यो जो मेरो भाव वैष्णवन में ऐसो ही रहे जिनकी कृपा तें आपनें मो कुं दर्शन दिये हैं तब श्रीठाकुर जी प्रसन्न होयके कहीं ऐसो ही तेरो भाव रहेगो, सो वे मधुकरसाह श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र हते ।।वैष्णवन।।२४५।।

भगवन्त व भगवानदास

दोनों ग्रंथों में इनको राजा का दीवान लिखा गया है, दोनों ने स्वीकार किया है कि पद रचना अधिक करते थे । इनके दो प्रसंग जिनका उल्लेख नीचे किया गया है समान हैं अतएव इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि "भगवन्त" तथा "भगवानदास" अभिन्न हैं ।

इनके विषय में निम्नांकित साम्य पाया जाता है -

(क) इनके हाथ से "गोविन्द देव" का दूध भात खाना ।

(ख) गुरु के आगमन के उपलक्ष में धोती के अतिरिक्त सब दान स्वरूप दे देना ।

(ग) मृत्यु के समय बृज न आना ।

अन्तर-

एक विशिष्ट अन्तर यह है कि टीकाकार के अनुसार "गोविन्द देव जी" के अधिकारी "हरीदास" जी के शिष्य थे, जबकि वार्ताकार ने लिखा है कि "गुसांई" जी से इन्होंने बाद में दीक्षा ली ।

इनकी एक रचना रसिक अनन्यमाल के विषय में विचार करते समय यह भली भांति दिखलाया गया है कि ये "हरिदास" जी के ही शिष्य थे । जिसकी पुष्टि इस प्रकार से भी हो जाती है कि इन्होंने संवत् १७०७ में "वृन्दावन महिमामृत" के एक शतक का अनुवाद किया है । वृन्दावन के गोविन्द देव जी का मंदिर राजा मानसिंह ने संवत् १६४८ में पूर्ण करवाया था । मंदिर के प्रथम अधिकारी श्री काशीश्वर जी थे तथा दूसरे हरिदास जी थे । इस प्रकार से हरिदास जी का समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्त माना जा सकता है । उस समय मंदिर के अधिकारी हरिदास जी ही थे, इसकी पुष्टि वार्ता से भी इस प्रकार होती है, "ये सुनके हरिदास अधिकारी भगवानदास के घर आयके पावन पड़के बुलाय ले गये ।"

पृथवीराज-

पृथ्वीराज सम्बन्धी घटनाओं में दो समान प्रसंगों का विकास हुआ है:-

(१) विदेश में मानसी सेवा करने पर तीन दिन प्रभु का मंदिर में दर्शन न होना

(२) प्रतिज्ञा के अनुसार मथुरा ही में शरीर त्यागना ।

दोनों में इतना अधिक साम्य है कि एक दूसरे का उल्था सा ज्ञात होता है उदाहरण के लिए निम्नस्थल तुलनीय है:-

टीका- गयौ हो बिदेस तहां मानसी प्रवेस कियौ,
हियौ नहीं छुवै कैसे मरै मन काज है ।
बीते दिन तीन प्रभु मंदिर न दीठि पड़े,
पाछे हरि देखि, भयौ सुख कौ समाज है ।।

वार्ता- "जब पृथ्वीसिंघ जी परदेश मे मानसी सेवा करते जब उहां खबर पड़ी जो तीन दिन सूधी श्री ठाकुर जी ने दरसन नहीं दिये सो पृथ्वीसिंघ जी के मनमें दरसन भये ।" इत्यादि ।।

अन्तर- केवल यह है कि वार्ताकार ने अन्य संतों की भांति उन्हें भी गुसांईं का शिष्य बताया है, टीकाकार ने ऐसा नहीं लिखा है ।

महारानी रत्नावती-[४०]

इनके विषय में निम्नांकित सामान्य प्रसंग दोनों ग्रंथों में पाए जाते हैं:-

(१) भक्त "खवासिनी" के साथ भक्ति में अनुराग ।

(२) वैष्णाव भक्तों की प्रत्यक्ष सेवा करना ।

(३) राजा मानसिंह का महारानी रत्नावती तथा उसके पुत्र प्रेमसिंह से अप्रसन्न होना तथा रानी को मारने के लिए सिंह छुड़वाना ।

(४) मानसिंह द्वारा क्षमा याचना करना ।

इन सभी प्रसंगों में हर प्रकार का साम्य है ।

हंस-हंसिनी:-

इनके विषय का सामान्य प्रसंग यह है कि साधु वेष बनाकर हंसों को पकड़ना ।

दोनों ग्रंथों में प्रायः यह प्रसंग समान है । अन्तर केवल यह है कि वार्ताकार ने लिखा है कि कुष्ठ अच्छा होने वाला राजा गुसांईं जी का शिष्य हो गया किन्तु टीकाकार ने इसके विषय में कुछ नहीं लिखा है ।

अन्तर-

यह है कि (क) टीका में एक बात यह अधिक है कि डूबती हुई नाव मानसिंह तथा माधोसिंह द्वारा रानी का स्मरण करने पर नहीं डूबी ।

(ख) टीकाकार ने कहीं नहीं लिखा है कि रत्नावती ने गुसांईं जी से दीक्षा ली थी "कोई दिन गुसांईं जी उहां पधारे । तब रत्नावती राणी सेवक भई ।"

४०- डा० माता प्रसाद गुप्त ने अपने ग्रंथ तुलसीदास पृ० में रत्नावती के प्रसंगों को समानार्थी टुकड़ों में विभाजित कर दिखलाया है ।

भक्त राजा- दोनों ग्रंथों में एक ही समान प्रसंग - गधे के गले में कंठी माला देख कर राजा ने चरणोदक लिया ।

यह प्रसंग प्रायः समान है ।

(९) नाम दूसरे और प्रसंग वही -

गो० तुलसीदास और लाहौर के पण्डित तथा यदुनाथदास

केवल एक प्रसंग समान है और वह है हत्यारे के हाथ का भोजन शंकर के नांदी द्वारा ग्रहण करने का ।

अन्तर-

टीका में यह प्रसंग गोस्वामी तुलसीदास के लिए दिया है और वार्ता में लाहौर के पंडित के लिए । टीका के अनुसार "राम""राम"कहने पर उस हत्यारे को भोजन दिया गया था तथा वार्ता के अनुसार "कृष्ण""कृष्ण" कहने पर । एक का संबंध रामानन्दी भक्त से है, दूसरे का कृष्ण भक्त गुसांई विट्ठलनाथ जी से ।

गो० तुलसीदास के एक अन्य प्रसंग से वार्ता के "यदुनाथदास" का एक प्रसंग मिलता है और वह है स्त्री के कटु बचन से वैराग्य उत्पन्न होने का ।

अन्तर-

टीका के अनुसार तुलसीदास जी को अपनी पत्नी के बचन से भक्तिमार्ग अपनाना पड़ा था तथा वार्ताकार ने लिखा है -यदुनाथदास किसी महावत की स्त्री पर अत्त आसक्त थे तथा उसके कटु बचनों पर संसारिकता का त्याग किया। वार्ताकार ने लिखा है, यह यदुनाथ बाद में गुसांई जी के शिष्य हो गए ।

कान्हा हलालखोर तथा "चूहड़ा"-

एक ही प्रसंग इनके विषय में समान मिलता है और वह है श्रीनाथ जी की आज्ञा से दीवाल गिराना । वार्ता तथा टीका के प्रसंग प्रायः समान हैं ।

भक्त भूप तथा हरिदास मोहनदास-

अतिथि रूप में आए हुए संत को न जाने देने के लिए अपने पुत्र को विष देना । यही समान वृत्त इनके विषय का है ।

अन्तर-

टीका में यह प्रसंग भक्तभूप के संबंध में मिलता है तथा वार्ता में हरिदास तथा मोहनदास के। आने वाले भक्त का नाम इसमें मोहनदास है। टीकाकार ने उक्त भक्त का नाम नहीं दिया है।

चीधड़ भक्त तथा एक दम्पति-

दोनों में केवल कथा की समानता है और वह यह कि साधु अभ्यागत के आजाने पर स्त्री ने अपने पहनने की धोती बेंचकर उनका सत्कार किया।

अन्तर-

टीका में इस प्रसंग का संबंध पीपा तथा उनकी पत्नी और चीधड़ तथा उनकी स्त्री से है जब कि वार्ता में किसी का नाम नहीं दिया गया है। टीका के अनुसार चीधड़ की पत्नी को आधा वस्त्र पीपा की पत्नी देती है तथा वार्ता के अनुसार ठाकुर जी अलौकिक वस्त्र तथा कभी न घटने वाले अन्न का वरदान देते हैं।

रघुनाथदास -

इनसे सम्बन्धित प्रसंगों में निम्नांकित समान वार्ता का विकास हुआ है:-

मानसी सेवा में भोग लगाने पर वैद्य द्वारा रहस्य जान लेना।

उपर्युक्त प्रसंग में निम्नांकित शब्द साम्य, वाक्य साम्य तथा भाव साम्य के स्थल दृष्टव्य हैं-

टीका- महाप्रभु कृष्ण चैतन्य जू की आज्ञा पाइ,आए वृन्दावन राधाकुंड बास कियो है।

वार्ता- और राधा कुण्ड पर एक बंगाली कृष्ण चैतन्य को सेवक रहते हतो"

टीका- मानसी में पायो दूधभात सरषात दिये।

वार्ता- दूध मानसी में पियो।

टीका - कैंठा लौ प्रताप कहौं, आप ही समझि लेहु।

वार्ता- अपनी मानसी प्रताप तें।

अन्तर- इस प्रसंग में निम्नांकित अन्तर के स्थल दृष्टव्य हैं:-

(क) टीकाकार ने यह प्रसंग रघुनाथ गुसाईं के विषय में लिखा है जो कृष्ण

कृष्ण चैतन्य जी के शिष्य थे । वार्ता में यही प्रसंग "ब्रह्मदास" के नाम से जोड़ा गया है ।

(ख) टीका में जो वैद्य आता है वह नाड़ी द्वारा "दूध भात" खाने की बात जान जाता है जिसे इन्होंने मानसी भोग लगाकर बाद में प्रसाद रूप में ग्रहण किया था । इस प्रसंग में वार्ताकार ने एक बात और जोड़ दी है कि वह वैद्य वस्तुतः ब्रह्मदास ही थे ।

(ग) वार्ताकार ने रघुनाथ दास जी के लिए लिखा है, "सोवे ब्रह्मदास को मित्र हतो ।"

(घ) वार्ता में "मानसी सेवा" में दूध की जगह छाछ का प्रयोग उल्लिखित है।

सदाव्रती महाजन और रणछोड़ दास-

एक समान प्रसंग दोनों ग्रंथों में इनके विषय में उल्लेखनीय है - वह है किसी वेशधारी ठग द्वारा इनके पुत्र को मारकर आभूषण अपहृत होना ।

अन्तर-

टीका में मरे हुए लड़के के विषय में कोई अन्य साधु बतलाता है तथा वार्ता में स्वयं माता पिता खोजते हुए ढगले के नीचे उसे मरा हुआ पाते हैं । टीकाकार की यह बात कि वह सदाव्रती महाजन अंत में अपनी कन्या का पाणिग्रहण संस्कार भी ठग के साथ कर देता है वार्ता में नहीं है । इसी प्रकार वार्ताकार ने लिखा है कि वह ठग गुसांई का सेवक हो जाता है, यह बात टीका में उल्लिखित नहीं है ।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं-

(१) दोनों ग्रंथों में लगभग १५ भक्त ऐसे हैं जिनके प्रसंग समान हैं । उनमें से आठ के नाम तथा प्रसंग समान हैं तथा शेष के नाम में भिन्नता किन्तु प्रसंगों में समानता है तथा गोस्वामी तुलसीदास के दो प्रसंग दो अन्य भक्तों के साथ जुड़े हुए मिलते हैं ।

(२) टीकाकार ने उक्त सभी भक्तों मे से किसी के विषय में यह उल्लेख नहीं किया है कि अमुक भक्त ने गुसांई जी से दीक्षा ली थी केवल "गोविन्दस्वामी" तथा

"कान्हा हलालखोर" का संबंध गुसाईं जी तथा गोकुल नाथ जी से बतलाया है, जबकि वार्ताकार ने प्रत्येक भक्त को गुसांईं जी का शिष्य लिखा है ।

प्रश्न यह उठता है कि प्रसंगों में इतनी समानता होते हुए भी दीक्षा गुरु के विषय में इतना मतभेद क्यों है ? क्या प्रियादास जी ने जानबूझकर गुसांईं जी को छोड़ दिया है अथवा किसी विशिष्ट सम्प्रदाय से संबंधित होने के कारण इनका झुकाव दूसरी ओर अधिक था अथवा इनकी जानकारी ही नहीं थी । किन्तु इसका उत्तर निम्नांकित बातों पर ध्यान देने से स्वतः प्राप्त हो जाता है ।

नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में तीन प्रकार के छन्दों की रचना की है:-

(क) ऐसे छन्द जिनमें केवल नामों की माला है ।

(ख) ऐसे छन्द जिनमें नाम तथा एकाध प्रसंग हैं ।

(ग) केवल नाम तथा प्रसंग ।

प्रियादास जी ने भी इन पर तीन प्रकार से टीकाएं की हैं । केवल नाम वाले छप्पय में उन्होंने अपनी ओर से उसका प्रसंग भी लिख दिया है । यदि भक्त-माल में कहीं प्रसंग का संकेत है तो उसको बढ़ाकर लिखने से नहीं चूके हैं, बल्कि अधिकांश स्थलों पर प्रियादास जी ने मूल भक्तिमाल में उल्लिखित घटनाओं को पूर्ण विस्तार दिया है, यहां तक कि यदि नाभादास ने किसी विशिष्ट भक्त का चरित्र नहीं लिखा है तो वहां उन्होंने मौलिक ग्रंथकार का काम किया है । उदाहरण के लिए "त्रिपुरदास" का प्रसंग लिया जा सकता है । उनकी जानकारी के विषय में भी संदेह करना उपयुक्त नहीं । उन्हें उस समय तक प्रचलित अनेक जन-श्रुतियों तथा वार्ताओं का ज्ञान था और साथ ही उन्हें उनके संग्रह का भी व्यसन था । ऐसा लगता है कि उस समय तक वार्ताग्रंथ न तो लिपिबद्ध हुए थे और न प्रचलित ही थे, अन्यथा प्रियादास जैसा बहुश्रुत विद्वान् एक महत्वपूर्ण संप्रदाय - के ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख न करे, यह बात कुछ विलक्षण सी लगती है ।

इसके विपरीत वार्ताग्रंथ, एक साम्प्रदायिक ग्रंथ है । वार्ताकार का विशिष्ट झुकाव अपने सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए है अतएव उसने अन्य संप्रदाय वाले प्रसिद्ध राजा, महाराजाओं तथा प्रसिद्ध भक्तों को अपने सम्प्रदाय में खींचना

चाहा है। इस कथन की पुष्टि में ऊपर रानी रत्नावती, पृथ्वीराज और मधुकरशाह, के वृत्तान्तों का उदाहरण दिया गया है।

पीछे हमने देखा कि भगवंत के गुरु के सम्बन्ध में प्रियादास की सूचना नितांत ऐतिहासिक तथा सुसंगत है जबकि वार्ताकार ने यह स्वीकार करते हुए भी कि भगवन्त अथवा भगवानदास के गुरु हरिदास अधिकारी थे, बीच में अचानक उनका संबंध गुसाईं जी से जोड़ दिया है और उन्हें भगवानदास का दीक्षागुरु बता दिया है, जबकि उसके लिए अन्य कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं मिलता। इसीप्रकार टीकाकार ने जहां रघुनाथदास की वार्ता में उन्हें कृष्णचैतन्य का शिष्य बताया वहां वार्ताकार ने उन्हीं से मिलते जुलते प्रसंग ब्रह्मदास के नाम से जोड़कर उन्हें गुसाईं विट्ठलनाथ का शिष्य बता दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रियादास के रचनाकाल (सं० १७६९) तक वार्ता साहित्य लिपिबद्ध नहीं हुआ था।

(१२) पदप्रसंगमाला, गोविन्द परिचयी, तथा वार्ताओं का तुलनात्मक अध्ययन-

पद प्रसंग माला तथा उसके रचयिता सावंतसिंह उपनाम नागरीदास का परिचय पीछे दिया जा चुका है तथा यह भी बतलाया गया है कि ये चार पीढ़ियों से पुष्टि मार्गीय थे। इनकी दो रचनाओं-"पद प्रसंग माला", तथा "गोविन्द परिचयी" तथा वार्ताओं में आए हुए नामों और प्रसंगों में समानता होते हुए भी विवरणों में कहीं कहीं अन्तर है। नीचे पहले "पद प्रसंग माला" से फिर "परिचयी" से इन वार्ताओं के समान प्रसंगों की तुलना की गई है।

इन दोनों ग्रंथों की तुलना "क्या ८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्ताएं उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व लिपिबद्ध नहीं हुई थी ?" शीर्षक लेख में डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने विस्तार से की है तथा इसकी संक्षिप्त सूचना अपने ग्रंथ तुलसीदास जी में भी दे दी है[४१]। किन्तु इधर डा० हरिहरनाथ टंडन ने अपने शोध-प्रबन्ध "वार्ता साहित्य" में डा० गुप्त के निष्कर्षों पर संदेह प्रकट किया है,अतएव संक्षेप में उक्त ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

४१- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ६, अंक २, आषाढ़ भाद्रपद २०१० तथा तुलसीदास पृ० ८१-८४।

"पद प्रसंग माला" तथा "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में से केवल पांच वैष्णव तथा "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" से सात वैष्णव ह ऐसे हैं जिनके नाम तथा प्रसंगों पर विचार किया जा सकता है । वे क्रमशः इसप्रकार हैः-

(क) (१) परमानंददास (२) मीराबाई (३) सूरदास (४) कृष्णदास अधिकारी (५) कुम्भनदास

(ख) (१) तुलसीदास (२) छीतस्वामी (३) तानसेन (४) कुंभनदास[४२] (५) चतुर्भुजदास (६) मधुकरशाह (७) भगवानदास

(क) पद प्रसंग माला तथा चौरासी वैष्णवन की वार्ता

परमानंददास-

दोनों ग्रंथों के इस प्रसंग में यह समानता है कि "हरि तेरी लीला की सुधि आवै" पद सुनकर श्री बल्लभाचार्य को कुछ दिनों तक देह की सुध नहीं रही ।

अन्तर-

दोनों ग्रंथों के इस प्रसंग में निम्नांकित अन्तर के स्थल दृष्टव्य हैः-

(क) पद प्रसंग माला के अनुसार वे वृन्दावन के रहने वाले थे, उनकी कीर्तन की ख्याति सुनकर बल्लभाचार्य जी ने उक्त पद सुना । इन्हें सात आठ दिन देह की सुध नहीं थी ।

वार्ता के अनुसार परमानंद जी अडैल में आचार्य जी के शिष्य हुए । इसके लिए इन्हें स्वप्न में आज्ञा हुई थी । उपर्युक्त कीर्तन का पद बृज की यात्रा करते समय जब कन्नौज में ठहरे थे तब सुना था और सुनकर तीन दिन मूर्छित रहे ।

मीराबाई-

मीराबाई विषयक कोई प्रसंग समान नहीं है । इनके विषय में पांच प्रसंग उद्धृत हैः-

(क) मीरा का गिरधर से प्रेम करना ।

(ख) महाराणा द्वारा तरह तरह की यातनाएं दिया जाना ।

(ग) जीव गोस्वामी का स्त्रियों को न देखने का प्रण छुड़ाना ।

(घ) कृष्ण की मूर्ति में प्रविष्ट कर जाना ।

४२- कुंभनदास के विषय का एक प्रसंग चौरासी वैष्णवन की वार्ता से मिलता है तथा दूसरा उनके पुत्र चतुर्भुजदास की वार्ता में है जिसका उल्लेख २५२ वार्ता में है ।

८४ वार्ता में इनकी कोई पृथक् से वार्ता नहीं लिखी गई है । किन्तु उसकी तीन मूल वार्ताओं में इनके नाम का उल्लेख है[४३]। वार्ता संख्या ४१, ५४,९२ में गोविन्द दुबे सचौरा, मीराबाई के पुरोहित रामदास तथा कृष्णदास अधिकारी की वार्ताओं में इनका उल्लेख है। इनमें जो प्रसंग आए हैं उनपर विस्तृत विवेचना की जा चुकी है । पद प्रसंग माला से कोई समानता नहीं है ।

सूरदास-

इनके विषय में दो समान प्रसंग दोनों ग्रंथों में उद्धृत हैः-

(क) पुष्टि मार्ग में दीक्षा संबंधी प्रसंग,

(ख) अकबर सम्राट् द्वारा अपने विषय में कुछ वर्णन करने के निवेदन संबंधी प्रसंग । यह प्रसंग दोनों में प्रायः समान है ।

पद प्रसंग माला-

"दोऊ नेत्र करिहीन एक बृजवासी को लरिका बृज मैं सूरदास, सौं होरी के भडूआ बनबै + + तुकिया । ताके वासतै श्री गुसांईं जू सौं जाइ लोगनि ने कहीं । तापर श्री गुसाईं जी वा लरिका कौं बुलाय वाके भडुआ सुनें हसे, श्री मुखतैं कह्यो जु लरिका भगवत जस बनाय, श्री भागौत के अनुसार प्रथम जनम ही की लीला गाय, तब वानैं कही राजहू कहां जानौं । तब आग्याकरी भगवत इच्छा है, तू बनावैंगो अैसे गुसाईं जी की आग्या तै भगवतलीला भ्यासी । सरस्वती जिह्वाग्र भई । प्रथम ही प्रथम श्री सूरदास जू जन्मलीला की बधाई बनाय अरु श्री गुसांईं जी कौं सुनवाई । तब बहोत प्रसन्न भये । कंठी, दुपटा, महाप्रसाद दयो अरु सबन सौं आग्या करी जु श्री ठाकुर जी की आग्या तैं हम कहत है, बरसवें दिन जनमाष्टमी की जनम लीला की जनमाष्टमी कौ श्री गोवर्धन जी के आगै प्रथम एही बधाई गावैगें सो अबलौं एही बधाई गावत हैं,"बृज भयो महर के पूत"

चौरासी वार्ता का यही प्रसंग देखिए-

"सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी कौ स्थान हुतौ । सो सूरदास स्वामी है, आप सेवक करते । सूरदास जी भगवदीय हैं, गान बहुत आछौ करते । तातें बहुत लोग सूरदास के सेवक भये हुते । सो आचार्य जी महाप्रभू गऊघाट पर उतरे, सो सूरदास जी के सेवक देखिकें सूरदास जी सो जाय कही जो आज श्री आचार्य जी महाप्रभू आप पधारे हैं + + + तब श्री महाप्रभु जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम

सुनायो + + + पाछें सूरदास जी ने नंद महोत्सव कीयौ सो श्री आचार्य जी महाप्रभून के आगे गायौ ।"

"बृज भयो महर के पूत"

दोनों मे अन्तर विचारणीय है -यदि एक सूरदास जी को "ब्रजवासी को लरिका" लिखता है तो दूसरा "सूरदास स्वामी है, आप सेवक करते" * इस प्रकार का उल्लेख करता है । इसीप्रकार "पद प्रसंग माला" के रचयिता ने इनका सम्बन्ध इस प्रसंग में गुसाईं जी से जोड़ा है तो वार्ताकार ने बल्लभाचार्य जी से ।

कृष्णदास-

(१) इनके विषय में दो समान प्रसंग हैं, उनमें से एक यह है कि सूरदास जी ने कृष्णदास जी से कहा कि "जो तुम पद बहुत करत हौ तामें मेरी छाया है" ।ऐसा पद बनाओ जिसमें मेरी छाया न हो।कृष्णदास के पद की पूर्ति श्रीनाथ जी ने की वह पद यह है, "आवत बने कान्ह गोप बालक संग नेचुकी खुर रेणु छुरत अलकावली" सूरदास जी जान गए कि यह पद श्री ठाकुर जी ने बनाया है । दोनों ग्रंथों में इस प्रसंग में सब प्रकार से समानता है ।

दूसरा प्रसंग यह है कि कृ एक बार कृष्णदास अधिकारी श्रीनाथ जी के भंडारे की सामग्री लेने के लिए बाजार गए । वहां किसी "वेश्या" को गान तथा नृत्य करते देखकर प्रसन्न हुए तथा श्रीनाथ जी के सामने गान करने योग्य समझकर उसे ले आये । उक्त "वेश्या" श्रीनाथ जी के सम्मुख गान करने लगी।वह "मो मन गिरिधर छवि पर अटक्यो" पद गा रही थी।गाते गाते इतनी तन्मय हो गयी कि उसने अपना प्राण विसर्जन कर दिया ।

अन्तर-

अन्तर यह है कि वह वेश्या वार्ताकार के अनुसार आगरे के बाजार से आई थी तथा पदप्रसंगमाला के अनुसार दिल्ली से । वार्ता में लिखा गया है कि जिस समय वह वेश्या नृत्यगान कर रही थी उस समय गुसांईं जी भी उपस्थित थे ।

कुम्भनदास-

"कितेक दिन ह्वै गए बिन देखे" यही पद श्रीनाथ जी के दर्शन में कुम्भनदास जी ने गाया । यही एक प्रसंग दोनों ग्रंथों में समान है ।

अन्तर-

पद प्रसंग माला के अनुसार यह पद उस समय गया गया है जब गुसांईं जी के

साथ विदेश के लिए जाते समय कुंभनदास जी श्रीनाथ जी का मंदिर वृक्ष की चोटी पर चढ़कर देखते हैं । परिणाम यह होता है कि उक्त पद गाते समय नीचे गिर जाते हैं । गुसाईं जी उन्हें पुनः वापस भेज देते हैं ।

वार्ता के अनुसार जब गुसांईं जी विदेश जाने के लिए "अपछरा कुण्ड" के निकट आकर अपने डेरे में चले गए उस समय दर्शन की सुधकर के कुंभनदासजी ने उक्त पद गाया । अन्त में उनकी यह अवस्था देखकर गुसाईं जी ने पुनः उनको लौटा दिया ।

(ख) पद प्रसंग माला तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता-

तुलसीदास-

इनके विषय का एक ही प्रसंग कृष्णमूर्ति को राममूर्ति में बदलने का दोनों ग्रंथों में समान आया है । यही प्रसंग सूर[२५२] वार्ता में नंददास जी की वार्ता में आया है । नागरीदास जी ने अपने प्रसंग में नंददास के नाम तक का उल्लेख नहीं किया है । "बरनो अवधि गोकुल गाम" पद दोनों ग्रंथों में उद्धृत है । किन्तु दोनों ग्रंथों के विवरणों में महान् अन्तर है[४३]।

छीतस्वामी-

इनका प्रसंग माला में दो स्थलों पर (पृ० २०६-७ तथा २२९-३०) तथा वार्ता सं० २ में आया है । दोनों ग्रंथों में दो समान प्रसंग पाए जाते हैं जो निम्नांकित हैं-

(१) छीतस्वामी गुसांईं जी की परीक्षा के लिए खोटे नारियल में राख भरकर लाए थे । गुसांईं जी के सामने राख की जगह गरी निकली ।

(२) "जे बसुदेव किये पूरन तप, सोई फल फलित श्री बल्लभ देत" यह पंक्ति दोनों में मिलती है । छीतस्वामी तथा बीरबल से वाद-विवाद का प्रसंग भी दोनों में समान है ।

इन दोनों प्रसंगों के वर्णनों में निम्नांकित अन्तर के स्थल द्रष्टव्य है-

---

४३- विस्तार के लिए दे० डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक २, आषाढ़-भाद्रपद २०१० तथा तुलसीदास, पृ० ८१-८४ ।

(क) पद प्रसंग माला के अनुसार गुसांई जी को खोटा नारियल भेंट किया गया था जबकि वार्ताकार के अनुसार उसके साथ खोटे रूपये भी थे । वार्ता में दो बार गुसाई जी की अलौकिकता का वर्णन है । एक तो पहली बार दर्शन करने के लिए जाते हैं तो उन्हें बाहर भी दिखलाई देते हैं तथा भीतर भी । दूसरी बार गोपालपुर में गोकुल में रहकर भी श्रीनाथ जी के साथ गोपालपुर में दृष्टिगत होते हैं । इतनी बातें वार्ता की अपनी हैं इनका उल्लेख नाभादास जी ने अपनी भक्तमाल में नहीं किया है ।

(ख) बीरबल वाले प्रसंग में उक्त पद छीतस्वामी ने गाया था तो बीरबल ने कहा था "इतना भी बढ़िके कहना क्या लाजि लाजिम" जबकि वार्ताकार के अनुसार बीरबल ने कहा था कि वैष्णवों के लिए यह बात भले ही ठीक हो, किन्तु देशाधिपति सुन पायेगें तो क्या उत्तर दिया जायगा । पद प्रसंग के छीतूस्वामी को जो रूपया मिला था सब उन्होंने "मालजादियों" में बांट दिया । वार्ता के अनुसार बीरबल को म्लेच्छ कहकर फिर मुंह न देखने की प्रतिज्ञा करके छीत स्वामी चले आते हैं । इस बात को देशाधिपति जानकर बीरबल से कारण पूछते हैं तथा छीतस्वामी द्वारा यमुना जी में मणि फेंककर पुनः "खोंच भरि के मणी निकाल"देने की बात कहते हैं । यह बात गुसांई जी भी सुन जाते हैं, इतनी घटना वार्ता की विशेष है ।

तानसेन-

इनके विषय में कोई भी समान प्रसंग दोनों ग्रंथों में नहीं पाया जाता है पद प्रसंग माला के अनुसार ये "हरिदास के गायवे के शिष्य" थे किन्तु वार्ता के अनुसार गोविन्दस्वामी का पद सुनकर उन्होंने गाना सीखने की इच्छा प्रकट की गोविन्दस्वामी ने कहा अन्यमार्गीय सुं भाषन हूं नहीं करे" । अतएव तानसेन जी गुसाईं जी के शिष्य हुए तथा श्रीनाथ जी के पास कीर्तन करते रहे और बादशाह के पास आना जाना उन्होंने छोड़ दिया ।

ऐसा ज्ञात होता है कि गाना सीखने के कारण ही उस समय के सर्व श्रेष्ठ गायक हरिदास जी के शिष्य रहे । वार्ताकार ने गान विद्या के इस प्रेमी की गोविंद स्वामी से उक्त विद्या को सीखने का प्रयोजन बतलाकर गुसाईं जी का शिष्य बना दिया ।

चतुर्भुजदास-

इनका "गोवर्धन स्वामी सांवरे तुम बिन रह्यो न जाय" शीर्षक पद दोनों ग्रंथों में समान रूप से पाया जाता है किन्तु अन्तर यह है कि पद प्रसंग माला के अनुसार यह पद चतुर्भुज दास ने श्रीनाथ जी के विरह में उस समय गाया था जिससमय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के साथ मेवाड़ सिहार गांव में थे तथा वार्ताकार के अनुसार उन्होंने यह पद गिरिराज पर बैठ कर गाया था ।

मधुकरशाह-

पद प्रसंग माला तथा दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता में इनके विषय में एक प्रसंग समान आया है, वह यह है कि कंठी माला पहनकर कोई भी आता था तो उसका वे आदर सत्कार करते थे । एकबार एक गधा कंठी माला पहनाकर लाया गया तो मधुकरशाह ने उसका चरणामृत भी लिया ।

अन्तर-

पद प्रसंग माला मे लिखा हुआ है कि "राजगुर प्रोहित व्यासजी हते" किंतु वार्ताकार का कथन है कि "श्री गुसाईं जी कोई एक समय ओड़छा पधारे हते सो वह राजा सेवक भयो "। गधे का चरणामृत ले लेने की बातें सुनकर व्यास जी बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने एक पद बनाया जिसमें मधुकरशाह के नाम का भी उल्लेख किया जिसका प्रथम तुक "भक्ति बिन किन अपमान लह्यो" तथा अंतिम "व्यास बचन सुनि मधुकर साहै भक्तिपन सदा लह्यो" है । वार्ता में यह पद उद्धृत नहीं किया गया है। वार्ता में यह उल्लेख है कि ठाकुर जी प्रसन्न हुए तथा मधुकरशाह की इच्छानुसार उन्होंने बचन दिया कि वैष्णावों में तुम्हारी प्रीति इसी प्रकार सदैव बनी रहेगी वार्ताकार द्वारा पद न उद्धृत किया गया विचारणीय है ।

कुंभनदास-

इनके विषय का प्रसंग श्रीनाथ जी के विषय में प्रेमाधिक्य होने के कारण "वह देखो बरत झरोखनि दीपक हरि पौढ़े ऊंची चित्रसारी" पद उद्धृत किया गया है ।

अन्तर-

पद प्रसंग माला के अनुसार यह पद कुम्भनदास जी ने गाया है तथा वार्ता के अनुसार इसका अंतिम तुक चतुर्भुजदास द्वारा गाकर पूरा किया गया है । इन चतुर्भुजदास की वार्ता २५२ (दो सौ बावन) वार्ताओं में तीसरी क्रमसंख्या पर आयी है ।

भगवानदास-

"भगवानदास" तथा "भगवान सखी" नामों से दो वैष्णव भक्तों का उल्लेख पद प्रसंग माला में है। इनके दो पद उद्धृत किए हैं। उनकी अंतिम तुक के रूप में क्रमशः "भगवान हित राम राय प्रभु" तथा "भगवानदास राम राय प्रिय" पंक्तियाँ आयी हैं। भगवानदास की जो वार्ता दो सौ बावन में आई है, उसमें पद दूसरा होते हुए भी तुक वही है जो पूर्व उद्धृत पद की है। अतएव इसमें संदेह नहीं रह जाता कि ये दोनों रामदास परस्पर अभिन्न हैं।

पद प्रसंग माला के अनुसार दोनों भक्त "मिहीन"उपासिक थे। इन नामों के साथ "हित" पद से यह स्पष्ट हो जाता है कि हित बल्लभ सम्प्रदायी थे किन्तु वार्ताकार के अनुसार भगवानदास जी पहले गोविन्ददेव जी के सेवक थे। बाद में विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए। जिस प्रकार से भगवान हित ने "राम राय" के लिए प्रभु या पिय संबोधन प्रयुक्त किया है वह तो एक वैष्णव भक्त ही अपने उपास्य के लिए प्रयुक्त करता है[४४]।

(ग) <u>प्रियादास की टीका, गोविन्द परिचयी तथा २५२ वार्ताएं</u>

तीनों में निम्नलिखित चार प्रसंग समान हैं:-

(क) "अंकरौरियों" की मारा मारी[४५]।

(ख) गिल्ली डंडा का खेल।

(ग) श्रीनाथ जी के भोग लगाने के पहले गोविन्दस्वामी द्वारा प्रसाद ग्रहण करना।

(घ) श्रीनाथ जी का पाग ठीक करना।

उपर्युक्त परिचयी के चारों प्रसंग क्रमशः वार्ता के आठ, उन्नीस, अट्ठारह और सातवें प्रसंग से मिलते हैं। नीचे दोनों ग्रंथों में आए हुए इन प्रसंगों की तुलना की गई है -

(क) गोविन्द परिचयी के अनुसार यह मारा मारी वन में हुई जबकि वार्ता के अनुसार यह गुसाईं जी द्वारा श्रीनाथ जी के श्रृंगार करते समय हुई। गुसाईं जी

४४- दे० हिन्दी अनुशीलन वर्ष ६, अंक २, आषाढ़-भाद्रपद २०१० लेख-डा०माता प्रसाद गुप्त।

४५- परिचयी में "अंकढोढ़िन" शब्द का प्रयोग है जबकि वार्ता में "कांकरी" का।

द्वारा इसका कारण पूछने तथा गोविन्दजी द्वारा उत्तर देने की बात वार्ता में अधिक है ।

(ख) गिल्ली डंडा के खेल का प्रसंग प्रायः समान है ।

(ग) परिचयी में श्रीनाथ के भोग की सामग्री ले लेने पर गोविंद स्वामी को "जीवित प्रेत" कह कर छोड़ दिया । वार्ताकार ने लिखा है कि भोग की सामग्री मांगने पर भीतरिया ने थाल पटक दी ।

(घ) "परिचयी" के गोविन्द स्वामी द्वारा पात्र ठीक करने पर यातना दी गई है जबकि वार्ता में केवल गुसाँई जी से शिकायत की गई है ।

निष्कर्ष-

पद प्रसंगमाला तथा परिचयी और वार्ताओं से तेरह वैष्णव भक्तों के प्रसंगों को लेकर विचार किया गया है । इनमें से पांच भक्त चौरासी वैष्णवन की वार्ता के हैं और नौ दो सौ बावन वार्ता के । इनमें से मीराबाई तथा तानसेन के विषय में सबसे अधिक विभिन्नता है और शेष सभी भक्तों के विषय में जो प्रसंग उद्धृत हैं वे प्रायः दोनों ग्रंथों में मिल जाते हैं[९६] । दोनों ग्रंथों के उद्धृत पदों में इतनी समानता होते हुए भी विवरणों अथवा विस्तारों में इतनी विभिन्नता क्यों है? इस पर विचार करना है ।

नागरी दास जी पुष्टि मार्गीय थे, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। इन्होंने उपर्युक्त दो ग्रंथों के अतिरिक्त दो अन्य पुष्टि मार्गीय ग्रंथ- "श्री महाप्रभु के उत्सव" तथा "श्री गुसाँई जी के उत्सव" प्रस्तुत किए हैं । इसी रचना में इन्होंने चौरासी वैष्णवों का भी उल्लेख किया है । जो इस प्रकार है-

"धन चौरासी भक्त जगत हित पुरुष रूप छित"

यहां यह भी स्मरणीय है कि इन्होंने चौरासी वैष्णवों का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु इनकी वार्ताओं का नहीं । हो सकता है कि इनके विषय में कुछ मौखिक प्रसंगों का प्रचलन रहा हो । पद प्रसंग माला के

९६- भगवानदास "रामराम" के पदकी केवल अंतिम तुक ही मिलती है ।

रचयिता नागरीदास के पूर्व यदि कोई वार्ता ग्रंथ होता तो उसका संकेत वे अवश्य करते, क्योंकि उन्होंने जहां अन्य ग्रंथों से सूचनाएं ली हैं उनका नाम यथास्थान अवश्य दे दिया है।

इन्होंने षीजी जी का प्रसंग लिखते समय लिखा है "सो ताको प्रसंग भक्तमाल के टीका में है, विस्तार ह्वै वे को यामै धर्यो नाहीं।"

अतः यह ज्ञात होता है कि "माला" की रचना वार्ता के पूर्व हो गयी थी और "माला" के विभिन्न प्रसंगों में आए हुए पद आदि लेते हुए वार्ता के लेखक ने प्रसंगों को पुष्टि मार्गीय रूप दे दिया अन्यथा कोई कारण नहीं था कि नागरीदास जी "वार्ता" में दिए हुए अपने सम्प्रदाय के अधिकृत विवरणों के विपरीत जाते। पुनः मधुकरशाह के प्रसंग में "वार्ता" ~~के~~ "व्यास बचन सुनि मधुकर-साहै, भक्तिपन सदा लह्यौ।" जिसका अंतिम तुक है; उस पद का न दिया जाना, उसकी साम्प्रदायिक कतरव्यौंत का ज्वलन्त प्रमाण है[४७]।

पद प्रसंग माला का रचनाकाल सं० १८१९ के लगभग सिद्ध हुआ है इससे तो यही परिणाम निकलता है कि दोनों वार्ता ग्रंथ उक्त ग्रंथ की रचना के बाद ही किसी समय लिपिबद्ध हुए होंगे। हमारा तो यह भी अनुमान है कि कदाचित् "पद प्रसंग माला" के अनुकरण पर ही वार्ता ग्रंथ लिपिबद्ध हुए।

नागरीदास तथा उनकी पद प्रसंग माला के विषय में डा० हरिहर~~प्रसाद~~ नाथ टंडन ने जो विचार प्रकट किए हैं वे मुख्यतः निम्नांकित हैं[४८]:-

(१) "नागरीदास जी का दृष्टिकोण शुद्ध भक्तिपूर्ण था। वे भक्तिगुण गान करना चाहते थे, इतिहास की परम्परा का पालन नहीं। इस कथन में उन्होंने जितने चरित्र लिखे हैं उनमें से बहुत से इतिहास से मेल नहीं रखते हैं अतः यह मानना पड़ता है कि सुनी सुनाई वार्तों के आधार पर ही उनके ग्रंथों की रचना हुई थी।"

(२) जब वार्ता के उल्लेख नागरीदास से पूर्व मिलते हैं तब शंका कैसी कि यह ग्रंथ उनके समय तक पूरे नहीं हुए थे "धन्य चौरासी भक्त" ही यह प्रमाणित करता है कि चौरासी वैष्णवों की वार्ता उनके समय से पूर्व या उस समय तक प्रचलित हो गयी थी और वार्ता की प्रचलित प्रतियां भी १८१९ के पूर्व की प्राप्त है।

४७- तुलसीदास - डा० माताप्रसाद जी गुप्त, पृ० ८१।

४८- दे० वार्तासाहित्य।

अन्य ग्रंथों में उनका उल्लेख भी मिलता है इसलिए वार्ता और नागरीदास के वर्णन में जो भेद है उसके लिए वार्ता की अनुपस्थिति उतनी उत्तरदायी नहीं है जितनी कि नागरीदास का ज्ञान और उनकी परिचय की न्यूनता ।

(३) नागरीदास की गोविन्द परिचयी का अन्तिम पद है:-

"इहिं तन सखा दुतिय तन सखी । नित देखत लीला मधुमुखी ।
नागरीदास भए इहिं भाय । अपनाये श्री विट्ठलराय ।।"

इसमें "दुतिय तन सखी" पद श्री हरिराय जी की प्रकट की हुई लीला भावना का संकेत करता है और उसी का रूपान्तर है । श्री हरिराय से पूर्व पुष्टि मार्ग के किसी ग्रंथ में अष्ट सखाओं का द्वितीय सखी रूप से उल्लेख नहीं है इस कारण केवल यही नहीं मानना पड़ेगा कि दो सौ बावन, चौरासी और निज वार्ता व घरू वार्ताएं उस समय बन चुकी थी, वरन् श्री हरिराय जी कृत भावात्मक संस्करणों का भी उतना प्रचार हो गया था कि नागरीदास जी अपने ग्रंथ में "द्वितीय तन" सखी " की भावना का उपयोग कर सकें ।

(४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में कांकरी मारी है न कि अंकरौरी । अंकरौरी आक के फल को कहते हैं और कांकरी छोटे से कंकड़ या पत्थर के टुकड़े को । श्रृंगार के समय अंकरौरी नहीं कांकरी मारी है ।

प्रस्तुत लेख में टण्डन जी ने अपने मत की पुष्टि के लिए जो तर्क दिए हैं वे कहां तक तर्कसंगत है इस पर नीचे क्रमशः विचार कियागया है-

(१) अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने पहला तर्क उपस्थित किया है कि नागरीदास जी ने इतिहास की परम्परा का पालन नहीं किया है, सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही रचना की है १, यद्यपि जो तर्क इन्होंने उपस्थिति किए हैं सभी के अकाट्य उत्तर डा० माताप्रसाद गुप्त के उपर्युक्त लेख में है जिसे कदाचित् उन्होंने ध्यान से नहीं पढ़ा । जहां तक भक्तपूर्ण दृष्टिकोण का प्रश्न है इसे कौन नहीं मानता ? किन्तु कौन से चरित्र उन्होंने ऐसे लिखे हैं जो इतिहास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, इसका उल्लेख डा० टंडन ने नहीं किया है। जो नागरीदास सभी साधनों से सम्पन्न हों, और अपने जीवन के अंतिम बारह वर्ष जिन्होंने ब्रज की तपोभूमि में व्यतीत किए हों और उसी सम्प्रदाय(वल्लभ) में एक नहीं चार चार पीढ़ियों से दीक्षित रहे हों उनके विषय में यह कह देना

कि उन्होंने सुनी सुनाई बातों का ही आधार लिया कहां तक न्याय संगत कहा जा सकता है?

(२) दूसरे तर्क के विषय में निवेदन है कि यदि सं० १८१९ तक वार्ताएं लिपिबद्ध होती, तो नागरीदास उन प्रसंगों के विस्तारों के विपरीत क्यों जाते ? जिसने घनीजी जी के विषय मे लिखते हुए "भक्तमाल और टीका" का उल्लेख कर दिया है + उसी ने वार्ता का उल्लेख क्यों नहीं किया, यह "धन चौरासी" के संबंध मे विचार करते समय पहले ही लिख दिया गया है ।

(३) तीसरे तर्क में "गोविन्द परिचयी" से जो अन्तिम पंक्तियां उद्धृत कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि "इहि तन सषा दुतिय तन सषी" हरि-राय जी की प्रकट की हुई लीला भावना का संकेत करता है, उसका प्रश्न तभी उठता है जब वार्ताएं कब लिपिबद्ध हुई थीं, इसका ठीक ठीक पता लग जाय । यदि उस समय तक इस प्रकार की कोई रचना हुई होती तो क्या नागरीदास जी कहीं न कहीं उसका उल्लेख न करते? अतएव उक्त पद से हरिराय जी का संबंध जोड़ना हास्यास्पद मालूम होता है । यों भी जिस प्रकार वार्ताओं की लिपिबद्धता का प्रश्न है, उसी प्रकार हरिराय जी का "भावप्रकाश" कब लिखा गया, यह भी अभी संदेह का विषय है ।

(४) अंतिम तर्क जो उन्होंने "गोविन्द परिचयी" के संबंध में दिया है "कांकरी" को "आंकरौरी" में बदलने से वार्ता का प्रसंग बिगड़ गया है । उसके विषय में निवेदन है कि समान प्रसंग मारामारी का है । पद प्रसंग माला में "आंकरौरी" मारी है, किन्तु वार्ताकार के गोविन्द स्वामी ने "कांकरी" । प्रसंग तो प्रायः एक सा है । विस्तार में यह अन्तर अवश्य लगाया है कि एक ने बन में मारा मारी की तो दूसरे ने श्रीनाथ जी के मंदिर में । "मारामारी" के स्थलों में परि-वर्तन द्रष्टव्य है । जहां तक "आंकरी" और "कांकरी" की मारामारी का प्रश्न है, "आंकरी" या "आंकरौरी" से मारना अधिक बुद्धिसंगत मालूम होता है । यहां तक कि प्रियादास ने भी "आंकरोड़िन" सो मारि कै" लिखा है । इससे वार्ता का प्रसंग बिगड़ जाय, यह आश्चर्य की बात है ।

अतएव इस प्रकार की दलीलों से वार्ताओं को पद प्रसंग माला के पूर्व की रचना बतलाना ठीक नहीं जान पड़ता और ठोस प्रमाणों के अभाव में दोनों वार्ता ग्रंथों का रचनाकाल पद प्रसंग माला (रचनाकाल सं० १८१९) के बाद ही

माना जायगा ।

(१३) वार्ताओं पर हरिराय की तथाकथित टीका-"भाव प्रकाश"

हरिराय जी का नाम बल्लभ सम्प्रदाय में उल्लेखनीय है । इस सम्प्रदाय में बल्लभ -विट्ठल और गोकुलनाथ के पश्चात् इनका सम्मान सबसे अधिक है । इन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों में रचनाएं की । कहा जाता है कि इनका पद्य और गद्य दोनों पर समान अधिकार था । इन्होंने गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं में भी रचनाएं कीं[४९]। सर्वप्रथम वल्लभ सम्प्रदायी विद्वान् द्वारिकादास परीख ने गुजराती में तथा मीतलजी ने विशेषरूप से अपने ग्रंथ "अष्टछाप परिचय" के प्रथम संस्करण में हरिराय जी के जीवन वृत्तान्त तथा उनके वार्ता साहित्य पर प्रकाश डाला ।

जन्म तथा मातापिता-

हरिराय जी गुसाईं विट्ठलनाथ के प्रपौत्र तथा गोस्वामी कल्याणराय के पौत्र थे । इनका जन्म संवत् १६४७ भाद्रपद कृष्ण ५ को ब्रज के गोकुल ग्राम में हुआ था[५०]। उस समय गोकुल ही बल्लभ सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र था ।

दीक्षा गुरु-

आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया । यद्यपि उस समय गुसाईं विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र उपस्थित थे फिर भी उनकी आज्ञा से गोस्वामी गोकुलनाथ जी ही इनके दीक्षा गुरु हुए तथा उन्हीं से इन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की ।

रचनाएं-

हरिराय जी के विषय में कहा जाता है कि जितने ग्रंथों की रचना इन्होंने की उतने ग्रंथ कदाचित् कम लोगों ने लिखे होंगे । इन्होंने संस्कृत में भी अनेक ग्रंथों की रचनाएं की । द्वारिकादास परीख ने इनके १६६ संस्कृत ग्रंथों की सूची दी है[५१]। मीतल जी ने संस्कृत ग्रंथों के अतिरिक्त इनकी ४६ रचनाओं की सूची अपने ग्रंथ मे दी

४९- प्रभुदयाल मीतल, गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, पृ० २ ।
५०- वही, पृ० ५ ।

५१- श्री हरिराय जी महाप्रभु नुं जीवन चरित्र (गुजराती), पृ० १६०-६३ ।

है । इनमें से अनेक ग्रंथों के ये कदाचित् वक्ता रहे हैं, लेखक नहीं । इन्होंने अनेक कीर्तन पदों की रचनाएं की हैं । उन पदों में इनकी रसिक, रसिकराय, रसिकदास, रसिक प्रीतम, हरिदास और हरिधन आदि अनेक छापें मिलती हैं[५२]।

निधन-

कहा जाता है कि लगभग १२५ वर्षों की दीर्घायु इन्हें मिली थी । ये संवत् १७७२ में मेवाड़ के खिमगौर ग्राम में स्वर्गवासी हुए ।

वार्ताओं पर लिखे गये "भावप्रकाश" के विषय में कुछ जानने के पहले देखना यह है कि "भावप्रकाश" के मूल रचयिता क्या हरिरायजी हैं?

"वास्तव में देखा जाए तो श्री हरिरायजी कृत टिप्पण नाम "भाव-प्रकाश" मौलिक रूप में नहीं मिलता । "ताकौ अब कहत हैं तहां संदेह होत है, ताको हेतु यह है" आदि शब्दों से प्रारम्भ होने वाले वाक्यों को "भावप्रकाश" समझा जाता है । + + वार्ता में कई स्थलों पर लिखा मिलता है कि "ताकौ भाव श्री हरिरायजी आज्ञा करते हैं" यह वाक्य ऐसा है न तो मूल वार्ता का ही हो सकता है और न श्री हरिरायजी का ही । इसके अतिरिक्त कि इसे प्रति - लिपिकार का लेख माना जाय, और कोई गति नहीं है[५३] ।"

"यह प्रतिलिपिकार का लेख माना जाय" शास्त्री जी के इस कथन की पुष्टि कांकरौली द्वारा प्रकाशित "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" के प्रथम पृष्ठ पर लिखे गये वाक्य से भी हो जाती है " अब दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता गोकुलनाथजी प्रगट किए, ताकौ भाव श्री हरिरायजी कहत हैं सो लिख्यते ।" इससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि मूल लेखक हरिरायजी नहीं हैं बल्कि कोई अन्य व्यक्ति है[५४] । ~~वस्तु~~ वस्तुतः उस समय तब जब ~~कार्तएं~~ वार्ताएं लिपिबद्ध नहीं हुई थीं तो टिप्पण का "भावप्रकाश" कैसा?

५२- गोस्वामी हरिरायजी का पद सा० प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९ ।

५३- अष्टछाप, संपादक प्रो० कण्ठमणि शास्त्री, पृ० ६ ।

५४- " अब श्री गुसाईं जी के सेवक दो सौ बावन वैष्णवन की वार्तान में गूढ़ आसय श्री गोकुलनाथजी कहे हैं, तथा श्री हरिरायजी कछूक भाव प्रगट करत हैं, पुष्टि मार्गीय वैष्णवन के जनाइबे के अर्थ । पृ० २ ।

श्री हरिरायजी "टिप्पणी" या "भावप्रकाश" के मूल रचयिता नहीं है यह तो ऊपर भलीभांति स्पष्ट हो गया है। इसके साथ एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि गोस्वामी हरिरायजी के एक शिष्य विट्ठल भट्ट ने एक ग्रंथ "सम्प्रदाय कल्पद्रुम" की रचना सं० १७२९ में की। इसके अन्त में कवि नें अपना परिचय भी दिया है। उसमें उसने स्वीकार किया है कि उसने "हरिरायजी के मुख से जो कछु सुना है सो लिखा है।"[५५] इस सम्पूर्ण ग्रंथ में आचार्यजी, गुसाईंजी के तथा श्रीनाथजी के मेवाड़ आगमन तक के चरित्र उपस्थित किए हैं। उक्त ग्रंथ में हरिरायजी का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया हुआ है तथा कई रचनाओं का भी उल्लेख है किन्तु भावप्रकाश का कहीं भी उल्लेख नहीं है। हरिरायजी संवत् १६४७ से १७२६ तक ब्रज में रहे, फिर मेवाड़ में आए। उस समय उनकी अवस्था ८० वर्ष के लगभग थी। "संप्रदाय कल्पद्रुम" का रचनाकाल संवत् १७२९ दिया हुआ है, उस समयतक "भाव प्रकाश" अथवा "टिप्पणी" का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। फिर यह अनुमान हास्यास्पद सा मालूम होता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने "भाव प्रकाश" की रचना की होगी।

<u>भाव-प्रकाश-</u>

"चौरासी में वैष्णव श्री आचार्यजी महाप्रभून के अंगरूप "निर्गुण पक्ष" के मुखिया है। तिनकौ भाव चौरासी वैष्णवन की वार्ता में कहि आए हैं। उनके तीन तीन धर्मरूप चौरासी वैष्णव राजसी, चौरासी वैष्णव तामसी (और) चौरासी वैष्णव सात्विकी इह हैं। सो ये तीनों जूथ मिलिकै दोइ सौ बावन श्री गुसाईं जी के अंग-संबंधी जानतें। ये गुसांईं जी के अंगरूप अलौकिक सर्व सामर्थ्य रूप है।"

भावप्रकाश में पहले इस प्रकार चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवों की संख्याओं के विषय में लिखा गया है तथा प्रत्येक वार्ता के प्रारंभ में कुछ पंक्तियां उद्धृत की गई है। उदाहरणस्वरूप "बाबाहरिवंशजी" की दूसरी वार्ता में भावप्रकाश में इस प्रकार लिखा गया है-

"ये बाबा हरिवंशजी राजस भक्त हैं। लीला मैं इनकौ नाम" चन्द्रकला "है। सो चन्द्रकला ललिताज जी तें प्रगटी है--- आदि।"

इसकी उल्लेखनीय विशेषताएं यह हैं-

(१) भावप्रकाश में किसी भी भक्त के पूर्ण जीवन के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है। केवल यह बतलाया गया है कि पहले जन्म में वे क्या थे ? फिर

५५- सम्प्रदाय कल्पद्रुम, पृ० १८०।

क्यों जन्म लेना पड़ा ?

(२) इसमें स्थल स्थल पर वल्लभ सम्प्रदाय की महत्ता का गुण गान किया गया है। साथ ही वल्लभाचार्य जी तथा गुसांईजी को अलौकिक पुरुष बतलाया गया है।

(३) कहीं कहीं वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित २५२ की मूल वार्ता तथा भावप्रकाश में बिल्कुल साम्य पाया जाता है। उदाहरण के लिए कृष्णभट्ट की वार्ता प्रसंग के पहले उनके जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए, भावप्रकाश में लिखा गया है कि "सो कृष्णभट्ट उज्जैन में पद्मरावल सांचोरा ब्राह्मण के घर प्रकटे सो पद्मरावल श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक हैं।" वेंकटेश्वर प्रेस की वार्ता की निम्नलिखित पंक्तियां इस प्रसंग में तुलनीय है- "श्री महाप्रभूनजी के सेवक पद्मरावल साचौरा ब्राह्मण तिनके बेटा कृष्णभट्ट हते" यह बात कांकरौली संस्करण में नहीं लिखी गई है। इसके पश्चात् भाव प्रकाश में बतलाया गया है कि उज्जैन में पधारने पर कृष्णभट्ट उनके शिष्य हुए यह बात दोनों रचनाओं में नहीं लिखी गई हैं।

कांकरौली संस्करण प्रथम प्रसंग की वार्ता में एक स्थान पर भाव प्रकाश में लिखा गया है कि "सो जा भांति श्री आचार्यजी आप पद्मरावल को चन्दन चरनामृत दियो (हतो) सो लेत ही तत्काल श्री आचार्यजी के मार्ग को सिद्धान्त स्फुर्द भयो ताहीं भांति कृष्णभट्ट कोहू पोथी देखत ही सब स्फुर्द भयो, या प्रकार जाननो।" वेंकटेश्वर संस्करण के प्रथम प्रसंग में यही बात इस प्रकार लिखी गई है "जैसे पद्मरावल कूं श्री महाप्रभून जी की कृपातें पुष्टि मार्गीय सिद्धान्त स्फुरित भयो हतो तैसे उनके बेटा कृष्णभट्ट जी कूं" इस स्थल पर यह भी ध्यान रखने की बात है कि कांकरौली संस्करण प्रसंग १ में पद्मरावल का नाम नहीं है।

जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है वे० स० प्रसंग १० में कृष्ण भट्ट की मृत्यु हो जाने के पश्चात् गुसाईं जी ने मंदिर में सिंगार करते हुए देखा। यह बात का० स० में नहीं आयी है। इसी बात को का० सं० के प्रसंग १० के भाव प्रकाश में लिखी गई है। इसे और स्पष्ट करने के लिए दोनों संस्करणों के उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं-

<u>भावप्रकाश</u>-

"और जा दिन कृष्णभट्ट की देह छुटी ता दिन श्री गोवर्धननाथ जी, को सिंगार श्री गोकुलनाथ जी करत हते। सो ताही समै कृष्णभट्ट की देह छुटी। सो शृंगार करत समै श्री कृष्णभट्ट दर्शन को आए। सो कृष्णभट्ट श्रीनाथ को दण्डवत करी। तब श्री गोकुलनाथ जी ने कृष्णभट्ट सों पूछी, जो कृष्णभट्ट तुम

कब आए? + + + तब रामदास जी भीतरिया सो श्री गोकुलनाथ जी पूछें जो रामदास जी । कृष्णभट्ट आए हैं, सो कहाँ है? "इसी प्रकार उनके पत्र के विषय में भी लिखा गया है ।"

बैंकटेश्वर प्रेस संस्करण-"जा दिन कृष्णभट्ट की देह छूटी वाहि समय श्री गुसाईं श्रीनाथ जी के श्रृंगार करके चौक में पधारे हते तब श्री कृष्णभट्ट कुं देखे, जब श्री कृष्णभट्ट ने साष्टांग दंडवत करी तब श्री गुसाईं जी ने पूछ्यो जो तुम कब आए ? + + + तब रामदास जी भीतरिया ने कही जो कृष्णभट्ट तो मंदिर में जाते देखे परन्तु बाहेर निकसते + + + + "इस प्रकार से सम्पूर्ण पंक्तियां वही हैं ।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भावप्रकाश तथा २५२ वार्ता के बैंकटेश्वर प्रेस संस्करण में अत्यधिक साम्य है । इसका कारण यह जान पड़ता है कि -

या तो हरिराय जी के नाम पर भावप्रकाश प्रक्षिप्त और परवर्ती रचना है अथवा यदि हरिराय जी को उसका रचयिता मान भी लिया जाय तो उनके सम्मु किसी ऐसे आदर्श की कल्पना अवश्य करनी पड़ती जिसका प्रतिनिधित्व बैंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित २५२ वार्ता संस्करण करता है ।

गंगाबाई क्षत्राणी २५२ की ६१वीं सेविका है । इनके विषय में "भावप्रका अथवा "टिप्पणी" में लिखा है "सो गंगाबाई सौ बरस ऊपर पांच च्यारि अधिक लौं भूतल पें रही" इन्हीं गंगाबाई की वार्ता बैंकटेश्वर प्रेस संस्करण में ५१वीं संख्या पर इस प्रकार है "सोलहसौ अट्ठाइस में विनको जन्म हतो और सत्रह सौ छत्तीस वर्ष सूधी के भूतल पर रही हती सो विशेष बात इनकी श्रीनाथ जी के प्राकट्य में लिखी है ।" श्रीनाथ की प्राकट्य वार्ता के लेखक भी हरिराय जी ही हैं । प्राकट्यवार्ता में भी स्पष्ट रूप से मिती आसोज सुदी १५ संवत् १७२६ का उल्लेख है । "भाव प्रकाश" में उक्त तिथि का अभाव ही यह संदेह उत्पन्न करता है कि कदाचित् उसके लेखक हरिराय नहीं हैं क्योंकि वही लेखक एक स्थान पर किसी घटना विशेष की निश्चित तिथि का उल्लेख करे और दूसरे स्थान पर अटकल की बात करे, यह बात कुछ असंगत सी लगती है । यह भ्रांतियां वस्तुतः साम्प्रदायिक भावना के कारण फैल गई है ।

यदि वह "भाव प्रकाश" जिस रूप में लिखा हुआ मिलता है- उसमें विशेष साम्प्रदायिक भावना न होती तो हिन्दी जगत् में नन्ददास और तुलसीदास के

भ्रातृत्व के विषय में जो इतना वितंडावाद उठ खड़ा हुआ है, उसका समाधान हो जाता । कारण स्पष्ट है -यदि जो लोग इस "भाव प्रकाश" को हरिरायकृत मानकर इसे प्रामाणिक मानते हैं उनके लिए तो यह विवाद यहीं समाप्त हो जाना चाहिए था, क्योंकि जब कांकरौली से प्रकाशित२४०वीं वार्ता तथा अष्टछाप (सं० १९९७ संस्करण) की वार्ता और भाव प्रकाश (प्राचीन वार्ता रहस्य) में कहीं भी नन्ददास और तुलसीदास को भाई भाई नहीं लिखा गया है । फिर भी इस प्रकार की हठधर्मी क्यों?

निष्कर्ष-

वार्ताओं पर केवल यही "भाव प्रकाश" अथवा टिप्पण लिखा गया है ✱ किंतु इससे किसी भी वैष्णव भक्त के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त हो सकती । मुख्यतया पिछले जन्मों से किस प्रकार इस जन्म में आए, इसी का वर्णन है । कुछ वैष्णवों को पुष्टिमार्गीय होने के कारण बहुत महान् कहा गया है ।

इस "टिप्पणा" में और वैंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित मूल वार्ता में बहुत अधिक साम्य है । उदाहरण के लिए कृष्णभट्ट की वार्ता उद्धृत की जा सकती है।

इसमें कहीं भी किसी तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है । मालूम होता है ~~इसमें~~ कि टिप्पणीकार तिथियों के संबंध में बहुत सतर्क है ।

बहुत सी उलझी हुई समस्याओं के समाधान में इस टिप्पण से कोई सहायता नहीं मिलती जैसे सूरदास के सवा लक्ष पद बनाने की, नन्ददास की प्रेयसी "रूपमंजरी" की तथा नन्ददास और तुलसीदास के भाई होने की समस्याओं पर इससे कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि यह "टिप्पणी" अप्रामाणिक ज्ञात होती है । और ऐसा अनुमान होता है कि कदाचित्-प्रियादास की टीका के अनुकरण पर बहुत बाद में किसी ने इसकी रचना की ।

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्ययुग प्राणिमात्र की मंगल-कामना की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। राजनीतिक क्रान्ति एवं संघर्षमय जीवन में भी भक्त-महात्माओं ने भारतीय जनता के सम्मुख भक्ति और प्रेम का जो मार्ग प्रस्तुत किया वह इस देश के इतिहास में निश्चय ही अपना पृथक् महत्व रखता है। मध्यकालीन भक्त-वार्ता साहित्य में इसी प्रकार की असाधारण सुगन्धि विकीर्णित करने वाले कतिपय भक्त-पुष्पों की माला गूंथी गई है। उस युग के हिन्दी साहित्य का ऐसा कोई आलोचक अथवा इतिहासकार नहीं है जिसने कि भक्त-वार्ता साहित्य से सहायता न ली हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस दिशा में अध्ययन करने वाले व्यक्ति की दृष्टि को सर्वप्रथम अलौकिकता तथा अतिरंजना का एक स्थूल आवरण चका चौंध कर देता है, किन्तु यदि सतकर्ततापूर्वक उसका तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो इस आवरण के बीच से झांकते हुए ऐसे तथ्यों का संचय किया जा सकता है, जिनके आधार पर भक्ति आन्दोलन के उन्नायकों तथा प्रचारकों का एक इतिवृत्त तैयार किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में भक्त-वार्ता साहित्य का जिस दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है उसके अतिरिक्त उसका अन्य दृष्टियों से भी महत्व है। सबसे अधिक महत्व इस बात में है कि उससे हिन्दी साहित्य के इतिहास-निर्माण और भक्तों तथा सन्तों के जीवन-वृत्तों के संबंध में प्रचुर सहायता प्राप्त होती है। साहित्य का इतिहास लिखते समय हमें भक्त-वार्ता साहित्य से विभिन्न संत एवं भक्त कवियों का, और उनकी रचनाओं का काल निधार्रित करने में सहायता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए राघोदास-कृत भक्तमाल का रचनाकाल सं० १७१७ है, परिणामतः उसमें उल्लिखित भक्त अथवा संत उसके पूर्ववर्ती अथवा समसामयिक रहे होंगे। अतः ऐसे अनेक कवियों का रचनाकाल निर्धारित करने में इन ग्रंथों से विशेष सहायता मिल सकती है जिनका विवरण अभी तक अन्धकार में है, साथ ही यत्र तत्र कुछ कवियों के नाम से प्रचलित विशिष्ट रचनाओं का संकेत मिल जाने से हमें कहीं कहीं नई सूचनाएं भी उपलब्ध होती हैं- उदाहरण के लिए नाभादास के भक्तमाल में कबीर की रचनाओं में केवल "रमैनी","सबदी" और "साखी" इन तीन

प्रकार की रचनाओं का ही उल्लेख है, विष्णुपुरी जी की भक्ति रत्नावली टीका, पृथ्वीराज की "कृष्णरुकमणी वेलि" का उल्लेख है । इसी प्रकार वार्ताओं में "सिद्धान्त रहस्य", "श्रृंगाररस मंडन" तथा "श्री वल्लभाष्टक टीका" आदि के प्रसंग मिलते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ कवियों की रचनाओं में मिलने वाली विशिष्ट छापें भी भक्तवार्ता साहित्य में उपलब्ध होती हैं- जैसे "सुख सागर" (सुखानंद),"सारंग" (परमानन्ददास), गिरिराजधरन" (कृष्णदास) इत्यादि । इससे अनेक विवादास्पद रचनाओं के मूल रचयिताओं का निर्धारण करने में सरलता होती है । सम्पूर्ण भक्त-वार्ता साहित्य में अनेक सम्प्रदायों के भक्तों की गुरु प्रणालियों का विवरण उपलब्ध होता है जिससे इनका पूर्वापर क्रम निर्धारित किया जा सकता है । राघोदासकृत भक्तमाल में विशेषतया निर्गुण संतों का पृथक् पृथक् सम्प्रदायों में वर्णन होने के कारण उनकी जानकारी प्राप्त करने में अधिक सुविधा होती है । भक्त-वार्ता साहित्य में भक्तों और संतों की आध्यात्मिक गरिमा का तो स्पष्ट उल्लेख है ही, किन्तु उसमें उनके लौकिक जीवन से संबंधित अनेक तथ्य बिखरे पड़े हैं जिन्हें हम उचित परीक्षण एवं विश्लेषण के उपरान्त ग्रहण कर सकते हैं ।

साहित्यिक महत्व के अतिरिक्त भक्त-वार्ता साहित्य का धार्मिक, राजनीतक और सामाजिक महत्व भी है । धार्मिक दृष्टि से उनमें प्रसंगानुसार तत्कालीन विभिन्न सम्प्रदायों का इतिहास ही नहीं वरन् उनके कर्मकाण्डों तथा वाह्याचारों का वर्णन भी मिलता है । बीतक में प्राणनाथ के सर्व-धर्म-समन्वयवाद तथा तारतम्य मंत्र आदि का सविस्तार वर्णन है । वैष्णव भक्तों के मन्दिर तथा संतों के निवासस्थान तत्कालीन जन जीवन के प्रधान केन्द्र बन गये थे । वे धार्मिक तथा साम्प्रदायिक प्रचार के भी मुख्य केन्द्र थे । तत्कालीन धर्माचार्यों तथा संत महात्माओं के सम्पर्क से निम्नकोटि के व्यक्तियों के उन्नयन की कहानियों से सारा भक्त-वार्ता साहित्य भरा पड़ा है ।

उसके अध्ययन से तत्कालीन समाज की बड़ी आकर्षक झांकी मिलती है । इनमें जहां एक ओर मधुकरशाह, जयमल, आशकरण, पृथ्वीराज, मीरा आदि उच्चवर्ग के संत भक्तों की वार्ताएं मिलती हैं, वहीं दूसरी ओर रैदास चमार, सदनकसाई, कबीर जुलाहा, धनाजाट, सेहाधीमर तथा धोबियों और

बुहडों तक की वार्ताएं मिलती हैं, इसके साथ ही अनेक महिलाओं के प्रसंग ~~महिलाओं के प्रसंग~~ भी मिलते हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि उनका भी सम्मान तत्कालीन समाज में था । उस समय के आतिथ्य सत्कारके अनेक बेजोड़ उदाहरण भक्त वार्ताओं में मिलते हैं । उदाहरण के लिए अनन्तदास की परिचयी तथा प्रियादास की टीका में उपलब्ध पीपा का वह प्रसंग लिया जा सकता है, जबकि चीधड़ नामक एक भक्त की पत्नी ने पीपा तथा उनकी पत्नी सीता का आतिथ्य करने के लिए अपना लहंगा तक बेच दिया था । उस समय के दंड विधान, वाणिज्य-व्यवसाय, कृषि आदि के सम्बन्ध में अनेक उल्लेख मिलते हैं ।

उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों के अनेक संकेत वार्ताओं, परिचयियों तथा बीतकों में मिलते हैं । लालदासकृत बीतक में औरंगज़ेब के समय की परिस्थितियों का ब्यौरेवार वर्णन मिलता है जो सर्वथा विश्वसनीय है, क्योंकि लालदास ने कहीं भी अतिशयोक्ति तथा अतिरंजना का आश्रय नहीं लिया है । इसी प्रकार वार्ताओं में गंगाबाई, क्षत्राणी, लाड़बाई तथा गारबाई की वार्ताओं में औरंगज़ेब के अत्याचारों का, अनन्तदास की परिचयियों में मुसलमानी शासन की असहिष्णुता का, दादू परिचयी में अकबर जहांगीर आदि का वर्णन मिलता है । ये उल्लेख संख्या में इतने अधिक हैं कि उन्हें पृथक् अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है ।

जैसा पहले संकेत किया गया है, सांस्कृतिक क्षेत्र में भक्तों का सबसे बड़ा योगदान श्रद्धा तथा प्रेम समन्वित भक्ति का सन्देश है । अनेक ऐसे रोमांचकारी दृष्टान्त मिलते हैं जिनसे यह पता लगता है कि तत्कालीन जनता में यह सन्देश कितने व्यापक रूप में प्रचारित हुआ था। उदाहरण के लिए कृष्णादास की वार्ता में एक ऐसी वेश्या का उल्लेख है जो "मो मन गिरिधर छवि पर अटक्यौं" यह पंक्ति गाते गाते इतनी भावविभोर हो गई कि उसके प्राण छूट गए। खरगसेन नामक ग्वालियर के राजा रासलीला का भाव नृत्य करते हुए त्रिभंगी मुद्रा में इते इतने तन्मय होगये कि वह मुद्रा ज्यों की त्यों लगी रह गई और उनके प्राण पखेरू उड़ गये ।

उस समय के साहित्य में उच्च श्रेणी के साधक और उच्च श्रेणी के कवि का सम्मिलन है जो किसी भी साहित्य के लिए एक दुर्लभ वस्तु है। श्री नाथ जी के मन्दिर में नित्यप्रति अष्टछाप के कवियों के भजन गाने और कीर्तन करने की प्रथा से पुष्टिमार्गीय साहित्य के प्रचार में सहायता मिली है और ब्रजभाषा की रचना इतनी लोकप्रिय हुई कि अन्य भाषा-भाषी प्रान्तों के लोगों ने अष्टछाप के कवियों के अनुकरण पर ब्रजभाषा में कविताएं लिखीं। ये कवि साहित्यिक होने के साथ संगीतज्ञ भी थे, इसलिए संगीत का प्रचार बड़ी तीव्रता से हुआ और उससे हिन्दू मुसलमानों के भेदभाव मिटाने का भी वातावरण तैयार हुआ। प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन का, गोविन्दस्वामी के संगति से प्रभावित होकर शिष्यत्व ग्रहण करने की की घटना का वार्ताओं में उल्लेख है। पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में संगीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय के अनेक उल्लेख भरे पड़े हैं। उनमें तत्कालीन वस्त्राभूषणों (सूतन=पायजामा, पिछौरा, पाग, कुलह, टिपारा, कंचुकी, कंठी, सेहरा आदि) खाद्य तथा पेय पदार्थों (बालभोग, राजभोग, जूठन आदि), गृहस्ती की उपयोगी वस्तुओं (जैसे झारी, कसेंडी, बंटा, तिष्टी, तबकड़ी आदि पात्र, सकलात रजाई, दगला, गादी आदि ओढ़ने-बिछाने की सामग्री) लेन देन की प्रथाओं, व्यापार, व्यवसायों, आवागमन के मार्गों, धातुओं, सिक्कों, राजाओं, राजकर्मचारियों (पौरिया, भितरिया, खवास) दरबारों, महलों, युद्धों, डाक-व्यवस्था, आखेट, मृगया, सामाजिक प्रथाओं, जातियों (कनौजिया, भट्ट, साचौरा पाण्डे आदि), संस्कारों, त्योहारों, वनयात्राओं, तीर्थयात्राओं, आदि के उल्लेख मिलते हैं।

तात्पर्य यह कि भक्त-वार्ता साहित्य में तत्कालीन संस्कृति का चित्र उपस्थित करने वाली सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है और इस दृष्टि से उसका अध्ययन महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। भाषा की दृष्टि से भी भक्त-वार्ता साहित्य का महत्व अक्षुण्ण है, क्योंकि लालदास कृत बीतक में खड़ी बोली का और पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में ब्रजभाषा गद्य के प्राचीनतम रूप उपलब्ध होते हैं। बीतक का तो इस साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार उसके चरित नायक प्राणनाथ का व्यक्तित्व अनेक

विलक्षणताओं का समन्वय है- उसी प्रकार यह बीतक भी ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टियों से अनेक विलक्षणताओं का भण्डार है। बीतक-साहित्य का विस्तृत और गंभीर अध्ययन अभी अपेक्षित है। अस्तु हिंन्दी भक्त-वार्ता साहित्य को केवल जनश्रुतियों और अलौकिक वृत्तांतों का संकलन मात्र कह कर उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता, प्रत्युत उसका अध्ययन सांस्कृतिक दृष्टि से भी उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

सहायक पुस्तकों की सूची

(१) काव्य तथा आलोचनात्मक ग्रंथ

१- अष्टछाप- संपादक प्रो० कंठमणि शास्त्री
२- अष्टछाप- डा० धीरेन्द्र वर्मा
३- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय भाग १-२- डा० दीन दयालु गुप्त
४- अष्टछाप (सं० १६६९) की वार्ता और भाव प्रकाश- सं० प्रो० कंठमणि शास्त्री
५- अष्टछाप परिचय- प्रभुदयाल मीतल
६- अष्ट सखान की वार्ता- सं० द्वारिका दास परीख
७- उत्तरी भारत की संत परम्परा- पं० परशुराम चतुर्वेदी
८- कबीर-ग्रंथावली- डा० पारस नाथ तिवारी
९- करुणा सागर- दयाल दास
१०- कांकरौली का इतिहास- कांकरौली से प्रकाशित
११- गरीबदास की वाणी- स्वामी मंगल दास
१२- गुजराती साहित्य का संक्षिप्त इतिहास- वरसाने लाल चतुर्वेदी
१३- गुरु प्रकरण परची- श्री आनंदाश्रम, बीकानेर
१४- गोस्वामी हरि राय जी का पद साहित्य- प्रभुदयाल मीतल
१५- चौरासी वैष्णवन की वार्ता- नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
१६- चौरासी वैष्णवन की वार्ता- लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
१७- चौरासी वैष्णवन की वार्ता- डाकौर संस्करण
१८- चौरासी वैष्णवन की वार्ता- अग्रवाल प्रेस, मथुरा
१९- जगजीवन साहब की परिचयी- बोधिदास
२०- तुलसीदास- डा० माता प्रसाद गुप्त
२१- तुलसीदास और उनका युग- राजपति दीक्षित
२२- दादू जन्म लीला परची- सुखदयाल दादू
२३- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
२४- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- डाकौर संस्करण
२५- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
२६- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (तीन खण्डों मे) कांकरौली से प्रकाशित
२७- नागर समुच्चय- नागरी दास

२८- नाथ सम्प्रदाय- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
२९- निज वार्ता, घरू वार्ता, बैठक चरित्र- जगदीश्वर छापाखाना, मुंबई
३०- पंचामृत- स्वामी मंगलदास
३१- पद प्रसंग माला- नागरीदास
३२- परिचयी साहित्य - डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
३३- प्रसंग परिजात- स्वामी चेतनदास
३४- ब्रज माधुरी सार- वियोगी हरि
३५- भक्त कल्पद्रुम- प्रताप सिंह
३६- भक्त कल्पद्रुम- सं० काली चरन चौरसिया
३७- भक्त विनोद- कवि मियां सिंह
३८- भक्त नामावली- राधाकृष्णदास
३९- भक्तमाल- नाभादास
४०- भक्तमाल- रामदास
४१- भक्तमाल, भक्ति सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला
४२- भक्ति सागर-स्वामी चरनदास
४३- भागवत धर्म- हरिभाऊ उपाध्याय
४४- भागवत संप्रदाय- पं० बलदेव उपाध्याय
४५- भाव सिंधु की वार्ता- सं० निरंजन देव शर्मा
४६- भीखासाहब का जीवन चरित्र- बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
४७- मध्यकालीन प्रेम साधना- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
४८- मिश्र बन्धु विनोद - मिश्रबंधु भाग १-४
४९- मीरा: एक अध्ययन- ~~बचनवती~~ पद्मावती शबनम
५०- मीराबाई का जीवन चरित्र- मुन्शी देवी प्रसाद
५१- मीराबाई की पदावली- पं० परशुराम चतुर्वेदी
५२- मीराबाई की शब्दावली- बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
५३- रसिक अनन्यमाल- ललिता प्रसाद पुरोहित
५४- रसिक प्रकाश भक्तमाल- महात्मा जीवाराम युगल प्रिया रसिकाचार्य
५५- राज रसनामृत- मुन्शी देवी प्रसाद
५६- राजस्थान का पिंगल साहित्य- डा० मोती लाल मेनारिया
५७- राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग १-२
५८- राजस्थानी भाषा और साहित्य- डा० मोती लाल मेनारिया

५९- राधावल्लभ संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य- डा० विजयेन्द्र स्नातक
६०- राधावल्लभ भक्तमाल- पं० प्रियादास शुक्ल
६१- रामदास की परिचयी - वक्ता दयाल बाल लेखक परशुराम
६२- रामभक्ति में मधुर उपासना- डा० भुवनेश्वर मिश्र
६३- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय- डा० भगवती प्रसाद सिंह
६४- राम रसिकावली- रघुराज सिंह
६५- विचार विमर्श- आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय
६६- विचार-धारा- डा० धीरेन्द्र वर्मा
६७- वीर विनोद- कविराज श्यामल दास
६८- वृत्तान्त मुक्तावली- ब्रजभूषण
६९- व्यास वाणी संग्रह- वासुदेव गोस्वामी
७०- ब्रज का इतिहास- कृष्णदास बाजपेयी
७१- शिवसिंह सरोज-शिवसिंह सेंगर
७२- भक्त कवि व्यास जी- वासुदेव गोस्वामी
७३- श्री गोवर्द्धन नाथ की प्राकट्यवार्ता- श्री मोहनलाल विष्णु लाल पंड्या द्वारा प्रकाशित
७४- श्री गोवर्द्धन नाथ की प्राकट्यवार्ता -लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस- बंबई द्वारा प्रकाशित
७५- श्रीनाथ जी की प्राकट्यवार्ता- हरिराय कृत
७६- श्री भक्तमाल- प्रकाशित वृन्दावन
७७- श्रीराम सनेह- धर्म प्रकाश- आनन्दाश्रम बीकानेर
७८- श्री हित राधावल्लभ भक्तमाल- पं० प्रियादास शुक्ल
७९- संत दर्शन - डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
८०- सम्प्रदाय कल्पद्रुम- वीठलनाथ भट्ट
८१- सम्प्रदाय प्रदीप- प्रो० कण्ठमणि शास्त्री
८२- सुंदर ग्रंथावली- पुरोहित हरिनारायण शर्मा
८३- सूर और उनका साहित्य- डा० हरवंश लाल शर्मा

८४- हरिभक्ति प्रकाशिका- ज्वाला प्रसाद मिश्र

८५- हरिभक्ति सिन्धु वेला- अनन्त स्वामी

८६- हस्त लिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण - डा० श्याम सुन्दर दास

८७- हित हरिवंश सहस्र नाम-चाचा हित वृन्दावन दास

८८- हिन्दवी साहित्य का इतिहास- अनुवादक डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

८९- हिन्दी को मराठी संतों की देन- डा० विनयमोहन शर्मा

९०- हिन्दी नवरत्न- मिश्रबन्धु

९१- हिन्दी पुस्तक साहित्य- डा० माता प्रसाद गुप्त

~~९२- हिन्दी नवरत्न- मिश्रबन्धु~~

९३- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास- आचार्य चतुरसेन शास्त्री

९४- हिन्दी साहित्यः उसका उद्भव तथा विकास- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

९५- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा

९६- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

९७- हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास- अनुवादक डा० किशोरी लाल गुप्त

९८- हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

९९- हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज रिपोर्ट- नागरी प्रचारिणी सभा काशी- १९००, १९०६-८, १९०९-११, १९१२-१४, १९१७-१९, १९२०-२२, १९२३-२५, १९३२-३४ की रिपोर्टें ।

(२) इतिहास-ग्रंथ

१- उदयपुर का इतिहास- महामहोपाध्याय गौरी शंकर हीराचंद ओझा

२- औरंगजेब (भाग ३)- सर यदुनाथ सरकार

३- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इण्डिया (भाग ३-४)

४- जयपुर का इतिहास- हनुमान शर्मा

५- मआसिरुल उमरा- अनु० ब्रज रत्नदास

६- मारवाड़ का इतिहास- पं० विश्वेश्वर नाथ रेऊ

७- मुगल शासन पद्धति- सर यदुनाथ सरकार (हिन्दी संस्करण)

८- राजपूताने का इतिहास - महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा

९- विक्रमादित्य आव उज्जैनी- डा० राजबली पाण्डेय

१०- हिस्ट्री आव शाहजहां- डा० बनारसी प्रसाद

(३) अंग्रेजी ग्रंथ (धार्मिक तथा सांस्कृतिक)

१- चैतन्य एण्ड हिज़ कम्पेनियन- डा० दिनेश चंद्र सेन
२- ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आव् दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ एण्ड अवध (भाग ७)
३- निर्गुण स्कूल आव् हिन्दी पोएट्री- डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
४- मथुरा डिस्ट्रिक्ट मेमायर्स (भाग १)- एफ० एस० ग्राउज़
५- मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दोस्तान- डा० ग्रियर्सन
६- मेडिवल मिस्टसिज़्म- के० एम० सेन
७- स रेलिजस सेक्ट्स आव हिन्दूज़- एच० एच० विल्सन
८- वैष्णाविज़्म शैविज़्म एण्ड माइनर रेलिजस सेक्ट्स- आर० जी० भण्डारकर
९- स्कूल आव् आरियंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज़- यूनिवर्सिटी आव् लंदन १९५७

(४) संस्कृत ग्रंथ

अष्टयाम- अग्रदास
प्रपन्नामृत- अनंताचार्य
वल्लभ दिग्विजय- गो० यदुनाथ
सहस्त्रगीति- शठकोप (नाम्मलवार)

(५) गुजराती एवं बंगला ग्रंथ

१- बांगला साहित्येर इतिहास- डा० सुकुमार सेन
२- भक्तमाल- बाबा लाल दास (बंगला)
३- श्री गोकुलेशजीनुं जीवन चरित्र (गुजराती)
४- श्री हरिराय जी महाप्रभुनुं जीवन चरित्र (गुजराती) द्वारिकादास परीख।

(६) उर्दू ग्रंथ

भक्त उरवशी- लालदासकृत अनुवाद
भक्तमाल प्रदीपन- तुलसीराम

(७) पत्र-पत्रिकाएँ

१- आज, साप्ताहिक, विशेषांक सौर ९ वैशाख सं० २०१९

२- ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ सं० २०१० अंक ३ तथा वर्ष ६३ सं० २०१५ अंक ३-४

३-भक्त चरितांक कल्याण

४- ब्रज भारती वर्ष १५ अंक ४ तथा वर्ष १६ अंक २ भाद्र पद सं० २०१४

५- श्रीकृष्ण (मासिक पत्र) जंगम बाड़ी काशी- भाग ५ अंक २

६- संत वाणी, वर्ष १ अंक १ सन् १९४८ ई०

७- संत वाणी अंक- कल्याण

८- सम्मेलन पत्रिका भाग ३४ संख्या ४-६ माघ-चैत्र सम्वत २००३, भाग ३५ संख्या ७-९ वैशाख, अषाढ़

९- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, जून २२ सन् १९५८ ई०

१०- हितैषी, दिसम्बर-जनवरी सन् १९४१-४२

११- हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४ अंक ११ वर्ष ६ अंक २ आषाढ़-भाद्रपद सं० २०१०, वर्ष १० अंक ४ अक्टूबर दिसम्बर १९५७ ई०, वर्ष ११ अंक १ जनवरी-मार्च सन् १९५८ ई०

१२- हिन्दुस्तानी, भाग १५ अंक ३ जुलाई-सितम्बर, १९४५, भाग १६ अंक २ भाग १७ अंक १ जनवरी-मार्च १९४७ ।

(८) हस्तलिखित प्रतियाँ

१- अष्टयाम- नाभादास

२- कबीर परिचयी- अनन्तदास

३- गोपीचंद वैराग्य बोध- [illegible]मदास

४- चरनदास की परिचयी- रामरूप

५- धना परिचयी- अनन्तदास

६- नामदेव परिचयी- अनन्तदास

७- निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध- भगवत रसिक

८- पीपा परिचयी- अनन्तदास

९- बीतक- लालचंद

१०- वृन्दावन प्रकाशमाला- गो० चन्द्रलाल

११- भक्त बछल- मलकदास

१२- भक्त पचीसी- षेमदास

१३- भक्तमाल-जगाजी

१४- भक्तमाल- चैनजी

१५- भक्तमाल- राघवदास जी

१६- भक्तमाल संत सुमिरनी- लघुजन

१७- भक्तमाल पर टीका- बालकराम

१८- भक्तमाल राघोदास चतुरदासकृत टीका सहित

१९- भक्तमाल प्रसंग-वैष्णवदास

२०- भक्तसुमिरिनी- चैनरायन

२१- भक्ति माहात्म्य-गिरिधर

२२- भगतबिहार-चन्ददास

२३- मलूकदास की परिचयी- सुथरादास

२४- रसिक अनन्यगाथा-गोविन्द अली

२५- रसिक अनन्य परिचावली-चाचा वृन्दावन दास

२६- रसिक अनन्यमाल-भगवत मुदित

२७- रसिक अनन्य सार- गुसाईं जतनलाल

२८- रसिक माल- उत्तमदास

२९- रांका बांका परिचयी- अनन्तदास

३०- राज हिन्डोला- भीखादास

३१- रैदास परिचयी- अनन्तदास

३२- संत गुणसागर- माधोदास

३३- स्वामी सेवादास की परिचयी-रूपदास

३४- हरिदास की परिचयी- रघुनाथदास

३५- हितकुल शाखा- जयकृष्णदास

३६- ज्ञानबोध-मलूकदास